वर्ष 36, अंक-4-5, जुलाई-अक्तूबर, 2013

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतेंदु विशेषांक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पाँच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पाँच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाये।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप महानिदेशक (ए.एन.)	:	23370784
उप महानिदेशक (ए.एच.)	:	23370228
निदेशक (ओ.सी.डी.)	:	223370391
निदेशक (सी एण्ड एक्स)	:	223379463

प्रशासकीय अनुभाग (स्थापना, प्रेषण, रखरखाव, कार्मिक)	:	23379639
विशेष परियोजना	:	23379371
सृजनात्मक संवाद व कार्यक्रम समन्वय अनुभाग	:	23379930
प्रदर्शनी अनुभाग	:	23379364
वित्त व लेखा अनुभाग	:	23370994
आने वाले सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल	:	23378079
विदेश सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379463
आने वाले व जाने वाले दर्शक अनुभाग	:	23370118
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र व भारतीय अध्ययन पीठ अनुभाग	:	23379274
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-I	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-II	:	23379199
पुस्तकालय	:	23379384
बाहर जाने वाले सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल व दृश्य-श्रव्य ध्वन्यांकन अनुभाग	:	23379226
प्रकाशन विभाग	:	23379158
प्रस्तुति इकाई	:	23370633

गगनांचल
जुलाई-अक्तूबर, 2013 (संयुक्तांक)

प्रकाशक
अनिता नायर
कार्यकारी महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

परामर्श मंडल
प्रो. अशोक चक्रधर, रत्नाकर पांडेय
रामदरश मिश्र, बालशौरि रेड्डी
दिनेश मिश्र, ममता कालिया
हरीश नवल, अनामिका

संपादक
अनवर हलीम

उप संपादक
अशोक कुमार जाजोरिया
ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक द्रप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

आधुनिक हिंदी साहित्य के शिखर स्तंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र — 5
डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

प्यारे हरिश्चंद की कहानी रह जाएगी — 9
डॉ. रत्नाकर पांडेय

राष्ट्रीय नाट्यशास्त्र के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र — 13
डॉ. श्याम सिंह शशि

विलक्षण व्यक्तित्व कृतित्त्व के प्रतिमान, नवयुग के अग्रदूत कवि — 16
डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी

भारतेंदुकालीन ब्रजभाषा कविता — 19
आचार्य डॉ. विष्णुदत्त राकेश

भारतेंदु हरिश्चंद्र : कथा-पटकथा नोट्स — 22
अशोक चक्रधर

हिंदी भाषा के युग-प्रवर्तक 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' — 27
डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल

आधुनिक युग के प्रवर्तक एवं ब्रजभाषा काव्य के कीर्तिमान — 30
डॉ. सुनीति एस. आचार्य

भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में प्राचीन व नवीन का समन्वय — 34
डॉ. वेद व्यथित

'अंधेर नगरी' : एक कालजयी रचना — 36
हरजेंद्र चौधरी

एक यात्रा साहित्य के तीर्थ की — 41
डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र

हिंदी के युगप्रवर्तक साहित्यकार — 43
डॉ. परमानंद पांचाल

आधुनिक भारतीय साहित्य के युग निर्माता— भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा वीरेशलिंगम पंतुलु— हिंदी तथा तेलुगु के संदर्भ में — 46
डॉ. बालशौरि रेड्डी

भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा' की ग़ज़लगोई 50
ज्ञान प्रकाश विवेक

हिंदी पत्रकारिता के आदिस्तंभ संपादक भारतेंदु 55
प्रो. राममोहन पाठक

भारतेंदु की विरासत 58
डॉ. के. वनजा

भविष्यद्रष्टा भारतेंदु 62
डॉ. सुधाकर अदीब

भारतेंदु युग और हिंदी काव्य क्रीड़ा 64
डॉ. विमलेश कांति वर्मा

हरिश्चंद्र की रचनाओं में अनूठी रागदारी 70
शशिप्रभा तिवारी

कितना कम जानते हैं हम भारतेंदु को! 72
डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र

भारतेंदु साहित्य में लोकतत्त्व 84
प्रो. गिरीश चंद्र चौधरी

भारतेंदु हरिश्चंद्र की काव्यात्मक प्रवृत्तियां 87
डॉ. भवानी सिंह

'सत्य हरिश्चंद्र' के भारतेंदु तत्कालीन समाज का दर्पण : मुक्ति की कल्पना 92
डॉ. गोपाल कमल

भारतेंदु हरिश्चंद्र का बलिया वाला व्याख्यान— एक क्रांतिदर्शी कवि 95
डॉ. मंजु तंवर

भारत की गरिमा के गायक : भारतेंदु और भारती 98
डॉ. इंदरराज वैद

भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में हास्य-व्यंग्य 103
डॉ. एनी राय

आधुनिक हिंदी भाषा व साहित्य के प्रथम पुरुष 115
सुभाष सेतिया

उदारवादी व्यक्तित्व के धनी 119
डॉ. पुष्पा सिंह 'विसेन'

राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी 122
वीरेंद्र कुमार यादव

हिंदी के प्रणेता—युग प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र 125
स्नेह ठाकुर

हिंदी पत्रकारिता के जनक 129
डॉ. रवि वर्मा 'मधुप'

नवचेतना के वाहक हैं भारतेंदु के निबंध 137
प्रो. स्मराप्रिया मिश्र

हिंदी नाट्य परंपरा और भारतेंदु 139
अमूल्य रत्न महांति

सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति 142
डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा

भारतेंदु की नाट्यकला और चंद्रावली में नाटिका के लक्षण 144
वीरेंद्र कुमार सिंह

हिंदी साहित्य और रंगमंच के पितृपुरुष 146
पंडित सुरेश नीरव

युग प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र 148
निरुपमा भटनागर

हिंदी भाषा के गौरव पुरुष 150
डॉ. दीपक नरेश

हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई 153
कविता सिंह

भारतेंदु हरिश्चंद्र—एक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य 157
सुरेश सक्सेना

भारतेंदु के नाट्य मूल्य 159
ऋषभदेव शर्मा

भारतीय नवजागरण और भारतेंदु की कविता 162
वशिष्ठ अनूप

भारतेंदु का भाषाई दृष्टिकोण 168
अशोक कुमार जाजोरिया

हमहु सब जानति लोक की चालनि 171
अनीता वर्मा

भारतेंदु हरिश्चंद्र की नाट्यकला 173
ममता कुमारी

पुनर्जागरण के अग्रदूत 177
डॉ. आरती स्मित

साक्षात्कार

साहित्य और समाज के लिए जिए 180
माधवी श्री

श्रद्धांजलि

और आकाश में उड़ गया सारा आकाश का पंछी 183
गीताश्री

पुस्तक-समीक्षा

अनछुए सत्य की कथा 185
चित्रा मुद्गल

अपने समय का सच 187
मही लाल कैन

समाचार

राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित हुए प्रसिद्ध समाजसेवी वीरेंद्र मोहन त्रेहन 188
के. सरीन

आकाशवाणी दिल्ली द्वारा हिंदी पखवाड़े के उपलक्ष्य में कवि-सम्मेलन का आयोजन 189
अश्विनी कुमार

लोकार्पण समारोह का आयोजन 190
सुविधा शर्मा

संपादक की ओर से

''कोई व्यक्ति यदि श्रेष्ठ गुणों से संपन्न हो, उसकी विद्या, बुद्धि, मनीषा एवं कृतित्व उच्चकोटि का हो तो उसका अभिवंदन हर बुद्धिमान को करना चाहिए अन्यथा वाङ्मय का जन्म विफल हो जाता है...।'' आज इन पंक्तियों को लिखते हुए मुझे इनके रचयिता महाकवि हर्ष बेहद याद आ रहे हैं और साथ ही याद आ रहे हैं उनके कहे ये शब्द, जो तब से लेकर आज तक हमारी चेतना को जगाए हुए हैं। यही कारण है कि हम उनके कहे गए शब्दों का अनुसरण करते हुए गगनांचल के माध्यम से इस साहित्यिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। इस यज्ञ को भारतभर के वरिष्ठ लेखकों ने अपनी भावपूर्ण रचनाओं के माध्यम से पूर्ण करने में अपनी महती भूमिका निभाई है। उन सबके प्रति हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

सन् 1850, तारीख 9 सितंबर। काशी के एक वैश्य परिवार में एक बालक का जन्म हुआ। बालक का नाम हरिश्चंद्र रखा गया, जन्म के सात वर्ष बाद ही आंखों के सामने भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम के दृश्य। यह भी अद्‌भुत संयोग है कि इसी काशी में कभी राजा हरिश्चंद्र की 'सत्यवादिता' की परीक्षा हुई थी और आज फिर एक हरिश्चंद्र! सो परीक्षा तो इन्हें भी देनी ही थी। इनके सामने एक तरफ भाषा के विकास की चुनौती थी, तो दूसरी ओर भारत की पराधीनता के साथ-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विषमता यानी सभी मोर्चों पर एक से बढ़कर एक कठिन परीक्षा। लेकिन हरिश्चंद्र तो हरिश्चंद्र ठहरे। उन्होंने न केवल परीक्षा का सामना किया, बल्कि उस पर सौ फीसदी खरे भी उतरे। आज हम खड़ी बोली हिंदी का जो विकसित रूप देख देख रहे हैं, उसके बीज उन्होंने ही बोए थे। इन्होंने साहित्य की प्रचलित सभी विधाओं में लिखा और कई नई विधाओं के प्रणेता भी बने। स्त्री शिक्षा को खासा प्रोत्साहन दिया। उन्होंने केवल स्वयं ही नहीं लिखा, बल्कि दूसरों को लिखने के लिए प्रोत्साहित भी किया, जिनमें आगे चलकर कई बड़े लेखक साबित हुए। लेखक होते हुए भी उन्होंने कभी राष्ट्र और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुंह नहीं मोड़ा। अपने विशिष्ट योगदान के कारण ही उन्हें जनता से 'भारतेंदु' की उपाधि मिली।

भारतेंदु जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को किसी विशेषांक में नहीं समेटा जा सकता है। लेकिन नई पीढ़ी को उनके भाषा, साहित्य, संस्कृति और देश के प्रति दिए गए महत्त्वपूर्ण योगदान की याद दिलाने के लिए आई.सी.सी.आर. का यह विनम्र प्रयास है। इस प्रयास के अंतर्गत हम उन पर 'गगनांचल' का जुलाई-अक्तूबर संयुक्तांक 'भारतेंदु हरिश्चंद्र विशेषांक' प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है हमारा यह प्रयास सफल होगा। इसके साथ ही हमें आपके सुझावों और प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

(अनवर हलीम)

आधुनिक हिंदी साहित्य के शिखर स्तंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटै न हिय को सूल।।''

आधुनिक हिंदी साहित्य के शिखर स्तंभ और कालजयी रचनाकार 'भारतेंदु' बाबू हरिश्चंद्र की उक्त पंक्तियां आज भी 'हिंदी' की महत्ता को अभिव्यक्त करने के लिए उतनी ही प्रासंगिक और प्रभावपूर्ण है, जितनी अंग्रेजी साम्राज्यवाद से संत्रस्त पराधीन भारत में कभी थी। सन् 1877 में 'हिंदी वर्धिनी सभा' में बाबू हरिश्चंद्र ने 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' दिया था, जिसे बाद में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा 'हिंदी भाषा' शीर्षक से प्रकाशित किया गया था।

अपने इस व्याख्यान में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कुल 'तेंतीस' दोहों में हिंदी के संदर्भ में अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए थे, जो शताधिक वर्ष बीत जाने के बाद, आज भी, उतने ही प्रासंगिक बने हुए हैं।

अपने इसी 'ऐतिहासिक' व्याख्यान में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था—

''पढ़े संस्कृत जतन करि,
पंडित भे विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन,
कहिन न सकत एक बात।।
पढ़े फारसी बहुत विध,
तौर भए खराब।
पानी खटिया तर रहो,
पूत मरे बकि आब।।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि,
सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन,
रहत हीन के हीन।।
यह सब भाषा काम की,
जब लौं बाहर बास।
घर भीतर नहिं कर सकत,
इन सौं बुद्धि प्रकाश।।''

निःसंदेह, पराधीन भारत में 'हिंदी की महत्ता' पर रचे गए भारतेंदु हरिश्चंद्र के उक्त दोहे उनके चिंतन के साक्षी हैं।

निर्विवाद रूप से भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के साथ-साथ आधुनिक हिंदी-गद्य की परंपरा के कालजयी प्रवर्तक रचनाकार रहे हैं। भारतेंदु बाबू के बहुआयामी, अत्यंत प्रखर और सर्वथा मौलिक चिंतन से ओत-प्रोत व्यक्तित्व ने ही सन् 1857 के ऐतिहासिक स्वाधीनता-संग्राम से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना को सबलतम रूप में अभिव्यक्ति देकर, ब्रिटिश राज्य की अमानुषिक क्रूरता और विषमताओं से उत्पन्न व्यापक हताशा और निराशा के बीच नई युग-चेतना फैलाई थी।

रीतिकालीन सामंतशाही संस्कारों से जूझते हुए हिंदी साहित्य में अंग्रेजी-साम्राज्यवाद के विरुद्ध 'कलम' के माध्यम से युद्ध का बिगुल फूंकने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र कवि, निबंधकार, पत्रकार, संपादक, अनुवादक, नाटककार, उपन्यासकार, आलोचक और नाट्यशास्त्र के आधुनिक प्रणेता के रूप में हमें अपने जीवन के 'अल्पकाल' में ही जितना कुछ दे गए, वह तो युगों की साधना के बाद भी विरले ही रचनाकार दे सके हैं।

निःसंदेह, आधुनिक हिंदी गद्य के अप्रतिम सूत्रधार के रूप में प्रतिष्ठित भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र प्राचीन रूढ़ियों और रुग्ण परंपराओं से निरंतर जूझकर जिस आधुनिकता, लोकधर्मिता और सबसे बढ़कर अदम्य जनचेतना को लेकर हिंदी साहित्य में सर्वथा नई और प्राणवान 'संस्कृति' के संवाहक बने, उसने जहां उन्हें 'कालजयी' बना दिया है। 'कामायनी' के प्रणेता महाकवि जयशंकर प्रसाद ने तो भारतेंदु हरिश्चंद्र को ही आधुनिकता और यथार्थवाद का प्रवर्तक माना है।

युग-प्रवर्तक साहित्य-साधक भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 'अंग्रेज-भक्त' प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के घराने में 9 सितंबर, 1850 को भारत के प्रसिद्ध तीर्थ काशी में हुआ था। इतिहास साक्षी है कि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के पुरखों ने अंग्रेजी-राजसत्ता का साथ देकर अकूत धन कमाया था, लेकिन 'अक्षर-साधक' भारतेंदु हरिश्चंद्र ने तो सार्वजनिक रूप से यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि ''जिस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, उसी धन को अब मैं खाऊंगा।''

वस्तुतः यही वह प्रतिज्ञा थी, जिसने सरस्वती के इस वरद-पुत्र को 'राष्ट्रीय जागरण का अग्रदूत' और भारतीय संस्कृति एवं हिंदी भाषा का सर्वाधिक मुखर शब्द-साधक बना दिया।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के पिता गोपालचंद्र

गिरधर दास स्वयं भी हिंदी, उर्दू और संस्कृत के विद्वान तथा प्रतिभा संपन्न कवि रहे हैं, जिनके द्वारा रचे गए नाटक 'नहुष' को स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ही आगे चलकर 'हिंदी का प्रथम नाटक' घोषित किया था। वस्तुतः इसी साहित्यिक वातावरण के कारण भारतेंदु हरिश्चंद्र को संवेदना, संस्कारिता और सहृदयता का वह वरदान मिला, जिसने उन्हें मात्र चौंतीस वर्ष की आयु भोगने के बाद भी 'हिंदी साहित्य का शिखर-पुरुष' बनाया है।

इतिहास साक्षी है कि मात्र पांच वर्ष की आयु में अपनी मां पार्वती को और फिर दस वर्ष की आयु में ही पिता को खो देने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी राह स्वयं बनाई और जीवन की विडंबनाओं से जूझकर वे आधुनिक हिंदी गद्य के आधार-स्तंभ बने।

राष्ट्रीय जन-जागरण के शलाका-पुरुष— भारतेंदु हरिश्चंद्र का युग, उनके युग का इतिहास कोई सीधा, सरल घटनात्मक इतिहास भर नहीं रहा है, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के क्रूरतम दमन-चक्र का सजीवतम साक्षी रहा है। सन् 1857 की विद्रोह-ज्वाला के साथ ही औद्योगिक क्रांति पूंजीवादी-चिंतन, बाजारवाद और भारत के आर्थिक संसाधनों का अंधाधुध दोहन भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के युग के ऐसे प्रश्न थे, जिनके समाधान का गुरुतर दायित्व उन्हें लेना पड़ा था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पूरी शिद्दत और ईमानदारी से अपने युग के सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक प्रश्नों को अपनी रचनाधर्मिता का आधार बनाया और इसी के साथ कला, साहित्य और हिंदी भाषा के जटिलतम मुद्दों को भी लेकर चले।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी रहा है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र का भारत अंग्रेजों के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व के साथ-साथ उनकी 'भेद-नीति' का शिकार बना हुआ था, जिसका एक मात्र उद्देश्य था भारतीयों को निरंतर आपस में लड़ाना, उनकी सांस्कृतिक एकता को तोड़ना और धार्मिक सामंजस्य को छिन्न-भिन्न करना। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने युग की इन परिस्थितियों पर निरंतर चिंतनशील रहकर, साहित्य के माध्यम से एक नवीन क्रांति लाने का सपना संजो रहे थे। 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' जैसी अपनी रचनाओं के साथ-साथ उन्होंने अपने प्रहसनों, निबंधों और नाटकों के माध्यम से अपने भारत के सोए जन-मानस को झकझोर कर जगाया और राष्ट्रीय जन-जागरण का शंखनाद किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की विलक्षण रचना है 'भारत जननी', जिसे स्वयं उन्होंने 'ऍन ओपेरा' अर्थात् 'गीति-नाट्य' कहा है। इस विलक्षण 'गीति नाट्य' में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिन शब्दों में रचना का शुभारंभ किया है, वह मैं यहां इसलिए उद्धृत करना चाहूंगा कि पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकें कि 'राष्ट्रीय जन-जागरण के अग्रदूत दूत' भारतेंदु हरिश्चंद्र के निर्भीक हृदय में उमड़ता 'राष्ट्रवादी-चिंतन' कभी अंग्रेजों के दमन-चक्र से डरा नहीं, उसके समक्ष झुका नहीं। 'भारत जननी' का शुभारंभ दखिए—

सूत्रधार—

''जगत पिता जग जीवन जागो
मंगल मुख दर साओ।
तुम सोए सब ही जनु सोए
तिन कहं जागि जगाओ।।
अब बिनु जागे काज सरत नहिं
अलस दूरि भगाओ।
हे भारत भुवि नाथ भूमि
निज बूड़त आनि बचाओ।।'

अर्थात् ''भारत भूमि और भारत संतान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारत जननी की इति कर्त्तव्यता है और आज जो वह आर्य वंश का समाज इस खेल देखने को प्रस्तुत है, उसमें से एक मनुष्य भी यदि इस भारत भूमि के सुधारने में एक दिन भी यत्न करें तो हमारा परिश्रम सफल है।''

निर्विवाद रूप से मैं कह सकता हूं कि सर्वशक्ति संपन्न और क्रूरता का पर्याय बन चुकी तत्कालीन ब्रिटिश राज-सत्ता को ऐसी खुली चुनौती देने वाले कालजयी रचनाकार भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की यह नाट्य रचना 'भारत जननी' अपने युग की सच्ची 'गीता' सिद्ध हुई। कवि भारतेंदु की 'भारत जननी' में 'राष्ट्रीय जन-जागरण' को जो चिंतन मुखर हुआ है वह निश्चय ही पराधीनता के गहन अंधकार में भटकते और छटपटाते लाखों भारतीयों के हृदय में स्वाधीनता की उस सोई हुई ज्वाला को जगाने में सफल हुआ, जो आगे चलकर हमारी आजादी बना है।

अपनी इस नाट्य कृति 'भारत जननी' में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'रोली' लिखी है, जिसमें उनके 'राष्ट्रीय जन-जागरण' का वास्तविक रूप उजागर हुआ है। इस 'होली' से कुछ छंद मैं यहां जिज्ञासु पाठकों के लिए उद्धृत करने का लोभ संवरन नहीं कर पा रहा हूं, क्योंकि ये 'धरोहर' आज भी प्रासंगिक है—

''उठौ उठौ मैया क्यों हारौ
अपुन रूप सुमिरो री।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम
झटपट सुरत करो री।
दीनता दूर धरो री।।

××× ××× ×××

उठौ उठौ सब कमरन बांधौ,
शस्त्रन तान धरो री।
विजय निसान बजाइ बावरे
आगेइ पांव धरो री।।
छबीलिन रंग रंगो री।।

××× ××× ×××

कफन बांधौ कर में सबेरे
चूरी डारहु तोरी।
एक मतो करि दृढ़ हवै
सबेरे आगेहि चरण धरोरी।।

मचा बहु गहि री होरी।।''

सचमुच, भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की यह 'भारत जननी' नाट्य-रचना और उसकी यह 'होली' पराधीन भारत के लाखों सोए वीरों के दिलों को जगाने में सफल सिद्ध हुई और समीक्षकों ने उन्हें 'राष्ट्रीय जन-जागरण का शलाका-पुरुष' कहकर सम्मान दिया है।

इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ आज भी हमें भारतेंदु हरिश्चंद्र की अदम्य राष्ट्रीय-चेतना के साथ ही स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय भी दे रहा है। अंग्रेजी राज सत्ता से भारतेंदु हरिश्चंद्र को जो 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' का पद मिला था, उसकी मजाक उड़ाते हुए वे गुलामी के प्रतीक उस पद को 'अंधेरी मजिस्ट्रेट' कहा करते थे और अंग्रेजी साम्राज्यवादी सत्ता के दमन चक्र के विरोध में उन्होंने इस पद से त्याग पत्र दे दिया था।

सभी समीक्षकों ने आधुनिक युग में हिंदी के उन्नायक भारतेंदु हरिश्चंद्र को 'राष्ट्रीय-चेतना और जागरण का अग्रदूत' कहकर, हिंदी के आधुनिक काल में 'कलम' के अप्रतिम योद्धा के रूप में उन्हें सम्मान दिया है। वस्तुतः भारतेंदु हरिश्चंद्र के सामने मुख्य ज्वलंत प्रश्न था सोई जनता के हृदयों में विद्रोह की ज्वाला धधकाने के साथ ही अदम्य संघर्ष-शक्ति और प्रबल राष्ट्रवादी सोच को जगाना। अपने इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सब से अधिक बल सांस्कृतिक जागरण और राष्ट्रीय उद्‌बोधन पर दिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों, निबंधों और काव्य रचनाओं के साथ-साथ पत्रकारिता का भी सर्वोपरि उद्देश्य प्राचीन सड़ी-गली रूढ़ियों प्रतिक्रियात्मक तत्त्वों और दीमक बनकर निरंतर भारत को कमजोर करने वाले धर्माडंबरों का पर्दाफाश करना ही रहा है।

आज हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि हिंदी के इस कालजयी उन्नायक ने अपने युग में समूचे साहित्य-संघर्ष और मूल्यहीनता के बीच सर्वथा नए और प्रगतिशील मूल्यों को अपनी रचनाधर्मिता का आधार बनाया था। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'ब्रिटिश साम्राज्यवादी आतंक' से अपनी जिजीविषा के बल पर, केवल 'लेखनी' को हथियार बनाकर जो लड़ाई लड़ी, वह आज हमें प्राप्त स्वाधीनता की आधारशिला अवश्य बनी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कोउ नृप होउ, हमें का हानी' की निष्क्रियतावादी प्रवृत्ति के साथ ही भारतीयों के दिलों पर छाई 'भाग्यवाद' की काली छाया से भी लड़ाई लड़कर 'आत्म-सम्मान' और जिजीविषा का अमृत अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जन को बांटा, जिसके बल पर समूचा भारत नई, चेतना लेकर जाग उठा था।

बहुआयामी रचनाकार व्यक्तित्व—हिंदी साहित्य को रीतिकालीन सामंतशाही और रुग्ण शृंगारिकता की खोट से निकाल कर 'राष्ट्र-चेतना' की राह पर ले जाने वाले यशस्वी शब्द-साधक भारतेंदु हरिश्चंद्र निश्चय ही बहुआयामी रचनाकार रहे हैं।

वे रचनाकार के साथ-साथ उच्च कोटि के साहित्य-अनुरागी भी थे और उन्होंने विपुल साहित्य पढ़ा था। महाकवि तुलसीदास, कथाकार प्रेमचंद और रूसी कथाकार मैक्सिम गोर्की की भांति भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखने के साथ-साथ पढ़ा भी बहुत और इसीलिए उनकी सभी रचनाएं गहन अनुभूति के साथ-साथ 'शिल्प-कला' की कसौटी पर भी एकदम खरी उतरती हैं। भारतेंदु बाबू ने संस्कृत, फारसी, बंगला भाषा की श्रेष्ठ रचनाओं के साथ ही प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथों को भी पढ़ा। अंग्रेजी नाटकाकार शेक्सपीयर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का तो भारतेंदुजी ने 'दुर्लभ बंधु' शीर्षक से अनुवाद भी किया है। कविकुल गुरु महाकवि कालिदास सहित संस्कृत कवियों का विशद अध्ययन करने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने वाराणसी में कई क्लब, 'हिंदी डिबेटिगे क्लब' आदि स्थापित किए और बाद में 'कविता-बर्द्धिनी सभा' की स्थापना करके अपने समय के हिंदी कवियों को सार्थक मंच दिया था।

वस्तुतः भारतेंदु हरिश्चंद्र के बहुआयामी रचनाकार और समर्पित हिंदी-सेवा का ऐसा व्यापक और गहरा प्रभाव तत्कालीन जन-मानस पर पड़ा कि 27 सितंबर, 1880 को 'सार सुधा निधि' पत्रिका में भारतेंदु हरिश्चंद्र को सम्मानार्थ 'भारतेंदु' उपाधि से अलंकृत करने का प्रस्ताव प्रकाशित हुआ। यह सम्मान किसी राजसत्ता से नहीं, बल्कि जनता ने उन्हें दिया था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र निर्विवाद रूप से युग-प्रवर्तक और राष्ट्रीय जन-जागरण के साहित्य-साधक रहे हैं, जिनका व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है। हिंदी-गद्य की नवीनतम विधाओं में व्यंग्य के साथ-साथ गंभीर सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रश्नों के समाधान खोजने वाले सिद्धहस्त रचनाकार के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र वस्तुतः 'युग निर्माता साहित्यकार' ही सिद्ध होते हैं।

समीक्षकों ने जहां 'अंधेर-नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' को अंग्रेजी साम्राज्यवाद पर करारा व्यंग्य स्वीकार किया है, वहीं 'भारत दुर्दशा' को भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा सन् 1875 में प्रकाशित कराया गया मार्मिक 'दुखांत रूपक' माना है।

वस्तुतः सन् 1857 के असफल स्वाधीनता-संग्राम के बाद ब्रिटिश सत्ता के क्रूर दमन-चक्र के कारण पूरे भारत में जो निराशा और हताशा व्याप्त हो गई थी, उसकी सार्थक अभिव्यक्ति 'भारत दुर्दशा' में देखी जा सकती है—

''रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

××× ××× ×××

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेश चलि जात रहै अति ख्वारी।
ताइ पै मंहगी काल रोग विस्तारी।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

इस अनूठे काव्य-रूपक में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पात्र-दृष्टि भी अनूठी की है। 'भारत' स्वयं पात्र के रूप में बोलता है और अपने अतीत के गौरव की पृष्ठभूमि में वर्तमान पर रोता है।

एक कवि के रूप में जब भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का मूल्यांकन हम करते हैं, तो सहज ही हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य में गीत-गोविंद, मैथिल कोकिल विद्यापति, संत कबीरदास, महाकवि तुलसीदास, कृष्ण भक्ति के शिखर कवि सूरदास और प्रेम-दीवानी मीराबाई से चली आती हुई 'गीतिकाव्य' की सरसता में भारतेंदु हरिश्चंद्र एक स्निग्धता का पुट देने में सफल रहे हैं, तो साथ ही साथ, सरलता, तन्मयता, विनयशीलता, शृंगार और लालित्य की अत्यंत सजीव तथा मोहक अभिव्यक्ति भी उनके काव्य में हमें मिलती है।

सच तो यह है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र 'मिथक' बन चुके हैं। मात्र चौंतीस वर्ष का जीवन जीने वाले इस कालजयी अक्षर-साधक ने मानव जीवन का जितना विशद् और प्रमाणिक वर्णन किया, उसे देखकर आश्चर्य होता है। अंत में, हिंदी के उन्नायक भारतेंदु हरिश्चंद्र की एक 'मुकरी' मैं देना चाहूंगा, जो आज भी उतनी ही सार्थक और प्रासंगिक है, जितनी भारतेंदुजी के युग में थी—

''सब गुरुजन को बुरो बतावै।
अपनी खिचड़ी आप पकावैं।।
भीतर तत्त्व न झूठी तेजी,
क्यों सखि सज्जन? नहिं अंग्रेजी।।''

हिंदी के कालजयी शब्द-साधक एवं आधुनिक हिंदी-गद्य के यशस्वी शिल्पी भारतेंदु हरिश्चंद्र की स्मृति को सादर नमन्।

''हिंदी भाषा के उन्नायक,
काव्य-जगत के इंदु।
युग-युग याद करेगा भारत
तुमको है भारतेंदु।।''

पूर्व प्राचार्य,
74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667

प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रह जाएगी

डॉ. रत्नाकर पांडेय

सितंबर, सन् 1850। सोमवार का दिन। भाद्रपद पांच, ऋषि पंचमी, संवत् 1907। प्रातःकालीन नैसर्गिक प्रकृति परिरंभित-बेला। अति मधुर मनोहर पावनी गंगा की बाहु पर स्थित विश्वनाथ धाम काशी में इसी दिन, इसी समय हिंदी के अनंत राशि भारतेंदु का उदय हुआ। भारतेंदु ननिहाल में पैदा हुए थे। वे एक ऐसे शरीफ और रईस खानदान के ज्योति पुत्र थे, जहां किसी बात की कमी नहीं थी। अर्थ वैभव, शालीनता और संपन्नता थी पर बचपन में ही मां विदा हो गई। इन्हें दस वर्ष की अल्प आयु में अकेला छोड़कर पिता भी चल बसे। इसलिए भारतेंदु को बचपन में ही रीतेपन का उद्‌बोध भी हो गया था।

प्रतिभा के धनी इस कवि के पिता गिरधरदास अपने समय के सरनाम रईस होने के कारण ख्याति प्राप्त कर चुके थे। गुण के ग्राहकों का उनके यहां दरबार लगता था। बाबा दीनदयाल गिरि, पं. लक्ष्मीशंकर व्यास जैसे लोगों का साहित्य संगम भारतेंदु के पिता गिरधरदास के यहां जुटता था। अपनी प्रतिभा संपन्नता की ज्योति गाथा बचपन में ही भारतेंदु ने पिता को एक दोहा रचकर दे दिया था—

''लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को, हनन लगे भगवान।।'

इनकी प्रतिभा और रचना पद्धति से बाबू गिरधारदास विशेष प्रभावित हुए, इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। मौलवी ताज अली ने इन्हें उर्दू पढ़ाया। पं. नंदकिशोर भारतेंदु के अंग्रेजी अध्यापक थे। भारतेंदुजी शिवप्रसाद सितारेहिंद के संपर्क में उनके शिष्य बनकर आए थे। इसलिए जन्मभर वे उन्हें अपना 'गुरु' मानते रहे। क्वींस कॉलेज में भी कुछ दिनों तक पढ़े, पर स्वतंत्र थे। भारतेंदु शारदा के वरद पुत्र थे, उन्हें डिग्रियों की कोई आवश्यकता नहीं थी। बचपन से ही इतने शौकीन तबीयत के थे कि पान खा कर, बग्घी पर चढ़कर रामकटोरा रोड वाली सड़क से कॉलेज जाते थे। घर से विमाता का तांबूल न खाने के लिए कठोर आदेश था। रामकटोरा रोड पर आज भी एक टूटा-फूटा तालाब है। बग्घी रोक कर पान की लाली इसी तालाब के जल से धोकर तब वे कॉलेज जाते थे। बचपन के स्वच्छंद भारतेंदु जीवनभर मस्त, स्वच्छंद और फरफंद रहे। उनकी जुबान पर चोट थी, पर वे दिल में खोट नहीं रखते थे। काशी की मस्ती, पानी का उन पर भरपूर प्रभाव पड़ा था, जीवनभर वे उसी मस्ती में लवलीन रहे।

संवत् 1922 के आस-पास भारतेंदु ने सपरिवार जगन्नाथपुरी की यात्रा की। पढ़ाई का क्रम भंग हो गया। वे केवल हरिश्चंद्र न रहकर 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' हो गए। इनका विवाह भी संपन्न हो चुका था। स्वभावतः विमाता से इनकी खटपट रहती थी। वे हरिश्चंद्र को फूटी आंखों भी देखना पसंद नहीं करती थी।

'हिंदी वर्द्धिनी सभा' के आमंत्रण पर प्रथम बार संवत् 1924 में भारतेंदुजी 'सभा' में भाग लेने प्रयाग गए। यहीं हिंदी की स्थिति पर इन्होंने दोहा शैली में व्याख्यान दिया—

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को शूल।।'

उस समय की इस रचना से भारतेंदु का 'नेतृत्व कर्त्ता का' व्यक्तित्व संपूर्ण हिंदी जगत में उजागर होने लगा। भारतेंदु हिंदी के महान उद्धारक के रूप में प्राण प्रण से जुटकर, सभा, सोसाइटियों में भाग लेकर, तन, मन, धन से अनवरत जीवनपर्यंत हिंदी का अनथक प्रचार, प्रसार और साहित्य भंडार की श्रीवृद्धि करते रहे।

भारतेंदुजी ने अजमेर, सरयूपार, उदयपुर, वैद्यनाथ धाम आदि की यात्रा संवत् 1934-39 के मध्य की थी। इन यात्राओं का साहित्यिक विवरण भी आकर्षक ढंग से उन्होंने अंकित किया है। संस्मरण और यात्रा विवरण रचना की पद्धति को भारतेंदु ने उसी युग में अपनी मौलिक प्रतिभा के आधार पर प्रतिष्ठित कर दिया था। अपनी यात्रा के सिलसिले में वे अनेक साहित्यकारों के संपर्क में भी आए। प्रायः भाषण करने उन्हें बाहर जाना पड़ता था। उनकी ख्याति दूज के चांद के समान दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और भारतेंदु एक ऐसे अमर साहित्यिक हो गए जो युगों तक हमारी भावना और प्रेरणा को अनुरंजित करने वालों के अग्रगामी और नेता रहेंगे। मेला और चहल-पहल भरे स्थानों से उन्हें मोह हो गया था। वे प्रायः हरिहर क्षेत्र, कलकत्ता, पटना आदि स्थानों पर अपना खाली समय बिताया करते थे।

भारतेंदुजी पान के शौकीन थे। केवड़े और गुलाब से तर सैकड़ों बीड़े दिनभर में कूच कर थूक देते थे। पान खर्च से ही इनकी रईसी का पता चलता है। इनकी घुंघराली लटों से सदा

हीना, गुलाब या खस की गमक उड़ा करती थी। जब भारतेंदु मुख खोलते तो लगता कि केवड़े या गुलाब की बोतल उलट दी गई है।

भारतेंदु जितने रईस मिजाज थे, उससे कम स्वाभिमानी, दानशील और हास्य प्रिय नहीं थे। कठिनाइयों से घिरे हुए भी सुख की गंगा में तैरते रहते। सर्वदा उन्होंने जरूरतमंद व्यक्तियों की हर प्रकार से सहायता की। वे अपने मन के राजा थे, किसी के दास नहीं। जो मन में आता वही करते। जो उचित समझते उसी पर दृढ़ रहते, चाहे कुछ भी क्यों न उन पर बीत जाए। वे जो कुछ भी देना चाहते गुप्त रूप से लोगों को दान देते। एक बार एक भिखारी को एक गजरा उठाकर रास्ते में उन्होंने दे दिया। उसमें पांच रुपए का नोट था। नौकर को शंका हुई। भिखारी का भाग्य फूटा था। नौकर ने लौटकर भिखारी से उक्त पांच रुपए प्राप्त कर लिए।

एक ब्राह्मण देवता अपनी संकोच वृत्ति के कारण उनसे कुछ कह नहीं पाते थे। नित्य दरबार में बैठते और चले जाते। एक दिन भारतेंदुजी ने एकांत में उन्हें एक पेटिका दी। ब्राह्मण कुछ कहना चाहता था पर भारतेंदु ने उस स्वाभिमानी ब्राह्मण की मान सुरक्षा करते हुए कहा था—''इसे आप घर ले जाकर खोलिएगा। आप जाएं।'' ब्राह्मण को कन्या का विवाह करना था। घर जाकर पेटिका खोलने पर दो सौ रुपए तथा रेशमी वस्त्रादि उसे मिले। उसने प्रसन्नता से आशीष का मुक्त कोष भारतेंदु के लिए लुटाया। दानप्रियता और विनयशीलता की उनकी यह अपनी पद्धति थी।

वे गुणियों के सेवक और चतुरों के चाकर थे। ज्ञानियों के शुभचिंतक और कवियों के मित्र थे। बांकों के लिए बांके थे और सीधों के लिए बहुत सीधे। अभिमानियों के नकद दामाद थे। चाहने वालों की वे चाह रखते थे। किसी की भी उन्हें परवाह नहीं थी। वे नेह के दीवाने थे। वे रसिकों के सब कुछ थे। प्रेमियों के दासानुदास थे; प्यारे कृष्ण के सखा थे और राधा के गुलाम। अपने संबंध में उनकी उद्घोषणा थी—

''सेवक गुनी जन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के गीत, चित हित गुन गानी के।
सीधे सों सीधे, महा बांके हम बांके न सों,
'हरीचंद' नकद दमाद अभिमानी के।
चाहिबे की चाह, काहूकी न परवाह नेकि,
नेह के दिवाने सदा, सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के।।''

'नहीं' उनके मुख से कभी नहीं निकला। जो कुछ जिसे पसंद आ गया, यदि भारतेंदु को उसकी इच्छा विदित हो गई तो वस्तु चाहने वाले की हो गई। वे जन सेवक और महान नेता थे। दान देना उन्होंने अपना दैनिक कार्य बना लिया था। काशी के मणिकर्णिका घाट, माधव दास के धरहरे आदि की सांस्कृतिक सुरक्षा की व्यवस्था उन्होंने अपने पास से की थी। उन्होंने लोगों को वांछित द्रव्य दान देकर लोक मंगल की भावना से, अर्थ की श्रेयस सिद्धि प्राप्त की।

चंद्र, सूरज टल सकता था, जगत का व्यवहार झूठा हो सकता था पर भारतेंदु की जन्मजात सत्यप्रियता अटल स्थापित और स्थिर रही। इस सत्यप्रियता की प्राण प्रतिष्ठा अनेक संस्मरण करते हैं।

हंसना और हंसाना भारतेंदु ने काशी की मस्तीवादी परंपरा से सीखा था। गंगा की धारा की किल्लोल से वे अनवरत प्रसन्न रहते, इठलाते और दुनिया को हंसाकर स्वयं अपनी स्मिति बिखेरते। उनकी हास्यप्रियता हिंदी साहित्य की अमर धरोहर है। एक बार उन्होंने पहली अप्रैल की डुग्गी पिटवा दी और नोटिस बंटवाकर संपूर्ण नगर में यह घोषित करवा दिया कि आज शाम को एक विलायती मेम खड़ाऊं पहन कर गंगा पार करेगी। रामनगर के सामने घाट पर हजारों की संख्या में भीड़ जुट गई। संध्या तक लोग प्रतीक्षा करते रहे। सब लोगों को जब ज्ञात हुआ कि आज पहली अप्रैल है तो मूर्ख बन हंसते हुए वापस लौट आए।

एक विद्वान राजा शिवप्रसाद के यहां बाहर से आए थे। वे किसी को अपने टक्कर का वैयाकरण और शास्त्रज्ञाता मानने को तैयार नहीं थे। राजा साहब ने काशी नरेश के दरबार में भी उनका शास्त्रीय भाषण करवाया। भारतेंदु के पास भी उक्त विद्वान की प्रशस्ति और धाक की चर्चा पहुंची। काशी नरेश से भारतेंदु ने कहा कि मेरी परीक्षण की कसौटी पर यदि विद्वान महोदय का तर्क खरा उतरे तभी उनकी मान्यता का मैं कायल हो सकता हूं। दूसरे दिन विद्वान महोदय राजकीय सम्मान के साथ पुनः दरबार में आए। बड़े तपाक से भारतेंदुजी ने बनारस की चालू गाली झांपों के उन्हें बक दी। इस झांपों के लिए काशी नरेश के सामने पंडित ने व्याकरण के अनेक सूत्र आरोपित किए, वैयाकरण ने वशीकरण मंत्र पढ़ डाला, पर उनके हाथ घंटों के मगज पच्ची के बाद कुछ भी नहीं लग पाया।

'झांपों के' का कोई तार्किक समाधान वे नहीं खोज पाए। इस प्रसंग को लेकर भारतेंदुजी के मित्र सर्वदा परिहास करते थे।

रचना करते समय भारतेंदुजी सब कुछ भूल जाते थे। यहां तक कि अपने को भी। केवल सरस्वती का प्रखर स्वरूप ही उस समय उनके सामने होता था। प्रभूत गुणकारी साहित्य उन्होंने रचा। आधुनिक साहित्य उनकी लेखनी की संपन्नता का गौरव है। सोलह सत्रह वर्ष के अल्प कार्यकाल में हिंदी के विकास और व्यवस्था के लिए विभिन्न शैलियों में जो कुछ उन्होंने लिखा; वह हिंदी प्रतिभा का प्रेरणा पुंज है। भारतीय समाज का इतिहास उसमें संबलित है। इस मौलिक कार्य के लिए उनकी प्रशंसा और प्रशस्ति हिंदी के विकास युग की अमर जय गाथा है।

वे पक्के समाज सुधारक और देश सेवक थे। सन् 1864 में चौखम्भा, काशी में इन्होंने एक विद्यालय भी खोला। दिनोत्तर उसका विकास होता गया वह स्कूल सन् 1911 में हाईस्कूल बना। अपने दैनिक खर्च को काट कर, समेट कर छात्रों के अध्यापन के लिए उन्होंने अध्यापकों की नियुक्ति की। आगे चल कर

उनका स्वप्न साकार हुआ। सन् 1885 ई. में उनके निधन के बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की सहायता एवं संरक्षण में हरिश्चंद्र विद्यालय बना। यह विद्यालय आधुनिकतम शिक्षण शैलियों से संपन्न काशी का गौरवमय शिक्षण संस्थान है। भारतेंदु के शिक्षा प्रेम की अमर गाथा का शिखर हरिश्चंद्र विद्यालय है। इन पंक्तियों का लेखक भी इसी विद्यालय से बैचलर बना है।

प्रारंभ से ही 'भारतेंदु' हिंदी के घोर समर्थक और प्रचारक थे। उस युग में हिंदी पढ़ना पढ़ाना, अध्ययन-अध्यापन एवं उसे सांस्कृतिक विकास की भाषा मानना अपमान की बात समझी जाती थी। विदेशी शासक हमारी परंपरा को मिट्टी में मिला रहे थे। यह सब घृण्य कार्य एक ऐसे मातृ भाषा के समर्थक के सामने हो रहा था जिसने जीवन में आस्था की बाती जलाई थी, स्नेह का अजस्र दान दिया था और लक्ष्मीपति होकर भी लक्ष्मी वाहन न बन शारदा के मंदिर का वह शृंगार सपूत था। भारतेंदुजी दोनों हाथों से धन लुटा कर सरस्वती की ख्याति प्रचारित कर रहे थे। हिंदी में उस समय मातृ भाषा के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का अभाव खटकने वाली बात थी। भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'बाल बोधिनी' आदि पत्र-पत्रिकाएं स्वयं संपादित, प्रकाशित कर हिंदी के विकास के लिए लोगों को वितरित किया करते थे। जिन संक्रमणकालीन परिस्थितियों में वे हिंदी की अर्चना कर रहे थे उस समय बड़ों बड़ों का धैर्य डिग गया था। अपने पैसों से उन्होंने किताबें छपवाईं। प्रेस खुलवाए। लोगों को लिखने के लिए प्रेरित किया। कट्टर से कट्टर लोगों से हर परिस्थितियों में मोर्चा लेकर साहित्यकारों का मेला लगाने में वे कभी नहीं हिचके। विपन्न होकर भी वे संपन्न, महासंपन्न थे।

भारतेंदु साहित्यकार होने के पूर्व साहित्यकार निर्माता थे। संवत् 1927 में 'कविता वर्द्धिनी सभा' की स्थापना करके उन्होंने अनेक कवियों का निर्माण किया। लावनी बाजों के साथ सरे बाजार खड़े होकर ढप बजाकर लावनी और कजरी गाने में भारतेंदु को हिचक नहीं थी। वे बारहों महीना होली मनाते थे। वे नियमबद्ध न होकर अनियमित थे। उनकी लावनी की यह धुन प्रसिद्ध है—

''खड़ी अकेली राह देखती, बरस रहा है पानी,
अंधेरी छाय रही भारी।
सूझत कबहूं न पंथ, सोच कैर मन मन में भारी,
न कोई समझावन हारी।
चौंकि चौंकि के उझकि झंकोरे झोंकि रही प्यारी,
न कोई समझावन हारी।।''

वे सज्जनो के गुण ग्राहक थे। बनारस में जितने गंधी आते थे, वे भारतेंदु के दरबार में अवश्य जाते। इतना अधिक इत्र वे अपनी अलकों में चुपड़ देते कि माथे से इत्र बह-बह उठता था। फिर भी बचे इत्रों से दीपावली पर दीपक जलाया जाता था। भारतेंदु बेजोड़ रईस मिजाज थे।

पं. सुधाकर द्विवेदी के साथ एक बार भारतेंदु राजघाट पुल का निर्माण देखने गए। ज्योतिषाचार्य पं. सुधाकर द्विवेदी ने एक दोहा सद्यः रचा—

''राजघाट पर बंधत पुल,
जंह कुलीन की ढेर,
आज गए कल देखिकै,
आजै लोटे फेरि।''

इस दोहे के 'कल' शब्द के प्रयोग पर वे इतने रीझे, इतने रीझे कि जब-जब इस दोहे की चर्चा चलती, द्विवेदीजी को हठपूर्वक वे दक्षिणा ग्रहण करने को बाध्य करते ही रहते थे। जब भी मन में जो आया, घर बार की चिंता किए बिना उन्होंने लोगों को अवश्य दिया।

विभिन्न चिह्न अंकित कर शौकीन ढंग से लेटर पैड छपवाना और डायरी आदि बांटने की परंपरा भारतेंदु ने हिंदी में सर्वप्रथम नई शैली में संचालित की। भारतेंदुजी की रुचि वैचित्र्य सर्वज्ञात है जो उनके रससिक्त हृदय की छाप मानस पर छोड़ता है।

वे सब कुछ सह सकते थे पर अपने या किसी के स्वाभिमान पर ठेस लगते वे अपनी आंखों नहीं देख सकते थे। एक बार काशी नरेश के दरबार में एक समस्या रखी गई, कोई भी कवि उस समस्या की उत्तम पूर्ति नहीं कर पाया। संयोगवश भारतेंदु भी इसी बीच पहुंच गए। तत्काल लोगों के आग्रह पर उस समस्या की पूर्ति नई रचना से उन्होंने कर दी। भारतेंदु का वह पद इतना उत्तम था कि चारों ओर से 'वाह-वाह' होने लगी। एक कलुषमना कवि महोदय ने कह दिया, ''यह तो बाबू साहब की पुरानी रचना है।''

भारतेंदुजी को आग लग गई। उसी समस्या को मूल में रख कर, क्रोध से लाल हो होकर बीसों रचनाएं उन्होंने तत्काल वहीं दरबार में सुनाईं। महाराज के अनेक बार आग्रह करने पर भी बहुत विलंब से उनकी धाराप्रवाह काव्य वाणी की गति में रुकावट आ पाई।

वे साहित्यकारों का जमघट भी लगवाया करते थे और सभा करके दान-दक्षिणा देकर उनका सम्मान कर उत्साहवर्धन किया करते थे। 'तदीय समाज' और 'पेन रीडिंग क्लब' की भी उन्होंने स्थापना की। 'यंग मैन एसोसिएशन' और 'डिवेटिंग क्लब' भी उनके ही मस्तिष्क की उपज थे।

भारतेंदु को गृह प्रपंच भी सहना पड़ा था। वे गुलाब के फूल थे। कांटों में पल कर भी उन्होंने कभी अपनी सुर्खी और गंध का त्याग नहीं किया। सन् 1870 ई. में उनके अनुज ने उनके फुटकर खर्च, दानशीलता और यौवन जनित रईसी से ऊब कर उन्हें अलग कर दिया। फलतः आर्थिक संकट का भी उन्हें सामना करना पड़ा। फिर भी वे डिगे नहीं। दान, पान, खान सब कुछ पूर्ववत ही था। हां, कभी आर्थिक अव्यवस्था और गृह-प्रपंच के कारण उन्हें असुविधा अवश्य होती। वांछित दानशीलता में भी अवरोध आ ही जाता था। पर वे बाध्य होकर भी साध्य थे। मन की गुलामी उन्होंने कभी नहीं की। ऐसी-ऐसी भयावह स्थिति भी आती जब पत्रिकाओं की पोस्टिंग के लिए टिकट के पैसे नहीं रहते

थे। भारतेंदुजी आने वाले मित्रों से उधार ले लेकर पत्रिकाएं पोस्ट करते और जिनसे पैसा उधार लेते उन्हें मजाक में ही बीसों बार पैसा लौटाते। महाराज काशी नरेश को उनकी बड़ी चिंता रहती थी। पर भारतेंदु ने न झुकना सीखा था न झुकाना। काशी नरेश उनकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं करा पाए।

उन्हें 'भारतेंदु' की पदवी भी मिली। लोग उन्हें 'उत्तरी भारत के कवि सम्राट', 'एशिया के एकमात्र समालोचक' भी कहते थे। पर इससे वे इतराते नहीं थे, गंभीर रहते थे। उनके लिए 'भारतेंदु' पदवी का प्रस्ताव पं. रामेश्वर दत्त व्यास ने 'सारसुधा-विधि' पत्र में 27 दिसंबर, सन् 1880 में किया था। देशभर का समर्थन मिला। चारों ओर प्रसन्नता फैली और वे सचमुच 'भारतेंदु' नाम से प्रख्यात हो गए।

भारतेंदुजी मुक्त थे। गृह-प्रपंच के कारण आर्थिक मामले में वे संघर्षरत थे। हिंदी सेवा क्षेत्र में चापलूसों के कारण सरकारी अव्यवस्था भी उनके सामने आई। खर्च अधिक होने के कारण प्रायः वे कर्ज से दबे रहते थे। छोटे भाई ने काशी नरेश के यहां उनके फिजूलखर्ची की शिकायत पहुंचा दी। काशी नरेश ने उन्हें टोका। यह बात उनकी मान प्रतिष्ठा के प्रतिकूल थी। उन्होंने अन्यत्र जाकर एक पत्र काशी नरेश को तथा दूसरा घर पर लिखा। वे चिंतित रहते थे। लोगों ने एक का दो उन पर दावा ठोका। सबकी चुकती करते-करते वे स्वयं चुकता हो गए। उस समय भी वे अनेक की मदद करते रहे।

पैंतीस वर्ष की वय में ही दिन-प्रतिदिन उनका शरीर कृष होता गया। एक दिन रात्रि दस बजे हे कृष्ण! हे राम! हे राधा कृष्ण!! कहते हुए आधुनिक हिंदी का निर्माता इस संसार से सदैव के लिए उठ गया। हिंदी का 'भारतेंदु' अस्त हो गया। शोक से आकाश कांप उठा। धरती हिल गई। पर 'प्यारे हरीचंद' की कहानी रह गई। उनकी करनी और कथनी रह गई। 'प्रेम-योगिनी' की भूमिका में उनकी कही गई बात सच निकली—

''कहेंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछै।
प्यारे 'हरीचंद' की कहानी रहि जाएगी।।''

सचमुच भारतेंदुजी हिंदी के भगीरथ पथ प्रणेता थे। उन्होंने हिंदी नदी की धारा को नया मोड़ दिया। उनकी देन हिंदी का गौरवकारी 'लैंपपोस्ट' है, हमारी भारतीयता का स्वर है और राष्ट्रीय संघर्ष की गाथा का इतिहास है।

फ्लैट नं.-2-3, प्लाट नं.-113-114,
कृष्णकुंज, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

राष्ट्रीय नाट्यशास्त्र के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र

डॉ. श्याम सिंह शशि

यह सर्वविदित है कि राष्ट्रीय नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि हैं तथा नाट्यशास्त्र को 'नाट्यवेद' भी कहा जाता है। इस ग्रंथ की दो संहिताओं का उल्लेख शारदातनय ने अपने ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में किया है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि जब न शेक्सपीयर के नाटक थे और न पारसी थियेटर, किंतु 'नाट्यवेद' का दो संहिताओं में प्रणयन हो चुका था। इन संहिताओं के श्लोकों की संख्या भी चौंकाने वाली है। 'द्वादस साहसृ संहिता' बारह हजार श्लोक हैं तथा षट् साहसृ संहिता में छह हजार।

भरत मुनि के नाम पर भी विवाद है। भरत नाम के तीन व्यक्ति प्राच्य इतिहास में दर्ज हैं (1) दशरथ पुत्र (2) दुष्यंत पुत्र तथा (3) मांधाता का प्रपौत्र। साथ ही तीन अन्य नाम हैं—आदि भरत, बुद्ध भरत, तथा जड़ भरत। विद्वानों का मत है जड़ भरत ही भरत मुनि हैं। वैसे भरत का अर्थ स्वांग भरने वाले कलाकार यानी नट को भी कहते हैं। प्रो. मेकडोनल्ड नाट्यशास्त्र का रचनाकाल छटी शती मानते हैं जबकि एस.के. डे. इसे आठवीं शती की रचना मानते हैं। नाट्यशास्त्र में नाट्य-मंडप, अभिनय, दशरूपक, सूत्रधार, रस, प्रेक्षागृह, छंद-विधान, भाषा, वाद्ययंत्र आदि की विस्तृत अध्ययन-पद्धतियां हैं। यहां हम कहना चाहेंगे कि संस्कृत नाटकों का प्रभाव हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के नाटकों में भी देखा जा सकता है। हिंदी में इस विधा के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं, जिनका जन्म 1850 में हुआ था। वे केवल चौंतीस वर्ष जीवित रहे किंतु इस अल्पावधि में उन्होंने नाटक, उपन्यास, काव्य, अनुवाद, टीका, ऐतिहासिक तथा धार्मिक लेखन और संपादन का विराट कार्य किया। उनकी दो सौ अड़तालीस रचनाओं का उल्लेख मिलता है। उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र राष्ट्र और समाज की झलक देखी जा सकती है। उन्होंने न तो भरत मुनि की नाट्य परंपरा को नकारा और न ही तत्कालीन युग की आवश्यकताओं की अनदेखी की। कहा जाता है कि उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद का कथा-शिल्प भी भारतेंदु हरिश्चंद्र के लेखन का ऋणी है। प्रगतिशीलता तथा क्रांतिकारी और राष्ट्रीय स्वर दोनों में विद्यमान हैं।

उल्लेखनीय है कि उन दिनों जर्मनी में साम्यवाद के जनक कार्ल मार्क्स 'दास कैपिटल' लिख रहे थे तथा स्वामी विवेकानंद की आर्ष वाणी अमेरिका में गूंज रही थी। दुनियाभर में भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास किया जा रहा था। मैक्समूलर वेदों का अनुवाद कर रहे थे। पूरब-पश्चिम का वैचारिक आदान-प्रदान हो रहा था। 'वसुधैव कुटुंबकम' का भारतीय दर्शन पश्चिम को प्रभावित करने लगा था।

भारतेंदु के कुछ उल्लेखनीय नाटक हैं—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873), 'सत्य हरिश्चंद्र' (1875), 'चंद्रावली' (1876), 'भारत दुर्दशा' (1876), 'भारत जननी' (1877), 'अंधेर नगरी' (1881), 'रत्नावली' (1888) आदि। 'मुद्रा राक्षस' (1875) तथा 'कर्पूर मंजरी' (1876) उनके अनूदित नाटक हैं।

हम यहां भारतेंदु हरिश्चंद्र के बहुचर्चित नाटक 'अंधेर नगरी' की चर्चा करना चाहेंगे। इसमें एक ओर हास्य-व्यंग्य का भरपूर समावेश है तो दूसरी ओर शासन-पद्धतियों की खामियों की बखिया उधेडी गई है। यह प्रहसन गुरु-चेले के माध्यम से अंग्रेजी शासकों के शासन पर भी प्रकारांतर से कथोपकथन के प्रहार करता है। एक संदेश उभरता है, जिस राज्य में विवेक-अविवेक का भेद न किया जाए, वहां की प्रजा सुखी नहीं रह सकती। चूरन बेचने वाले का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। भारतेंदु अपने छंदोबद्ध कथन में इस प्रकार लिखते हैं—

''चूरन अमलवेद का भारी
जिसको खाते कृष्ण मुरारी
मेरा पाचक है पचलोना
जिसको खाते श्याम सलोना
चूरन बना मसालेदार
जिसमें खट्टे की बहार
मेरा चूरन जो कोई खाए
मुझको छोड़ कहीं नहिं जाए
चूरन साहब लोग जो खाता
सारा हिंद हजम कर जाता
चूरन पुलिस वाले जो खाते
सब कानून हजम कर जाते।
लो चूरन का ढेर-बेचा टके सेर।
चना जोर गरम-टके सेर।''

यह कालजयी रचना आज भी प्रासंगिक लगती है। वस्तुतः इतिहास स्वयं को दोहराता है। अतः यह नाटक कुछ लेखकों की दृष्टि में भले ही बिहार के किसी जमींदार को लक्षित करके लिखा गया हो तथा नेशनल थियेटर में अभिनीत किया गया हो, किंतु एक ही रात में ऐसी अद्‌भुत रचना करना भारतेंदु की दूरगामी दृष्टि तथा कला-वैचित्र्य का ही परिणाम है। उनकी यह कहावत—'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' प्रत्येक व्यक्ति की जुबान पर चढ़ गई थी। इस नाटक में कबीर का अक्खड़पन है तो आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद की एक बाल कृति 'व्यवहारभानु' भी प्रतिभासित है जिसकी ओर आज तक किसी आलोचक का ध्यान नहीं गया। यह कथा स्वामीजी ने अपनी कृति में अंग्रेजों के क्रूर शासन के विरुद्ध गुजराती हिंदी में लिखी थी। इन पंक्तियों के लेखक ने संयोग से उनकी लोक कथा 'व्यवहारभानु' बचपन में पढ़ी थी। हो सकता है दोनों ने अपने-अपने ढंग से लिखा हो। दोनों समकालीन थे। उन्नीसवीं सदी में भारत ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम ने भारतीय इतिहास को नया मोड़ दिया था, जिसे अंग्रेज 'विद्रोह' कहते थे। राष्ट्रीय असंतोष की जिस भावना को इस काल में सुरेंद्र नाथ बनर्जी, आर.सी. दत्ता, गोपाल कृष्ण गोखले आदि अपनी लेखनी से व्यक्त कर रहे थे, उसे भारतेंदु 'अंधेर नगरी' तथा 'भारत दुर्दशा' आदि के रूप में अभिव्यक्ति दे रहे थे। अंग्रेजों ने इस संघर्ष को तहस-नहस कर दिया था। फिर भी 1870 के बाद राजनीति का पुनर्जागरण हुआ और 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई। सन् 1880 में भारतीय समाज को दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा। अनेक लोग काल-कवलित हुए। उधर असंतोष को दबाने के लिए 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट बना, जिसने भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता छीन ली। भारतेंदु के मन में बहुत दिनों तक राजभक्ति तथा देशभक्ति के बीच अंतर्द्वंद चलता रहा। अंततः देश भक्ति की विजय हुई, जिसने भारतेंदु की कलम को नई ऊर्जा प्रदान की। अलबत्ता, तत्कालीन अधोगति पर जापान और स्याम का उदाहरण देते हुए भारतेंदु की लेखनी अश्रुपात भी करती है—

''अति निरबली स्याम जपाना
हाय न भारत तिंहुं समाना।।''

और फिर आशा के स्वर उच्चराने लगती है—

''आर लगन को नाम
आजु सब ही रखि लीनो।
पुनि भारत को सीस
जगत महं उन्नत कीनो।।''

उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध यहां तक लिखा—

''जा दिन तुव अधिकार नसायो
ताही दिन किन धरनी समायो।''
(दृष्ट्व्य—भारतेंदु ग्रंथावली)

बाद में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने हिंदी साहित्य को अनेक क्रांतिकारी रचनाएं दी। किंतु भारतेंदु की लेखनी ने अंग्रेजी शासन से जो लोहा लिया, वह अद्‌भुत था।

''आधुनिक काव्य—नवीन सांस्कृतिक चेतना'' में डा. राजपाल शर्मा लिखते हैं—''स्वदेश गौरव मातृभूमि की महिमा संबंधी चेतना शनैः-शनैः विकसित हुई है, क्योंकि 1857 के सांस्कृतिक विप्लव का आंग्ल शासन ने ऐसी क्रूरतापूर्वक दमन किया था कि उसके पश्चात् लगभग तीस-पैंतीस वर्षों तक कविगण हीन ग्रंथि से संपीड़ित मिलते हैं। इस हीनतापरक दैन्य और विषाद को भारतेंदुयुगीन काव्य में भलीभांति परिलक्षित किया जा सकता है। भारतेंदु ने 'कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जलबल नासी/जिन भय सिर न हिलाय सकत कहुं भारतवासी' के रूप में आंग्ल शासन के आतंक की ओर ही स्पष्ट संकेत किया है। हां, आंग्ल शासन की ओर से मिस्त्र में युद्ध करने वाली भारतीय सेना की विजय के तथ्य ने भारतेंदु ने आर्यों के वीरत्व पर गर्व करने का भी अवसर प्रदान कर दिया था। उन्होंने रघु, अज, परशुराम, हनुमान, भीष्म, द्रोणाचार्य के साथ, पौराणिक-ऐतिहासिक वीरों को संबोधित करते हुए आह्‌लाद व्यक्त किया है कि देखो तुम्हारे वंशज तुम्हारी कुल कीर्ति की रक्षा कर रहे हैं।''

भारतेंदु के सृजन में भारतीय संस्कृति की अजस्त्र धारा प्रवाहित है तथा राष्ट्रीयता के माणिक-मोती हैं, जो कला-सौष्ठव के लिए छटा बिखेरते हुए निम्न सूक्ति को साकार करते हैं—

''एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिखरेन
पृथिव्यां सर्व मानवाः।''

एक मान्यता है—महाभारत के बाद अनेक व्यक्ति फारस से लेकर यूरोप के अनेक देशों में जाकर बस गए। बनारसी दास चतुर्वेदी सर्वप्रथम प्रवासी व्यक्ति मनु को मानते हैं। मनु सृष्टि के आदि पुरुष ही नहीं वरन प्रवासी शृंखला के प्रथम पुरुष थे, जिन्होंने मिस्र देश में प्रवास किया था। वास्तव में भारत से प्रवसन अनेक कालखंडों में हुआ। मिस्र की फराह संस्कृति सूर्य संस्कृति ही है। वहां के राजाओं के नाम सूर्यवंशी राम के नाम पर रखे जाते थे। कालांतर में भारतीय रोमाओं का एक समूह चौथी शताब्दी में वहां पहुंचा, जो नृत्य तथा संगीत में निपुण था। कुछ इतिहासकार भारतीय 'डोम' जाति के लोगों को 'रोम' की संज्ञा देते हैं। हो सकता

है उत्तर भारत के डोम समुदाय ने इस कला में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली हो। इन पंक्तियों के लेखक के शोध के अनुसार रोमा न केवल अच्छे कलाकार थे बल्कि उनमें एक वर्ग 'नट' भी था, जिसने स्वांग कला में महारत हासिल कर ली थी। लगता है 'नट' से ही 'नाटक' शब्द की उत्पत्ति हुई है। आजकल उन्हें योरोप के देशों में रोमा, जिटानो, मानुष या जिप्सी कहते हैं। दूसरा समूह एक हजार वर्ष पहले गया था, जिसमें राजपूतों सहित कई जातियां थी। गिरमिटिया श्रमिकों के रूप में अनेक भारतीय लगभग दो सौ वर्ष पूर्व मारिशस, फीजी, सुरीनाम, गुयाना, ट्रिनीडाड आदि देशों में जाकर बस गए थे। एन आर आई समूह हाल ही का प्रवासी भारत है, जो विदेशों में अपनी मातृभूमि का नाम रोशन कर रहा है।

भारतेंदु नाटककार और नाट्यशास्त्री तो थे ही, किंतु वे नाटकों में अभिनय भी किया करते थे। उन्होंने साहित्य की विभिन्न-विधाओं में भारतीय वाङ्मय को समृद्ध किया तथा भारतीय नाटयूशास्त्र व पश्चिम के नाट्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। उनकी पुस्तक 'नाटक' इस बात का प्रमाण है कि हिंदी साहित्याकाश में भारतेंदु 'इंदु' की तरह न केवल जाज्वल्यमान सितारे थे बल्कि नाट्य जगत में सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व भी थे। निश्चय ही उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के रंगमंच की आधारशिला रखी थी।

विलक्षण व्यक्तित्व, कृतित्त्व के प्रतिमान, नवयुग के अग्रदूत कवि

डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी

''अहो अहो मन प्रान प्रिय
आर्य भ्रातृ गन आज,
धन्य दिवस जो यह जुडो
हिंदी हेतु समाज
भारत में यह देश धुनि
जहां मिलत सब भ्रात,
निज भाषा हित कुट कसे
हम कहं आज लखात
निज भाषा उन्नति अहै
सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के
मिटत न हिय को सूल
पढ़े संस्कृत जतन करि
पंडित भे विख्यात,
पे निज भाषा ज्ञान बिन
कहि न सकत एक बात।''

यह अंश है उस 'पद्य व्याख्यान' का जो भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सन् 1877 में प्रयाग की 'हिंदी वर्धिनी सभा' में दिया था—तत्कालीन 'भाषा आंदोलन' में 'उर्दू फारसी—बहुल' हिंदी के पक्षधर राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' की नीति का पुरजोर भावात्मक, युक्तियुक्त विरोध, उनका मुख्य लक्ष्य था। ध्यातव्य है, भारतेंदु का ये पूरा 'पद्य-भाषण' उनके हिंदी अनुराग और हिंदी के प्रति उस अविचल निष्ठा और प्रतिबद्धता का द्योतक है, जो उनमें, आद्यांत बनी रही। यहां विशेष उल्लेख्य यह भी है कि भाषाई चिंता के साथ-साथ भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण, उत्पीड़नजन्य देश की दुर्गति से भी, उतने ही क्षुब्ध, मर्माहत थे—

''आवहु सब मिलि के रोवहु भारत भाई,
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

पर क्या इसे एक विस्मयजनक तथ्य नहीं माना जाएगा कि भारतेंदु का जन्म, उन इतिहास प्रसिद्ध जगतसेठ अमीचंद के वंश में हुआ था जिन्होंने भारत में अंग्रेजीराज की जड़ जमाने में प्रमुख भूमिका निभाने वाले, लार्ड क्लाइव की, भरपूर सहायता की थी और आगे भी राजभक्ति की। इस परंपरा का निर्वाह/भारतेंदु के पिता बाबू गोपालचंद्र ने किया था। पर उनके ही वंशधर भारतेंदु ने, तदुपरांत, विदेशीराज की विसंगतियों, विद्रूपताओं तथा विदेशी भाषा के थोपे जाने के विरुद्ध डटकर आजीवन मोर्चा लिया और शासकों के कोपभाजन बने।

सन् 1850 में जन्मे भारतेंदुजी की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई थी। उन्हें संस्कृत, उर्दू तथा थोड़ी अंग्रेजी का भी ज्ञान प्राप्त कराया गया। पांच वर्ष की आयु में माता और दस वर्ष की आयु में पिता की स्नेह छाया उनके सिर से उठ गई। यह, निस्संदेह, बहुत बड़ा धक्का था। इनके अभिभावक शिवप्रसाद ने विशेष अध्ययन के लिए उन्हें 'क्वींस कॉलेज' में भर्ती कराया पर स्वछंद प्रकृति के कारण इनकी कॉलेज की पढ़ाई पूरी नहीं हो सकी।

भारतेंदुजी को साहित्यिक संस्कार विरासत में मिले थे। उनके पिता बाबू गोपालचंद स्वयं साहित्यकार और विद्यानुरागी थे। ब्रजभाषा के वे अच्छे कवि थे और 'गिरिधरदास' उपनाम से कविताएं लिखा करते थे। उन्होंने 'नहुष' नामक एक नाटक भी लिखा था। वे परम वैष्णवभक्त थे, और कहते हैं वे पांच भक्ति पद बनाए बिना भोजन ग्रहण नहीं करते थे। उस पारिवारिक साहित्यिक वातावरण से प्रभावित, प्रेरित भारतेंदु ने पांच वर्ष की अवस्था में ही, निम्नांकित दोहा लिखकर पिताजी को दिखाया—

''ले ब्योंड़ा ठाड़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सैन को हनन लगे भगवान।।''

पिता ने पुत्र का उत्साहवर्धन करते हुए आशीर्वाद दिया—''अवश्य तू आगे मेरा नाम बढ़ाएगा।'' पर इसी के आस पास का यह भी प्रसंग है—एक बार पिता को श्राद्ध में तर्पण करते देख वे कहने लगे—''आप ये पानी में पानी क्यों मिला रहे हैं?'' पुत्र के ऐसे अनास्था भाव से मर्माहत, परम वैष्णव पिता ने रोषपूर्वक कहा—''तू कुल को बोरेगा।'' और पिता की, पुत्र के संबंध में, उक्त दोनों भविष्यवाणियां सत्य सिद्ध हुई। इसीलिए इस संदर्भ में, प्रो. आनंदनारायण शर्मा, भारतेंदु के 'जीवनवृत' में लिखते हैं—''भारतेंदु ने अपने पिता का नाम उजागर भी किया और अपने पूर्वजों की गाढ़ी कमाई को डुबो भी दिया। भारतेंदु की शाहखर्ची जब बहुत अधिक बढ़ गई और तरह-तरह के दान तथा अन्य सत्कार्यों में उन्होंने पानी की तरह रुपया बहाना शुरू किया, यहां तक कि उनकी सरलता और मुक्तहस्तता का कुछ लोग नाजायज फायदा उठाने लगे, तो एक बार काशी नरेश ने उन्हें इशारे से समझाना भी चाहा। पर उन्होंने दो टूक उत्तर दिया—इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाकर रहूंगा।''

भारतेंदु की साहित्यिक मित्र मंडली बहुत बड़ी थी, पर उसके अंतरंग प्रमुख सदस्य

थे—सर्वश्री पं. बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' राधाचरण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, पं. रामशंकर व्यास, राधाकृष्णदास आदि जो सभी हिंदी हित के लिए सर्वतोभावेन समर्पित थे—हालांकि भारतेंदुजी सभी गुणीजन का बहुत आदर करते थे। उनके यहां से गुणी कलाकार कभी खाली हाथ नहीं लौटते थे। अपनी संपत्ति का बहुत बड़ा अंश उन्होंने दानशीलता में लुटाया था। वे अपने उपयोग की बहुमूल्य वस्तुओं को भी प्रसन्नतापूर्वक दे डालने में संकोच नहीं करते थे। पं. सुधाकर द्विवेदी के एक दोहे पर रीझकर तुरंत उन्होंने एक सौ रुपए पुरस्कार स्वरूप दे डाले थे। उनके व्यक्तित्व, कृतित्व की विलक्षणताओं से प्रभावित होकर जब पं. रामेश्वरदत्त व्यास ने सन् 1860 में 'सारसुधानिधि' पत्र में हरिश्चंद्रजी को 'भारतेंदु' की उपाधि देने का प्रस्ताव रखा, तो सारे हिंदीजगत ने एक स्वर से उसका स्वागत किया। पर खेद है 'भारत भारती' का यह देदीप्यमान 'इंदु' कुछ समय बाद—1885 में—कुल साढ़े चौंतीस वर्ष की अल्प अवधि में ही, अस्त हो गया, हालांकि उसका अमित प्रखर आलोक सदा सर्वदा अमर रहेगा।

भारतेंदुजी सच्ची 'भारतीय आत्मा' थे। राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम उनकी धमनियों में गहरे व्याप्त था। उन्होंने अपनी वाणी, लेखनी से सोए राष्ट्र जन में 'स्वराष्ट्र', 'स्वभाषा', 'स्वधर्म' का मंत्र फूंका। हिंदी के प्रारंभिक युग के मूर्धन्य अग्रदूत साहित्यकार माने जाने वाले भारतेंदु बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कलाकार थे। उन्होंने ज्ञान विज्ञान एवं साहित्य की सभी विधाओं यथा-कविता, नाटक, निबंध, साहित्य शास्त्र, भाषा विज्ञान, इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल आदि पर लेखनी चलाई और वाङ्मय की भरपूर श्रीवृद्धि की।

भारतेंदुजी के संपूर्ण कृतित्व का आकलन और साहित्य क्षेत्र में उनकी ऐतिहासिक भूमिका को सम्यक रूप से समझने के लिए उनकी तीन पत्रिकाओं—'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' तथा 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में अवगाहन करना होगा। उल्लेख्य है—'कवि वचन सुधा' पत्रिका उन्होंने केवल 17 वर्ष की अवस्था में निकाली थी। 'चंद्रिका' के मुखपृष्ठ पर अंकित होता था—''नवीन प्राचीन संस्कृत भाषा और अंग्रेजी में गद्य पद्यमय काव्य, प्राचीनकृत राज्य संबंधी विषय, नाटक विधा और कला पर लेख, लोकोक्ति, इतिहास, परिहास, गद्य और समालोचना संभूषिता।'' 'हरिश्चंद्र मैगजीन में धर्म, भाषा आदि विषयक व्याख्यानों की रिपोर्ट छापी जाती थी। इस संदर्भ में, डॉ. बच्चन सिंह कहते हैं—''मध्यवर्गीय समाज पर विचार का कार्य उसी समय आरंभ हो गया था। कानून की पुस्तकों के अनुवाद की योजना का प्रकाशन भी होता था। इसके साथ-साथ पुराने ढंग की कविताएं 'समस्या पूर्तियां,' नायिका भेद पर क्रमशः लेख भी प्रकाशित होते रहते थे। महिलाओं में जागृति, संचार के लिए उन्होंने 'बाल बोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की। भारतेंदुजी के सभी उद्यम, उपक्रम साहित्यिक संस्कारों का प्रचार-प्रसार, जनजागरण भावना से प्रेरित होते थे। उक्त पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त आपने 'कवितावर्धिनी सभा,' 'तदीय समाज', 'पैनी रीडिंग क्लब', 'यंग मैंस एसोसियेशन' आदि संस्थाओं की स्थापना की। जैसा उल्लिखित है, देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना और विस्तृत जातीय गौरव की भावना का संचार, आजीवन, भारतेंदुजी की चिंता रही। वे 'कला कला के लिए'—वाग्विलास में विश्वास नहीं करते थे। उनके कृतित्व में तुलसी की भांति 'स्वांतः सुखाय' और 'बहुजन हिताय' भावना का मणिकांचन योग माना जाता है।''

भारतेंदुजी के व्यक्तित्व की भांति ही उनका कृतित्व भी, अनेक भावतरंगों से झंकृत है, विभिन्न विचार सारणियों का संगम है। विलक्षण मेधा, मनीषा के प्रतिमान भारतेंदु ने अपने संक्षिप्त रचनाकाल में ही मौलिक, अनूदित कुल मिलाकर साठ से अधिक कृतियों का प्रणयन किया। उनके काव्य को भाव और विषयानुसार चार भागों में बांटा गया है। 1. भक्तिप्रधान, 2. शृंगार प्रधान, 3. देशप्रेम की भावना प्रधान, 4. सामाजिक समस्या। भारतेंदुजी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित कृष्णभक्त कवि थे। अपने आत्मपरिचय वाले प्रसिद्ध कवित्त में वे कहते हैं— ''सरबस रसिक के, सुदामा दास प्रेमिन के, सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के''। वे राधा कृष्ण के प्रेम में मग्न हो ब्रज के लतापता बनने को कितने उत्कंठित हैं...

''ब्रज के लता पता मोहि कीजे,
गोपी पद पंकज की रज जामै सिर भीजै।
आवत जातकुंज की गलियन
रूप सुधा नित पीजै।
श्रीराधे-श्रीराधे मुख यह
वर हरिचंद को दीजै।''

भारतेंदु ने 'भक्तिपरक लगभग डेढ़ हजार पद लिखे। पुष्टिमार्ग के अनुयायी होने के बावजूद भारतेंदुजी के भक्ति साहित्य में सांप्रदायिक संकीर्णता नहीं है। उन्होंने कृष्ण के साथ-साथ राम तथा अन्य देवी देवताओं की भी वंदना की है। पर विशेष दृष्टव्य बात यह है कि आराध्य विभूतियों का स्मरण करते समय भी, स्वदेश या समाज उनके अंतर से तिरोहित नहीं होता। तभी तो कवि अपने 'नीलदेवी' नाटक में पुकार उठता है—

''कहां करूणानिधि केसव सोए,
जागत नेक न जदपि बहुत
विधि भारतवासी रोए।''

××× ××× ×××

''हाए सुनत नहिं निठुर भए
क्यों परम दयालु कहाई,
तब विधि बूड़त लखि निज देसहिं
लेहु न अबहुं बचाई।।''

भारतेंदु को जो रीतिकाव्य परंपरा उत्तराधिकार में मिली, जाहिर है वह शृंगारिक थी। अतः शृंगारिक वृत्ति की ओर कवि का झुकाव स्वाभाविक था। शृंगार के 'संयोग''वियोग' दोनों पक्षों का चित्रण करने वाली रचनाएं

भारतेंदु ने लिखी, किंतु उनकी विप्रलंभ की रचनाएं अधिक हृदयग्राही बन पड़ी है, उदाहरणार्थ–

''इन दुखियन को न सुख सपनेहुं मिल्यो
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलायेंगी
प्यारे हरिचंद जूं की बीती
जानि औधी जो पै–
लै हैं प्रान तऊ ये तो साध न समायेंगी।
देख्यौ एक बारहु न नैन भरि तोहि पाते,
जौन जौन लोक जै है तहां पछिलायेंगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरस तिहारे हाथ
देखि लीज्यों आंखें ये खुली ही रहि जाएगी।।''

भारतेंदु की शृंगारिक कविताओं में रीतिकालीन वासनामयी कलुषता का समावेश नहीं है।

यह रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं कि देशप्रेम, अतीत गौरवगान भारतेंदुजी की कविता का मूल स्वर है। अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण, उत्पीड़नजन्य दुर्दशा से उनके हृदय को बहुत कष्ट होता था–

''हाय! वहै भारत भुव भारी,
तब ही विधि सौं भई दुखारी,
हाय! पंचनद, हा पानीपत,
अजहुं रहे तुम धरनि विराजत,
हाय चितौर! निलज तू भारी,
अजहुं बेगि खरो भारतहि मंझारी,
तुममें जल नहिं जमुना गंगा,
बढ़हुं बेगि किन प्रबल तरंगा,
बोरहु किन झट मथुरा कासी,
धोवहु यह कलंक की रासी।''

'मुकरी' के माध्यम से भी वे यही लक्षित करते हैं–

''भीतर भीतर सब रस चूसै,
हंसि हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
ना सखि साजन, नहिं अंग्रेज।।''

उनकी व्यथा है–

''अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चली जात इहै इति ख्वारी।।''

भारत के प्राचीन वीरों, महापुरुषों का स्मरण कर उन्होंने देशवासियों में जागरण, शौर्य और उत्साह का संचार किया–

''कहां गए विक्रम, भोज,
राम, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त, चाणक्य कहां
नासे करिकै थिर।''

तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों के विरूद्ध भी भारतेंदुजी ने बुलंद आवाज उठाई–

''रुचि बहुविधि के
वाक्य पुरानन माहि घुसाय
सेव, साक्त, वैष्णव
अनेक मत प्रकट चलाय
विधवा ब्याह निषेध कियौ
विभिचार प्रचार्यो
रोकि विलायत गमन
कूप मंडूक बनायौ
औरनि को संसर्ग
बुराई प्रचार घटायो
बहु देवी देवता
भूत प्रेतादि पुजाई
ईश्वर से सब विमुख
किए हिंदुन घबराई।।''

भूत प्रेतों में अंधविश्वास रखने वाले पुराण पंथियों पर व्यंग्य प्रहार करते हुए वे कहते हैं–

''बहु देवी देवता भूत-प्रतादि पुजाई
ईश्वर सों सब विमुख किए हिंदू घबराई।''

'विधवा विवाह' विरोधियों की उन्होंने इन शब्दों में आलोचना की–

''करि कुलीन के बहुत ब्याह
बल धीरज मार्‌यो
'विधवा विवाह' निषेध कियो
व्यभिचार प्रचार्‌यो।।''

''युग चेतना को भारतेंदुजी ने अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। वे वैष्णव होते हुए भी पाखंडपूर्ण जीवन के खरे आलोचक हैं। कबीर की भांति वे सामाजिक दोषों पर प्रहार करने वाले समर्थ कवि और समाज सुधारक हैं।''

समष्टि में, हम भारतेंदुजी के महत् कवि व्यक्तित्व के संबंध में यहां आचार्य शुक्लजी का सटीक सारगर्भित मत उद्‌धृत कर रहे हैं–''अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्‌माकर और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल और हेमचंद्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई 'भक्तमाल' गूंथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन का यहीं सुंदर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुर्य है। साहित्य के एक नवीन का यही सुंदर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुर्य है। साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्तक के रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए या बाहरी भावों को पचाकर इस प्रकार मिलाना चाहिए कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगे। प्राचीन नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था, वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेंदु का उदय हुआ, इसमें संदेह नहीं।''

–(आचार्य शुक्लजी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास')

चंद्रपथ, सूरज नगर (पश्चिम), जयपुर–6

भारतेंदुकालीन ब्रजभाषा कविता

आचार्य डॉ. विष्णुदत्त राकेश

भारतेंदु को विरासत में जो ब्रजभाषा काव्य मिला वह पारंपरिक ढर्रे का था। रीतिकालीन काव्य परंपरा के अवशेष के रूप में महाकवि ग्वाल, चंद्रशेखर वाजपेयी, गुलाब कवि, प्रताप साही, लछिराम भट्ट, गोविंद गिल्ला भाई तथा नवनीत चौबे ने आचार्वल और कवित्त का युगपत निर्वाह किया। नख-शिख, नायिका भेद, रस अलंकार, आश्रयदाता की प्रशस्ति, भक्ति-वीर काव्य तथा प्रकृति चित्रण इनके काव्य विषय थे। कुछ कवि प्रेम के लौकिक-अलौकिक रूप को मधुरोपासना के नाम पर भारतीय और सूफियाना मनोभूमि के साथ हिंदी कविता में उतर रहे थे। इनमें महंत सीतलदास, भगवत दास, वेणीदत्त झा, महात्मा युगलनंद शरण, महात्मा बनादास, महाराज विश्वनाथ सिंह, कुंवरिबाई तथा कष्ठ जिह्न स्वामी के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। शृंगार-अध्यात्म के समन्वय के साथ-साथ ये रसिकोपासक कृष्ण-रामभक्त कवि ब्रजभाषा में अरबी-फारसी तथा खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग भी बेहिचक कर रहे थे। यह सामंती-नवाबी युग का प्रभाव था। स्वामी युगलानंद शरण का एक दोहा नमूने के लिए देखिए—

''उठे दरस जब जरद तन,
हरद बराबर होय।
गरद निसाल निहार नित,
हिय हरसाइत जोय।।''

इस धारा के कवियों में महाराज द्विजदेव, गुमान मिश्र तथा लछिराम के प्रकृति चित्रण में नवीन शैली के दर्शन होने लगते हैं, यह ध्यान देने योग्य बात है। भावोद्‌बोधन तथा भाषा की लोच द्विजदेव में भरपूर है। एक छंद यहां उद्‌धृत करता हूं, जिसमें चांदनी के भार से झुके चंद्रमा तथा सुगंध के भार से दबे पवन की मंथरगति का उल्लेख है—

''सुरही के भार सूधे सबद सुकीरन के।
मंदिरन त्याग करै अनत कहूं न गौन।
द्विजदेव त्यौं ही मधु भारन अपारन सौं।
नैकु झुकि भूमि रहै मोंगरे मरुअ दौन।
खोलि इन नैननि निहारौ तो निहारौ कहा,
सुरनमा अमृत छाइ रही प्रति भौंन भौंन।
चांदनी के भारन दिखात उनयौ सो चांद,
गंध ही के भारन नहत मंद मंद पौन।।''

ब्रजभाषा काव्य में विषय वस्तुगत नवीनता भारतेंदु से पूर्व ही चली थी। सरदार कवि का काशी वर्णन, नारायण कवि का गोचारण वर्णन, सेवक कवि का ब्रिटिश राजवर्णन, टामसन तथा विकटोरिया की प्रशंसा तथा प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, राजा लक्ष्मण सिंह, ठाकुर जगमोहन सिंह एवं बलवीर कवि की समस्या पूर्तियों में काव्य वस्तु की विविधता भी देखने को मिल जाती है। इस दृष्टि से एक सवैया देखिए—

''थोरी भई कल वौरी जु प्रात ही,
नंद की फौरि निहारनि लागी।
बेरी भई तो रंभाई रंभाइ के,
देहरी सौं सिरमारनि लागी।
आंगन में उठधाइ जसोमति,
प्रेम भरी पुचकारनि लागी।
आंसुनि सों भरि आयो गरौ,
हिचकीन में स्याम पुकारनि लागी।।''

अंग्रेजी राज के शोषण तथा भारत की निर्धनता, भुखमरी, निरक्षरता, रूढ़िवादिता और बिगड़ती कृषि व्यवस्था पर भी भारतेंदु के पूर्व और समवर्ती कवियों ने लिखना प्रारंभ कर दिया था। बाबू पत्तनलाल तथा रामकृष्ण वर्मा द्वारा संपादित समस्या पूर्ति शतक से इस आशय का एक छंद उद्‌धृत किया जाता है—

''आयो विकराल काल
भारी है अकाल पर्‌यो,
पूरै नाहिं खर्च घरभर की कमाई में।
कौन भांति देय टैक्स इनकम हू लैस,
गई पानी की पियाई,
लैटरीन की सफाई में।
कैसे हैल्थ साहब की बात कछू कान परै
पड़ै न सुसील भूमि पौंडे चारपाई में।
किमि कै बचानै स्वांस
कौन कौन ओर घुसें
सोवें साथ सोवैं साथ एक चारपाई में।।''

इस काल के कवियों में कल्पना भक्ति, नवीन उद्‌भावना, गहरी व्यंजना, वैदुष्य तथा शास्त्रीय प्रौढ़ता भी भरपूर है। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण स्वामी विरंजानंद सरस्वती के शिष्य मथुरा के नवनीत चतुर्वेदी का यह उल्लेख आवश्यक है। यह आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद सरस्वती के सहपाठी थे। एक बार बल्लभ संप्रदाय के गद्‌दीधर आचार्य गहूलालजी गोस्वामी ने उनसे कहा कि रसपीयूषनिधि के रचयिता महाकवि सोमनाथ ने निशाभिसारक का विकलांग रूपक परक छंद 'कांह दिवारी की रैन चले बरसाने मनोज को मंत्र जगावन' लिखा है, क्या आप इसे सांग रूपक में पुनः रूपायित कर सकते हैं? चतुर्वेदीजी ने तुरंत

यह सवैया पढ़ा गोस्वामी ने उन्हें पुरस्कृत कर महाकवि की उपाधि प्रदान की। तुलनात्मक हिंदी आलोचना के जन्मदाता और बिहारी के संजीवन भाष्यकर्ता आचार्य पंडित पद्मसिंह शर्मा तो इस ठाठ की पूर्ति कर सौजान से फिदा थे।

''अच्छत आनंद फूल सो
फूल सुचाह को चंदन चोप चढ़ावन।
त्यों नवनीत जू लाग की
लौंग उमंग सिंदूर को रंग रचावन।
धावन धूप संयोग सुंगधि लै
केलि कपूर की जोति जुरावन।
कान्ह दिवारी की रैनि चले बरसाने
मनोज को मंत्र जगावन।''

ये समस्याएं कभी-कभी तो इतनी कठिन होती थी कि पूर्ति असंभव जान पड़ती थी पर प्रतिभा के धनी इन कवियों ने इन समस्याओं की जैसी पूर्ति की है, उन्हें देखकर दांतों तले उंगली दबानी पड़ जाती है। 'पावक पुंज में पंकज फूले', 'गंगधार मानो चारु चंपा को धनुष है' , 'बीस रवि दस ससि संग ही उदित भए' तथा 'मज्जन गिरा करि मानो मैनबाला मंत्र मोहन जपति ज्वालमाला की लपट में' समस्याएं ऐसी ही थी।

भारतेंदु का कवि दरबार इसी आधारभूमि पर खड़ा हुआ था। उनके मंडल में अंबिकादत्त व्यास जैसे संस्कृत के धुरंधर पंडित भी थे। हिंदी में उनकी बिहारी विहार रचना प्रसिद्ध है। काशी की विद्वत् सभा में कांक रोली के गद्दीनरेश गोस्वामी बालकृष्णलाल ने 'भारतरत्न' की उपाधि तथा अयोध्या नरेश ने उन्हें प्रशस्ति पत्र प्रदान किया था। शतावधान की पदवी उन्हें इसलिए मिली कि वह एक साथ अलग-अलग विषयों पर 24 मिनट में सौ आशु छंदों का निर्माण कर सकते थे। जयपुर राज्य के प्रधान सेनापति ठाकुर हरिसिंहजी जब उन्हें जयमहल दिखा रहे थे, तब एक वेदमंत्र की अर्धाली देकर हिंदी में समस्या पूर्ति का आग्रह किया। व्यासजी को बिहारी का दोहा 'प्रतिबिंबित जयसाह दुति, दीपति दर्पनधाम, सब जब जीतन को कियो कायव्यूह जनु काम' याद था। तुरंत पूर्ति करते हुए पढ़ा।

''प्रविष्टो राजभवने प्रतिबिंवैर्न को भवेत्
सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राशः सहस्रपात्।''

भारतेंदुजी के कवि मंडल के वह भास्कर रत्न थे। उन्होंने भारतेंदुजी के आग्रह पर बिहारी के दोहों पर कुंडलियां रची थीं। रामनरेश त्रिपाठीजी ने लिखा है कि बिहारी के दोहे रूपी छोटे-छोटे घड़ों में जो अमृतभरा है, व्यासजी ने कुंडलियों की लपेट से उसे बाहर छलका दिया है। उदाहरणार्थ—

''सोहत ओढ़े पति पट,
स्याम सलौने गात।
मनो नीलमनि सैल पर,
आतप पर्‌यौ प्रभात।
आतप परयौ प्रभात
ताहि सौं खिल्यौ कमलमुख।
अलक भौर लहराय जथ मिलि
करत विविध सुख।
चकवा से दोउ नैन देरिव
इंह पुलकत मोहत।
सुकवि विलोकहु स्याम
पीत पर औढ़े सोहत।।''

इस काल के ब्रजभाषा कवियों में डूयक ऑफ एडिनवरा, महारानी विक्टोरिया, चार्ल्स ब्राडला, सत्तावन का विद्रोह तथा पुनर्जागरण पर भी कविताएं लिखीं। गद्दूलाल चतुर्वेदी जैसे पुराने शैली के कवि भी आर्यजाति के पुनरुत्थान की बात करने लगे। यह दयानंद सरस्वती और भारतेंदु का ही प्रभाव था। वह कहते हैं—

''मनुजो, मानसत विनय परौ।
आर्य करौ औदार्य कार्य
करि देस उदय सिगरौ।
वेद पूरि पढ़ि खेद दूर करि
द्विज निज विजय करौ।
शास्त्र करि अस्त्र धरि
भूप अनूप लरौ।
वैस्य वरन दुखहरन करन
सुख धन भंडार भरौ।
सूद्र दाम गहि ग्राम धाम
विसराम काम निवरौ।
आर्य भूमि में सकल सिद्धि
शुभ धन संपत्ति पसरौ।''

भारतेंदु ने स्वामी दयानंद से मतभेद रखते हुए भी उनकी राष्ट्रवादिता, देशोद्धार की चिंता तथा समाज सुधार भावना का समर्थन किया। प्रतापनारायण मिश्र ने दयानंद का विरोध करने वालों को करारा जवाब दिया। ईसाई और मुसलमान प्रचारकों द्वारा हिंदू धर्म पर होने वाले कड़े आक्षेपों का जो युक्ति युक्त सटीक उत्तर स्वामी जी ने दिया, भारतेंदु और भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों ने उनका समर्थन किया। भाषा नीति में यह सभी महापुरुष एक साथ खड़े हुए 'भारतेंदु' बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा दयानंद सरस्वती एक स्वर से अंग्रेजी के विरुद्ध हिंदी के पक्ष में एकजुट खड़े हो गए। दयानंद भारतेंदु की पत्रिका कवि वचन सुधा में लिखते ही थे। भारतेंदु ने यों उर्दू में भी रसा नाम से लिखा है पर उर्दू फारसी पसंद अंग्रेजी सरकार और उनके पिछलग्गू भारतीयों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। भारतेंदु की 'उर्दू का स्यापा' रचना लोकप्रिय हुई। कचहरी में फारसी उर्दू का बोलबाला था। हिंदी की अवहेलना पर भारतेंदु ने अपनी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की।

''भोज मरे अरु विक्रमहू
किनको अब रोइ कै काव्य सुनाइए।
भाषा भई उर्दू जग की अब तो
इन ग्रंथनि नीर डुबाए।
राजा भये सब स्वारथ पीन
अमीरहु हीन किंहै दरसाइए।
नाहक देनी समस्या अबै
यह ग्रीषम प्यारे हिमंत बनाइए।''

प्रयाग की हिंदी प्रवर्धिनी सभा में बालकृष्ण भट्टजी के आग्रह पर हिंदी के पक्ष में भारतेंदुजी ने अपना पद्यात्मक भाषण दिया। उस भाषण का यह दोहा बाद में हिंदी प्रेमियों का कंठहार बन गया।

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
पै निज भाषा ज्ञान के
मिटत न हिय को शूल।।''

भारतेंदु के इस उद्‌बोधन से हिंदी के रूप में राष्ट्रीयता का उदय हुआ। दयानंद के स्वदेशी मंत्र ने भारतेंदु को स्वदेशी यज्ञ का पुरोधा बना दिया। रामविलास शर्मा के अनुसार उन्होंने एक उदार और विकासोन्मुख धार्मिक परंपरा में सभी जनता को संगठित कर दिया। राधाचरण गोस्वामी ने 'यमलोक की यात्रा' लिखकर कट्टर पंथियों की नींद हराम कर दी। आर्य समाज की आर्य सभाएं, राधाचरण गोस्वामी की कविकुल कौमुदी, भारतेंदु की कविता वर्धनी, तदीय समाज, सुधाकर द्विवेदी की विज्ञान प्रचारिणी तथा अंबिकादत्त व्यास का कविसमाज अलग-अलग नामों से एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए सचेष्ट थे। इनसे साहित्य द्वारा एक बड़े जनआंदोलन की तैयारी हो रही थी। बलिया के दादरी मेले में प्रदत्त भारतेंदु का भाषण इस योजना का दस्तावेज है। शिवप्रसाद सितारेहिंद भारतेंदु के अंग्रेजी भाषा के शिक्षक थे। वह फारसी उर्दू मिश्रित हिंदी अथवा हिंदुस्तानी के प्रबल समर्थक थे। अंग्रेज सरकार ने उन्हें हिंद का सितारा बताया तो हिंदीभाषी जनता ने सितारे को निष्प्रभ कर देने वाले चंद्रमा से हरिश्चंद्र को उपमित करते हुए भारतेंदु बना डाला। अंग्रेज सरकार की भाषानीति के विरुद्ध यह जनाक्रोश की ध्वनि थी।

यह भारतेंदु युग की हिंदी में शुरूआत थी। भारतेंदु ने सरकारी खिताबों पर भी गहरा व्यंग्य किया है—

''इनकी उनकी खिदमत करो।
रुपया देते देते मरो।
तब आवै मसि करन खराब।
क्यों सखि साजन नाहिं खिताब।''

भारतेंदु के ब्रजभाषा प्रेम को देखते हुए अंग्रेज विद्वान फ्रेडरिक पिंकाट ने उन्हें ब्रज भाषा में पत्र लिखा। मालवीयजी ने कचहरी में हिंदी आंदोलन चलाकर उस परंपरा को आगे बढ़ाया।

भारतेंदु ने शुकदेव मुनि के व्यक्तित्व-चित्रण के व्याप्त से स्वकीय व्यक्तित्व को उकेरा है। व्यक्तिवादी काव्य रचना का प्रवर्तन भी भारतेंदु से ही होता है, उन्होंने परंपरागत ब्रजभाषा काव्य को नए सांचे में ढाला। वस्तुगत तथा शैलीगत संस्कार किया। भाषा को राजनीतिक तथा सामाजिक सरकारों से जोड़ा। ब्रजभाषा को राष्ट्रीय समस्याओं के संवहन की सामर्थ्य दी। अंबिकादत्त व्यास और सुधाकर द्विवेदी जैसे संस्कृत पंडित भी हिंदी में लिखने लगे। उर्दू के रचनाकार भी हिंदी की ओर आकृष्ट हुए। ग्रियर्सन, फ्रेडरिक पिंकाट जैसे अंग्रेजी भाषाविद् हिंदी के प्रशंसक बने। भारतेंदु की प्रेरणा से ही भोपाल की शाहजहां बेगम, रूप रतन तथा काशी की वेश्या हुस्ना नागरी हिंदी में रचना करने लगीं। अलीजान माधवी तथा मल्लिका चंद्रिका ब्रजभाषा की श्रेष्ठ रचनाधर्मी बनीं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में भारतेंदु काल में हिंदी कला नई चाल में ढली। ब्रजभाषा कविता को बृहत्तर आयाम मिला। यह युग राजनीतिक विद्रोह का नहीं, जन संगठन और लोक चेतना के साहित्यिक जागरण का था। भारतेंदु के निधन पर उनकी प्रिय शिष्या हुस्ना नागरी ने जो पंक्तियां अपनी श्रद्धांजलि के रूप में लिखी थीं, उन्हें उद्‌धृत करते हुए मैं भी उन्हें सादर स्मरण करता हूं—

''कैसे नैन लखब, सुस्याम घुंघरारै बार,
आह नागरी के नांह छांडि कै कितै गयो।''

'ईशान', 4, भगवंतपुरम, पो. कनखल
हरिद्वार—उत्तराखंड

भारतेंदु हरिश्चंद्र : कथा-पटकथा नोट्स

अशोक चक्रधर

लगभग बीस साल पहले मैं भारतेंदु हरिश्चंद्र पर एक फिल्म की योजना बना रहा था। बनारस के कई चक्कर लगाए। वहां के विद्वानों और भारतेंदु बाबू के वंशजों से मिला। अंतर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के लिए विषय से जुड़ी हुई पुस्तकें खंगालीं। जहां जो उपयोगी मिलता था, उनके नोट्स लेता गया। फिर मैंने उन नोट्स को कथा-पटकथा के लिए एक तरतीब में लगाया। नोट्स की वह तरतीब आपके सामने प्रस्तुत है। निश्चय ही भारतेंदु की कला-जीवन-यात्रा की एक झांकी आपको इन नोट्स में मिलेगी।

कथा-पटकथा के नोट्स—

1857 गदर। सेठ अमीचंद के वंशज गोपालचंद्र अपने पूर्वजों की भांति अंग्रेजों के विश्वासपात्र थे। काशी का अंग्रेज कमिश्नर गबिंस भोर की बेला में खजाने को सुरक्षित छिपाने के लिए गोपालचंद्र की हवेली पर आया। हरिश्चंद्र उस समय सात वर्ष के थे। गोपालचंद्र ने खजाने की बड़ी संदूक भीतरी प्रकोष्ठ में छिपा दी। आश्वस्त होकर गबिंस लौट गया। नौकर गंगू ने दरवाजा बंद करके ब्यौंडा (दरवाजे में फंसाने वाला लकड़ी का लट्ठा) फंसा दिया।

गबिंस के आने से पहले गोपालचंद्र अपने मुंशी कन्हैयालाल को बोल-बोल कर कविता लिखा रहे थे। प्रकरण था—बाणासुर की सेना से अनिरुद्ध भगवान की लड़ाई। अनिरुद्ध सोच रहे हैं कि बाणासुर पर किस शस्त्र से प्रहार किया जाए। गोपालचंद्र इस प्रकरण को छंद में बांध नहीं पा रहे थे कि इतने में ही खजाना लेकर गबिंस आ गया, कविता का क्रम टूट गया।

गबिंस के जाने के बाद जब गंगू द्वार पर दरवाजा बंद करने आया तो बालक हरिश्चंद्र भी आ गए और लकड़ी के ब्यौंडा को हथियार की तरह पकड़ कर खड़े हो गए। कविता की दो पंक्तियां बनाकर उन्होंने अपने पिता की मदद की—

''लै ब्यौंडा ठाड़े भए, श्री अनिरुद्ध सुजान''

पिता गोपालचंद्र ने हैरानी से हरिश्चंद्र को देखा और कहा—अगली पंक्ति क्या होगी,

हरिश्चंद्र ने आत्मविश्वास के साथ दूसरी पंक्ति सुना दी—

''बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।''

पता नहीं हरिश्चंद्र ने इससे पहले कविता लिखने का कोई प्रयास किया था या नहीं किंतु यह पंक्तियां उनकी पहली काव्य रचना मानी जाती है।

कथागायन शैली 'लावनी' में काशी की तत्कालीन संस्कृति एवं भारतेंदु के पूर्वजों की सात पीढ़ियों का परिचय।

काशी में भिन्न-भिन्न प्रांतों के विभिन्न लोग बसते थे। कहते हैं शिवाला घाट पर उन दिनों लक्ष्मी विराजती थी। यहीं के राय खिरोधर लाल के घर धेवता हुआ। उनके जमाई गोपालचंद्र का बेटा। अंग्रेजों के दबाव के कारण भारत भूमि कराह रही थी, लेकिन सेठ अमीचंद के वंशज अंग्रेजों के स्वामिभक्त थे। हरिश्चंद्र के जन्म के बाद दो-तीन वर्षों के अंतराल में ही दो भाई-बहन और आ गए। गोकुलचंद्र और गोविंदी बीवी। मां का स्वास्थ्य बिगड़ गया, ईश्वर को प्यारी हो गईं। पिता गोपालचंद्र ने बाबू बेनीदास की पुत्री मोहन बीवी के साथ पुनर्विवाह कर लिया। हरिश्चंद्र को विमाता का प्रेम नहीं मिल सका। पांच वर्ष के हरिश्चंद्र से जब पिता ने पूछा—विद्या लोगे या धन? तो हरिश्चंद्र ने विद्या का चुना। पिता ने अध्ययन की व्यवस्थाएं कर दीं। पं. ईश्वरदत्त संस्कृत पढ़ाते थे। पं. नंदकिशोर अंग्रेजी और मौलवी ताज अली फारसी पढ़ाने लगे। कुछ ही समय बाद गदर की चिंगारियां काशी में भी आ गईं। 31 मई, 1857 को बनारस की छावनी में आग लगा दी गई।

कमिश्नर गबिंस ने फिर से द्वार खटखटाया—''मैं आपको प्रौपर थैंक्स नहीं दे पाया, तहे दिल से शुक्रिया।''

गदर दबा दिया गया। देसी संघर्ष असफल हुए। मौन अंतःसंघर्ष बढ़ गया। बालक हरिश्चंद्र भी मौन रहने लगे। उनके मन में विमाता के दुर्व्यवहार के कारण अंतसंघर्ष था। रईस पिता गोपालचंद्र अपनी काव्य गोष्ठियों और भंगसेवी मित्रों की मंडली में मगन रहते थे।

अंग्रेजों को अपने खजाने की चिंता थी। उन्होंने गोपालचंद्र को आर्म्स एक्ट के अंतर्गत अड़तालीस हथियारों का लाइसेंस दिया। अंग्रेज चाहते थे कि गोपालचंद्र काशी में अपने सामाजिक संबंधों को भी मजबूत बनाए रखें। उन्हीं के निर्देश पर गोपालचंद्र ने अपनी हवेली में एक बड़ी कवि सभा बुलवाई, जिसमें हरिश्चंद्र ने अपने पिता की एक कविता का नया अर्थ करके सभी को

चकित कर दिया। सरदार कवि ने बालक हरिश्चंद्र को चांदी की एक डिबिया पुरस्कार स्वरूप भेंट की।

हरिश्चंद्र उत्साह से भरे हुए अपना पुरस्कार दिखाने विमाता के पास आए। विमाता की बेरुखी ने नन्हें कवि हृदय को गहरा आघात पहुंचाया। नौकर गंगू की सहानुभूति बालक हरिश्चंद्र के साथ थी। बालक हरिश्चंद्र ने रोते हुए गंगू से कहा—''हम ननिहाल जाएंगे''।

ननिहाल में उनका बहुत मन लगता था। नानी नन्हीं देवी राय और नाना खिरोधर लाल बालक हरिश्चंद्र को न केवल प्यार करते थे बल्कि उनकी बुद्धिमता से चमत्कृत भी रहते थे।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के साथ बालक हरिश्चंद्र को फिटन (बग्गी) में घूमने का अवसर मिलता था। राजा शिवप्रसाद उन्हें कविता का मर्म समझाते थे।

हरिश्चंद्र जब दस वर्ष के हुए तो यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। समारोह के एक रात पहले वे अपने प्रिय सेवक गंगू के साथ टोपी खरीदने दाल मंडी गए। यहीं पहली बार उन्होंने जाना कि समाज में ऐसी औरतें भी हैं, जो नाच और गा कर दूसरों का मनोरंजन करती हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार के समारोह की तैयारियां व्यापक स्तर पर चल रही थीं। यज्ञोपवीत होने से पहले हरिश्चंद्र का मुंडन हुआ। उस समय बाबू गोपालचंद्र अपने मित्रों के साथ विजया (भंग) सेवन में व्यस्त थे। यज्ञोपवीत संस्कार के समय तक वे अत्यधिक मात्रा में ठंडाई पी गए और इस योग्य भी न रहे कि विधिवत जनेऊ पहना सकें। पूरी हवेली में रुदन और कोहराम मचा था लेकिन हरिश्चंद्र को रोना नहीं आया। स्तब्ध मानसिकता में उन्होंने ऐसा किया जैसा शायद ही कोई करे। वे अपने सेवक गंगू को छत पर ले गए और उससे कजरी सुनाने को कहा। सुनाते-सुनाते जब गंगू रोने लगा तो वे चुपचाप उठ कर पिता के सूने अध्ययन कक्ष में चले गए और वहां फफक-फफक कर रो पड़े।

पिता का साया उठ गया। अब हरिश्चंद्र घर में सबसे बड़े थे। लेकिन उनके बड़प्पन पर विमाता के पहरे थे। विमाता तीर्थ यात्रा करने में रुचि रखती थीं। यात्रा करना हरिश्चंद्र को भी अच्छा लगता था। लेकिन विमाता के व्यवहार के कारण रूठना और भाई बहनों द्वारा मनाए जाने का सिलसिला चलता रहता था। हरिश्चंद्र ने पूरा ध्यान भाषा ज्ञान पर लगा दिया। अचानक जगन्नाथ यात्रा का कार्यक्रम बना।

यह सोचकर कि विमाता का व्यवहार अच्छा नहीं है, एक शुभचिंतक ने हरिश्चंद्र को चुपचाप दो अशर्फियां दे दीं। ये अशर्फिया ही गजब ढा गईं। इन्होंने हरिश्चंद्र को विमाता के प्रति विद्रोही बना दिया। यात्रा के दौरान विमाता से किसी बात पर तकरार हुई और अकेले ही वहां से भाग लिए। रेलवे स्टेशन पहुंच गए। भाई गोकुलचंद्र इन्हें लेने स्टेशन पहुंचे और भातृ प्रेम के कारण वे रुक गए।

हरिश्चंद्र को अपनी मित्र मंडली के साथ कुछ न कुछ अजूबा करने में आनंद आता था। बुढ़वा मंगल के मेले में कलकत्ता से आई चंद्रज्योति पर इन्होंने लाला बैनी प्रसाद से चार रुपए की बुकनी उधार मंगवा कर छुड़वा दी और काशीवासियों को प्रसन्न किया। बुकनी के चार रुपए देने से विमाता ने इनकार कर दिया। यहीं से उन्हें कर्ज लेने की आदत पड़ गई। उन्होंने किसी परिचित से उधार मंगवा कर कर्ज चुकाया। ऐसी कोई बात होती थी तो भोजन छोड़ देते थे या नाना के घर शिवाला चले जाते थे। ननिहाल में राय खिरोधर लालजी ने इनका रिश्ता लाला गुलाबराय की कन्या मन्नो देवी से कर दिया। हरिश्चंद्र ने विवाह के लिए स्वीकृति इस कारण दे दी क्योंकि उन्हें बताया गया कि विवाह के बाद वे बालिग माने जाएंगे और व्यवसाय-संपत्ति के मामले में उनका आदेश माना जाएगा।

इस कम उम्र में ही उन्होंने चार नए रसों—आनंद, सख्य, भक्ति और वात्स्ल्य की परिकल्पना से अपने गुरु पं. लोकनाथ को चमत्कृत कर दिया।

उनकी नई-नई छोटी सी पत्नी उनके मानसिक स्तर की बराबरी भला कैसे कर सकती थी। प्रारंभ से ही उनका मन पत्नी में नहीं रमा।

वे क्वींज कॉलेज में पढ़ने जाने लगे थे, लेकिन यह देख कर कि वहां छात्रों से ज्यादा फीस ली जाती है, उन्होंने अपने घर में ही स्कूल खोल लिया। प्रारंभ में सिर्फ पांच विद्यार्थी आए। विमाता अब उन्हें रोक नहीं पाई।

घर में जो स्कूल खोला, उसमें धीरे-धीरे संख्या तीस हो गई। अनुज गोकुलचंद्र सहायता करते थे।

हरिश्चंद्र के जीवन गति में स्वच्छंद प्रवृत्ति बढ़ती गई। विमाता ने गोकुलचंद्र को अपनी ओर कर लिया। दोनों इनकी सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को नापसंद करने लगे। हरिश्चंद्र ने न तो इनकी ओर ध्यान दिया, न व्यापार की ओर। लेखन अपना उद्देश्य बना लिया। गद्य लिखा और गद्य लेखन पर जोर दिया। यात्राएं कीं।

सहकर्मियों की आर्थिक सहायता की। तरह-तरह के शौक पाले। कभी भाई गोकुलचंद्र ने टोका तो कह दिया तुम व्यापार संभालो, हमें विद्या प्रचार और संस्कृति कर्म के लिए छोड़ दो।

छोटे भाई गोकुलचंद्र उनके आगे कुछ बोल नहीं पाते थे। लेकिन मन ही मन उनकी फिजूलखर्ची और स्वेच्छाचारिता के विरोधी थे।

विमाता ने इनकी किशोरी पत्नी को बहला-फुसला कर कलहशीला बना दिया।

भरतपुर के राजा देवशरण सिंह से फोटोग्राफी सीखी। राजा ने पश्मीना का कीमती दुशाला दिया।

हरिश्चंद्र की स्वच्छंदता आकाश के पक्षियों जैसी हो गई। धन नदी के पानी सा बहने लगा। लेकिन जैसे नदी परहित के लिए बहती है, उसी प्रकार बाबू हरिश्चंद्र का धन दूसरों की भलाई में लगता था। हां, कुछ रईसी

ठाठ भी थे, जिन्हें विमाता की वर्जनाओं की प्रतिक्रिया माना जा सकता है।

गंगू और दूसरे नौकर हरिश्चंद्र को स्नान कराते थे। बाल्टियों में इत्र की शीशियां उंड़ेल दी जाती थीं। नालियों से बहता पानी दूसरी नालियों तक पहुंचता था तो लोग समझ जाते थे कि बाबू हरिश्चंद्र का स्नान चल रहा है।

हर दिन के अनुसार कार्यालय के परदे बदलते थे। स्टेशनरी का रंग बदलता था। सोम को श्वेत तो मंगल को लाल। कबूतरबाजी और पतंगबाजी तो चलती ही थी।

भाई गोकुलचंद्र जो कभी हरिश्चंद्र के आगे नहीं बोलते थे, एक दिन बोल उठे तो हरिश्चंद्र को बहुत बुरा लगा। विमाता और पत्नी ने गोकुल का पक्ष लिया।

हरिश्चंद्र का रंग-ढंग नहीं बदला। ताश-चौपड़, साहित्यिक चर्चाएं, लेखन और सांस्कृतिक गतिविधियां चलती रहीं।

गोकुल की शिकायत पर काशी नरेश ने हरिश्चंद्र को रामनगर महल में बुलाया। बग्गी पर हरिश्चंद्र घाट तक गए। घाट से नाव द्वारा दूसरी पार बने रामनगर महल में। काशी नरेश ताश खेल रहे थे। हरिश्चंद्र ने अपने बनाए हुए ताश दिए जिन पर पान, ईंट, चिड़ी और हुकुम के स्थान पर शंख, चक्र, गदा, पद्म बने थे और बादशाह, बेगम और गुलाम के स्थान पर ब्रह्म, शक्ति और जीव। नरेश ने धन के अपव्यय पर टिप्पणी की तो उन्होंने उत्तर दिया—''यह धन मेरे पूर्वजों को खा गया, अब मैं इसे खा रहा हूं।''

काशी में ड्यूक ऑफ एडिनबरा का आगमन हुआ तो हरिश्चंद्र को उनका गाइड बनाया गया। पंडित सभा के आयोजन में प्रशस्ति पाठ किया, लेकिन वह प्रसिद्ध कविता भी लिखी—''अंग्रेज राज सुख साज सबै विध भारी, पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।''

अंग्रेजों से हरिश्चंद्र के संबंध मधुर होते चले गए क्योंकि अंग्रेज अभी उनकी ऊपरी राजभक्ति और उनका व्यंग्य नहीं समझ पाते थे।

वे म्युनिसिपल कमिश्नर बनाए गए। 20 वर्ष की छोटी आयु में ही आनरेरी मजिस्ट्रेट पद पर नियुक्ति हुई।

स्कूल को पुनः अपने घर में ले आए और धन लुटाना जारी रहा।

जाड़े की रात। कवि मित्र को ठंड लग रही थी। गंगू से अंगीठी में जलाने के लिए लकड़ियां मंगवाई। देर हुई तो नोटों को जला कर अंगीठी सुलगाई। कवि हैरान। नौकर आया तो नौकर हैरान। नौकर ने मना किया। उत्तर मिला—''आखिर इतना धन कैसे खत्म होगा। और हम यह भी देख रहे हैं कि लक्ष्मी से कितनी दुर्गंध आती है।'' उन दिनों सौ के नोट में चमड़े की झिल्ली होती थी।

सरदार कवि, सेवक कवि, दीन दयाल गिरि, मन्ना लाल द्विज और अंबिका दत्त व्यास आदि के साथ मिलकर 'कविता वर्द्धिनी सभा' की स्थापना की। रात्रि में कटोरा बाग में समस्या पूर्ति सभा का दिलचस्प आयोजन किया।

'लेवी प्रान लेवी' निबंध लिखा जिसके कारण आनरेरी मजिस्ट्रेटशिप से त्याग पत्र देना पड़ा। अंग्रेजों ने इनकी पत्रिका की खरीद बंद कर दी। प्रेस संकट में आ गया।

बाल विधवा मल्लिका, जो स्वयं कवयित्री भी थी, मिलने आई। परिचय बढ़ा, मुलाकातें बढ़ी। मल्लिका का उपनाम चंद्रिका रख दिया।

अबोध पत्नी को सब कुछ बता दिया। उसने उदासीनता से सब कुछ सह लिया, यह सोच कर कि इस पुरुष प्रधान समाज में सभी ऐसे होते हैं।

पत्नी की उदासीनता के रहते मल्लिका के प्रति प्रेम अंकुराने लगा। उससे बांग्ला सीखने लगे।

मल्लिका के साथ साहित्यिक चर्चाओं में सरसता आने लगी। बैठक में चाटुकारों की संख्या भी बढ़ गई। यात्राएं भी खूब हुई।

साहित्यिक मित्रों के साथ 'हरिश्चंद्र मैगजीन' की प्रकाशन योजना पर चर्चा। ग्राहक बनाने के लिए बाजार में घूमे, क्योंकि मालूम था, सरकारी खरीद तो होगी नहीं। बाजार में एक धनाढ्य को चंदा मांगते देख सभी को हैरानी हुई। प्रतिक्रिया मिली—''दाम ले लीजिए, अखबार चाहे भेजिए, चाहे न भेजिए।''

मल्लिका की सहमति से 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के प्रकाशन की घोषणा।

मल्लिका प्रसंग पर इनकी विमाता ने इनकी पत्नी के कान भरे। कलह हुई। इन्होंने समझाया कि केशवचंद्र सेन ने आंदोलन चलाया है बाल-विधवाओं के उद्धार का। विमाता ने कहा कि उन्होंने तो वेश्या उद्धार के लिए भी कहा है। हरिश्चंद्र ने उत्तर दिया—''वह भी करेंगे।''

भाषा समस्या पर गुरु शिवप्रसाद सितारेहिंद से लंबी वार्ता हुई। हरिश्चंद्र ठेठ हिंदी पर बल दे रहे थे। शिवप्रसाद नाराज हो गए।

मुसाहिबों के बीच झूठी प्रशंसाएं समझते हुए भी सुन रहे थे। किसी ने दाल मंडी की वेश्याओं का वर्णन किया। वे मुजरा सुनने चल दिए। आलीजान नाम की एक प्रसिद्ध गाने वाली का मुजरा सुना। सब को विदा कर दिया और रातभर उसकी करुण गाथा सुनते रहे। आलीजान का मूल नाम माधवी था।

'बालबोधिनी' पत्रिका निकाली। 'पेनी रीडिंग क्लब' की स्थापना की।

शिवप्रसाद सितारेहिंद को 'राजा' का खिताब मिला। नाराजगी के बावजूद उनके सम्मान में उत्सव किया। उत्सव में मल्लिका को बुलाया। मल्लिका नहीं आई। कहला दिया—''उन्हें तो समाज भय नहीं है, पर मुझे तो उनकी चिंता है।''

'पेनी रीडिंग क्लब' के लिए 'चूसा पैगंबर' नामक व्यंग्य की रचना लिखी और स्वयं उसका नाटकीय सार्वजनिक प्रदर्शन किया।

हिंदी के प्रचार-प्रसार और नवजागरण के लिए तरह-तरह से प्रयत्नशील थे। शिक्षा

विभाग की खरीद रुक जाने के कारण 'बाल बोधिनी' कुछ ही समय बाद बंद हो गई। अब उन्होंने 'हिंदी पंच' की योजना बनाई। 'काशी' पत्रिका के संरक्षक बनाए गए।

विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी हो गईं। प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत आगमन हुआ तो 'राजकुमार शुभागमन' रचना लिखी लेकिन उनकी असली रचनाएं तो 'बकरी विलाप' या 'विषस्य विषमौषधम्' जैसे व्यंग्य नाटक थे या फिर 'प्रेम सरोवर', 'प्रातसमीरन', 'प्रेम जोगिनी' या 'सत्य हरिश्चंद्र' जैसी साहित्यिक रचनाएं थीं।

मित्रों के बीच यात्रा-वर्णन इतने सरस ढंग से करते थे कि सुनने वाले मंत्रमुग्ध रह जाएं।

माधवी (आलीजान) का 'शुद्धीकरण' आयोजित किया। उसके परिवार वालों को बुलाया। खर्चा बांध दिया।

काशीवासियों को 'अप्रैल फूल' बनाया। संगीत सभा के नाम पर और यह प्रचार करके कि एक विलायती मेम खड़ाऊं पहन कर गंगा पैदल पार करेंगी।

लार्ड लिटन वायसराय से भेंट की। शिक्षा पर वार्ता हुई।

इलाहाबाद हिंदी वर्द्धिनी सभा में हिंदी की उन्नति पर पद्यबंद व्याख्यान दिया—''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।''

भतीजे कृष्ण का जन्म हुआ तो दो हजार रुपए का तोड़ा बांटा, साथ ही विवाह कार्यक्रमों में अपव्यय रोकने के लिए सभा की।

काशी के खाऊ पंडितों को दावत के नाम पर अपने बजरे में पूरे दिन भूखा रखा। बाद में शानदार भोजन कराया, इस हिदायत के साथ कि वे दूरदराज से आए अपने जिजमानों को काशी में भूखा न मारा करें।

जिसने बचपन में दो अशर्फियां दी थीं, उसे मूल और सूद के बदले एक मकान दे दिया।

मल्लिका के जीवन-निर्वाह का दायित्व अपने ऊपर लिया। कर्ज लेना भी बढ़ गया।

जनता ने 'भारतेंदु' की पदवी दी। जिस ज्योतिषी ने घोषणा की थी कि बहुत ऊंचा खिताब पाएगा, आया, पौत्री के विवाह के लिए धन-याचना की और अंगूठी पा गया।

विमाता की मृत्यु।

नाटक लेखन में स्वयं को झोंक दिया। दिन-दिन भर लिखते, रात-रात भर लिखते। न भोजन की सुध, न शरीर की।

बाबू बलेश्वरदास के साथ पुत्री विद्यावती का विवाह किया। विवाह में गाली गाने पर रोक लगा दी।

काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ धाम की यात्रा की।

लार्ड रिपन वायसराय बने।

नाट्य मंडली का निर्देशक 'नील देवी' के मंचन के लिए बातचीत करने आया। बातों ही बातों में 'अंधेर नगरी' नाटक की प्रस्तावना बन गई। लेकिन निर्देशक को नाटक अगले ही दिन से प्रारंभ करना था। भारतेंदु ने एक ही रात में लिख डाला—'अंधेर नगरी'। लिखने के बाद किसी श्रोता की तलब लगी। बहुत-सुबह अपने दो वर्षीय भतीजे कृष्ण को जगा कर उठा लाए और अपने एकांत अध्ययन कक्ष में उसे 'अंधेर नगरी' के गीत नाच कर, गा कर सुनाने लगे। कृष्ण हंसते-हंसते लोटपोट हो गया।

'अंधेर नगरी' नाटक के रिहर्सल शुरू हुए। दिनभर नाटक रिहर्सल में लगे रहते। रात में लिखते। कई गरीब अभिनेताओं की मदद की। अपने निर्देशन में दर्जी से कॉस्ट्यूम सिलवाए।

अधिक श्रम के कारण बीमार पड़ गए। बीमारी के प्रारंभिक दिनों में मल्लिका के पास जाते रहे। मल्लिका ने 'अंधेर नगरी' का बांग्ला में अनुवाद किया।

'रिपनाष्टक' लिख कर वायसराय लार्ड रिपन को भेजा।

खांसी का दौरा उठा। गंगू ने जब वैद्यजी को बुलाने की जिद की तो बोले—''हम ही चलते हैं वैद्यजी के पास।'' बग्गी में बैठते ही कोचवान से बोले—''दाल मंडी ले चलो, माधवी की तरफ।''

गंगू बेचारा क्या करता।

काशी नरेश और कमिश्नर से लेकर गली का आम आदमी तक उनका मित्र था।

वे सामंती परिवेश में पले थे पर उसकी सीमाओं को तोड़ रहे थे। दरबार जुटाकर भी वे दरबारी मानसिकता से ऊपर थे।

1882 में उन्होंने उदयपुर, नाथद्वारा और चित्तौड़ की यात्राएं की। यात्राओं में भी खबू मित्र बनाए।

मेवाड़ दरबार में काव्य सभा हुई। मेवाड़ नरेश सज्जन सिंह ने समस्या पूर्ति के लिए पंक्ति दी—'अशोक की छांह सखी प्रिय देख्यौ।' इनकी रचना नरेश ने सराही।

यात्रा भर बीमार रहे। कई रातों में उन्होंने एक पत्र पूरा किया, भाई गोकुलचंद्र के नाम—'हमारे बाद मल्लिका का ध्यान रखना, उसे हमने धर्मपूर्वक अपनाया है।'

लौटने पर मल्लिका से मिलन।

महारानी विक्टोरिया पर गोली का वार हुआ। बच जाने की प्रसन्नता में उत्सव आयोजित किया।

बीमारी में अपनी प्रेयसी मल्लिका के लिए 'फूलों का गुच्छा' नामक लावनी लिखी—'नहीं का बाकी वक्त नहीं है जरा न जी में शरमाओ, लब पर जां है, भला तो प्यारे मिलते जाओ।'

खांसी और ज्वर के साथ हैजा भी हो गया। मल्लिका और माधवी सारी मर्यादाएं तोड़कर हवेली में उनसे मिलने आ गई। दासी ने उन्हें भारतेंदु के कक्ष में नहीं जाने दिया—'माता साहिब का हुकुम नहीं है।'

दोनों ने रो रोकर अनुरोध किया पर नहीं जाने दिया गया। 'फूलों का गुच्छा' कविता पढ़कर मल्लिका सचमुच के फूलों का गुच्छा लेकर आई थी। उस फूलों के गुच्छे को भी अंदर नहीं भेजा जा रहा था। भारतेंदु के तीन वर्षीय भतीजे कृष्ण ने फूलों का गुच्छा ले लिया और कहा—'मैं ताऊजी को दे दूंगा।'

बालक को कोई नहीं रोक पाया।

भले ही बीमार थे पर प्रेस का पहिया पूरी गति से घूम रहा था। रचनाएं छप रही थीं।

उन्होंने मोहन पंड्या से अपनी पत्रिका 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' वापस ले ली, जिसका नाम पंड्या ने 'हरिश्चंद्र मोहन' रख दिया था। अब पत्रिका का नया नाम हो गया—'नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका'।

बीमार हालत में प्रेस में रहे। काष्ठ के मोटे टाइप अपनी देखरेख में बनवाए।

पं. बापूदेव शास्त्री नया पत्र छपवाना चाहते थे। उसके औचित्य पर चर्चाएं हुईं। भारतेंदु ने प्रोत्साहित किया।

कलकत्ता प्रदर्शनी के लिए अपना अमूल्य संग्रह भेज दिया, जिसमें रजवाड़ों के मोनोग्राम, सिक्के, मुहरें, दस्तकारी और ताड़पत्र पर लिखी प्राचीन पुस्तकें थीं।

माधवी ने इनकी रचनाएं इन्हें गा कर सुनाईं।

बलिया मेले में हॉकर परचा बांट रहा था—''शाइरे मारूफ, बुलबुले हिंदोस्तान भारतेंदु हरिश्चंद्र बलिया मेले में आ रहे हैं।''

गंगू की तीमारदारी में बलिया पहुंचे। वहां इनके दो नाटकों का मंचन हुआ। जनता को जब पता चला कि भारतेंदु वहीं हैं तो गगनभेदी जयजयकार हुआ। कोई उन्हें छूकर देखता, कोई पैरों में लोटता, कोई आशीष लेता। भावावेग में कई के नेत्र गीले हो गए।

बलिया मेले में हिंदी के पक्ष में भावोत्तेजक भाषण दिया और बताया कि अपनी भाषा की उन्नति में ही देश की उन्नति है।

संसार में कुछ भी चिरस्थाई नहीं है। मौसम जब अपने तेवर बदला करता है, कुछ बिखर जाते हैं, कुछ गल जाते हैं, कुछ बह जाते हैं लेकिन कुछ ऐसे भी होते हैं जो वर्षा, हिम, आंधी हंसते-हंसते सह जाते हैं। उनसे भी ऊपर कुछ ऐसी विभूतियां होती हैं, जिनके इशारे पर मौसम बदला करते हैं—ऐसे थे भारतेंदु हरिश्चंद्र। पूरे हिंदी जगत में नवजागरण का मौसम लाने वाले।

अपनी हर सांस का वे रचनात्मक इस्तेमाल कर रहे थे। कुरान का अनुवाद कर डाला। अन्य अनेक पुस्तकें रचीं।

अब आकर रोग की पहचान हुई कि क्षय रोग है, जिसका कोई इलाज नहीं था।

'डॅयूक ऑफ अलबेनी' की मृत्यु पर शोक सभा आयोजित की। किसी मित्र से मजाक-मजाक में कहा—''हमारी शोक सभा के लिए भी भाषण तैयार कर लीजिए।''

कर्जदाताओं से मुक्ति। एक कर्जदाता को चांदी का लोटा दिया। अंतिम कर्जदाता को अंतिम बची अंगूठी। बहुत सस्ते दामों में पांडुलिपियां बेच कर पैसे मल्लिका को भिजवाए। भारतेंदु ने अपनी सभी पुस्तकों को रायल्टी के बंधन से मुक्त कर दिया।

मल्लिका और माधवी से मिले और कहा—''पैंतीस वर्ष तो जी लिया, शायद अंतिम बार मिल रहा हूं।'' उन्होंने अपनी अंतिम चार आकांक्षाएं बताईं—एक—ठाकुर का षड्ऋतु मनोरथ, दो—विलायत फ्रांस और अमेरिका यात्रा, तीन—हिंदी यूनिवर्सिटी की स्थापना और चार—शिल्प कला का कॉलेज।

जनवरी, 1885 का प्रथम सप्ताह भारी गुजरा। भारतेंदु मृत्यु से संघर्ष करते रहे। बाद में उन्होंने किसी से भी मिलना बंद कर दिया। पांच वर्षीय भतीजे कृष्ण को बुलाया और कहा—''अपने सबसे सुंदर वस्त्र पहन कर आओ।'' कृष्ण वस्त्र पहन कर आया। उन्होंने कहा—''और भी सुंदर वस्त्र पहन कर आओ।'' एक प्रकाशक कुछ रुपए दे गया था, जो तकिए के नीचे रखे थे। उन्होंने गंगू को बुला कर कहा कि वह इन रुपयों से कृष्ण के लिए जरी के वस्त्र खरीद कर लाए और पहनाए। एकदम नए जरी के वस्त्र पहन कर जब कृष्ण अपने ताऊ जी के पास आया तो वे मुस्कुरा दिए। उसे गोदी में बिठाया, उसका मस्तक चूमा और भरे कंठ से कहा—''जाओ, खेलो।'' कृष्ण गोदी से उतरा। बाहर चला। वे उसे मुस्कुरा कर निहारते रह गए और उसके बाद कुछ बोले नहीं। सदा के लिए मौन हो गए।

''बिना प्रान प्यारे, भए दरस तिहारे हाय, देख लीजौ आंखें ये खुली ही रह जाएंगी। प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रह जाएगी।''

हिंदी भाषा के युग-प्रवर्तक 'भारतेंदु हरिश्चंद्र'

डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल

हिंदी भाषा के आधुनिक काल का आरंभ भारतेंदु युग के नाम से पहचाना जाता है। साहित्य में आने वाले सारे परिवर्तन समाज में होने वाली गतिविधियों से नाता रखते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। यह वह काल था, जब विश्व की धर्मांधता की गहरी धुंध विज्ञान की किरणों से छटने लगी थी और भारत में स्वतंत्रता का प्रथम बिगुल बज उठा था। फलतः ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन मृत्यु को प्राप्त हो गया व विलायत से महारानी का सीधा राज ब्रिटेन की तरह भारत में होने लगा। रेल व्यवस्था, डाक सुविधाएं, नई शिक्षा का प्रादुर्भाव, नवीनता की चमक-धमक आदि से भारतवासियों में खुशी का माहौल पैदा होने लगा। हौले-हौले देश का कच्चा माल अंग्रेजों की रेले और वायुयान विलायत ले जाने लगे। देशी कल-कारखाने जो जनता का गुजारा करते थे बंद होते गए। अपनी ही धरती से गया माल इंग्लैंड से संवर कर कई गुना अधिक मूल्य में भारत में अपनों को ही खरीदना पड़ा। देशवासियों को उस नयेपन की कीमत चुकानी पड़ी। नई शिक्षा के बहाने गोरे पादरी भारतीयों को ईसाई बनाने लगे। कुटीर उद्योग धंधे चौपट होते गए। इन सभी कारणों से भारत का आम आदमी जागृत होने लगा। आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक स्वरूप की विकृतियां प्रतिभा जगत के चिंतन का कारण बनने लगी। फलतः साहित्य में सभी तरह की समसामयिक विरूपताएं प्रतिबिंबित होती चली गईं। भारतीय साहित्य के आधुनिक काल के शुरूआती दिन थे, वे। भारतेंदु हरिश्चंद्र की लेखनी को चुनौती देने लगा था वह समय।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य पर जो परिस्थितियां प्रभाव डाल सकती थीं, वे उनके वर्तमान एवं आसन्नभूत की गतिविधियां थीं। इनका जिक्र किए बिना भारतेंदु को समझना दूभर होगा। बंगाल में समाज सुधारक एवं प्रखर विचारक राजा राममोहनराय का 'ब्रह्मसमाज' जो उस समय की कुप्रथाओं की प्रतिक्रियाओं का प्रतिफलन था, भारत को सकारात्मक क्रांति की ओर अग्रसर कर रहा था। इसी प्रकार हिंदी धर्म की रूढियों व मान्यताओं को नई दिशा देने वाला 'आर्य समाज' स्वामी दयानंद सरस्वती की साधना का फल था। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद की धर्म व दर्शन पर व्याख्याएं व प्रवचन प्राचीन वैज्ञानिक धर्म की ओर विशेष प्रयास था। इस प्रयास ने पाश्चात्य सभ्यता के प्रलोभन पर अंकुश लगाया। सबसे अधिक प्रभाव डालने वाली घटना थी स्वराज आंदोलन। यदि तिथियों का क्रम देखा जाए तो ब्रह्म समाज की स्थापना 1828 में और आर्य समाज की शुरूआत 1857 से हुई। रामकृष्ण परमहंस का जीवनकाल 1834 से 1902 तक रहा। स्वराज आंदोलन या प्रथम स्वतंत्रता संग्राम या अंग्रेजों की भाषा में गदर का वर्ष 1857 था। उन्होंने ब्रह्म समाज को समझा परखा। आर्य समाज उनके सामने ही आरंभ हुआ। रामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानंद उनके जीवनकाल के महा विश्लेषक थे। 1857 के गदर के समय वे सात साल के हो गए थे। उनकी बुद्धिलब्धि इतनी ऊंची थी कि वे ग्यारह साल की आयु से ही रचनाएं करने लगे थे। इसलिए समझा जा सकता है कि स्वराज आंदोलन को उन्होंने परिपक्व इनसान की तरह हृदयंगम किया होगा।

आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म सन् 1850 में काशी के वैश्य परिवार गोपालराम, गिरधरदास के घर में हुआ था। उनके पिता को गोपालचंद (गिरधर दास) भी कहा जाता रहा। वे अपने समय के प्रसिद्ध कवि और भक्त थे। अतः पिता के संस्कार पुत्र में उतर आए। उन्होंने भाषाओं तथा पौराणिक ग्रंथों की शिक्षा घर में प्राप्त की। ग्यारह वर्ष की आयु से वे तत्कालीन सधी हुई रचनाएं करने लगे थे। पंद्रह साल की आयु में वे अपने परिवार के साथ जगन्नाथ के दर्शनार्थ गए, इस यात्रा में उनको बंगाल के नए साहित्यिक विकास का ज्ञान प्राप्त हुआ। बंगाली भाषा के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं पौराणिक नाटक तथा उपन्यास पढ़कर उन्होंने पाया कि हिंदी में ऐसी रचनाएं नहीं हैं। 1868 में बंगाली नाटक 'विद्यासुंदर' का हिंदी में अनुवाद करके प्रकाशित किया। इसके माध्यम से वे हिंदी गद्य को सुडौल रूप दे गए। हिंदी गद्य को अधिक संपन्न करने के प्रयास में इसी समय उन्होंने 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका निकाली। भले ही इस पत्रिका में समय की पुकार को सुनते हुए पुराने कवियों की रचनाएं छपा करती थीं लेकिन धीरे-धीरे उसमें गद्य लेख आरंभ हो गए। सन् 1873 में 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' निकालकर उन्होंने अनेक लेखकों को जगह दी। इस पत्रिका का आगे चलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नामकरण कर दिया गया। यह वह पत्रिका थी जिसमें हिंदी गद्य का मंजा हुआ रूप देखने को मिला। इस सुधरी हुई भाषा को हरिश्चंद्री हिंदी कहा जाने लगा। उन्होंने स्वयं अपनी पुस्तक 'कालचक्र' में टिप्पणी की कि हिंदी नई चाल में ढली। पंडित बद्रीनारायण चौधरी उनके संपादन दक्षता की अति प्रशंसा किया करते थे। वे उनकी 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' पत्रिका के लिए लेख एवं टिप्पणियां तैयार करते थे। ज्ञातव्य है कि उस समय गद्य लेखकों

का अकाल था तो भी जितने रचनाकार थे वे परिष्कृत भाषा में लिखते थे। पत्रिका में प्रकाशित 'पांचवे पैगंबर' मुंशी ज्वालाप्रसाद का 'कलिराम की सभा' बाबू तोताराम का 'अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न', बाबू कार्तिक प्रसाद का 'रेल का विकट खेल' पाठक लंबे समय तक पढ़ते गए। यह भारतेंदु की विशेषता थी कि वे साहित्य प्रेमियों के लिए चित्ताकर्षक रचनाओं को प्रस्तुत करते थे। उनका ध्यान स्त्री-शिक्षा की ओर भी केंद्रित रहा। इस हेतु उन्होंने 'बाल बोधिनी' पत्रिका निकाली। जिसका आरंभ 1874 में हुआ लेकिन इससे एक साल पहले वे अपना मौलिक नाटक, 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' को लिख चुके थे, जो कि प्रहसन था। धर्म और उपासना के नाम पर अनाचार करने वाले लोगों पर कठोर प्रहार था यह प्रहसन। यह व्यंग्य था, चाटुकारिता पसंद कुलीन व्यक्तियों पर। इसके माध्यम से उन्होंने राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद को निशाना बताया। फलतः हरिश्चंद्र जी को शासक वर्ग व कुलीन वर्ग का कोप भाजन बनना पड़ा। स्वदेश हितचिंतक भारतेंदु जी ने इसकी परवाह नहीं की। उन्होंने तथा कथित कुलीन रचनाकारों की अपेक्षा निष्पक्ष रूप से अपना मत प्रकट किया। अपनी पुस्तक 'नाटक' में वे निर्भीकता से कह गए कि उनसे पहले मौलिक रूप में दो ही नाटक लिखे गए पहला महाराज शिवनारायण सिंह का 'आनंद रघुनंदन' और बाबू गोपालचंद्र का 'नहुष'। ये दोनों नाटक ब्रजभाषा में थे। भारतेंदु जी के मौलिक नाटक थे, 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति', चंद्रावली', 'विषस्य विषमौषधम', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी', 'प्रेमयोगिनी', 'सती प्रताप'। अंतिम नाटक सती प्रताप अधूरा छूट गया। वे रचनाएं जिन्हें उन्होंने अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया वे हैं, 'विद्यासुंदर', 'पांखड विडंबन', 'धनंजय विजय', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्राराक्षस', 'सत्य हरिश्चंद्र' एवं 'भारत जननी'। इनमें 'सत्य हरिश्चंद्र' को हरिश्चंद्र की मौलिक रचना मानी गई है लेकिन कुछ तथ्य इसे बंगला नाटक का अनुवाद सिद्ध करते हैं। बंग भाषा का इसे 'भारत जननी' नाम देकर अपना मूल सा बना दिया था। अपने मूल नाटकों की विषय सामग्री जीवन के सत्य क्षेत्रों से लेकर उन्होंने जमाने को चौंका दिया था। 'चंद्रावली' तत्कालीन प्रेम का दस्तावेज है। 'नीलदेवी' पंजाब के हिंदू राजा पर मुसलमानों के आक्रमण की ऐतिहासिक गवाही है। 'भारत दुर्दशा' भारत की राष्ट्रीय दशा के ऊपर मनोरंजन का रूप है। 'विषस्य विषमौषधम' देशी रजवाड़ों के षड्‌यंत्रों की हालत बयां करता है। 'प्रेमजोगनी' ने तत्कालीन धार्मिक पाखंड और सामाजिक विकृतियों को बांचा है। गद्य साहित्य में उन्होंने अपना रुख इतिहास रचना की ओर किया। 'काश्मीर कुसुम' और 'बादशाह दर्पण' उनके द्वारा अतीत का चित्रण करती भूतकाल की साक्षी रचनाएं है, जो गुजरे समय का चलचित्र समझी गई। जैसे ही वे उपन्यास विधा की ओर मुड़े वैसे ही उनका जीवन पूरा हो गया।

आलोचना की दृष्टि से विद्वानों ने भारतेंदु के गद्य साहित्य में दो शैलियां देखी हैं। उनकी भावात्मक शैली में छोटे-छोटे वाक्य पढ़ने को मिलते हैं। 'चंद्रावली नाटिका' का एक कथन उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है, ''...किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था? कुछ नहोता, तुम्हीं तुम रहते, बस चैन था, केवल आनंद था। फिर क्यों वह विषमय संसार?...'' 'तथ्य निरूपण' शैली या वस्तुवर्णन कला में बड़े वाक्य तथा संस्कृत पदावली की अधिकता देखने में मिलती है। 'नील देवी' का एक कथन देखिए ''...जब मुझे अंगरेजी रमणी लोग मेदसिंचित केशराशि, कृत्रिम कुंतल जूट, मिथ्या रत्नाभरण, विविध वर्ण-वसन से भूषित, क्षीण कटिदेश कसे, निज-निज पतिगण के साथ प्रसन्नवदन इधर से उधर फर-फर की पुतली की भांति फिरती हुई दिखाई पड़ती हैं, तब इस देश की सीधी-सादी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और वही बात मेरे दुख का कारण होती है।''

कहा जाता है कि 'नीलदेवी' का यह कथन भारतेंदु की आम भाषा नहीं थी। ऐसे वाक्य यदाकदा देखने को मिलते हैं। वस्तु-चित्रण की उनकी आम भाषा 'प्रेमयोगिनी' के इस कथन से समझी जा सकती है, ''...तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हें इनकी निंदा से क्या? इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो? स्मरण रखो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोकबहिष्कृत होकर इनके सिर पर पैर रख करके विद्वार करेंगे।''

उन्होंने बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से और अपनी मेधा को सजग कर के भावात्मक शैली और तथ्य निरूपण शैली अपनाई। इन शैलियों में वाक्य प्रयोगों और शब्द सामंजस्यों को देखकर हिंदी के आधुनिक युग को उसके नाम की प्रामाणिकता मिलती है। भारतेंदु कालीन रचनाकारों की कृतियों में प्रयुक्त भाषा की तुलना में हरिश्चंद्र की भाषा स्वच्छ एवं अनुशासित दिखाई देती है। शब्दों के चेहरे व्यवस्थित तथा वाक्य सुसंबद्ध पाए जाते हैं। उनकी तत्कालीन भाषा और आज की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो पाया जाएगा कि भारतेंदु कालीन रचनाकारों की भाषा आज की तुलना में अति विचलित है जब कि हरिश्चंद्र की भाषा में उतना अंतर नहीं दिखाई देता।

यदि मुंशी सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदल मिश्र, राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, राजा लक्ष्मण सिंह के गद्य को देखेंगे तो क्रमशः अच्छी भाषा में पंडिताऊपन, ब्रजभाषापन, पूरबीपन, उर्दूपन और तत्सम शब्दों में आगरे की भाषा दिखाई देती है। भारतेंदु ने हिंदी को मांजकर उसे निखारा और शिष्ट किया। इस कला के कारण वे युग प्रवर्तक हो गए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की काव्य रचना प्रतिभा उनके पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित थी। आरंभ में रीतिकालीन कवियों की तरह शृंगारिक कविताओं को ब्रजभाषा में प्रस्तुत करते रहे। आगे चलकर खड़ी बोली काव्य का सृजन कर भक्ति एवं शृंगारिकता के अतिरिक्त अनेक विषयों पर केंद्रित होकर वे कविताएं लिखते गए। यों नायक-नायिका भेद, अलंकार, रस आदि की अभिव्यक्तियां राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं के साथ देखने को मिलती हैं। चूंकि वह काल संधिकाल था। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत और रानी का सीधा साम्राज्य योरोप में धर्म गुरुओं की सत्ता का डगमगाना तथा विज्ञान का उदय नए सामंतों का अभ्युदय व शेष वर्ग का शोषण तथा भारतीय घरेलू व देसी उद्योगों की समाप्ति इत्यादि कारणों से देश में विद्रोह, विप्लव विसंगतियां आदि के साथ-

साथ सामाजिक जागरण, राजनीतिक चेतना के नवीन अंकुर इत्यादि देखने को मिलने लगे। यह सब रचनाकारों की रचनाओं को प्रभावित करने लगे। अंग्रेजी राज का गुणगान करते भारतेंदु लिखते हैं–

''परम मोक्षफल राजपद परसतजीवन मांहि
वृष्न देवता राजसुत पद परसहु चित्र मांहि।''

यह उदाहरण तत्कालीन परिस्थितियों से जन्मा था। मुसलमान शासकों द्वारा हिंदुत्व पर आघात तथा विनाशकारी भयावह नरसंहार व अत्याचार के कारण अंग्रेजों के आगमन पर हर्ष विषाद को भारतेंदु ने इस प्रकार व्यक्त किया–

''जैसे आतप तपित को
छाया सुखद गुनात,
जवन राज के अंत तुव
आगम तिमि दरसात।
मसजिद लखि विसनाथ ढिंग
परे हिए जो घाव,
ता कहें मरहम सदृस है
तुव दरसन नरराव।
...अंग्रेज राज सुख साज सवैविविध भारी,
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्वारी।''

अंग्रेजों की कूटनीति उनकी इन पंक्तियों में दृष्टव्य है–

''सत्रु-सत्रु लड़वाह
दूर रहि लखिय तमासा।
प्रबल दखिर जाहि ताहि
मिलि दीजै आसा।।''

भक्ति भावना–

''मेरे तो राधिका नायिका ही गति
लोग दोउफ रहौ कै नसि जाओ।''

शृंगार–

''एक अंगी बिनु कारने
इक रस सदा समान
पियहिं मने सर्वस्व जो
सोह प्रेम प्रमान।''

हास्य–

''कपट कटारी जिय में हुलिस
क्यों सखि साजन नहिं सखि पुलिस।''

सामाजिक स्थिति–

''जाति अनेकनकरी,
नीच अरु ऊंच बनायो,
खान-पान संबंध सबन
सौं वरजि छुड़ायो।''

भाषा-मान–

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के
मिटत न हिय को शूल।।''

इस प्रकार अनेक उदाहरणों के साथ भारतेंदु के काव्य की विशेषताएं व्यक्त की जा सकती हैं। वैसे उनकी कृतियों में 'प्रेम सरोबर', 'प्रेम माधुरी', 'मधु मुकुल', 'प्रेम तरंग', 'प्रेमाश्रुवर्षण', 'होली', 'वर्षा विनोद', 'विनय प्रेम पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'विजय बल्लरी', 'फूलों का गुच्छा', 'रिपनाष्टक', 'कृष्ण चरित्र', 'वैजयंती', 'भारती शिक्षा विजयनी', 'विजय पताका', 'प्रेममालिका', 'मूक प्रश्न', 'वैष्णव सर्वस्व', 'दानलीला', 'तन्मय लीला', 'श्रीनाथ स्तुति', 'कार्तिक स्नान', 'प्रातः स्मरण स्त्रोत्र', 'अपवर्ग पंचक', 'भक्ति सर्वस्व' प्रमुख हैं। इनमें तत्कालीन राजनीति, भारतीय समाज एवं संस्कृति, स्वतंत्रता हेतु बेचैनी, स्वदेश प्रेम सौंदर्य प्रेम, प्रकृति चित्रण, हास्य व्यंग्य आदि विस्तार से मिलता है।

भारतेंदु जी की काव्य कृतियों की संख्या सत्तर है। इन सबका भारतेंदु ग्रंथावली नाम से दो खंडों में संग्रह किया गया है। उनके गद्य तथा पद्य साहित्य को चर्चा के उपरांत यहां पर उनके युग के अंतर्गत जाने गए रचनाकारों के नाम प्रस्तुत करना। इसलिए आवश्यक है कि ये रचनाकार उनके जन्म से पूर्व के भी हैं और मृत्यु के बाद तक के भी हैं। ये साहित्यविद हैं, रूपनारायण पांडे, लोचन प्रसाद पांडेय, ठाकुर गोपालशरण सिंह, राय कृष्णदास, गुरुभक्त सिंह, मुकुटधर पांडेय, गिरजादत्त शुक्ल गिरीश, अनूप शर्मा अनूप, पंडित श्रीधर पाठक, जगन्नाथ दास रत्नाकर आदि। भारतेंदु मंडल के प्रमुख कवि थे ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी और राधाकृष्ण दास।

भारतेंदु ने साहित्य में मध्यम मार्ग को अपनाया। प्राचीन भारतीय शैली व पुरानी नाट्य लेखन कला से बचते हुए वर्तमान हिंदी भाषा की ओर बढ़ते हुए नवीन युग को स्थापित कर गए। उनको तथाकथित उन लेखकों से परहेज था जो अंग्रेजी नाटकों का अनुगमन कर रहे थे। क्लिष्टताओं को त्यागना उनका स्वभाव बन गया। यही कारण था कि उनके अति सीमित जीवनकाल में पंडित प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बद्रीरानारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह और पंडित बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखकों का उनके प्रभाव से समवैचारिक समूह बन गया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ख्याति प्राप्त साहित्यकार थे। इसके अतिरिक्त वे लोकप्रिय सामाजिक महापुरुष भी थे। साहित्यिक विधाओं में नाटक, कविता व आलेख आदि के साथ-साथ आलोचना, संपादन का कार्य भी करते थे। समसामयिक प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं में उजागर करना वे अपना धर्म मानते थे। सरल, उदार स्वभाव के हरिश्चंद्र को अत्यंत हास्य बोध भी था। फलतः वे अपने काल के राष्ट्रीय नेता, समाज सुधारक व पथ प्रदर्शक बन गए।

भारतेंदु युग 1843 से 1900 ई. तक माना जाता है। जब कि वे 1850 में पैदा हुए थे और 1885 में जीवन पूरा कर गए। अर्थात् मात्र पैंतीस वर्षीय हरिश्चंद्र सत्तावन वर्ष के फैलाव में व्याप्त रहे। यानी जन्म से सात साल पहले से मृत्यु के पंद्रह वर्ष बाद तक के सभी रचनाकारों ने उनके प्रबल व्यक्तित्व को नमन किया। वे हिंदी भाषा को नई दिशा दे गए। अतः साहित्य और समाज में वे अमर रहेंगे। गिनती में अपनी आयु से दुगनी रचनाएं करने वाले उस अमर साहित्यकार ने तीन पत्रिकाओं को निकाल कर अपनी विशाल प्रतिभा खड़ी की।

आधुनिक युग के प्रवर्तक एवं ब्रजभाषा काव्य के कीर्तिमान

डॉ. सुनीति एस. आचार्य

भारतेंदु हरिश्चंद्रजी का समय ऐसा था, जब देश में पहले से ही दो भाषाओं ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था। उर्दू एवं अंग्रेजी भारत की शासकीय भाषाएं थीं। वर्तमान हिंदी का रूप एवं नाना गद्य विधाओं का विकास उन्हीं की देन है। भारतेंदुजी एवं उनके साथियों-सहयोगियों ने हिंदी के प्रांजल रूप को प्रतिष्ठित किया, जिसे हिंदी बोलने वाली जनता ने मुक्तकंठ से सराहा। फिर भी उन्होंने काव्य-सृजन का माध्यम ब्रज भाषा को सर्वोपरि माना और उनके साथियों ने भी। अभिनव चेतना के प्रांजल पुरुष भारतेंदुजी ने काव्य की पूर्व परंपरा का बखूबी निर्वाह किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्रजी का जन्म काशी के एक धनाढ्य परिवार में 2 सितंबर, 1850 को हुआ था। उनका देहावसान 35 वर्ष की अवस्था में में हुआ।'' उनके पिता बाबू गोपालराम गिरधर भक्त और साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे। उन्होंने 'नहुष-वद्य' नाटक और कुछ कविताएं लिखीं थीं। हरिश्चंद्रजी को घर पर ही विभिन्न भाषाओं की शिक्षा प्राप्त हुई थी। ग्यारह वर्ष की आयु से वह कविताएं रचने लग गए थे। पंद्रह वर्ष की अवस्था में वह अपने परिवार के साथ जगन्नाथजी गए थे। उसी यात्रा में उनका परिचय बंगला साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों से हुआ। वहां से लौट कर उन्होंने नाटक व कविताएं लिखने के साथ-साथ 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया और आगे चलकर उन्होंने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रकाशन भी किया। [1]

भारतेंदु हरिश्चंद्र अत्यंत सरल, विनोदी, स्वाभिमानी एवं उदार स्वभाव 'के थे। जहां साहित्य के क्षेत्र में वे कवि, नाटककार, इतिहासकार, समालोचक, पत्र-संपादक आदि थे तो समाज एवं राजनीति के क्षेत्र में वे एक राष्ट्र-नेता और सच्चे पथ-प्रदर्शक थे। विभिन्न अवसर पर उन्होंने जनता के रोष एवं विरोध की अभिव्यक्ति करके विदेशी सरकार से भी विद्रोह किया था। जनता ने भी अपने प्रिय नेता और साथी को 'भारतेंदु' विशेषण से विभूषित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर बड़ा गहरा पड़ा। उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके भाषा संस्कार की महत्ता को सब लोगों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया और वे आधुनिक युग के प्रवर्तक बन गए।

भारतेंदु से पूर्व खड़ी बोली गद्य के चार लेखकों की भाषा में मुंशी सदा सुखलाल की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए थी। लल्लुलालजी की भाषा में ब्रजभाषा और सदल मिश्रजी की भाषा में पूरबीपन था। राजा शिवप्रसारजी का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित नहीं था, वाक्यविंयास तक में घुसा था। राजालक्ष्मणसिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेंदु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पद्य की ब्रज भाषा का भी बहुत कुछ संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्य भाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाए।

हरिश्चंद्र के जीवन काल में ही लेखकों और कवियों का एक खासा मंडल तैयार हो गया। उपाध्याय पंडित बद्रीनारायण चौधरी, पंडित प्रताप नारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित केशवराय भट्ट, पंडित अंबिकादत्त व्यास, पंडित राधाचरण गोस्वामी इत्यादि कई प्रौढ़ साहित्यकारों ने हिंदी के इस नूतन विकास में अपना योगदान दिया।

''भारतेंदुजी एवं उनके समसामयिक लेखकों में जो एक सामान्य गुण लक्षित होता है, वह है, सजीवता या जिंदादिली और उनकी रचनाओं में हास्य-विनोद की मात्रा का पूर्ण आनंद।''[2]

भारतेंदुजी की भांति उनकी मित्र-मंडली ने भी कई पत्रिकाओं का संपादन किया। प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका का संपादन करने लगे। उन पत्रिकाओं ने एक निखरा हुआ हिंदी का रूप जनता को अपने लेख-निबंध आदि गद्य विधाओं के माध्यम से दिए थे।

आज हिंदी की गद्य विधाओं का विकास और परिनिष्ठित हिंदी भाषा का जो रूप दिखाई देता है, उसके आधार स्तंभ भारतेंदुजी रहे। इसलिए उन्हें आधुनिक युग का प्रवर्तक माना जाता है।

मुख्य बात यह है कि भाषा की समस्या का

समाधान होने पर भी उन्होंने काव्य सर्जना का माध्यम ब्रज भाषा को चुना। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की तरह उन्होंने खड़ी बोली में अपनी पद्य रचनाएं नहीं की। ब्रज भाषा काव्य परंपरा को द्विवेदी युग में बहुत हानि पहुंचाई गई, जिसके फलस्वरूप आगे काव्य सृजन में विसंगति उत्पन्न होती गई। अभिनव चेतना के प्रांजल पुरुष कहलाने वाले भारतेंदुजी एवं उनके सहयोगियों ने ब्रज भाषा काव्य की परंपरा को परिष्कृत हिंदी का रूप सामने लाने पर भी जीवित रखा। काव्य सृजन की परिपाटी में वह काव्यशास्त्र एवं मध्यकालीन कवियों का अनुकरण करते रहे। यह सराहनीय कार्य था।

अंग्रेजों का शासन काल भारत में बहुत पूर्व फैल चुका था। ऐसी दशा में जब भारतेंदुजी का अवतरण हुआ वह युग हिंदी भाषा साहित्य के लिए कितना प्रतिकूल था? इसका आभास इस छंद से लगाया जा सकता है।

''भोज मरे अरु विक्रम हू
किनको अब रोइ कै काव्य सुनाइए।
भाषा भई उर्दू जग की
अब तौ इन ग्रंथन नीर डुबाइए।
राजा भए सब स्वास्थ पीत
अमीरहू हीन किंहै दरसाइए।
नाहक देनी समस्या
अबै वह ग्रीष मै प्यारे
हिमंत बनाइए।''[3]

—भारतेंदु ग्रंथावली, दू, खं, पृ. 866

उनके काव्य में मुख्य प्रवृत्तियां मिलती हैं— (1) भक्ति-भावना एवं धार्मिक उपदेश की, (2) सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना, (3) देशप्रेम की व्यंजना, (4) हास्य और व्यंग्य।

भक्ति भावना—भारतेंदुजी के पिता भक्त थे और अपना समय हरिकीर्तन में बिताते थे। अतः भक्ति के संस्कार भारतेंदुजी को पैतृक-दान के रूप में प्राप्त हुए थे। उनके 'भक्त-र्सवस्व', 'कार्तिक-स्नात', 'बैशाख-महात्म्य', 'उत्तरार्ध-भक्त-भाल' आदि ग्रंथ विशुद्ध भक्ति-भाव से ओत प्रोत हैं। उन्होंने अपने आपको श्री राधा कृष्ण का अनन्य उपासक घोषित किया है—

''पूजि के कालि हि सत्रु हतौ कोऊ,
लक्ष्मी पूजि महा धन पाओ।
सेई सरस्वती पंडित होऊ,
गनेसहि पूजि के विघ्न नसाओ।
त्यों हरिचंद जू ध्याइ शिवै कोऊ,
चार पदारथ हाथ ही लाओ।
मेरे तो राधिका नायक ही गतिलोक
दोऊ रहि के नसि जाओ।।''[4]

—(कार्तिक-स्नान)

भक्ति-भावना को आचार्यों ने दास्य, शांत, माधुर्य, सख्य, वत्सल आदि भेदोपभेदों में विभाजित किया है, किंतु भारतेंदुजी की भक्ति-भावना को हम इनमें से किसी वर्ग में नहीं रख सकते। जहां उन्होंने राधा-कृष्ण की लीलाओं के आख्यान में माधुर्य-भाव का विकास किया है, वहां वे व्यक्तिगत आत्मनिवेदन में अनन्यता का प्रदर्शन करते हैं—

''उधारौ दीन-बंधु महाराज!
जैसे हैं तैसे तुमरे ही,
नांहि और सौं काज
जो बालक कपूत घर जनमत
करत अनेक बिगार,
तो माता कहा वाहि न पूछत
भोजन समय पुकार।''

रत्नाकरजी की गोपियों की तरह भारतेंदुजी ने स्वयं को हरि अर्पित कर दिया।[5]

''उधौ यह सूधौ सौ संदेसौ कहि दीजो एक,
जानत अनेक न विवेक ब्रजबारी हैं,...
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्जु जु हैं,
जो कहौ सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं।''

—(उद्धव-शतक)[6]

मध्यकालीन भक्तों की भांति भारतेंदु हरिश्चंद्रजी भी अपने उद्धार के लिए विभिन्न युक्तियों से काम लेते हैं। कभी वे अपने आराध्य से अनुरोधपूर्वक निवेदन करते हैं तो कभी सूरदास की भांति उन्हें उबारने की चुनौती देकर उकसाते हैं—

(1) ''आज हम देखत हैं को हारत।
हम अद्य करत कि तुम मोहि तारत,
को निजबान बिसारत।''

(2) ''कहौ तुम व्यापक हौ कि नांहि।
जो तुम व्यापक हौ तो अद्यकरि
क्यों हम नरकहिं जाहिं।''[7]

—(भारतेंदुजी)

''खेलत में को काकौ गुसइयों''

—(सूरदासजी)[8]

यद्यपि भारतेंदुजी ने यहां मुक्ति की बात कही है किंतु भाव एक सखासत है, जैसे सूर के बाल कृष्ण से उनके सखावृंद वार्तालाप करते हैं।

भारतेंदुजी अपने भगवान के समक्ष अपने पापों का लेखा-जोखा भी बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं—

''वही में ठाम न नैंकु रही।
भरि गई लिखत लिखत
अद्य मेरे बाकी तबहु रही,
चित्रगुप्त हारे अति थकि कै
बेसुध गिरे मही।''[9]

उनके यह भाव भी सूरदासजी की भांति प्रकट हुए हैं—

''हौं तो सब पतिबन कौ टीकौ।''[10]

यद्यपि भारतेंदु हरिश्चंद्रजी एक उच्च कोटि के भक्त थे किंतु भक्ति-मार्ग का उन्होंने आडंबर नहीं फैलाया। वह समय एवं कर्म को महत्त्व देते थे। संध्या पूजन, संध्या स्नान आदि की चाहे अवहेलना हो तो हो। इस सब बातों से उन्होंने स्वयं क्षमा मांगी और कहा कि—

''संध्या जु आपु रहौ द्यरनीकी,
नहान तुम्है हैं प्रणाम हमारी।
देवता पित्र क्षमौ मिलि मोहि,
अराधना होइ सकै न तुम्हारी।।
वेद पुरान सिधारी तहां,
'हरिश्चंद' जहां तुम्हारी पतियारी।
मेरे तो साधन एक ही हैं,

जगा नंदलाल वृषमानु दुलारी।।''[11]

भारतेंदुजी की शृंगार-भावना–भारतेंदुजी की अनेक रचनाएं हैं–प्रेम सरोवर, प्रेमाश्रु, प्रेम-तरंग, प्रेम-माधुरी आदि में विशुद्ध शृंगार-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। ब्रजभाषा-प्रवीण भारतेंदुजी की शृंगारिक रचनाओं को पढ़कर रीतिकालीन कवियों की काव्य रचनाओं का भ्रम होने लगता है। इतनी समरूपता, इतनी समरसता आधुनिक-युग के कवि में दृष्टिगोचर होती है कि मध्यकालीन काव्य का आनंद उनकी रचनाओं से प्राप्त होता है।

''एकंगी बिनु कारने इक रस सदा समान।
पियहि गनै सर्वस्व जो सोई प्रेम समान।।''[12]

प्रेम के इसी उच्च आदर्श को लेकर भारतेंदुजी शृंगार-वर्णन में प्रवृत्त हुए हैं। उन्होंने प्रेमावलंबन-नायिका सौंदर्य का आख्यान किया है, किंतु उसमें स्थूल शारीरिकता एवं अश्लीलता को प्रायः स्थान नहीं दिया है। एक वयःसंधि की अवस्था को प्राप्त बाला की सूक्ष्म चेष्टाओं का निरूपण देखिए–

''सिसुताई अजौ न गई तन तें,
तऊ जोबन जोति बटौरे लगी।
सुनि कै चाचा 'हरिचंद' की
कान कहूक दे भौहें मरोरै लगी।
बचि सासु जिठानिन सौं पिय तै,
दुरि घुंघट में दृग जौरें लगी।
दुलही उलही सब अंगन तें
दिन टूठै तैं पियूष निचौरें लगी।।''[13]

यहां नवबाला के शैशव एवं यौवन के समागम का चित्रण अत्यंत श्लीलतापूर्वक हुआ है।

भारतेंदुजी की प्रेम-धारा रीति-स्वच्छंद कवियों-घनानंद ठाकुर, बोधा, आलम, बख्शी हंसराज आदि की भांति प्रवाहित होती है। इन रीतिमुक्त कवियों ने बुद्धि के अंकुश से परे हृदय के भावों को महत्त्व दिया, फिर चाहे काव्यशास्त्र के नियमों का उल्लंघन करना पड़े। बुद्धि चतुराई सिखाती है, इसलिए वह कठोर है पर हृदय मक्खन की भांति स्निग्ध है, कोमलता एवं मधुरता से परिपूर्ण है। जहां प्रेम के मार्ग में पग-पग पर पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है, किंतु इससे उसकी गति अवरुद्ध नहीं होती, अपितु संघर्षों की आग में झुलस कर ही सच्चा प्रेम निखरता है। भारतेंदुजी की नायिका को भी अपनी सखियों का निषेध, कौटुम्बिक जनों का विरोध और समाज के लोगों का उपहास सहना पड़ता है।

''सजनी मन पास नहीं हमरे
तुम कौन को का समुझावती हौं।''[14]

उद्धव शतक की गोपियां भी यही कहती हैं कि–

''उधौ मन नांहिं दस-बीस,
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग,
को आराधे ईस...।।''[15]

''इन नैननि में वह सांवरी मूरति,
देखति आति अरी सों अरी।
अंब तो है निबाहिबो याकी भलो,
हरिचंद जू प्रीत करी सो करी।
उन खंजन के मद गंजन सों,
अंखियां ये हमारी लरी सो लरीं।
अब लोग चबाब करो तो करो,
हम प्रेम के फंद परी सो परीं।।''[16]

रीतिमुक्त धारा के कवि ठाकुर की ठसकदार इन पंक्तियों से बहुत कुछ साम्य मिलता है कि प्रेम कैसे ठोक बजा कर किया जाता है? उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में 'कुलकानि' का अर्थ है लोकलाज, 'नेजन' का अर्थ है बर्छी, 'अनी' का अर्थ है नोंक, 'खगी' का अर्थ है चुभन, शेष अर्थ पढ़कर स्पष्ट हो जाएगा।

''जब ते दरस मनमोहन जू
तब तै अंखियं ये लगीं सो लगीं।
कुलकानि गई भगि वाही
घरी ब्रजराज के प्रेम पगीं सो पगीं।
कवि ठाकर नेह के नेजन की
उर में अनि आन खगीं सो खगीं।
अब गांव रे नांव रे कोऊ धरौ,
हम सांवरे रंग रंगी सो रंगी।।''[17]

भारतेंदुजी ने वियोग की विभिन्न अनुभूतियों की व्यंजना अत्यंत स्वाभाविक शब्दों में की है। प्रियतम के एक ही गांव में रहते हुए भी प्रेयसी के दर्शनों की लालसा उसे सदा उत्कंठित बनाए रखती है–

''एक ही गांव में बास सदा
घर पास इहौ नहिं जानति हैं।
पुनि पांचवे सातवें आवत-जात की
आन न चित्त में आनति हैं।
हम कौन उपाय करैं इनको
'हरिचंद' महा हठ ठानति हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना
अंखियां दुनियां नहिं मानती हैं।।''[18]

कवि ठाकुर की नायिका और भारतेंदुजी की नायिका की एक सी दशा है कि–

''रोज न आइयै जो मन मोहन तौ
यह नैंकु मतो सुन लीजिए।
प्रान हमारे तुम्हारे अधीन तुम्हें
बिन देखैं सु कैसे कै कीजिए।
ठाकुर लालन प्यारे सुनो विनती
इतनी पै अहो चित दीजिए।
दूसरे तीसरे पांचवे सातवें
आठवें तौ भला आइबो कीजिए।।''[19]
–(कवि-ठाकुर)

भारतेंदुजी की एक अन्य बाला अपने प्रियतम के दर्शनों की लालसा से प्रेरित होकर एक अपरिचित के द्वारा संदेशा भेजती है–

''मैं वृषभानुपुरा की निवासिनी
मेरी रहै ब्रज बीथिन भांवरी।
एक संदेसो कहौं तुम सौं पै
सुनो जी करो कुछ ताको उपाव री।
जो 'हरिचंद' जू कुंजन में मिलि जाही,
करो लखि कै तुम बावरी।
बुझी है जोन दया करि कै कहि
यै परसों कब होयगी रावरी।।''[20]

कहीं-कहीं विरह-वेदना मरण-दशा के समीप पहुंच गयी है।

''व्याकुल हौं तड़पौं बिनु पीतम
कोऊ तो नेंकु दया उर लाओं।

प्यासी तजौं सब रूप-सुषा बिनु
पाहिप पी को पपीहै पिआओ।
जीअ में हौंस कहूं रह जाय न
हा 'हरिचंद' कोऊ उठि धाओ।
आवै न आवै पियारो अरे
कोऊ हाल तौ जाइ कै मेरो सुनाओ।।''[21]

जब प्रिय-दर्शन की समस्त लालसाएं सिमट कर प्राणों के भीतर केंद्रित हो जाती हैं तो इस चंचलता के स्थान पर गंभीरता आ जाती है। निम्नलिखित पंक्तियों में इसी मनोदशा का उद्‌घाटन हुआ है–

''आजु लौं जी न मिलै तो कहा
हम तौ तुमरे सब भांति कहावें।
मेरो उराहनों है कछु नांहि सबै
फल आपुने भाग को पावैं।
जो हरिचंद भई सो भई
अब प्रान चलै चहैं नासों सुनावें।
प्यारे जु है न जग की यह रीति
बिदा की समैं सब कंठ लगावैं।।''[22]

इन पंक्तियों में प्रिय की उपेक्षा का गहरा क्षोभ विद्यमान है, किंतु इससे प्रणय में कोई कमी नहीं आई है। भारतेंदुजी की नायिका अपने अधिकार का प्रयोग भी जानती हैं। उद्धव-शतक की राधा की तरह हथियार डालती दृष्टव्य नहीं होती कि–

''नाम कौ बताय और जताई गाम उद्यौ बस।
स्याम सों हमारी राम-राम कहि दीजियों।''

स्वतंत्र प्रेम मार्ग के पथिकों को असहनीय कष्टों एवं संघर्षों का सामना करना पड़ता है। भारतेंदुजी की नायिका भी इन्हीं कठोर परिस्थितियों का सामना करती है–

''मारग प्रेम को, को समुझै
'हरिचंद' यथास्थ होत तथा है।
लाभ कछु न पुकारन में बदनाम
हीन की सारी कथा है।
जानत हैं जिय मेरौ भली विधि
और उपाय सबैं बिरथा है।
बादरे हैं ब्रज के सागरे मोहिं
नाहक पूछत कौन बिथा है।।''[23]

भारतेंदुजी की इन पंक्तियों में प्रेमानुभूति की स्वाभाविकता, सरलता के साथ गहरी मार्मिकता निहित है, ठीक कवि बोधा की भांति कि–

''कहिबे को व्यथा सुनिबे को हंसी,
को दया सुनि कै उर आनतु है।
अरु पीर धेरे तजि धीर सखी
दुख को नहीं कोपै बरवानतु है।
कवि बोधा कहै ये संवाद कहा
को हमारी कही पुनि मानतु है।
हमें पूरी लगी कै अधूरी लगी
यह जीव हमारोई जानतु हैं।''[24]

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भारतेंदुजी ने आधुनिक काल के होकर भी ब्रजभाषा एवं मध्यकालीन कवियों की परिपाटी का भलिभांति अनुसरण किया। यह उनकी विशेषता है, किंतु उनका युग अपने अधिकारों के लिए जुझारू था। इसलिए उनके काव्य में देश प्रेम भी अपनी पूर्ण समग्रता एवं निष्ठा के साथ झलकता है।

देश-प्रेम–भारतेंदुजी भक्त थे, श्रृंगारिक कवि थे, किंतु वह एक सच्चे देशभक्त भी थे। उन्होंने देश-भक्ति पर काव्य रचनाएं की किंतु हास्य-व्यंग एवं विनोद पूर्ण शैली में।

1. ''भीतर-भीतर सबरस चूसैं,
   हंसि के तन मन धन चूसैं।
   जाहिर बातन में अति तेज,
   क्यों सखी सज्जन नहीं अंग्रेज।''

2. ''कपट कटारीं जिय में हुलिस,
   क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस।''

3. ''इनकी उनकी खिदमत करो,
   रुपया देते-देते मरो।
   तब आवै मोहिं करन खराब
   क्यों सखि सज्जन वहीं खिताब।''

4. ''उठहू वीर तलवार खींचि
   भारहु घन समर।
   लोह लेखनी लिखहु आर्य
   बल जवन-हृदय पट।
   मारु बाजे बजै कहीं
   धौंसा छहराहीं।
   उड़हि पताका शत्रु हृदय
   लखि लखि थहरबाहीं।''

5. ''पाजी हूं मैं कौम का
   बंदर मेरा नाम
   बिन फिजूल कूदे फिरे
   मुझे नहीं आराम।''[25]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने युग के एक महान युग प्रवर्तक थे। हिंदी साहित्य में उनका नाम सदैव आदर के साथ स्मरणीय रहेगा। वह सहृदय-स्वाभिमानी थे। अपना धन वह दीन-हीनों की सेवा एवं परोपकार पर लुटाते थे। वह एक आदर्श मानव और साहित्यकार थे।

संदर्भ–

1. पुस्तक–हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक–आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. 251, संस्कार–उन्नीसवां, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,
2. वही।
3. भारतेंदु पदावली, दूसरा खंड़, पृ. सं. 866 से 870 तक।

   4, 5, 6, 8, 10, 11, 12, 13, 17, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25–भारतेंदु पदावली, दूसरा खंड़, पृ. सं. 866 से 870 तक।
4. उद्धव-शतक, मूलपाठ, जगंनाथ दास रत्नाकर, समालोचना एवं व्याख्या-डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ. सं. 15, संस्करण द्वितीय, सन 1986-87
5. वही
6. पुस्तक रीति-राग, (प्रमुख पांच रीतिमुक्त कवियों की प्रतिनिधी कविताओं का संकलन) संकलनकर्ता एवं लेखक–श्री विशंभर 'अरुण', अभिनव प्रकाशन, द्वितीय संस्करण–1982

हिंदी विभागाध्यक्ष,
श्रीमती एच.आर. पटेल महिला महाविद्यालय
शिरपुर, जिला धुले (महाराष्ट्र)-425405

भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में प्राचीन व नवीन का समन्वय

डॉ. वेद व्यथित

समाज में प्रचलित रीति रिवाजों या मान्यताओं के विपरीत कोई भी कार्य प्रारंभ करना अत्यंत ही कठिन है क्योंकि कठिन कार्य की शुरूआत करने का साहस प्रत्येक व्यक्ति में नहीं कर सकता है। नवीनता, रुढ़ियों का खंडन और अपने मत की स्थापना सहजता से समाज को सुपाच्य नहीं जान पड़ती है। अतः वह इनका भरपूर विरोध करने के लिए उग्र रूप से जाग्रत होता है पर उसका यह जागरण नहीं होता उसका यह उग्र जागरण कुछ स्वार्थी तत्वों की स्वार्थ पूर्ति का अस्त्र मात्र बन जाता है। परंतु नवीन कार्य क्रांतिकारी कार्य होने के कारण यदि अपने पक्ष में सटीक या पुष्ट प्रमाणित तर्क प्रस्तुत करता है तो उसके समक्ष सभी प्रकार की उग्रता धाराशाही हो जाती है। स्थापित दिग्गजों के पसीने छूटने लगते हैं, उनके पैरों के नीचे की जमीन खिसकने लगती है और नवीन मान दंड शनैः-शनैः स्थापित होने लगते हैं।

यही सब कार्य हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की प्रारंभिक अवस्थ में भी हुआ, जिसका संपूर्ण श्रेय जाता है महान साहित्यकार भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र को। जहां एक ओर उन्होंने कबीर की भांति समाज में प्रचलित कुप्रथाओं व उनसे उत्पन्न उनके दुष्परिणामों को उजागर करके उनका विरोध किया वहीं अपनी समाजोपयोगी नवीन स्थापनाएं दीं। समाज की निरंतर परिवर्तित गतिशीलता में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। उनके साहित्य समय में देश परतंत्र तो था ही साथ ही भारतीय समाज को विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक आक्रमण व अतिक्रमण का शिकार भी होना पड़ रहा था।

भारतीय संस्कृति व सभ्यता स्वभावतः विकासशील होने के कारण नवीन का पाचन सहजता से करती रही है। आगत को आत्मसात करते हुए मूल को भी बनाए रखने की एक कठिन चुनौती इसके सामने सदा रही है। यह चुनौती दो प्रकार से इसके सामने रही एक तो अपने ही द्वारा अज्ञानता वश पैदा हो गई कुप्रथाओं के रूप में और दूसरी आगत के अतिक्रमण व आक्रमण के कारण। भारतेंदुजी ने अपने साहित्य में इन दोनों ही स्तर पर श्रमसाध्य कार्य करने का साहस एक जागरुक साहित्यकार के दायित्व निर्वहन करता के रूप बहुत ही सशक्त ढंग से किया। उन्नीसवीं शती योरोप आदि में शीघ्रता से घटित हो रहे परिवर्तनों के कारण प्राचीन व नवीन का महत्त्वपूर्ण संक्रमण काल रहा। इस समय में प्रचुरता से नूतन बदलाव हुए। भारतेंदुजी का साहित्य इसी नवीन विकासवादी दृष्टिकोण को स्वीकारता है परंतु प्राचीन को सहेजता है। इस संदर्भ को व्याख्यायित करते हुए डॉ. विमलेश कांति लिखते हैं, ''कहीं लोकोत्सव एवं लोक पर्व का कवियों ने वर्णन किया है तो कहीं लोक जीवन में प्रचलित विविध लोकाचारों और लोक सज्जाओं प्रसाधनों का। इसी प्रकार लोक जीवन में प्रचलित विविध लोक विश्वासों, लोक देवी-देवताओं लोक सज्जा प्रसाधनों, लोकानुरंजन तथा लोक व्यसन आदि के भी भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लेख मिलता है।''[1] परंतु साथ नवीन भी उनके लिए एक सीमा तक स्वीकार्य है। ''जीवन, साहित्य, संस्कृति और आधुनिकता का एक साथ सुघड़ समन्वय करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति की ग्रहणीय परंपराओं का रक्षण किया है।''[2]

परंतु इस सब का अर्थ यह नहीं कि वे पाखंड और अंध विश्वास के पक्षधर हैं अपितु वे तो पाखंडों का भरपूर खंडन करते हैं और खंडन भी बड़ी सहजता से तथा व्यंजना से करते हैं। रानी शैव्या को जब अमंगल सूचक स्वप्न आता है तब तथाकथित धर्म रक्षक अभिमंत्रित जल और रक्षा सूत्र सौंप जाता है या इसी तरह के कितने ही उदाहरण उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं परंतु क्या इससे उसकी अमंगल से रक्षा हो पाती है, नहीं होती है। यही सब इस देश में हो रहा है कि कोई और हमारी रक्षा कर दे या कोई हमें बचाने या दुखों से छुटकारा दिलाने आएगा परंतु यह अनर्गल प्रलाप ही हमारी अवनति का कारण है।

भारतेंदुजी का साहित्य न तो लोक वर्णन के द्वारा और न ही श्रद्धा की आड़ में भी किसी तरह के पाखंड का समर्थन नहीं करता है अपितु पोल खोल शैली में असलियत सामने लाता है। इसके साथ-साथ उत्साहपूर्वक नवीनता को स्वीकार करने के लिए तर्कपूर्ण प्रबल आग्रह भी उनके साहित्य स्थान-स्थान पर दिखता है। साथ ही पाठक को चेतावनी भी देता है कि यदि रुढ़ियों के अंधकार में प्रकाश को स्वीकार नहीं किया तो यह पीढ़ियों के लिए आत्मघाती सिद्ध होगा और जिसके परिणाम बड़े भयंकर होंगे। ''जिस भाव से हिंदू मत अब चल रहा है, उस भाव से आगे नहीं चलेगा। अब हम लोगों के शरीर

का बल न्यून हो गया, विदेशी शिक्षाओं से मनोवृत्ति बदल गई, जीविका और धनोपार्जन हेतु अब हम लोगों को पांच-पांच, छह-छह पहर पसीना चुआन पड़ेगा। रेल पर इधर से उधर कलकते से लाहौर और बंबई से शिमला दौड़ना पड़ेगा। सिविल सर्विस का बैरिस्टरी का, इंजीनियरी का इंतिहान देने विलायत जाना होगा, बिना यह सब किए काम नहीं चलेगा।''[3]

एक बात जो अति महत्त्वपूर्ण है, वह है कि अति उत्साह में एकदम सर्व नकारवादी दृष्टिकोण भी उन्हें स्वीकार नहीं था। नवीनता के लिए अति उत्साह में सब कुछ स्वाह करने के वे विरुद्ध थे। इसी उत्साह में बहुत सी सुधारवादी संस्थाएं स्थान-स्थान पर बरसाती पौधों की तरह पैदा हो गई थीं। भारतेंदुजी को इनके आगामी परिणामों का भविष्य दर्शन एक चिंतनशील भविष्य दृष्टा की तरह पहले ही हो गया था क्योंकि आज हम उन ही संस्थाओं में बहुत से पाखंड देख रहे हैं, जो पाखंडों का विरोध करने के लिए बनी थीं। इसीलिए उन्होंने ऐसी सुधारवादी संस्थाओं को नहीं छोड़ा, जो सुधार के नाम पर भारतीय मूल्यों का विरोध कर रहीं थीं। उन्होंने इन संस्थाओं व उनकी गतिविधियों का भी भरपूर विरोध अपने साहित्य के माध्यम से किया। वे सुधार के पक्षधर तो थे परंतु संतुलित व व्यावहारिक और लोक तत्व समावेशी सुधार के पक्षधर थे। उनका विरोध विरोध के लिए नहीं था और न ही किसी के बहकावे में आकर अपने प्राचीन को अपशब्द कहना था, ''जीवन और समाज के ग्राह्य तत्वों का उन्मेष उपयोगिता की दृष्टि से उन्होंने ग्रहण किया। प्राचीन और नवीन, पाश्चात्य और प्राच्य सभ्यता और असभ्यता की उन्होंने कभी प्रवाह नहीं की। भारतेंदु ने रूढ़िवाद का विरोध किया था इसलिए सामाजिक अहित के निवारणार्थ उन्होंने साहित्यकारों को नई दृष्टि दी। उन्होंने देश और जीवन में उपयोजित से परिपूर्ण निर्भीकता का समावेश किया।''[4]

इस प्रकार निश्चय ही भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्य और उनकी रचनाधर्मिता का मूल उद्देश्य नए व प्राचीन का समन्वय है। यह प्रक्रिया समाज में निरंतर चलती रहती है और जो समाज उचित सुधार को स्वीकार कर लेते हैं, वे प्रगतिगामी हो जाते हैं और जो स्वीकार नहीं करते वे अपने ही बोझ से टूट जाते हैं। अतः भारतेंदुजी का साहित्य सदा प्रेरणा स्रोत रहेगा।

संदर्भ –

1. डॉ. विमलेश कांति : भारतेंदुयुगीन हिंदी काव्य में लोक तत्व पृष्ठ 446
2. डॉ. कपिलदेव दुबे : भारतेंदु का गद्य साहित्य समाज शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ 114
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र वैष्णवता और भारत पृष्ठ 19-20
4. डॉ. रत्नाकर पांडेय : हिंदी साहित्य-समाजिक चेतना पृष्ठ 76

'अनुकंपा', 1577 सेक्टर-3
फरीदाबाद- 121004

‘अंधेर नगरी’ : एक कालजयी रचना

हरजेंद्र चौधरी

हिंदी साहित्य में आधुनिक भावबोध की परंपरा का सूत्रपात करने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र बहुआयामी प्रतिभा से कितने संपन्न थे, इसका अनुमान हम सहज ही इस बात से लगा सकते हैं कि लगभग साढ़े चौंतीस वर्ष के अपने लघु जीवन-काल (नौ सितंबर, 1850—छह जनवरी, 1885) में उन्होंने हिंदी सर्जनात्मकता को नई दिशा-गति प्रदान की। उन्होंने अपने समकालीन रचनाकारों का नेतृत्व तो किया ही, अपने परवर्तियों के लिए सतत प्रेरणा-स्रोत भी बने। उनकी जीवन-अवधि तथा रचनात्मकता का दौर भारतीय राजनीति व समाज में नए-नए परिवर्तनों और उथल-पुथल का दौर था। जब भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया, तब भारतेंदुजी केवल सात साल के थे। तत्पश्चात ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी औपनिवेशिक नींव को गहरा और पक्का करने के लिए अगस्त 1858 में ब्रिटिश संसद ने भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट) पास किया, जिसके प्रभावस्वरूप भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का राज खत्म हो गया और ‘ब्रिटिश भारत’ पूरी तरह से ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया। इस कानून के पास व लागू होने से ब्रिटिश सत्ता को भारत का शोषण-दमन करने के लिए एक लंबी मोहलत मिल गई। ऐसे माहौल में तत्कालीन हिंदी-कवियों ने अपनी राजभक्ति को भी वाणी दी और राष्ट्र-भक्ति को भी। राजभक्त परिवार में जन्म लेने तथा तत्कालीन परिवेश के दबावों के कारण भारतेंदुजी की रचनाओं में राजभक्ति का तत्त्व भी मौजूद है, परंतु उत्कट राष्ट्रभक्ति व जनोन्मुखी चिंताओं की अभिव्यक्ति ने ही भारतेंदु की प्रासंगिकता व उनके व्यापक प्रभाव को संभव बनाया है।

भारतेंदुजी की रचनात्मक सक्रियता अद्‌भुत रूप से वैविध्यपूर्ण रही। पत्रकारिता और साहित्य दोनों क्षेत्रों में उनकी सर्जनात्मकता बहुआयामी रही। केवल अठारह वर्ष की आयु में उन्होंने ‘कवि वचन सुधा’ पत्रिका निकालनी शुरू कर दी थी। बाद में ‘हरिश्चंद्र मैगजीन’ (1876) तथा ‘बाल बोधिनी’ पत्रिकाएं भी निकालीं। अनेक विधाओं में रचनाएं कीं। संपादक-धर्म निभाते हुए तत्कालीन समस्याओं से रूबरू होने-रहने की अनिवार्यता ने उन्हें अपने युगीन परिवेश और लोक से जोड़ा, जिसके फलस्वरूप लोक-संपृक्ति और लोक-चिंता की अभिव्यक्ति के लिए ब्रज भाषा में काव्य रचना के साथ-साथ खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग करते हुए निबंध, व्यंग्य, नाटक आदि गद्य विधाओं को भी सहज व समांतर रूप से माध्यम रूप में अपनाने की पृष्ठभूमि तैयार हुई। खड़ी बोली को साहित्यिक रूप-संस्कार देने वाले तत्कालीन लेखकों में वह अग्रणी रहे। वह जीवनभर साहित्य और पत्रकारिता को ही ओढ़ते-बिछाते रहे। उनकी पत्रकारिता और विपुल लेखन ने भारत के तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना-प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अपने युग और परिवेश से गहराई से जुड़े रचनाकार होने के नाते उनकी सर्जनात्मकता की जड़ें समकालीनता की भूमि से फूटी थीं, पर उनकी अंतर्दृष्टि ने उनकी अनेक रचनाओं को उस काल-खंड का अतिक्रमण करने की क्षमता प्रदान की है। सवा एक शताब्दी बीत जाने के बाद भी नई-नई अर्थवत्ता से आलोकित हो उठने वाली उनकी अनेक रचनाओं में हमें अपने ‘आज’ की भी झलक दिखाई पड़ती है। इस लेख में हम उनके कालजयी नाटक ‘अंधेर नगरी’ को आधार बना कर भारतेंदुजी की काल-बेधी अंतर्दृष्टि और रचनात्मकता के कालातीत स्वभाव पर चर्चा करेंगे। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी लग रहा है कि इस नाटक में कहीं-कहीं रूढ़िवादी, अनाधुनिक तथा नकारात्मक विचार और प्रसंग भी हैं, पर इस लेख को हम इसके सकारात्मक पहलुओं पर ही केंद्रित करेंगे।

‘अंधेर नगरी’ भारतेंदुजी का एक छोटा-सा और बहुत तीखा प्रहसन है, जिसमें तत्कालीन स्थितियों के विवरण के माध्यम से अपनी बात कहने के क्रम में उन्होंने शाश्वत मानवीय अनुभवों से निष्कर्षित उपदेश, हास्य, व्यंग्य और रंगमंचीयता का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। इस नाटक का आधार पहले से मौजूद लोककथा है, जिसे भारतेंदुजी ने अपने ढंग से पुनर्रचित करके अधिक गंभीर व कालजयी बना दिया है। बात 1881 की है। हुआ यों कि वाराणसी की एक नाट्य-संस्था ‘हिंदू नेशनल थियेटर’ ने इस लोककथा पर नाटक खेलने का निर्णय लिया और इस संदर्भ में भारतेंदुजी से निवेदन किया। दूसरों को सहायता-सहयोग देने को सदा तत्पर रहने वाले भारतेंदुजी ने एक ही दिन में ‘अंधेर नगरी’ (1881) की रचना करके अपने रचनातमक और संवेदनशील व्यक्तित्व का परिचय दिया। समयांतर के साथ ‘अंधेर नगरी’ अधिकाधिक लोकप्रिय

होता चला गया।

पिछले एक सौ बत्तीस वर्षों के दौरान देश-विदेश में हुए हिंदी नाट्य मंचन के आंकड़े उपलब्ध होते तो निःसंदेह 'अंधेर नगरी' को ही 'हिंदी का सर्वाधिक मंचित नाटक' का खिताब मिलता। इस नाटक का कथ्य लोक-लुभावना और मनोरंजक है। भाषा प्रवाहपूर्ण, काव्यात्मक और चुस्त है। इसके लिखित रूप में 'रंगमंचीयता' निहित होने के कारण इसे मंच पर तथा नुक्कड़ नाटक के रूप में प्रस्तुत करना सहज और सरल है।

इसकी अनेक अलग-अलग प्रस्तुतियां देखने के अपने अनुभव के आधार पर इन पंक्तियों के लेखक का विश्वास है कि इस नाटक में समयानुसार न्यूनाधिक परिवर्तन करके निर्देशक व अभिनेता-मंडली द्वारा इसे बार-बार नई अर्थवत्ता प्रदान की जा सकती है। इस अर्थ में 'अंधेर नगरी' को एक 'विकासशील' नाटक कहा जा सकता है।

इस नाटक की कथा यह है कि एक महंत—गुरुजी—अपने दो शिष्यों गोबर्धन दास और नारायण दास के साथ एक नए नगर में प्रवेश करते हैं। जब चेले गुरु-आज्ञा पाकर अलग-अलग दिशाओं में भिक्षा लेने के लिए जाते हैं तो गोबर्धन दास यह देख कर बहुत प्रसन्न होता है कि इस नगर के बाजार में हर चीज एक ही भाव पर उपलब्ध है। वह इस बात को भूल जाता है कि गुरुजी ने उसे लोभ-लालच से बचने का उपदेश-निर्देश देकर भेजा था। वह साढ़े तीन सेर मिठाई लेकर लौटता है और गुरुजी को नगर और बाजार के बारे में बताता है कि इस नगर का नाम 'अंधेर नगरी' है और यहां 'चौपट राजा' का राज है। यहां 'भाजी और खाजा' सब कुछ टके सेर के भाव मिलता है। उसकी बात सुनकर गुरुजी तुरंत इस नगर को छोड़ने को निर्णय लेते हैं। नारायण दास उनके साथ लौट जाता है, पर गोबर्धन दास गुरुजी के साथ जाने को तैयार नहीं होता। वह इसी नगर में रहने के अपने निर्णय पर अटल रहता है। फिर भी जाते-जाते गुरुजी यह कह जाते हैं कि संकट की घड़ी में वह उन्हें याद करेगा तो उसकी सहायता के लिए चले आएंगे।

कुछ समय बीतने के बाद दीवार गिरने से एक दुर्घटना में एक बकरी दब कर मर जाती है तो उसका मालिक फरियाद लेकर राजा के दरबार में पहुंचता है। राजा फौरन दीवार के मालिक—कल्लू बनिया—को लाकर फांसी देने का आदेश दे देता है। पर इसी क्रम में फांसी देने के लिए अगले मूल 'अपराधियों'—निर्माण-मिस्त्री, चूने वाला, भिश्ती, मश्क-निर्माता कसाई, भेड़-विक्रेता गड़रिया, कोतवाल—को एक-एक करके दरबार में पेश किया जाता है। बकरी की 'हत्या' के दायित्व को तय करने की इस लंबी प्रक्रिया के अंत में नगर-कोतवाल को फांसी देने का हुक्म होता है। पर सौभाग्य या दुर्भाग्य से कोतवाल की गर्दन फांसी के फंदे की तुलना में पतली है। उसे फांसी देना संभव नहीं। धर्म संकट खड़ा हो जाता है। बकरी की हत्या के मामले में किसी न किसी को तो फांसी देनी ही पड़ेगी, तभी तो न्याय होगा! राजा के आदेश से किसी मोटे व्यक्ति की तलाश में निकले सैनिक गोबर्धन दास को पकड़ कर ले आते हैं, जो टके सेर का माल खा-खा कर इस बीच काफी मोटा हो चुका है।

प्राणों पर आए संकट की इस घड़ी में वह अपने गुरुजी को पुकारता है। उसकी आर्त्त पुकार सुन कर पधारे गुरुजी उसे 'अंतिम उपदेश' देने के बहाने एकांत की मांग करके सिपाहियों से थोड़ा दूर भेजे देते हैं और उसके कान में 'गुरु-मंत्र' फूंकते हैं। इसके बाद प्रकट रूप में वे दोनों जोर-जोर से बोलने लगते हैं, ''मुझे फांसी दी जाए''... ''नहीं, मैं फांसी चढ़ना चाहता हूं''। वहां उपस्थित सैनिक व दरबारी गुरु-शिष्य के बीच शुरू हुए इस विवाद को सुनकर बहुत हैरान होते हैं। पूछने पर पता चलता है कि यह एक शुभ घड़ी है और इस घड़ी में जिसे फांसी दी जाएगी, वह सीधा बैकुंठ में जाएगा। बस फिर तो सभी सत्तावान लोग फांसी पर चढ़ने की ठान लेते हैं। सर्वाधिक सत्ता तो राजा के पास है। नाटक के अंत में राजा को उसके अपने ही आदेश के पालन-स्वरूप फांसी के तख़्ते पर चढ़ा दिया जाता है।

छह दृश्यों में विभाजित इस नाटक के प्रथम दृश्य (बाह्य प्रांत) का प्रारंभ 'राम-भजन' के साथ और अंत निम्नलिखित उपदेश के साथ होता है—

''लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।''

ये पंक्तियां तत्कालीन स्थितियों में शायद 'उपदेश' जैसी लगती होगी, परंतु वर्तमान समय में भौतिकता के प्रति बढ़ती ललक और अंधी आसक्ति को देखते हुए ये 'चेतावनी' जैसी जान पड़ती है। संभवतः भारतेंदुजी को आने वाले समय का पूर्वाभास रहा होगा।

नाटक के दूसरे दृश्य में 'बाजार ही बाजार' है। अंधेर नगरी का अंधा बाजार, जहां सब कुछ टके सेर बिकता है। चीजों का मूल्य-निर्धारण यहां उपयोगिता-उपलब्धता के आधार पर नहीं होता। क्रेता-विक्रेता दोनों इस बाजार के अंधेपन की लपेट में हैं। विवेकहीनता का यह मंजर क्या हमारी भूमंडलीकृत होती अर्थव्यवस्था के मंजर से कहीं मेल खाता नहीं दिखाई देता? साढ़े तीन सेर मिठाई खरीदने वाले गोबर्धन दास का आह्लाद 'सेल' लगने पर जरूरी-गैर जरूरी खरीदारी करने वाले वर्तमान उपभोक्ताओं की भीड़ के आह्लाद जैसा ही तो है। नहीं क्या? अंधेर नगरी के इस बाजार में कबाब, भुने चनों, नारंगी-नींबू, मिठाइयों, सब्जियों, मेवों, पाचक चूरन, मछली तथा आटा-दाल, नोन-घी, लकड़ी, चीनी, चावल के अलावा जाति धर्म की भी 'सेल' लगी हुई है। यानी यहां मानवीय सम्मान और गरिमा भी बाजार की भेंट चढ़ने को विवश है। भौतिक अर्जन के लिए हम अपने मानवीय कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हैं। बाजार के दबावों का प्रतिरोध न कर पाने के फलस्वरूप हम अपमानित होने या करने को विवश हैं। बाजार हमारे भीतर पैठता जा रहा है। भौतिक उपलब्धियों के

प्रति लोभ-लालच का संदर्भ भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या से भी जुड़ता है। सांस्कृतिक परंपरा और समझदार पूर्वजों के दीर्घ अनुभवों से प्राप्त स्वस्थ निष्कर्षों को भूल कर हम चीजों को मनुष्यों और मानवीय गुणों से अधिक महत्त्व देने लगे हैं। अंधेर नगरी के बाजार में जाकर गोबर्धन दास भी अपने गुरु की चेतावनी को भूल गया था कि लोभ-लालच अंततः व्यक्ति को जीते-जी नरक में ले जा पटकते हैं।

बाजार के इस दृश्य में कुछ तथ्यों, संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से तत्कालीन संदर्भ उभारे गए हैं। पूरे परिदृश्य से कुछ ऐसी समस्याएं भी उभर कर आती हैं, जो न्यूनाधिक परिवर्तित रूप में आज भी मौजूद हैं। बाजार के दृश्य में विभिन्न चीजों की खरीद-फरोख्त चल रही है। प्रत्येक वस्तु का विक्रय मूल्य एक समान है, परंतु सब चीजों की प्रकृति एक समान नहीं है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं के गुण और प्रभाव भिन्न-भिन्न हैं, उनके उपयोग-उपभोग की रीतियां अलग-अलग हैं। उनका उपयोग करने वालों के बीच वर्ग-भेद है। सब कुछ को एक जैसा मानने या बना डालने वाली यह व्यवस्था अन्यायपूर्ण और विवेकहीन है। विक्रेता बारी-बारी से आकर अपने उत्पादों का बखान करते हुए अंधेर नगरी पर सहज ही टिप्पणी कर जाते हैं। यों तो ये टिप्पणियां उन्नीसवीं शती के आठवें दशक के हालात और ब्रिटिश राज को अपना निशाना बनाती है, परंतु असल में इनमें से कुछ टिप्पणियां किसी भी देशकाल की अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर करारा और चुटीला व्यंग्य करने वाली टिप्पणियों का रूप ले लेती हैं।

आइए, कुछ छोटे-छोटे उद्धरणों के आधार पर इस नाटक के 'कालजयी' स्वरूप को स्पष्ट करने और समझने का प्रयास करें।

चने वाला (घासी राम)—''चना हाकिम सब जो खाते, सब पर दूना टिकस लगाते।''

यहां ब्रिटिश राज की जन-शोषक कर-नीति को निशाना बनाया गया है।

मेवे वाला मुगल (शायद अफगान)—''ले हिंदुस्तान का मेवा फूट और बैर।''

''अमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दांत खट्टा हो गया...
हिंदुस्तान का आदमी लक-लक (कमजोर),
हमारे यहां का आदमी बुंबुक-बुंबुक
(शक्तिशाली)।''

इन पंक्तियों में 'फ्रूट और बेर' शब्दों के त्वरित उच्चारण के अनुसार उनकी वर्तनी बदल कर 'फूट और बैर' कर दी गई है। और इस तरह भारतीयों के बीच आपसी फूट, जातिगत और सांप्रदायिक भेदभाव तथा वैर-भावना के कारण उत्पन्न राष्ट्रीय कमजोरी की ओर संकेत किया गया है। साथ ही उस ब्रिटिश-अफगान संघर्ष का ऐतिहासिक संदर्भ है, जिसके अंत में, जनवरी, 1842 में, लगभग सोलह हजार लोगों (लगभग साढ़े चार हजार ब्रिटिश सैनिकों और करीब बारह हजार नागरिकों) को अफगानिस्तान के पहाड़ी दर्रों में अपनी जान गंवानी पड़ी थी। जो भयानक सर्दी में जिंदा बचने में सफल हो गए थे, उनको अफगानों ने मौत के घाट उतार दिया था। ब्रिटिश दल का केवल एक व्यक्ति जिंदा बचा था। ऐसा कहा जाता है कि अफगानों ने ब्रिटिश सेना के एक सर्जन, डॉक्टर विलियम ब्राइटन को इसलिए जिंदा छोड़ दिया था कि वह इस कत्लेआम की सूचना आगे पहुंचा सके। मेवे बेचने वाले मुगल (यानी अफगान) के माध्यम से भारतेंदुजी ने उसी संघर्ष का संदर्भ प्रस्तुत किया है।

पाचक चूरन वाला—

''चूरन जब से हिंद में आया,
इसका धन-बल सभी घटाया।
चूरन ऐसा हट्टा-कट्टा,
कीना दांत सभी का खट्टा।
चूरन अमले सब जो खावैं,
दूनी रिश्वत तुरंत खाते।
...चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।
...चूरन साहब लोग खा जाते,
सारा हिंद हजम कर जाता।
...चूरन पुलिस वाले खाते,
सब कानून हजम कर जाते।''

चूरन बेचने वाले के द्वारा चूरन की खासियतें इस तरह बताई जाती हैं कि 'चूरन' शब्द बहुविध प्रतीकात्मकता से लैस हो जाता है। प्रारंभिक दो पंक्तियों में चूरन को ब्रिटिश सत्ता की तरह रेखांकित किया गया है। अगर चूरन शब्द को विस्थापित करके यहां अंगरेज शब्द रख दें तो अर्थ एकदम स्पष्ट हो जाता है

''अंगरेज जब से हिंद में आया,
इसका धन-बल सभी घटाया।
अंगरेज ऐसा हट्टा-कट्टा,
कीना दांत सभी का खट्टा।''

बाद की पंक्तियों में सारा हिंद हजम कर जाने वाले साहब लोगों (अंगरेजों) के पिट्ठुओं के रूप में सक्रिय सरकारी अमले पर, सूदखोर महाजनों पर और कानून की भक्षक पुलिस पर निशाना साधा गया है। स्वाभाविक है कि इस नाटक के वर्तमान पाठकों, दर्शकों अथवा व्याख्याकारों का ध्यान भारतेंदु-युग की परिस्थितियों या अंग्रेजों तक सीमित न रह कर आज की परिस्थितियों और आज के शोषण-तंत्र और साहब लोगों पर भी जाएगा ही जाएगा। यह इस नाटक की शक्ति है कि इसमें निहित अनेक संदर्भों की पुनर्व्याख्या अनायास ही हो जाती है।

जातीय अहंकार की बखिया उधेड़ने वाली निम्नलिखित पंक्तियां भी काबिले-गौर हैं—

जात वाला (ब्राह्मण)—''टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें/टके के वास्ते झूठी गवाही दें/टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें।''

पैसे के लिए मानवीय कर्त्तव्य और गरिमा को ताक पर रखकर झूठी गवाही देना या धन-पिपासा के दबाव में पाप-कर्म को पुण्य-कर्म मानना-मनवाना मनुष्यता की जाति (पदवी) से वंचित हो जाना है। आज के अनेक पंडित, यानी विद्वान बुद्धिजीवी अपने स्वार्थ-प्रेरित कुतर्कों से झूठ को सच तथा पाप को पुण्य

सिद्ध व घोषित करके अपना उल्लू सीधा करते दिखाई पड़ते हैं। भौतिकता की यह मार समस्त मानवीय मूल्यों और आदर्शों पर पड़ रही है।

मिठाई वाला हलवाई—''इस नगरी की चाल यही है। यहां सब चीज टके सेर बिकती है।''

''इस नगरी की चाल'' यानी इस व्यवस्था का चरित्र यही है। लोगों के विशिष्ट गुणों और क्षमताओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। सबको एक ही लाठी से हांका जाता है। भौतिक उपलब्धियों के आधार पर सबको तौला-परखा जाता है। समुदायों और संस्कृतियों की विशिष्टताओं को समाप्त करके आज का बाजारवाद भी यही कर रहा है। बाजार द्वारा विवेकवान नागरिकों को अंधे उपभोक्ताओं में परिणत किया जा रहा है। व्यक्तियों पर वस्तुएं हावी होती जा रही हैं। लगता है कि मानवीय प्रतिरोध की परंपरा अपने अंतिम दौर में है।

अपने लोभी शिष्य गोबर्धन दास से बाजार और नगर के विवरण सुनकर महंत गुरुजी 'कनक-वृष्टि' वाली इस नगरी को 'देस-कुदेस' मानते हुए यहां से तुरंत प्रस्थान करने का निर्णय ले लेते हैं। (कनक का अर्थ यहां स्वर्ण समझें अथवा धतूरा, नशा दोनों में है। इस नगरी में मनुष्य का बौराना, अहंकारग्रस्त होना स्वाभाविक है। और जिसे अहंकार ने दबोच लिया, वह अपने साधु-स्वभाव को कैसे कायम रख सकता है?) गुरुजी के इस कनक-वृष्टि वाले देस को तुरंत तज देने का निर्णय और निम्नलिखित शब्दों से भौतिकता, अनियंत्रित उपभोग और बाजारवाद के विरुद्ध एक व्यावहारिक और तीखा प्रतिकार प्रकट होता है।

''बसिए ऐसे देस नहिं, कनक-वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।''

गुरुजी और नारायण दास के प्रस्थान के साथ नाटक का तीसरा दृश्य (जंगल) समाप्त हो जाता है।

चौथे दृश्य (राजसभा) में मूर्ख और चापलूस सत्ताधारियों से सजा दरबार पाठकों/दर्शकों के सामने आता है। राजा सचमुच चौपट राजा है। घोर विलासी होने के कारण वह राजसभा में ही मद्यपान करके प्रशासनिक कार्य और 'न्याय' करता है। अहंकारी होने के नाते तर्कपूर्ण असहमतियों से जरा-सा क्षुब्ध हो जाता है। वह डरपोक भी है। उसका डरपोक होना नाटक में हास्य की सृष्टि तो करता ही है, उससे व्यंग्य भी उभरता है। उसका व्यक्तित्व प्रशासक होने के गुणों और राजा होने की गरिमा से पूरी तरह वंचित है। उसकी वाचालता से फूटता भाषाई विचलन असल में उसका बौद्धिक-वैचारिक विचलन है, जो उसके सोचने-समझने की अक्षमता का ही प्रमाण और परिमाण है। दीवार गिरने से बकरी दब कर मर गई, इसके लिए राजा दीवार को पकड़ लाने का आदेश पारित करता है। मंत्री के यह कहने पर कि दीवार नहीं लाई जा सकती, राजा का अगला आदेश है, ''अच्छा, उसका भाई, लड़का, आशना जो हो, उसको पकड़ लाओ।'' भिश्ती को संबोधित करते हुए राजा नशे के प्रभाव और मजाक के मूड़ में आकर कहता है, ''क्यों बे भिश्ती! गंगा-जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई?'' असल में यह भाषाई विचलन का उदाहरण न होकर मानसिक विचलन का उदाहरण है। फिर अगले तथा बारी-बारी से और अगले अपराधियों को पकड़ कर ले आने के तमाम आदेश भी इस चौपट राजा की विवेकहीनता की झोंक से ही निकलते हैं।

भारतेंदु ने राजा के इन भाषाई विचलनों का सर्जनात्मक उपयोग नाटकीय युक्तियों के रूप में किया है, जिससे नाटक अधिक गतिशील और लोकरंजक हो गया है। इन युक्तियों से सत्तासंपन्न वर्ग के आंतरिक छिछलेपन को उभार कर हास्य और व्यंग्य की सृष्टि की गई है।

आज देश और दुनिया के अनेक राजनेताओं के व्यवहार और वाणी संबंधी विचलनों के उदाहरण आए दिन देखने-सुनने में आते रहते हैं। बाद में सामने आने वाले बेशर्मी-भरे स्पष्टीकरण या आरोप-प्रत्यारोपों के सिलसिले मीडिया को नई-नई सनसनियां जुटाते ही रहते हैं। परिणामस्वरूप जन-क्षोभ और लोकरंजन की जुगलबंदी चलती ही रहती है।

पांचवें दृश्य (अरण्य) में गोबर्धन दास एक अधिक अनुभवी और समझदार व्यक्ति के रूप में सामने आकर गायन के माध्यम से हालात पर चुटीली टिप्पणियां तो करता दिखता है, पर यहां हमें उसकी कथनी और करनी के बीच की चौड़ी खाई भी देखने को मिलती है। तत्कालीन हालात पर की गई ये टिप्पणियां वर्तमान परिस्थितियों पर भी लागू होती हैं।

''सांचे मारे-मारे डोलैं,
छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलैं
प्रकट सभ्य, अंतर छलधारी,
सोई राजसभा बल भारी
सांच कहैं तो पनही खावैं,
झूठे बहुविध पदवी पावैं
छलियन के एका के आगे,
लाख कहो एकु नहीं लागे
भीतर होई मलिन की कारी,
चहिए बाहर रंग चटकारो
...अंधाधुंध मच्यो सब देसा,
मानहुं राजा रहत विदेसा...''

सच बोलने वाले ईमानदार लोगों को इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था में मारे-मारे फिरना पड़ता है, जूते खाने पड़ते हैं। दूसरी ओर सभ्य होने का दिखावा करने वाले कपटी लोगों को तरक्की मिलती है। नकारात्मक शक्तियां अधिक संगठित, सक्रिय और आक्रामक हैं। विवेक की आवाज उन तक नहीं पहुंचती। उनकी अपनी आत्मा से तो आवाज आती ही नहीं, क्योंकि उनके भीतर मलिनता का स्याह साम्राज्य व्याप्त है। वे दिखावे की बदौलत बाहर से चटक रंग के और खूब आकर्षक और गोरे बने रहते हैं। चारों ओर लूट का साम्राज्य है, अंधेर मचा हुआ है। प्रशासनिक

व्यवस्था को सुधारने-संभालने वाला कोई सामने नहीं आ रहा। ऐसा लगता है जैसे कि राजा स्थाई विदेश-प्रवास पर हो। भारतेंदुजी के समय में भारत का शासन ब्रिटिश संसद के बनाए कानूनों तथा ब्रिटिश महारानी व सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जा रहा था। तब के हमारे शासक भौगोलिक-मानसिक रूप से भारत के जनसाधारण से दूर थे, आज के हमारे अधिकतर शासक भी जनता की पहुंच और पुकार से परे हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि नाटक की उपर्युक्त पंक्तियों में दर्ज टिप्पणियां भारतेंदु के समय पर ही नहीं, हमारे समय पर भी लागू होती हैं।

गोबर्धन दास के इस गायन में ब्रिटिश साम्राज्य की दुर्नीतियों के संकेत तो निहित हैं ही, साथ ही इनमें हमें वर्तमान देश-काल की झलक भी मिलती है। यहां स्वयं गोबर्धन दास ऐसे 'समझदार' लोगों का प्रतिनिधि प्रतीत होता है, जो चतुर्दिक फैली बुराइयों और विकृतियों पर टिप्पणी तो करते हैं, पर स्वार्थवश किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं करते। गोबर्धन दास आज के 'समझदार सुरक्षित बुद्धिजीवी' जैसा आचरण करता है। उसका एकालाप उसकी सोच को उघाड़ता है, ''माना कि देस बुरा है, पर अपना क्या?... रोज मिठाई चाभना, मजे में आनंद रामभजन करना।''

कहने को तो वह साधु-जोगी है, पर असल में महाभोगी है। उसका समूचा व्यवहार शाब्दिक प्रतिक्रियाओं तक सीमित रहने वाले स्वार्थी व सुविधाभोगी बौद्धिकों के मन और आचरण में निहित उदासीनता को रेखांकित करता है।

छठे यानी अंतिम दृश्य (श्मशान) में गोबर्धन दास को फांसी देने की तैयारी है, परंतु अंततः राजा को फांसी की टिकठी पर चढ़ाया जाता है। उस शुभ घड़ी में फांसी चढ़ने वाले को बैकुंठ मिलेगा, इस धार्मिक अंधविश्वास से उत्पन्न पागलपन राजा को आत्महंता बना देता है। बैकुंठ जाने के लालच में वह खुशी-खुशी मौत के मुंह में चला जाता है। इस व्यंग्यात्मक नाटकीय स्थिति के द्वारा भारतेंदुजी ने परोक्षतः पारलौकिकता का निषेध करते हुए इहलौकिकता और बौद्धिकता के महत्त्व को स्थापित किया है।

अंत में 'अंधेर नगरी' के अंत के बारे में एक टिप्पणी। इस प्रहसन में नायक जैसा दिखने वाला राजा असल में तो खलनायक ही है, इसी कारण से उसकी आत्मस्वीकृत मृत्यु इस नाटक को 'त्रासदी' का रूप नहीं देती। दर्शकों को नाटक का, और इस चौपट राजा का भी, अंत सुखदाई ही लगता है। विवेकहीन, भ्रष्ट, कायर, क्रूर, मूर्ख और शोषक किस्म के शासकों के प्रति जनसाधारण और सहृदयों के भीतर जो आक्रोश और घृणा-भाव रहता है, इस अंतिम दृश्य में उसका 'कैथार्सिस' होता है। मसालेदार हिंदी फिल्मों के अंतिम दृश्यों में विलेन की धुनाई, गिरफ्तारी या फांसी जिस तरह से सामान्य दर्शकों को तालियां या सीटियां बजाने का अवसर जुटा देती हैं, उसी तरह से इस नाटक में, अंत में राजा को फांसी दिया जाना दर्शकों को संतुष्टि प्रदान करता है।

सचमुच यह नाटक शुरू से अंत तक लोकरंजक है। सत्ता के चरित्र और जन-समस्याओं के स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन न होने के कारण आज भी 'अंधेर नगरी' उतना ही लोकप्रिय और दिलचस्प है, जितना लोकप्रिय और लोकरंजक एक सौ बत्तीस साल पहले, 1881 में हुए आरंभिक मंचन के दौरान, रहा होगा। यह इसके कालजयी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है।

ई-1/32, सेक्टर-7, रोहिणी, नई दिल्ली-110085

एक यात्रा साहित्य के तीर्थ की

डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र

सन् 1988 में भारत सरकार के सांस्कृतिक विभाग ने मुझे नाट्य-कार्यशालाएं संचालित करने देश के 6 राज्यों में भेजा। मैं घर से यह संकल्प लेकर निकला कि जिस नगर में कोई विख्यात लेखक होगा, मैं वहां उनके घर जाऊंगा और चित्र खींच कर लाऊंगा। उसी क्रम में मैं वाराणसी भी गया। वहां 'भारतेंदु नाट्यशाला' में प्रातः 7 से 10 तक मुझे कार्यशाला संचालित करनी होती थी। एक दिन मैं अपनी पत्नी सहित हरिश्चंद्र भारतेंदुजी के घर जा पहुंचा। चौड़ी सी गली में दाहिने हाथ पर भारतेंदुजी की हवेली का द्वार पश्चिममुखी था। द्वार भव्य था। लगभग एक-एक फुट चौड़ी साल की लकड़ी की चौखट, जिस पर सुंदर बेल-बूंटों की कलात्मक नक्काशी हो रही थी। ऊपर एक त्रिकोणात्मक बड़ी चौखट थी। उस पर भी बहुत कलात्मक खुदाई दर्शनीय थी। हम द्वार पर पहुंचे कि अंदर एक बड़ा कक्ष था। उसमें एक वयस्क आयु का दरबान बैठा हुआ था। उसने पूछा—''किससे मिलने आए हैं?'' हमने कहा—''हम मथुरा से आए हैं। कोठी के मालिक से मिलना है।'' दरबान अंदर गया और कुछ देर बाद एक वयस्क आयु के सज्जन आए। वह हमें अंदर हाल में ले गए। वहां सोफे और कुछ कुर्सियां सजी हुई थीं। हाथ जोड़कर बोले—''बैठिए और अपने आने का प्रयोजन बताइए।'' हमने कहा—''हम भारतेंदुजी के भक्त हैं। उनसे संबंधित कुछ जानकारी चाहते हैं। आपका उनसे क्या संबंध है। पहले यह जानना चाहेंगे।'' उन्होंने अपना नाम सुरेशचंद्र गुप्त बताया। साथ ही यह भी बताया कि मैं उनके दामाद का प्रपौत्र हूं। व्यापार करता हूं, किंतु यह तो आप जानते ही होंगे कि हमारे परिवार में पुष्टि—संप्रदाय की सेवा है। आप अंदर प्रांगण में चलें तो मैं आपको श्री गिरिराजजी के दर्शन भी करा दूं। हमने मंदिर की सेवा के लिए एक पुजारी रखा हुआ है। वह पुष्टि मार्ग की सेवा— विधि से परिचित है। वही अपरस में उनका भोग-राग बनाता है। उस बड़े हाल के पूर्वी द्वार से हम एक बड़े आंगन में पहुंचे। वहां दाहिने हाथ की ओर से सज्जित कक्ष में श्री गिरिराजजी का एक श्याम शिलाखंड शृंगार सहित विराजमान था। पीछे सुंदर पिछवाई लगी हुई थी, जैसे ब्रज के मंदिरों में लगी रहती है। हमें कुछ देर को ऐसा लगा जैसे हम ब्रज में खड़े हुए हैं।

हम मंदिर में ढोक देकर पुनः पहले वाले बड़े कक्ष में आ गए। वहां उत्तरी दीवार पर श्वेत-श्याम तीन बड़े चित्र लगे थे। उनमें बीच में भारतेंदुजी का चित्र था। उनके दोनों ओर भारतेंदुजी के एक ओर उनके पिता का तथा दूसरी ओर भारतेंदुजी के दादाजी का। हम चित्र देख ही रहे थे कि बाहर से दरबान आया और बोला—''बाबू साहिब! ये जो आए हैं, इन्होंने सिंहपौर में घुसने से पहले चौखट पर भी माथा टेका था।'' सिंहपौर... शब्द का अर्थ जानने से पूर्व ही सुरेशजी बोले—''दादाजी ने प्रवेश द्वार का नाम सिंहपौर रखा था। तभी से हम इसे दरवाजा न बोल कर सिंहपौर ही बोलते हैं।''

आतिथ्य की औपचारिकताएं समाप्त होने पर हमने सुरेशजी से कहा—''हमें भारतेंदुजी के बारे में कुछ और बताइए।'' वह कुछ पल को विचारमग्न हुए फिर बोले—''हम भारतेंदुजी को आज बड़े दादाजी संबोधन करते हैं। यह तो आपको पता ही होगा कि बड़े दादाजी का विवाह 13 वर्ष की आयु में ही हो गया था। उनकी पत्नी का नाम मन्नादेवी था। उनसे उनको 2 पुत्र तथा विद्यावती नामक एक पुत्री प्राप्त हुए। दोनों पुत्र अल्पायु में ही मर गए। पुत्री विद्यावती का विवाह हमारे पूर्व वंशज ब्रजरत्नदासजी से हुआ था। विद्यावती अपने समय की बहुत सुशिक्षित महिला थी। हम लोग उसी वंश से संबंधित हैं। पूर्व परंपरा का अनुकंपा करते हुए हम भी बल्लभ-संप्रदाय को मानते हैं।''

सुरेशजी ने इधर-उधर नजर फैला कर कहा—''हम इस वक्त जहां बैठे हैं, यह बड़े दादाजी का बैठकखाना था। यहीं पर वे साहित्यकार-कवियों आदि के साथ बैठकर साहित्य चर्चा किया करते थे। उनके दो बाग भी शहर के पश्चिमी किनारे पर थे। गली में तीन मकान और थे। हमने अपने बड़े-बूढ़ों से सुना है कि बड़े दादाजी के जीवन के पिछले दिन धनाभाव में बीते और उन्होंने धीरे-धीरे पहले अपनी संपत्ति बेची, अंत में उन्होंने बाग भी बेच डाले, लेकिन हमारे पिताजी ने भारतेंदुजी का मान रखते हुए एक बड़ावाला बाग वर्तमान में देकर खरीद लिया है और उसका नाम 'भारतेंदु वाटिका' रखा है।''

पंद्रह वर्ष की आयु में बड़े दादाजी अपनी पत्नी सहित जगन्नाथ पुरी की यात्रा पर गए थे। वहां से कलकत्ता गए। वहां उन्होंने कोई बंगला नाटक देखा। उस नाटका का उन पर बहुत प्रभाव हुआ। कालांतर में उन्होंने संस्कृत नाटक 'चौर पंचाशिका' का हिंदी में

'विद्या सुंदर' के नाम से अनुवाद किया। बड़े दादाजी के साहित्य को संभालने और उसे व्यवस्थित करने का श्रेय बड़े दादाजी के छोटे मामा ब्रजचंद्रजी को है।

हमने बड़े बुजुर्गों से सुना है कि हमारे परदादा ब्रजरत्नदासजी से पूर्व भारतेंदुजी के फुफेरे भाई राधाकृष्णदासजी, जो भारतेंदुजी से आयु में 43 वर्ष छोटे थे। उन्होंने भारतेंदुजी कृत साहित्य को संवारना प्रारंभ कर दिया था। हमारे परदादा तो पढ़ाई में संलग्न थे। उन्होंने पहले प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। तदनंतर काशी विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. कर काशी में वकालत करने लगे। राधा कृष्णदासजी ने भारतेंदुजी का साहित्य संवार कर ब्रजरत्नदासजी को दिखाया। उन्होंने खडगविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना से बात करके उस साहित्य को दो भागों में प्रकाशित कराया। कहते हैं कि भारतेंदुजी जिन कलमों से लिखते थे, स्याही की दो दवातें उनके लिखने की डैस्क, उनके कुछ पुराने वस्त्र, चांदी के मूंठ की बेंत तथा बाद में उनके द्वारा लिखित रचनाएं नागरी प्रचारिणी सभावाले अपने संग्रहालय के लिए ले गए थे।

हमने जिज्ञासावश पूछा—''अब भारतेंदु से संबंधित कोई अवशेष आपके पास नहीं है?'' सुरेशजी ने कहा—''मैं आपको वह स्थान दिखा सकता हूं, जहां बैठकर वह साहित्य लिखा करते थे। बड़े-बूढ़ों से सुना है कि उनके लिखने के दो कमरे थे। दिन में और रात में वह अलग कमरों में बैठकर लिखते थे।'' उसके बाद सुरेश बाबू हमें आंगन में ले गए। वहां पूर्व की दीवार में एक बड़ा द्वार था। उसे खोला तो एक लंबा पटाहुआ वरांडा था। उसमें आगे बढ़े तो तीन कमरे दाहिनी ओर तीन कमरे बांयी ओर थे। अंत में एक द्वार था। उसे खोला तो पीछे बहुत बाड़ा था। सुरेशजी ने बताया कि इस बाड़े में हमारे पूर्वजों की यहां बग्घी रहती थी। उसका निकास दशाश्वमेध घाट की ओर रहता था।

उस वरांडे में दाहिनी हाथ के दो कमरे भारतेंदुजी के लेखन के थे। सुरेशजी ने बताया कि सुना है बड़े दादाजी दिन में पहले कमरे में बैठकर लिखते थे, उसमें दो बड़े जंगले थे। रात्रि को वह दूसरे कमरे में बैठकर लिखते थे। कहते हैं घर में एक इटेलियन गोल लैंप था, जिसका प्रकाश बहुत होता था। उस लैंप को भी नागरी प्रचारिणी सभा वाले ले गए।

हमने सुना है कि बड़े दादाजी अर्थात् भारतेंदुजी के साहित्य के संरक्षण में उनके छोटे मामा ब्रजचंद्रजी का बड़ा योगदान है। वह प्रायः घर आते-जाते रहते थे। भारतेंदुजी के स्वर्गवासी होने के बाद उनकी पत्नी मन्नादेवी ने करीब 45 वर्ष वैधव्य का जीवन बिताया। अच्छी बात यह हुई कि भारतेंदुजी के छोटे मामा ब्रजचंद्रजी प्रायः अपनी भांजी विद्यावती का कुशल-क्षेम पूछने घर आते रहते थे। उन्हीं ने भारतेंदुजी का साहित्य संभाला। तब तक जो भी साहित्य प्राप्त हुआ उसे उन्होंने खडगविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना से दो भागों में प्रकाशित करा दिया था। कालांतर में भारतेंदुजी के दामाद बाबू ब्रजरत्नदासजी ने उसे देखा और पुनः व्यवस्थित कर उसका पुनः प्रकाशन कराया।

बात ही बातों में कई घंटे बीत गए। हम फिर उठे, हमने हाथ जोड़े और कहा—''कभी मथुरा पधारिए। पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी की विश्रामघाट की बैठक हमारे मकान से लगी हुई है। हमारा तीर्थ आपका मकान है। हमने आज इसकी रज का स्पर्श कर स्वयं को धन्य कर लिया। आज हमारे जीवन की यह उपलब्धि हमें सदा स्मरण रहेगी।''

हम द्वार की ओर घूमे, सुरेशजी द्वार तक आए। हाथ जोड़कर परस्पर अभिवादन हुआ और हम मैदागिन स्थित पराडकर अतिथि गृह में लौट आए। हमें आयोजकों ने मैदागिन स्थित पराडकरजी की स्मृति के बने अतिथि गृह में ठहराया था। मैदागिन मोहल्ला नगर के मध्य में था। अतिथिगृह भी बहुत बड़ा था। उस दिन को हमने सार्थक और महत्त्वपूर्ण दिन माना, क्योंकि हमने भारतेंदुजी के घर की यात्रा कर ली थी।

14, नागेश्वर कालोनी,
महाबल, जलगांव–425002

हिंदी के युगप्रवर्तक साहित्यकार

डॉ. परमानंद पांचाल

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के इतिहास के युगप्रवर्तक साहित्कार हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को रीतिकाल की रूढ़ियों, कृत्रिमता, जकड़न और विलासिता की परिधि से मुक्ति दिलाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। हिंदी भाषा को नए परिवेश में ढालकर प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त किया। वे हिंदी साहित्य के ऐसे मोड़ पर खड़े हैं जहां रीतिकाल की श्रृंगारिक बोझल काव्यधारा का प्रवाह मंद हो रहा होता है और आधुनिक राष्ट्रीय विचारधार का स्रोत प्रस्फुटित होकर बह निकलता है। उनके पूर्ववर्ती रीतिकाल के कवियों के पास तो श्रृंगार से इतर मानो कोई भी रस साहित्य में रह ही नहीं गया था। इनसे पूर्व भक्तिकालीन कवियों ने यदि अपनी संपूर्ण प्रतिभा भगवान की स्तुति में लगाई, तो रीतिकालीन कवियों ने राजाओं, जागीरदारों और सामंतों की प्रशंसा में व्यय किया। भौतिक कष्टों से मुक्ति दिलाने का उपाय न तो भक्तिकालीन कवियों ने किया और न ही रीतिकालीन भाटो ने। भारतेंदु ने इसे बदलने का सर्वप्रथम प्रयास किया। उन्होंने भाव, भाषा एवं शैली तीनों को बदलने तथा हिंदी साहित्य को नए ढांचे में ढालने की आवश्यकता को समझा। भावों के रीतिकालीन ढंग को रोककर राष्ट्रीय भावों का नया स्रोत बहाने का सर्वप्रथम प्रयास किया और हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। उनके इस काल को हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु युग कहा जाता है।

भारतेंदु ने साहित्य के सभी विषयों, प्रायः सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। मूल रचनाएं तो की ही, अनुवाद भी किए। वे एक सफल गद्य लेखक, उच्चकोटि के कवि और प्रभावशाली नाटककार थे। उन्होंने अपने नाटकों का चयन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से किया है। किसी में देश की दुर्दशा का चित्रांकन है तो किसी में पाखंड का पर्दाफाश है। किसी में राजनीति के नाम पर होने वाले कुचक्रों को दर्शाया है तो कहीं आदर्श जीवन और राष्ट्र प्रेम है। भारतेंदु ही हिंदी के पहले कवि हैं, जिनका स्वर सर्वप्रथम साहित्यिक क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना के उद्घोष के साथ सुनाई पड़ता है। वे कहते हैं–

''आवहु सब मिल टोहऊ भारत भाई
हा, हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।''

एक अन्य स्थान पर वे अंग्रेजी राज के विरोध में स्पष्ट जनता का आह्वान करते हैं कि इनके कारण भारत का धन विदेश जा रहा है–

''अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पैं धन विदेश चलि जात, यहे अति ख्यारी।''

पं. रामचंद्र शुक्ल ने उनकी बहुमुखी प्रतिभा के संबंध में लिखा है–''अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर एक ओर तो वे पद्माकार और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल और हेमचंद्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तमाल गूंथते दिखाई देते हैं। तो दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंसी उड़ाते और स्त्री-शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुंदर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुर्य है।'' (हिंदी साहित्य का इतिहास–पृष्ठ-423)

भाषा और साहित्य का जो आदर्श भारतेंदुजी ने स्थापित किया, वही भविष्य में सर्वमान्य हुआ। कहना न होगा वे अपने आप में एक संस्था थे। उन्होंने अपने साथी कवियों की एक टोली तैयार की। हिंदी के अनेक कवि और लेखक उनके घनिष्ठ मित्र थे। पं. बद्रीनारायण चौधरी, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास दास, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. अंबिका प्रसाद व्यास तथा पं. राधाचरण गोस्वामी जैसे लेखकों ने हिंदी साहित्य के इस नवीन विकास में उनका सहयोग किया।

भाषा और साहित्य दोनों पर उनकी दृष्टि थी। उन्होंने एक ओर जहां भाषा को निश्चित रूप प्रदान किया, तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य को भी नई दिशा दी। हिंदी में कविता आरंभ में उन्होंने ब्रज भाषा में ही की, किंतु कालांतर में वे खड़ी बोली की ओर उन्मुख हुए और हिंदी को व्यापक तथा राष्ट्रीय आधार प्रदान किया और आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता बने। राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करने में यह उनकी ऐतिहासिक भूमिका मानी जाएगी। भारतेंदु का भाषा प्रेम उनके देश के साथ जुड़ा था। उन्होंने कहा था–

''निज भाषा उन्नति अहे,
सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के,
मिटे न हिए को शूल।।''

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उस समय

कोई पत्रिका नहीं थी। उन्होंने इस अभाव की पूर्ति के लिए कई पत्रिकाएं भी निकाली, जिनमें प्रमुख हैं—कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र-मैगजीन आदि। यह उन्हीं के प्रयासों का सुफल था कि उर्दू के प्रचार के होते हुए भी उन दिनों हिंदी साहित्य के पाठक भी धीरे-धीरे तैयार होने लगे। यह उन्हीं का प्रभाव था कि कविता राज-प्रासादों की संकीर्ण सीमाओं से बाहर आ जन जीवन के साथ संबद्ध हो गई। अब कविता का विषय देश की विभिन्न दशाओं का चित्रण हो गया। हिंदी कविता जन सामान्य से जुड़ गई और भविष्य में इसे राष्ट्र भाषा के रूप में अपनी पहचान बनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिसका प्रभाव राष्ट्रीय आंदोलन की भाषा के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है। यदि हम इनके इस योगदान को डां. राम गोपाल शर्मा 'दिनेश' के शब्दों में एक वाक्य में कहें तो कह सकते हैं—वे भारतीय नवजागरण के अग्रदूत थे।

इन्होंने अपनी रचनाओं में देश की तत्कालीन समस्याओं, बुराइयों और बेकारी पर खुले शब्दों में चोट की। अंग्रेजी भाषा के अनावश्यक प्रचार को देखकर उनका कवि हृदय चीत्कार कर उठा और अमीर खुसरो की शैली में लिखी अपनी कह मुकरनियों के माध्यम से व्यक्त किया। उनकी ये कह मुकरनियां दृष्टव्य है—

''तीन बुलाए, तेरह आवै।
निज-निज विपता रोई सुनावे
आंखों फूटे भरा न पेट,
क्यों सखि साजन, नहिं ग्रेजुएट।।''

अंग्रेजी और अंग्रेजों के प्रति उनकी भावना राष्ट्र प्रेम से जुड़ी थी। इसे वे एक अन्य मुकरनी के माध्यम से कह भी गए—

''भीतर-भीतर सब रस चूसे
हंसि-हंसि के तन मन धन मूसे
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि साजन, नहिं अंग्रेज।।''

7 जून, 1874 को 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित उनकी इन पंक्तियों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे विदेशी वस्त्रों और विदेशी भाषा के कितने विरोधी थे। उन्होंने लिखा था—'भाइयो। अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोंक कर इनके सामने-खड़े हो जाओ। देखो भारत वर्ष का धन देश के बाहर न जाने पाए, वह उपाय करो।' गांधीजी को शायद आगे चलकर उन्हीं के सीख पर कपड़ों की होली जलाने को प्रेरणा मिली थी।

आचार्य क्षेमचंद्र 'सुमन' ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दिवंगत हिंदी सेवी' में उनके विषय में लिखा है कि ''भारतेंदु हरिश्चंद्र उत्कृष्ठ साहित्यकार होने के साथ-साथ भारतीय मनीषा को चैतन्य प्रदान करने वाले ऐसे प्रेरणा-बिंदु थे, जिनके कार्यकर्ताओं के प्रभाव से आज समग्र देश में राष्ट्रभाषा हिंदी का पावन संदेश प्रसारित हो रहा है।''

भारतेंदु जहां एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त लेखक, सफल नाटकार, जागरूक पत्रकार और जीवंत गद्यकार थे, वहीं राष्ट्रीय जागरण की चेतना जगाने में भी अग्रणी थे। अपनी लघु आयु (1850-1885) में ही उन्होंने हिंदी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में जो योगदान दिया है वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

6 जनवरी, 1885 को दुर्भाग्य से युवा अवस्था में ही उनका देहावसान हो गया। स्मरण रहे कि 1885 में ही भारतीय कांग्रेस का जन्म हुआ था। वे भारतीयों को स्वदेश प्रेम और स्वभाषा प्रेम का ऐसा सूत्र दे गए, जिस पर चलकर ही भारत उन्नति के शिखर पर अग्रसर हो सकता है।

भारतेंदुजी ने अपनी काव्य प्रतिभा का आरंभ तो परंपरागत ब्रजभाषा की शैली पर ही किया, किंतु कालांतर में उन्होंने अपने लेखन को उदार बनाया और उसे राष्ट्रप्रेम के साथ जोड़ दिया। आरंभ में उन्होंने भी अपने समकालीन शायरों की अदबी दुनिया में चरण रखे और 'रसा' उपनाम से शेर और ग़ज़लें लिखी, जिनकी संख्या लगभग पौने दो सौ हैं। इनमें खड़ी बोली के प्रयोग के दर्शन होते हैं। उनकी एक ग़ज़ल ये शेर दृष्टव्य हैं—

''कोई जाकर कहें यह
आखिरी पैगाम उस बल से
अरे आ आ अभी दम
तन में बाकी है, सिसकते हैं।
रसा की है तलाशे यार
में यह दस्ते-पैमाई,
कि मिस्ले शीशा मेरे पांव
के छाले अलकते हैं।''

यद्यपि उन्होंने अपनी काव्य रचना के लिए ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया था, फिर भी खड़ी बोली का मार्ग उनकी इन रचनाओं से प्रशस्त होने में अवश्य सहायता मिली। काश कि वे और अधिक समय तक जीवित रहते तो हिंदी का मानक रूप उन्हीं के समय में स्थिर हो गया होता।

भारतेंदु की हिंदी की रचनाओं की संख्या बहुत विशाल है इनमें नाटक, काव्य, इतिहास और धर्म-ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक स्फुट रचनाएं भी सम्मिलित हैं। आचार्य क्षेमचंद्र सुमन ने 'दिवंगत हिंदी सेवी' ग्रंथ के प्रथम खंड में उनकी एक विस्तृत सूची दी है, जिसे यहां उद्धत किया जाना समीचीन होगा।

प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं—नाटक 'विद्यासुंदर' (1868), 'रत्नावली' (1868), 'पाखंड-विडंबन' (1872), 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873), 'धनंजय विजय' (1873), 'मुद्राराक्षस' (1978), 'सत्य हरिश्चंद्र' (1875), 'प्रेम योगिनी' (1875), 'विषस्य विषमौषधम्' (1876), 'कर्पूर मंजरी' (1875), 'श्री चंद्रावली' (1876), 'भारत दुर्दशा' (1880), 'भारत जननी' (1877), 'नीलदेवी' (1881), 'दुर्लभ बंधु' (1880), 'अंधेरी नगरी चौपट राजा' (1881), 'सती प्रताप' (1883), 'नाटक, काव्य—'भक्ति सर्वस्व' (1870), 'प्रेममालिका' (1871), 'कार्तिक स्नान' (1872), 'वैशाख माहात्म्य' (1872), 'प्रेम सरोवर' (1873), 'प्रेमाश्रवर्षण' (1873), जैन कुतूहल (1873), प्रेम-माधुरी (1875), प्रेम-तरंग

(1877), उत्तरार्द्ध भक्तमाला (1876-77), प्रेम प्रलाप (1877), गीतगोविंदानंद (1877-78), सतसई-सिंगार (1875-78), होली (1879), मधुकुकल (1880), राग-संग्रह (1880), वर्षा विनोद (1880), विनय-प्रेम-पचासा (1880), फूलों का गुच्छा (1882), प्रेम फुलवारी, (1883), कृष्ण चरित्र (1883), श्रीअल-वरत वर्णन अंतर्लापिका (1861), श्री राजकुमार सुस्वा-गत पत्र (1869), देवी छपलीला (1873), प्रातः स्मरण मंगल पाठ (1873), दैन्य प्रलाप (1873), उरहना (1873), तंम-लीला (1873), दान-लीला (1873), रानी छपलीला (1876), बसंत होली (1874), मुंह दिखावनी (1874), प्रबोधिनी (1874), प्रात-समीरन (1874), बकरी-विलाप (1874), स्वरूप-चिंतन (1874), श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन (1875), भारत भिक्षा (1875), सर्वोत्तम स्तोत्र (1876), निवेदन-पंचक (1876), मानसोपायन (1877), प्रातः स्मरण स्तोत्र (1877), हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान (1877), अपंवर्गदाष्टक (1877), मनोमुकुलमाला (1877), वेणुगीति (1877), श्रीनाथ स्तुति (1877), अपवर्ग पंचक (1877), पुरूषोत्तम पंचक (1877), भारत-सीरत्व (1878), श्री सीता-बल्लभ स्तोत्र (1879), श्रीरामलीला (1879), भीष्म-स्तवराज (1879), मानलीला फूलबुझौवल (1879), बंदर सभा (1879), विजय बल्लरी (1881), विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती (1882), नए जमाने की मुकरी (1884), जातीय संगीत (1884), निपनाष्टक (1884), इतिहास-अग्रवालों की उत्पत्ति (1871), चरितावली (1871-80), पुरावृत-संग्रह (1872-74 तथा 82), अष्टादश पुराणों की उपक्रमणिक (1875), महाराष्ट्र देश का इतिहास (1875-76), दिल्ली-दरबार-दर्पण (1877), उदयमरादय (1877), खत्रियों की उत्पत्ति (1878), बूंदी का राजवंश (1882), कश्मीर-कुसुम (1884), बादशाह दर्पण (1884), कालचक्र (1884), रामायण का समय (1884), पंचपवित्रात्मक (1884), धर्मग्रंथ-कार्तिक-कर्म-विधि (1872), कार्तिक-नौमित्तिक कृत्य (1872), मार्गशीर्ष महिमा (1872), माघ-स्नान-विधि (1873), पुरुषोत्तम मास विधान (1873-74), भक्तिसूत-वैजयंती (1873-74), वैष्णव सर्वस्व (1875), वल्लभीय सर्वस्व (1875), तदीय सर्वस्व (1874-76), श्रीयुगल सर्वस्व (1876), उत्सवावली (1876-77), वैष्णवता और भारतवर्ष (1877), हिंदी कुरान शरीफ (1875-77), ईशु खृष्ट और ईश कृष्ण (1879), श्रुतिरहस्य (1876), दूषणमालिका अन्य स्फुट रचनाएं-मदाल-सोपाख्यान (1876), राजसिंह एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग-बीती, पांचवां पैगंबर (निबंध), स्वर्ग में विचार सभा (निबंध), परिहासिनी (चुटकुलों का संग्रह), संगीत-सार (1875), बलिया में व्याख्यान (1877), तहकीकात पुरीकी तहकीकात (1871), सीतावर निर्णय, कृष्ण भोग (1884), स्तोत्र पंचरत्न, सरिहासात्मक गद्य-पचमय (लेख) हिंदी भाषा (लेख) आदि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य को प्रगति की नई दिशा देने में भारतेंदु हरिश्चंद्र का जो ऐतिहासिक योगदान रहा, उसके लिए वे सदा स्मरणीय रहेंगे। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिंदी भाषा को खड़ी बोली की ओर उन्मुख कर इसे एक मानक रूप देने का मार्ग प्रशस्त किया।

232-ए, पाकेट-1, फेज-1,
मयूर विहार, दिल्ली-110091

आधुनिक भारतीय साहित्य के युग निर्माता—भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा वीरेशलिंगम पंतुलु—हिंदी तथा तेलुगु के संदर्भ में

डॉ. बालशौरि रेड्डी

भारतीय संस्कृति का मूलभूत सिद्धांत विविधता में एकता के तत्त्वों का अन्वेषण करना है। साथ ही हमारी सांस्कृतिक परंपरा अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप में चली आ रही है और विविध धर्मों एवं दर्शनों के सिद्धांतों को आत्मसात करते हुए एक समन्वयात्मक संस्कृति को विकसित करना भारतीय मनीषा का लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य को प्राप्त करना हमारे वाङ्मय का अभीष्ट रहा है। संभवतः इसी तथ्य को दृष्टिगत रखकर हमारे राष्ट्र के विख्यात चिंतक एवं साहित्यदृष्टा डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने एक समारोह में व्याख्यान देते हुए कहा था—भारतीय वाङ्मय एक है, जो विविध भाषाओं में रचा गया है। उसका तात्पर्य यह हुआ है कि वैचारिक दृष्टि से हमारे चिंतन में जो साम्य है, वह सारस्वत सृजन में प्रतिबिंबित हुआ है। इस आलोक में भारत की दो समृद्ध भाषाओं—हिंदी तथा तेलुगु के दो विख्यात सारस्वत मनीषियों के कृतित्व का अनुशीलन यहां पर प्रस्तुत है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के समर्थन में भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जो योगदान दिया, वही तेलुगु साहित्य के उन्नयन में कंदुकूरी वीरेशलिंगम पंतुलु ने अकेले ही दिया है। इन महानुभावों का प्रादुर्भाव उस संधि-युग में हुआ था, जब प्राचीन एवं नवीन विचारधाराओं तथा प्रवृत्तियों का संगम बना हुआ था।

भारत में नवजागरण की शंख ध्वनि बज उठी। ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ राजा राममोहन राय ने भारतीय समाज में प्राचीन संप्रदायों में आमूलचूल परिवर्तन करके नवयुग के श्रीगणेश का मार्ग प्रशस्त किया। पुरानी रूढ़ियों तथा मान्यताओं को गिराकर नई सोच, नई विचारधारा का सूत्रपात किया। परिणामस्वरूप भारतीय समाज में सुधार और परिवर्तन का बीजारोपण हुआ। इस समाज-सुधार का साधन साहित्य बना।

भारतेंदु के पूर्व ब्रजभाषा में साहित्य का सृजन हुआ था। आपने खड़ी बोली को अपना कर उसमें गद्य की विविध विधाओं में सफलतापूर्वक सृजन एवं अनुवाद किया। वीरेशलिंगम पंतुलु ने अपने समय में प्रचलित तत्सम बहुल साहित्यिक भाषा को त्याग कर जनभाषा का आंदोलन चलाया था। इस प्रकार हिंदी और तेलुगु सरल, सुबोध लोकभाषा को इन दोनों महारथियों ने साहित्यिक भाषा न बनाकर जनभाषा में साहित्य रचा। उन दिनों में ग्रांथिक भाषा के स्थान पर व्यावहारिक भाषा यानी लोकभाषा को इन दोनों महारथियों ने साहित्यिक भाषा का स्वरूप प्रदान किया। यह दोनों भाषाओं के लिए बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। भारतेंदु और वीरेशलिंगम पंतुलु ने सर्वप्रथम पत्रिकाएं प्रकाशित कर महिलाओं में साक्षरता का अभियान चला कर कुरीतियों तथा अंधविश्वासों के विरुद्ध लड़ने का आत्मविश्वास पैदा किया। उनके समय में बाल विवाह, वृद्ध विवाह, सहगमन तथा दहेज प्रथा विकराल रूप धारण कर समाज के विकास में प्रतिबंध बने हुए थे। इस प्रकार सदियों से समाज द्वारा पीड़ित नारी समाज के उद्धार करने का सफल प्रयास हुआ।

भारतेंदु ने नारी समाज को शिक्षित बनाने के विचार से 'बाल बोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। साथ ही 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन करके हिंदी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। कवि गोष्ठियां चलाकर कवियों को जहां प्रोत्साहन दिया, वहां अपने पत्रों में उदीयमान लेखकों की रचनाएं प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहन दिया।

वीरेशलिंगम पंतुलु ने राजमहेंद्री तथा धवलेश्वरम में कन्या पाठशालाएं स्थापित कर रूढ़िवादियों द्वारा चलाए गए नारी शिक्षा के विरुद्ध आंदोलन का मुंहतोड़ जवाब दिया। उन्होंने कहा—''सभी अच्छे पदार्थों का यदि हम उचित रूप में प्रयोग करना नहीं जानते तो हानियां होने की संभावना बनी रहती है। ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को अन्न देने से यदि पेट में विकार पैदा होता है तो इस कारण स्वस्थ लोगों को अन्न ग्रहण करने से रोकना कहां तक बुद्धिमानी है।'' इस प्रकार एकाध शिक्षित महिला ने प्रेम पत्र लिखने में अपनी शिक्षा का दुरुपयोग किया है तो इसका तात्पर्य नारी समाज को शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रखना मूर्खता होगी या अशिक्षिता ने अज्ञानवश चाकू से गला काट लिया हो अथवा कुंए में कूदकर आत्महत्या कर ली हो तो चाकू के प्रयोग में निषेध लगाना और कुंए को मिट्टी से भर देने की सलाह देना असंगत है।

'सतीहित बोधिनी' पत्रिका के माध्यम से नारी समाज में व्यावहारिक ज्ञान, शिष्टाचार, आरोग्य विधि, शिशु पोषण, पारिवारिक शिक्षा तथा अपने चरित्र को पवित्र बनाए

रखने की प्रेरणा देने के विचार से पंतुलुजी ने 'सत्यवती चरित्र' नाम से एक अत्यंत उपयोगी पुस्तक लिखी, वह पुस्तक प्रामाणिक होने के साथ लोकप्रिय भी हुई। परिणामस्वरूप अंग्रेजी, तमिल, कन्नड़ भाषाओं में भी इसका रूपांतर हुआ। साथ ही पंतुलु ने धर्मनीति तथा सदाचार संबंधी साधारण ज्ञान कराने के विचार से 1884 में 'चंद्रमति देवी चरित्र', 'सत्य संजीवनी' आदि लिखी। विदेशी महिलाओं में विशेष ख्याति प्राप्त ग्रेस डार्लिंग, जोन आफ आर्क, एलीजाबेथ, लेडीजान ग्रे, आदि की जीवनियां उत्तम चरित्र के नाम से प्रथम खंड में प्रकाशित कीं। प्रसिद्ध पौराणिक महिलाओं की जीवनियों के साथ विक्टोरिया महारानी की जीवनी भी प्रकाशित की।

महिलाओं को न केवल साक्षर बनाना पंतुलुजी का लक्ष्य था, अपितु उन्हें उत्तम माता के रूप में भी वे देखना चाहते थे। इस विचार से प्रेरित हो अपने 'स्त्री नीति दीपिका', 'पत्नीहित सूचना', 'सतीहित बोधिनी', 'धर्म बोधिनी', 'मातृपूजा', 'पितृपूजा', 'सत्य द्रौपदी संवादम्', 'सतीमणि विजयमु', 'चमत्कार रत्नावली' आदि अनेक महिलापयोगी पुस्तकें लिखीं।

भारतेंदु तथा वीरेशलिंगम दोनों युगप्रवर्तक थे। नवजागरण हेतु दोनों ने अपने प्रदेशों की भाषा एवं साहित्य को साधना बनाया। युगीन समस्याओं को आत्मसात करके नव-समाज का निर्माण करके युग निर्माता बने। कविता, नाटक, निबंध, उपन्यास तथा पत्रकारिता के माध्यम से अपने-अपने प्रदेशों की जनता में जागृति के साथ नवजीवन का संचार किया।

दोनों जनता के हितैषी मार्गदर्शक थे। भारतेंदु की कविता में प्राचीन एवं नवीन काव्यादर्शों तथा प्रवृत्तियों का संचार हुआ है। रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर भारतेंदु ने राधा कृष्ण को केंद्र बनाकर शृंगार रस प्रधान कविताएं रचीं, उनमें 'प्रेम तरंग' तथा 'प्रेम फुलवारी' संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गीतिकाव्य की परंपरा में भारतेंदु का योगदान अविस्मरणीय है। उनके गीतों की संख्या लगभग डेढ़ हजार बैठती है।

गद्य ब्रह्मा नाम से विख्यात पंतुलुजी ने गद्य की प्रायः समस्त विधाओं का श्रीगणेश किया और उन विधाओं को ऊंचाइयों तक पहुंचा दिया। परंतु काव्य के क्षेत्र में उनका योगदान सामान्य माना जाएगा। भारतेंदु की भांति पंतुलु भी तेलुगु कविता की प्राचीन परंपरा के पोषण में रामायण, महाभारत तथा शृंगार नैषध को कथावस्तु बनाकर ठेठ तेलुगु भाषा में 'शुद्दारोत्तर निर्वचन', 'नैषधमु' का प्रणयन' किया। नैषधमु का तेलुगु साहित्य जगत में ऐसा स्वागत हुआ कि वह विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तक बनी। रसिक मनोरंजनमु, गोपाल शतक, मार्कंडेय शतक आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। 'सरस्वती विलाप' पंतुलुजी की काव्य कृति है, जो पूर्व एवं परवर्ती शैलियों का केंद्र बिंदु है।

पंतुलुजी तेलुगु के साथ संस्कृत, अंग्रेजी के प्रकांड विद्वान थे। उन्होंने अंग्रेजी के विख्यात कवि गोल्डस्मिथ की कृति 'द ट्रैवलर' को 'पथिक विलास' नाम के रूपांतर से तेलुगु में अनुवाद किया। उसके साथ उन्हीं के द्वारा रचित 'विकार आफ वेकफील्ड' का रूपांतर तेलुगु में 'राजशेखर चरित्र' नाम से प्रथम उपन्यास प्रस्तुत किया। यह उपन्यास ऐसा मौलिक प्रतीत हुआ कि अंग्रेजी के एक विद्वान ने पुनः इसका रूपांतर 'फार्चूनव्हील' (भाग्यचक्र) नाम से अंग्रेजी में किया। मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'द हिंदु' ने इस पर टिप्पणी प्रकाशित की। राजशेखर चरित्र ने तेलुगु साहित्य में एक नए युग का श्रीगणेश किया है। 'लंदन टाइम्स' ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। बाद में इसका रूपांतर तमिल, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाओं में भी हुआ। इन पंक्तियों के लेखक ने उसी नाम से हिंदी में अनुवाद किया, जो सेतु प्रकाशन, झांसी से प्रकाशित है।

भारतेंदु तथा वीरेशलिंगम पंतुलु ने अपनी-अपनी भाषाओं में मौलिक नाटकों का सृजन किया। साथ ही बांग्ला, संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटकों का भी रूपांतर किया और असंख्य प्रहसनों की भी रचना की। इन दोनों की दृष्टि में साहित्य का प्रयोजन न केवल ज्ञान-विज्ञान एवं मनोरंजन ही था, साथ ही समाज का कल्याण भी रहा है।

नाटक के क्षेत्रों में भारतेंदु एवं पंतुलु का योगदान अप्रतिम है। उनके मौलिक नाटकों में सत्य हरिश्चंद्र, चंद्रावली, नील देवी, प्रेमयोगिनी, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, विषस्य विषमौषधम् आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका 'सती प्रताप' नाटक अधूरा है। इनके नाटक मनोरंजन के साथ जनता की रुचि को परिष्कृत करने में सक्षम प्रमाणित हुए हैं और मंचन की दृष्टि से सफल सिद्ध हुए हैं।

भारतेंदु ने प्रहसन भी लिखे, जिनमें 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' तथा 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' को विशेष जनादर प्राप्त है। नाटकों द्वारा भारतेंदु ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, दुर्वसनों तथा पाखंड की बुराइयों को दर्शाते हुए उनका खुल कर खंडन किया है।

पंतुलुजी के समय में गांव-गांव में जनता में नाटक देखने की तीव्र अभिरुचि व्याप्त थी। इससे प्रेरणा पाकर उन्होंने 1880 में श्रीहर्ष चरित, रत्नावली आदि संस्कृत नाटकों का तेलुगु में चंपू शैली में रूपांतर किया। इन नाटकों का धारवाड़ की नाटक कंपनी ने सफलतापूर्वक मंचन किया। इसके उपरांत आपने अंग्रेजी से शेक्सपियर कृत 'कामेडी ऑफ एरर्स' (वेनिस वर्तक चरित्र) का तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया, जो अनेक बार सफलतापूर्वक विभिन्न शहरों में मंचित हुआ। पंतुलुजी ने कालिदास रचित 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' नाटक का ऐसा सफल अनुवाद किया कि तेलुगु का मौलिक नाटक सा प्रतीत हुआ। कालांतर में आपने शेरीडान कृत 'द ड्यूरना' का अनुवाद 'राग मंजरी' नाम से किया तथा 'द राइवल्स' का 'कल्याण कल्पवल्ली' नाम से प्रस्तुत किया।

स्त्री-पुनर्विवाह आंदोलन को बल प्रदान करने के विचार से आपने 'विवेक दीपिका' नाम

से तीन अंकों वाला नाटक रचा। पितृभक्ति प्रधान प्रह्लाद नाटक के साथ 'दक्षिण गोग्रण', 'प्रबोध चंद्रोय', 'मालविकाग्निमित्र' आदि अनेक नाटक लिख कर आपने अनेक बार इनका मंचन भी कराया।

पंतुलुजी के मौलिक नाटकों में करुण रस प्रधान हरिश्चंद्रोपाख्यान अत्यंत लोकप्रिय हुआ। सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन हेतु आपने अनेक प्रहसनों की रचना की, जिनमें विशेष जनादर प्राप्त प्रहसन हैं—तिर्विग्जंनु, महासभा, महाराणापुराधिपत्यम, महाबधिर प्रहसन, विचित्र विवाह प्रहसन, कलहप्रिय प्रहसन, महावंचक प्रहसन, असहाय शूर प्रहसन, योग निद्रा प्रहसन इत्यादि।

भारतेंदु ने वीरेशलिंगम की भांति संस्कृति से कर्पूरमंजरी, रत्नावली, मुद्राराक्षस, धनंजय विजय, पाखंड विजय आदि नाटकों का अनुवाद किया। बांग्ला से अनूदित विद्या सुंदरी नाटक अधिक सफल प्रमाणित हुआ है।

भारतेंदु तथा वीरेशलिंगमजी अपने समय के अग्रदूत रहे हैं। यही कारण है कि ये दोनों तत्कालीन समाज-सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। समाज-सुधार के लिए दोनों ने साहित्य को साधन बनाया। दोनों में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। अतः दीन-हीन जनता में विश्वास एवं जागृति पैदा करने हेतु सर्वप्रथम भारत की दुर्दशा का परिचय कराया। अपनी मातृभूमि तथा भाषा के प्रति प्रतिबद्धता दर्शायी। भारतेंदु ने तो मुक्तकंठ से घोषित किया कि ''निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल'' कह कर अपनी भाषा के विकास के साथ दासता की शृंखलाओं को तोड़कर आजादी हासिल करने का बिगुल बजाया। हिंदी भाषा तथा वाङ्मय के उत्थान में भारतेंदु ने अपना सर्वस्व अर्पित किया। ऐसे निष्ठावान सपूतों पर कोई भी देश गर्व कर सकता है। उनकी सेवाओं के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए जनता ने उन्हें 'भारत के इंदु' नामक 'भारतेंदु' उपाधिक से विभूषित किया।

पंतुलुजी ने तेलुगु भाषा के सर्वांगीण विकास हेतु अपना तन, धन व मन समर्पित किया। अपनी सारी संपत्ति हितकारिणी समाज के नाम पर लिख कर एक न्यास बनाया। सही शिक्षा का प्रचार करने के लिए आपने विविध विषयों की अनेक पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं, जिनमें प्रोफेसर हाक्काली कृत फिजियालॉजी के आधार पर रचित 'मानव शरीर शास्त्र' उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त आपने पदार्थ विवेकशास्त्र, ज्योति शास्त्र संग्रह, भौतिक भूगोल शास्त्र, जंतु स्वभाव शास्त्र, अलंकार संग्रह, आंध्र तर्क संग्रह इत्यादि विविध विषयों से संबंधित ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें रचकर तेलुगु भाषा को समृद्ध बनाने में जो योगदान दिया, वह अप्रतिम है।

पंतुलुजी न केवल एक सफल लेखक, अनुवादक, पत्रकार, संपादक थे बल्कि वे एक सफल वक्ता भी थे। उन्होंने समय-समय पर सभा-समाजों में जो व्याख्यान दिए और पत्रिकाओं में जो विचार प्रधान लेख लिखे, उनके संकलन हास्य संजीवनी, उपन्यास मंजरी, व्याख्यान मंजरी नाम से प्रकाशित हैं। उनके हास्य-व्यंग्य अपनी विशिष्टता को लिए हुए होते हैं। इसके आधार पर उन्हें हास्य सम्राट मानें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

एक ओर पंतुलुजी भाषा, साहित्य, पत्रकारिता तथा समाज-सुधार के कार्यक्रम में लगे रहे तो दूसरी ओर वे राजनीति में भी सक्रिय भाग लेते रहे। इस अनुभव के आधार पर आपने जो पुस्तकें लिखीं, जिनमें देशीय राज्यों का इतिहास गणनीय है। आपने महापुरुषें की जीवनियां लिखीं। इस विधा में 'राजा राममोहन राय का चरित्र' तथा 'जीसस का चरित्र' विशेष रूप से चर्चित है।

पंतुलुजी ने धर्म संबंधी अनेक पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित कीं। इस क्रम में अद्वैत मत संग्रह, विशिष्टाद्वैत मत संग्रह, द्वैतमत संग्रह उल्लेखनीय हैं।

पंतुलुजी ने तेलुगु भाषा तथा साहित्य के उन्नयन में जो योगदान दिया है, वह अप्रतिम है। आपने आंध्र प्रदेश, तेलुगु भाषा व साहित्य संबंधी शिलालेख, ताम्रपत्र पर भी कार्य किया। इस शोध के संदर्भ में आपने अनुवाद किया। यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री को क्रमबद्ध करके तेलुगु साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करना अत्यंत आवश्यक माना। परंतु बाद में उन्होंने अपने विचार बदल कर तीन भागों में तेलुगु कवियों के परिचय प्रस्तुत किए, जो 10वीं शती से 1450 तक पूर्व कवि, 1451 से 1650 तक के मध्य कवि तथा 1651 में उनके जीवनकाल तक के कवि, आधुनिक कवि नाम से संगृहीत हैं। पंतुलुजी द्वारा प्रस्तुत बृहत कवि परिचय अत्यंत प्रामाणिक बन पड़ा है। उन्होंने निष्पक्ष होकर कवियों तथा उनकी कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत की है। इसके आधार पर यदि हम पंतुलुजी को आंध्र के रामचंद्र शुक्ल मानें तो अत्युक्ति न होगी।

पंतुलुजी का इस क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण अवदान है, वह 'सरस्वती नारद विलाप' शीर्ष गद्य संग्रह के द्वारा जाना जा सकता है। आपने सरस्वती-नारद-संवाद के माध्यम से कुकवियों के काव्यों के गलत प्रयोगों पर जो तीक्ष्ण कटाक्ष किया। वह द्रष्टव्य है। इस प्रकार वे तेलुगु भाषा तथा काव्य की रीतियों के परिमार्जक के रूप में हमारे सामने आते हैं।

तेलुगु वाङ्मय के क्षेत्र में पंतुलुजी (दोनों शताधिक ग्रंथों के प्रणेता थे) का उत्कृष्ट अवदान जीर्णावस्था में स्थित महत्त्वपूर्ण पांडुलिपियों का संग्रह, संपादन एवं प्रकाशन है। आपने प्राचीन उत्तम तेलुगु कृतियों का जो ताड़ पत्रों पर अंकित थीं और दीमकों का आहार बनने जा रही थीं, उनका पता लगाया। उनका संग्रह करके ग्रंथों के जो अंश नष्ट हो चुके थे, उनको अपनी प्रतिभा के बल पर जोड़ा और अत्यंत परिश्रम करके उनका पुनरुद्धार किया। प्राचीन युग की भाषा, शैली और छंदों पर अधिकार प्राप्त करके मूल ग्रंथ की रक्षा की। यह दुष्कर कार्य पंतुलु की साधना से ही संपन्न हुआ। इस प्रकार सैकड़ों पांडुलिपियां प्रकाश में आईं।

उनमें बीस काव्य तेलुगु साहित्य के अनमोल रत्न हैं। उनमें उल्लेखनीय कृतियां हैं—मोल्ल रामायण, उत्तर हरिवंशम्, पांचाली परिणयम, चित्र भारतम, आंध्र भाषा भूषणम, चमत्कार मंजरी, कवि संशय विच्छेदम, प्रबोध चंद्रोदय, दशकुमार चरित्रम, सुदक्षिणा परिणयम, जैमिनि भारतम, भोज राजीयम, वराह पुराणम इत्यादि।

पंतुलुजी की प्रतिभा असाधारण थी, उनकी विद्वत्ता, निष्ठा, त्याग, सदा स्मरणीय बने रहेंगे। आपने हिंदु समाज का बड़ा उपकार किया। हिंदु धर्म की ख्याति को फैलाने में अनवरत श्रम किया। सन् 1898 में मद्रास में देशीय महासभा की ओर से आयोजित 'सांधिक महासभा' में अध्यक्षीय भाषण देते हुए स्वर्गीय महादेव गोविंद रानाडे ने पंतुलुजी को 'दक्षिण भारत का विद्यासागर' उपाधि से विभूषित किया।

पंतुलुजी ने जीवनभर तेलुगु भाषा और साहित्य की सेवा करके उसे समृद्ध बनाया। उन्होंने आधुनिक तेलुगु साहित्य की प्रत्येक विधा का श्रीगणेश किया। फिर भी वे अत्यंत विनयशील थे। वे कहते थे—प्रथम प्रयत्न सदा प्रथम ही होता है। अतः उसमें दोषों का होना स्वाभाविक है। हमारी उन्नति अपने किए हुए दोषों पर निर्भर है। यदि मेरी कृतियां भावी साहित्यकारों को पुस्तक रचना में सहायक होंगी तो मुझे आत्मिक प्रसन्नता होगी। इसी क्रम में वे कहते हैं—''मुझे अपने जीवन में और भी अनेक कार्य करने थे। उनकी पूर्ति किए बिना मुझे इस विश्व से सदा के लिए नाता तोड़ना पड़ रहा है। फिर भी मैं आशा करता हूं कि मेरे अनुचर, मित्र एवं सुधाराभिलाषी मेरे इस उत्तरदायित्व को निभाएंगे। मेरे जीवन की संध्या के इस समय मेरी अंतिम इच्छा और आशा यही है कि अज्ञान और अबोधावस्था में पड़ी जीवन-ज्ञान संस्कार विहीन साधारण जनता में शिक्षा एवं ज्ञान का प्रकाश, समानता और संस्कार लाने का अनवरत उद्योग करेंगे।''

बहुआयामी प्रतिभा के धनी एवं समर्पित समाज-सुधारक तथा देवभक्त पंतुलुजी एक व्यक्ति नहीं, संस्था थे। ऐसे महान साधक पर सारे राष्ट्र को गर्व है। उनका संदेश न केवल किसी समाज व राष्ट्र के लिए है, बल्कि समस्त विश्व के लिए था। उनकी समर्थ सेवाओं पर मुग्ध हो उन्हें आंध्र की जनता ने तेलुगु भाषा एवं साहित्य के 'नवयुग निर्माता' घोषित किया। ऐसे वरद पुत्र के स्मरण मात्र से कोई भी साहित्यकार श्रद्धापूर्वक दो-चार आंसू चढ़ाए बिना नहीं रह सकता।

'ज्योति निकेतन', 26, वडिवेलुपुरम्, वेस्ट मावलम्, चेन्नै-600033

भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा' की ग़ज़लगोई

ज्ञान प्रकाश विवेक

उर्दू से हिंदी ग़ज़ल का अवतरण एक साहित्यिक और संवेगों से भरपूर घटना है। इस साहित्यिक घटना ने हिंदी ग़ज़ल को विधा के रूप में प्रतिष्ठित करवाया।

लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि उर्दू से हिंदी ग़ज़ल का अवतरण एक दिन में नहीं हुआ। यह अवतरण 'क्रमशः' हुआ। इसमें निरंतरता है। लेकिन यह निरंतरता बेशक भारतेंदु युग से आरंभ होती है।

इससे पूर्व भी हिंदी में ग़ज़लें लिखी जाती रहीं, लेकिन वह प्रयास प्रयोग के स्तर तक रहा। इस तरह के प्रयोग अमीर खुसरों ने किए। संत कवि कबीर ने भी कुछेक ग़ज़लें लिखीं। दोनों कवियों की ग़ज़लें ऐतिहासिक दर्जा रखती हैं।

अमरी खुसरो हद दर्जे के प्रयोगधर्मी उर्दू-फारसी के कवि थे। उन्होंने हिंदवी में भी कुछेक ग़ज़लें लिखीं। रचनात्मकता के स्तर पर 'हिंदवी' की वे बा-कमाल ग़ज़लें हैं। उनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर—

''जब यार देखा नैना भर
दिल की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब राखे
उसे समझाए कर
जब आंख से ओझल हुआ
तड़पन लागा मेरा जिया
हक्का इलाही क्या किया
आंसू चले भर लाए कर।।''

—अमीर खुसरो

कबीर हिंदी के संत कवि थे। उन्होंने पदावलियां और दोहे लिखे। लेकिन उन्होंने कुछेक ग़ज़लें भी लिखीं, जिनका विशिष्ट महत्त्व है। उनकी ग़ज़ल के दो शेर बानगी के तौर—

''हमन है इश्क मस्ताना
हमन को होशियारी क्या
रहें आज़ाद या जग में
हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछड़े हैं पियारे से
भटकते दर-ब-दर फिरते
हमारा यार है हममें
हमन को इंतज़ारी क्या?''

गौरतलब है, 'यार' शब्द अमीर खुसरो और कबीर दोनों कवियों की ग़ज़लों में उपस्थित है। यार शब्द मामूली शब्द नहीं। यह शब्द, दोस्त, सखा, प्रेमिका के लिए हो सकता है। लेकिन यह शब्द यहीं समाप्त नहीं होता। इसका एक अन्य अर्थ है जो प्रतीकात्मक है। यह शब्द 'यार' 'सतगुरु' के लिए भी प्रयोग हुआ है। सतगुरु को यही प्रतीक रूप में देखें तो ग़ज़लों का संस्कार ही बदल जाता है।

(प्रत्येक बड़ा शायर/कवि अपनी ग़ज़लों में ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिनमें अर्थ की अनेक सत्ताएं हों। भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा' ने भी शब्दों के चयन में ऐसी सलाहियत पेश की है।)

उपर्युक्त दोनों महान कवियों की ग़ज़लों से हिंदी ग़ज़ल में आमद तो होती है। लेकिन यह आमद बहुत ज्यादा आश्वस्तकारी नहीं है। इनके बहुत बाद, प्यारे लाल शोकी, किशोरी लाल, गिरिधर दास, बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन', स्वामी रामतीर्थ, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी ग़ज़लें लिखीं। हिंदी ग़ज़ल की यहां आहटें सुनाई तो देती हैं, लेकिन बहुत धीमी। बेशक, एक वातावरण (बेशक धुंधला-सा वातावरण) इन कवियों की ग़ज़लों से बनता तो है।

लेकिन हिंदी ग़ज़ल का यह वातावरण बिलकुल समाप्त हो गया होता, यदि भारतेंदु ने ग़ज़लें न लिखीं होतीं। पूर्व में, कवियों ने देवनागरी लिपि में ग़ज़लें लिखीं और वातावरण निर्मित किया। लेकिन भारतेंदु अपनी ग़ज़लों से एक पर्यावरण-सा रचते प्रतीत होते हैं। रंग, तहज़ीब, लहजा और कंटेंट सारा उर्दू-फारसी की ग़ज़लों वाला। लेकिन ग़ज़लें देवनागरी लिपि में।

हिंदी में आधुनिक काल का आरंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु महज भारतेंदु नहीं रहते। वे एक युग हो जाते हैं। इस युग में ब्रज भाषा और खड़ी बोली के अतिरिक्त उर्दू में भी साहित्य सृजन हुआ।

भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा' तख़ल्लुस से शायरी करते थे। उनकी ग़ज़लगोई से गुजरें तो इस बात का शिद्दत से अहसास होता है कि वे उर्दू-फारसी के भी ज्ञाता थे। इतनी सशक्त ग़ज़लें (बेशक रवायती (यानी परंपरावादी)

वही लिख सकता है, जिसके पास उर्दू-फारसी ज़बान का इल्म हो और अल्फाज़ के इस्तेमाल का शऊर भी।

यह ग़ज़ल विधा का आकर्षण ही नहीं, सम्मोहन भी है कि हिंदी के अनेक कवियों ने ग़ज़लें लिखीं। जिस दौर में भारतेंदु तथा अन्य कवि देवनागरी लिपि में ग़ज़लें लिख रहे थे, वे उर्दू-फारसी ज़बान का उत्कर्ष था। यही वजह है कि भारतेंदु, यहां तक कि शमशेर बहादुर सिंह ने भी, उर्दू शायरी के प्रभाव में ग़ज़लें लिखीं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा' की ग़ज़लों का शिल्प सौष्ठव चकित करता है। यह शिल्प और शैली मामूली नहीं। इस तरह का सधा हुआ शिल्प उसी कवि/शायर की ग़ज़लों में संभव हो सकता है, जिसे उरुज़ (छंद शास्त्र) की समझ हो तथा जो बहरों के वज़्न और उनकी बारीकियों को समझता हो। भारतेंदु की ग़ज़लें इस लिहाज़ से न सिर्फ मुकम्मल ग़ज़लें हैं बल्कि इनमें 'कलास्कीयत' की ऊंचाइयां भी शामिल हैं।

इस संदर्भ में उनकी ग़ज़लों के दो शेर—

''फ़सदे-दुनिया मिटा चुके हैं
उसूले-हस्ती उठा चुके हैं
खुदाई अपने में पा चुके हैं
मुझे गले से लगा चुके हैं।''

तथा

''आ गई सर कज़ा लो
सारा समां रह गया
ऐ फलक, क्या-क्या हमारे
दिल में अरमां रह गया।''

भारतेंदु की ग़ज़लों के कथ्य से पहले उनके अश्आर की रवानी को परखें। ऐसी रवानी जैसे शायरी का दरिया बह रहा हो। ऐसा लगता है किसी उस्ताद शायर के अश्आर हैं। पूरी शायरी इतनी परिपक्व, मुकम्मल, संगीतात्मक और गूंज पैदा करती है कि कठिन शेर को पढ़ते जाओ तो अर्थ खुद-ब-खुद खुलते चले जाते हैं।

दरहकीकत, भारतेंदु की ग़ज़लों में जो संगीत की गूंज है, वहां भी अर्थ की ध्वनियां, ध्वनित होती हैं। यथा—

''बागबां है चार दिन की
बागे-आलम में बहार
फूल सब मुरझा गए,
खाली बियाबां रह गया।''

तथा

''फुगां करती है बुलबुल याद में
गर गुल के ऐ गुलचीं
सदा इक आह की आती है
जब गुंचे चटखते हैं।''

(फुगां—आह, गुलचीं—फूल चुनने वाला, गुंचे—कलियां)

भारतेंदु की यह ग़ज़लगोई हतप्रभ करती है। इतना कड़ा अनुशासन। शिल्पगत ऐसी कलात्मकता। न एक रुक्न गिरता है कहीं न कहीं मात्रा दोष! यह ग़ज़लगोई चमत्कृत करती है। ऐसा संतुलन, ऐसी शिल्पगत चतुराई उर्दू के उस्ताद शायरों की शायरी में होती है और उसी शायरी ने 'क्लासकी' का मुकाम भी हासिल किया है।

यहां भारतेंदु की ग़ज़लें हैं—बा-शऊर और बा-सलीका ग़ज़लें। रवां-दवां और बे-ऐब ग़ज़लें। यथा—

''बैठे जो शाम से तेरे दर पे सहर हुई
अफसोस ऐ कमर कि न मुतलक खबर हुई
अरमाने-वस्ल यों ही रहा सो गए नसीब
जब आंख खुल गई तो यकायक सहर हुई
छानी कहां न खाक न पाया कहीं तुम्हें
मिट्टी मेरी ख़राब, अबस दर-ब-दर हुई।''

(कमर—चांद, यकायक—अचानक, अबस—व्यर्थ)

एक और बात ध्यान देने योग्य है, वह है विषय! भारतेंदु की ग़ज़लों में भी 'इश्क' जैसा जटिल विषय, अपनी संश्लिष्ट भूमिका में नजर आता है। इश्क की प्रबल भावना में वस्ल से ज्यादा विसाल (विरह) की तड़प ज्यादा है।

उर्दू की रवायती शायरी में इश्के हकीकी और इश्के मजाजी दो अहम तत्व अपना हस्तक्षेप रखते हैं। अधिकांश ग़ज़लें अपनी व्यापकता से नए अर्थ तलाश करती हैं और इश्क, ईश्वर की परम सत्ता से होने लगता है। तब, इश्क एक लफ्ज़ नहीं रहता। वह अपने आप में एक 'सृष्टि' हो जाता है।

भारतेंदु की ग़ज़लों में भी इसी इश्क की आंच, नई अनुभूतियों का सृजन करती है। भारतेंदु के इश्क में हिज्र (बिछोह) की तड़प है। प्रेम का उत्कृष्ट रूप उसके प्राप्य में नहीं उसके अभाव में है। भारतेंदु की ग़ज़लों में यही प्रेम के अभाव की और उसकी तड़प की अभिव्यक्ति है। यथा—

''फिर आई फ़स्ले-गुल फिर
ज़ख़्मदह रह रह कर पकते हैं
मेरे दागे़-जिगर पर
सूरते-लाला दहकते हैं
उड़ा लाए हो ये तर्ज़े-सुखन
किससे बताओ तो
दमे-तक़दीर गोया बाग़ में
बुलबुल चहकते हैं
नसीहत है अबस नासेह
बयां नाहक की बकते हैं
जो बहके दुख़्तरेज से हैं
वो कब इनसे बहकते हैं।''

(ज़ख़्मदह—घाव, फस्लेगुल—मौसम, दागे-जिगर—हृदय, अबस—व्यर्थ, दुख़्तरेज—दुखी, तर्ज़े-सुखन—अंदाजे बयां)

इसी ग़ज़ल में एक मिसरा है—उड़ा लाए हो ये तर्ज़े-सुखन किससे बताओ तो?—जैसे कवि भारतेंदु अपने आप से प्रश्न कर रहे हों कि अभिव्यक्ति का यह लहजा (या आदाब) कहां से हासिल किया? ज़ाहिर है भारतेंदु अपनी ग़ज़लगोई से पूरी तरह आश्वस्त थे और वह ये भी जानते थे कि हिंदी-उर्दू की शायरी में उनकी शैली यानी तर्ज़े बयां कुछ अनूठा और मुख्तलिफ है।

उनकी इसी ग़ज़ल का एक अन्य मिसरा है—मेरे दाग़े-जिगर पर सूरते-लाला दहकते हैं। यानी, मेरे घाव महज घाव नहीं वे भी किसी फूल (लाला—लाल रंग का फूल) की तरह दहकते हैं। तड़प को बयान करने का यह उच्च संस्कारित भाव, भारतेंदु की ग़ज़लों में सिर्फ यहां ही नहीं, अन्य तमाम ग़ज़लों में भी मौजूद है।

उनकी ग़ज़ल का एक मतला (ग़ज़ल का पहला शेर) इतना मानीखेज और सर्वकालिक है कि हर समय के तनाव की व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति प्रतीत होता है। यथा—

''दश्त-पैमाई का गर कस्द मुकर्रर होगा
हर सरे-ख़ास-पए आबिला नश्तर होगा।''

(दश्त-पैमाई—जंगल में भटकना, पए-आबिला—नंगे पांव, नश्तर—कांटा, मुकर्रर—निश्चित)

उर्दू की क्लासिक शायरी में इश्क, भावनाओं के आवेग की तरह मौजूद रहा है। इसी इश्क जैसे विषय से उर्दू ग़ज़ल में मानवतावादी सोच भी स्वतः शामिल होती चली गई है।

भारतेंदु की ग़ज़लें भी उसी दौर की गज़लें हैं। इनमें भी वही क्लासिकी जज़्बा और करुणा तथा मानवतावादी सोच अभिव्यक्त होती है। उर्दू शायरी की तरह यहां भी जीवन दर्शन और उसका चिंतन, अश्आर को मानीखेज़ और थॉटफुल बनाता है। कोई भी शेर स्खलित नहीं होता। कोई भी शेर बेमकसद नहीं होता। कोई भी शेर अपनी अभिव्यक्ति में हल्का या कमजोर नहीं होता। यहां तक कि प्रयोग के स्तर पर लिखी गई कुछ हज़ल (व्यंग्य ग़ज़लें) भी अपना एक मेयार रखती हैं। उनकी ग़ज़ल के दो शेर—

''अजब जोबन है गुल पर
आमदे-फस्ले बहारी है
शिताब आ साकिया गुल रु
कि तेरी यादगारी है
रिहा करता है सैयादे-सितम
गर मौसिमे गुल में
असीराने-कफ़स लो तुम से
अब रुखसत हमारी है।''

पहला शेर प्रेम भावना को व्यक्त करता है। प्रेमिका की स्मृतियां हैं। एक तरह से यह शेर स्मृति का आख्यान सा रचता है। लेकिन दूसरे शेर का पहला पाठ इतना ही है कि सैयाद ने पिंजरे से हमें मुक्त किया है और हम रुखसत यानी विदा होते हैं। लेकिन इस शेर का जो अंडरक्रेंट पाठ है, वही इस शेर की आत्मा है। इसमें रुखसत की बात है। कफ़स यानी पिंजरे से मुक्ति। यानी रुखसत। यानी मृत्यु। पूरा शेर जीवन और मृत्यु के बीच द्वंद्व की रचना करता है। यहां मृत्युबोध से ज्यादा जीवन और मृत्यु के बीच की कशमकश की अभिव्यक्ति है।

शेर का यह चिंतन पक्ष शेर को 'बड़ा' बना देता है। पूरी ग़ज़ल में करुणा का तत्व भी शामिल है। जो रुखसत (विदाई) शब्द में गूंजता है।

इसी ग़ज़ल का एक और शेर। जैसे किसी उर्दू के उस्ताद शायर ने इसे रचा हो, वही उस्तादाना रंग भारतेंदु अपनी ग़ज़लों में, किसी सम्मोहन की तरह रचते हैं। शेर है—

''सफाई देखते ही दिल
फड़क जाता है बिस्मिल का
अरे जल्लाद, तेरे तेग़ की
क्या आबदारी है।''

यही प्रशंसा है। प्रशंसा किसकी? जल्लाद की। जल्लाद की तलवार की चमक का सौंदर्य। अपना जो हश्र हो सो हो। लेकिन जल्लाद की तलवार की प्रशंसा करने से नहीं चूकता कवि। यही फक्कड़पन, भारतेंदु की ग़ज़लगोई का भी सौंदर्य है, जो उनकी ग़ज़लों को 'क्लासकियत' का दर्जा अता करता है।

उनकी ग़ज़लों से गुजरें तो कुछ शब्द बार-बार 'रिपीट' होते हैं। दरहकीकत, ये महज़ शब्द नहीं। प्रतीक हैं। यथा—बागबां, दश्त-पैमाई, कफ़स, बुलबुल, असीरी, दिले-मुज़तर, फुंगा, सैयाद, शमशीर, गुलचीं इत्यादि।

इन सब प्रतीकों को जोड़कर देखें तो जो वातावरण बनता है, हतप्रभ करता है। गैरतलब है, भारतेंदु की ग़ज़लगोई का रचनाकाल 1870 और उसके बाद का समय है। वह समय गुलामी का समय था। भारतेंदु उस अधीनता की वेदना को अपनी ग़ज़लों में व्यक्त करते नजर आते हैं। प्रतीक गौरतलब है—कफ़स (पिंजरा) यानी गुलामी। फुगां—यानी वेदना। दश्त-पैमाई—भटकाव। यों भी कह सकते हैं कि गुलामी की बेचैनी से पैदा हुआ भटकाव। सैयाद—विदेशी शासक। गुलचीं—फूल चुनने वाले। यहां यह प्रतीक क्रांतिकारिता का जज्बा रखने वाले नौजवानों के लिए भी हो सकता है। इन सब प्रतीकों को मिला दें तो एक रूपक की रचना होती है इन ग़ज़लों के द्वारा।... देश की गुलामी। कवि की बेचैनी। तड़प। क्रंदन। और स्वतंत्रता का जज़्बा।

भारतेंदु युग इस प्रकार की अभिव्यक्तियों के कारण नवजागरण काल भी कहलाता है।

यह और बात है कि भारतेंदु ने एक ग़ज़ल विक्टोरिया शाहनशाह की प्रशंसा में भी लिखी। यह ग़ज़ल किन परिस्थितियों में लिखी

गई, इसका अनुमान लगाना कठिन है। यह भी संभव है कि यह ग़ज़ल व्यंजना के रूप में लिखी गई हो। उसी ग़ज़ल का एक शेर प्रस्तुत है–

''बागबां फूलों से आबाद रहे सहने चमन
बुलबुलो-गुलशने बेख़ार मुबारक होवे।''

भारतेंदु ने होली पर भी कुछ बेहतरीन ग़ज़लें लिखीं। होली पर ग़ज़ल लिखने के पसःमंजर ब्रज भूमि और ब्रज भाषा का प्रभाव भी संभव है। यथा–

''गले मुझको लगा लो
ऐ मेरे दिलदार होली में
बुझे दिल की लगी भी
कुछ तो मेरे यार होली में
नहीं है गुलाले-सुर्ख़ उड़ता
हर जगह प्यारे
ये आशिक की हैं उमड़ी आहें
आतिशबार होली में।''

भारतेंदु प्रयोगधर्मी रचनाकार थे। उन्होंने नाटक, कहानी, कविताएं, गीत, पद क्या कुछ नहीं लिखा। उन्होंने ग़ज़ल लिखी, हज़ल (हास्य-व्यंग्य ग़ज़ल) लिखी। उन्होंने होली को केंद्र में रख कर ग़ज़लें लिखीं तो एक ग़ज़ल कृष्ण पर भी लिखी।

कृष्ण पर ग़ज़ल लिखने के पीछे यकीनन ब्रज का प्रभाव हो सकता है। उनके गीतों के मुखड़े प्रेम की जिस प्रबलतम भावना और आत्मीयता को व्यक्त करते हैं, उनकी बानगी देखिए–''सखी हम बंसी क्यों न भए'' तथा ''सुनो सखी बाजत है मुरली'' तथा ''बंसुरिया मेरे बैर परी।''

यहां सखियां (गोपियां) कृष्ण के प्रति अपनी प्रेम भावना को कितने व्याकुल अंदाज़ में प्रकट करती हैं। केंद्र में 'बांसुरी' है। बांसुरी वस्तु नहीं। बांसुरी प्रेम का माध्यम है। रास्ता है। बांसुरी लीला है। बांसुरी संगीत है।

कृष्ण को केंद्र में रखकर शेर कहते हुए भारतेंदु अपनी उच्च संस्कारित भावनाओं को व्यक्त करते हैं–

''जहां देखो वहीं मौजूद
मेरा कृष्ण प्यारा है
उसी का सब है जलवा
जो जहां में आशकारा है।।''

भारतेंदु ग़ज़ल लिखते वक्त 'रसा' तख़ल्लुस का प्रयोग करते थे। इस तख़ल्लुस को उन्होंने अपनी ग़ज़लों में बड़ी नफासत और शाइस्तागी से इस्तेमाल किया। जिस दौर में भारतेंदु ने ग़ज़लें लिखीं, उस दौर में यह भी देखा-परखा जाता था कि शायर/कवि ने अपने तख़ल्लुस को किस शऊर के साथ 'मक़्ते' (जहां तख़ल्लुस का प्रयोग होता है) लिखे।

भारतेंदु के कुछ मक़्ते गौरतलब हैं। उन्होंने 'मक़्ते' भी उस्ताद शायरों की तरह पूरी हुनरमंदी के साथ लिखे। यथा–

'' 'रसा' की है तलाशे-यार में ये दश्ते-पैमाई
कि मिस्ले शीशा मेरे पांव के छाले झलकते हैं।''

यहां तख़ल्लुस तो बड़ी सलाहियत से इस्तेमाल किया ही गया है। लेकिन शेर कितना अर्थवान है–मैं अपने यार (सतगुरु) की तलाश में दश्त में इस कदर भटका हूं कि मेरे पांव के छाले शीशे की तरह चमकने लगे हैं।

कुछ और शेर जिनमें तख़ल्लुस का प्रयोग हुआ है–

'' 'रसा' महवे फसाहत दोस्त क्या
दुश्मन भी हैं सारे
ज़माने में तेरे तर्जे-सुखन की
यादगारी है।''

(महवे–मुग्ध, फसाहत–व्यंजना शक्ति)

यह शेर–''कहते हैं कि ग़ालिब का अंदाजे-बयां और' से प्रेरित नजर आता है।

यहां भारतेंदु अपने तर्जे-सुखन (अंदाजे बयां) यानी 'कहन' के सौंदर्य को व्यक्त करते हैं कि इस तरह की ग़ज़लगोई और व्यंजना शक्ति से दोस्त ही नहीं दुश्मन भी अभिभूत हैं।

लेकिन एक मक़्ते में तो भारतेंदु ने अपने पूरे नाम को ही दो मिसरों में बड़े कलात्मक ढंग से प्रयोग किया है–

''जमीं है 'हरीचंद' ग़ज़लें पढ़ो
'रसा' देखो कैसी है छाई घटा।''

भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा' जिस युग में ग़ज़लें कह रहे थे, उस युग में शिल्प का विशेष ध्यान रखा जाता था। विषय बेशक सीमित थे। लेकिन उन सीमित विषयों को कलात्मक उत्कर्ष के साथ व्यक्त किया जाता था।

यही शिल्पगत उत्कर्ष भारतेंदु की ग़ज़लों में है। मालूम नहीं, भारतेंदु अपनी ग़ज़लों की इस्लाह किसी अन्य उस्ताद शायर से लेते थे या नहीं? लेकिन इतना तय है कि भारतेंदु की ये तमाम ग़ज़लें (लगभग सौ) शिल्पगत तैयारी के साथ लिखी गई है।

गौरतलब है कि हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत के प्रभाव को स्वीकार किया जा सकता है। बेशक, दुष्यंत ने हिंदी ग़ज़ल के लिए नए दर खोले तथा हिंदी ग़ज़ल को नया मुहावरा, नई भंगिमा, नया कथ्य और सोच तथा संज्ञान की गई चुनौतियां पेश कीं।

तो क्या यह मान लिया जाए कि शमशेर बहादुर सिंह और उससे पूर्व भारतेंदु हरिश्चंद्र की ग़ज़लों ने हिंदी ग़ज़ल को बिलकुल प्रभावित नहीं किया? ऐसा सोचना नाइंसाफी होगी। दुष्यंत के अतिरिक्त, शमशेर और भारतेंदु दोनों कवियों की ग़ज़लों ने प्रत्यक्ष न सही, अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। भारतेंदु तथा शमशेर दोनों की क्लासिक शायरी (ग़ज़लों) ने इस बात का यकीनन

अहसास कराया है कि ग़ज़लगोई में फार्म का विशेष महत्त्व है और इस महत्त्व को दुष्यंत ने समझा। (बेशक, दुष्यंत ने ग़ज़लों में गलतियां भी कीं। तलवारें के साथ सितारे काफिये का गलत प्रयोग किया)।

लेकिन भारतेंदु में यहां ऐसी कोई भी दुर्बलता नहीं मिलती। दुष्यंत ने इस बात को सहज स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने पूर्व के कवियों की ग़ज़लों से प्रभावित होकर ग़ज़लें लिखीं।

बेशक, निराला ने भी ग़ज़लें लिखीं। लेकिन निराला की ग़ज़लों में अनगढ़ता-सी है। वह शिल्पगत अनुशासन नहीं जो भारतेंदु (और शमशेर) की ग़ज़लों में है। भारतेंदु की ग़ज़लें बेशक परंपरावादी हैं, जो हमारे समकाल के तनाव और द्वंद्व और संघर्ष और अभाव और नुकीले यथार्थ का—शाना-ब-शाना सामना नहीं कर पातीं। लेकिन इन ग़ज़लों की संगीतात्मकता और अर्थ की ध्वनियों को कैसे नकारा जा सकता है? इन ग़ज़लों में जो कथ्य है वह अपने समय का है। इश्क जैसा विषय क्या कभी पुराना पड़ता है। इश्क में जब सूफियाना तत्त्व भी शामिल हो जाए तो ग़ज़लें अमर हो जाती हैं। यही इश्क का सूफियाना मिज़ाज भारतेंदु की ग़ज़लगोई का अहम पहलू है।

भारतेंदु की ग़ज़लियत का अपना मिज़ाज, सौंदर्य, संवेदना, लय और पाठ है।

भारतेंदु की ग़ज़लगोई में एक ऐसे युग की अभिव्यक्ति है, जिसके ताप, संज्ञान और थरथराहट को हम यकीनी तौर से महसूस कर सकते हैं।

अंत में उनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर—

''ख़्याले नाव के मिजगां में
बस हम सर पटकते हैं
हमारे दिल में मुद्दत से
ये ख़ारे ग़म खटकते हैं
रूखे-रोशन पे उसके गेसुए-
शबगूं लटकते हैं
कयामत है मुसाफिर रास्ता
दिन में भटकते हैं
उड़ा दूंगा 'रसा' मैं
धज्जियां दामाने-सहरा की
अबस खारे बियाबां
मेरे दामन में अटकते हैं।''

1875, सेक्टर-6, बहादुरगढ़-124507 (हरियाणा)

हिंदी पत्रकारिता के आदिस्तंभ संपादक भारतेंदु

प्रो. राममोहन पाठक

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र वह हिमालय हैं, जहां से हिंदी पत्रकारिता की गंगा निकलकर प्रवाहमान हुई है। उन्होंने हिंदी साहित्य की धूमिल रेखा को नवतूलिका में पुनः नया रंग प्रदान कर प्रकाशित किया था। जिस समय भारतेंदु का हिंदी में प्रादुर्भाव हुआ, उस समय हिंदी गद्य का ढर्रा बड़ा बेढंगा और ढीला-ढाला था, इसलिए भाषा भी अकारण ही बोझिल हो गई थी। उन्होंने अखबार निकाले, पत्रिकाएं निकालीं और सबसे पहले भाषा के संस्कार, परिष्कार का संकल्प लिया। उन्होंने हिंदी को अरबी, फारसी, उर्दू और संस्कृत की भारी-भरकम शब्दावली के दलदल से बाहर निकालकर नए स्वरूप में स्थापित किया।

अपने व्रत को पूरा करने के लिए भारतेंदु ने **'हरिश्चंद्र मैगजीन'** तथा **'हरिश्चंद्र चंद्रिका'** पत्रिकाएं निकाली और इन पत्रिकाओं के जरिए एक ऐसी शैली चलाई जो काफी सहज, सुबोध और साफ-सुथरी थी। भारतेंदु जी की यह शैली शीघ्र ही हिंदी जगत में लोकप्रिय हो गई।

हिंदी में नाटकों का अभाव भी भारतेंदुजी को खल रहा था। दूसरी भाषाओं के (बांग्ला आदि) ढेरों नाटक दिखाई दे रहे थे, किंतु हिंदी में एक भी नाटक सामने नहीं आ रहा था। भारतेंदुजी ने यह चुनौती स्वीकार की। उन्होंने कुछ नाटकों का अंग्रेजी, संस्कृत तथा बांग्ला भाषाओं से हिंदी में अनुवाद किया और कुछ मौलिक नाटक भी लिखे।

भारतेंदु केवल नाटकों में ही नहीं उलझे रहे। उनकी दृष्टि हिंदी कविता पर भी गई। हिंदी कविता के भी बुरे हाल थे। उन्होंने काव्य के क्षेत्र में भी एक अभिनव शैली को जन्म दिया, जो साफ-सुथरी स्पष्ट भाषा थी, जिसमें पुराने कवियों की रचनाओं का बांकापन तथा नए युग के चुलबुले मिजाज का समाहार था। उन्होंने इस शैली में अनेक कविताओं का सृजन किया।

भारतेंदुजी सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे, अतः उन्होंने निबंध की दुनिया में भी कदम रखा और वहां भी अपनी धाक जमाई। वे स्वयं सिद्धहस्त निबंधकार थे, उन्होंने अनेक निबंध लेखक भी पैदा किए। उनके निबंध यद्यपि आकार में इतने बड़े होते थे कि तत्कालीन पत्रिकाओं में कई किश्तों में प्रकाशित होते थे, फिर भी उनकी भाषा, शैली और प्रवाह में कोई अंतर नहीं आने पाता था।

भारतेंदु की उत्कृष्ट गद्य शैली का रूप सबसे पहले 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में ही प्रकट हुआ। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि हिंदी भाषा में इतनी क्षमता है कि वह राष्ट्रभाषा और राजभाषा पद पर भी आसीन हो सकती है। महिलाओं को ध्यान में रख कर प्रकाशित 'बाल बोधिनी' पत्रिका चार साल तक चलती रही। पत्रिका ऐसी भाषा को स्थापित करने में समर्थ हुई, जिसके सामने अभिव्यक्ति की कोई कठिनाई नहीं रह गई।

भारतेंदु युग में सरदार कवि, लछिराम कवि, बाबा दीनदयाल गिरि, पं. दुर्गादत्त, हनुमान, सेवक, पं. ईश्वरदत्त, काष्ठजिह्वा स्वामीदेव, देवी सहाय आदि कविगण काशी में बैठकर विभिन्न साहित्यिक कार्यों में लीन थे। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' सरकारी आदमी थे। वे दफ्तरी कामकाज की दृष्टि से हिंदी को बदलने का प्रयास कर रहे थे। उनकी इस नीति को भारतेंदुजी पसंद नहीं करते थे। वे भाषा को अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते थे। भारतेंदु की शैली को उस समय के अधिकतर कवियों और लेखकों ने स्वीकार किया, इसलिए वही चल निकली। ('आज'—काशी अंक—17 फरवरी, 1957)

भारतेंदु की शैली में राजा लक्ष्मण सिंह, पं. बदरीनारायण प्रेमधन तथा बाबू राधाकृष्ण दास भी लिखने लगे। भारतेंदुजी के समय में काशी के प्रमुख लेखकों में राव कृष्णदेव शरण सिंह, गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्य देव, 'निजकवि' श्री कार्तिक प्रसाद खत्री, पंडित अंबिकादत्त व्यास, श्रीरामकृष्ण वर्मा, महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी आदि थे।

भारतेंदु कालजई पत्रकार-साहित्यकार थे। पत्रकारिता के एक समूचे काल खंड को भारतेंदु काल की मान्यता है। भारतेंदु काल की संपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की संख्या लगभग 250-300 के बीच मानी जाती है। यद्यपि यह अनुमानित है क्योंकि उस समय इसकी कोई गणना नहीं होती थी। भारतेंदुजी का जन्म अंग्रेज भक्त महाजनी परिवार में हुआ था। 9 सितंबर, 1850 को पार्वती देवी की कोख से भारतेंदुजी का जन्म हुआ और होश संभालते ही प्रतिज्ञा की थी—''इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया, अब मैं इसे खाऊंगा।'' भारतेंदुजी आर्थिक दृष्टि से संपन्न थे। उन्हें कोई कमी नहीं थी। अपनी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं

के प्रकाशन में उन्होंने अपनी बहुत सारी पूंजी लगा दी। उन्हें इस साहित्य सेवा से कर्ज और गरीबी ही मिली। काव्य गोष्ठियों को प्रोत्साहित करने, किताबों के लिए लेखकों की पुरस्कृत करने, दूसरों को पुस्तकें देने तथा साहित्यकारों की आर्थिक सहायता करने में उनका कितना धन व्यय हुआ, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। उनकी अधिकांश शिक्षा-दीक्षा घर में हुई, क्योंकि राजे-रजवाड़े और जमींदारों के बच्चे सार्वजनिक स्कूलों में नहीं जाते थे। उन्हें पढ़ाने के लिए पं. ईश्वरीदत्त, मौलवी ताज अली और पं. नंद किशोरजी जैसे विद्वान आते रहे। पिता 10 वर्ष और माता 5 वर्ष की उम्र में स्वर्ग सिधार गए। अतः माता-पिता के न होने के कारण वे स्वच्छंद हो गए। वे कोई दबाव नहीं मानते थे।

उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास और समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, बाल बोधिनी पत्रिकाओं का संपादन किया।

15 अगस्त, 1867 ई. को भारतेंदुजी ने **'कवि वचन सुधा'** मासिक पत्र का प्रकाशन किया। कुछ ही दिनों के बाद यह पाक्षिक हो गया, किंतु 1875 से यह पत्र साप्ताहिक हो गया। जैसा कि पत्रिका के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें कविताओं के संग्रह प्रकाशित होते थे। इसके प्रारंभिक अंकों में कविवर देव, दीनदयाल गिरि की रचनाए, चंद्रकवि का **'रासो'** काव्य, गिरधर कवि की, कबीर की साखी, बिहारी के दोहे आदि छपते थे। शीघ्र ही इसका स्वरूप बदल गया और इसमें साहित्य के अतिरिक्त राजनीति, समाजनीति आदि विषयों पर लेख छपने लगे। **'कवि वचन सुधा'** की सुधारवादी नीति से अंग्रेजों को राजद्रोह की गंध लगी, जिसकी वजह से इसकी सरकारी मदद बंद हो गई। जब यह पत्र पाक्षिक से साप्ताहिक हुआ तो बदले स्वरूप में राजनीतिक लेखों के कारण लोगों में बड़ा आंदोलन मचा।

कवि वचन सुधा में आलोचना शीर्षक से लोक लुभावनी भाषा में लेख आकर्षक होते थे। अंत में 15 छोटी-छोटी खबरें भी इसमें होती थीं, जो समरी ऑफ न्यूज या समाचारकली शीर्षक से छपती थीं। कुछ लेख अंग्रेजी में भी छपते था। अनेक अंको में हास्यपूर्ण लेख भी होते थे। प्रत्येक अंक में भारतेंदुजी की कविताएं भी छपती थीं।

पत्रकारिता में भारतेंदुजी ने सामाजिक विषयों के साथ राजनीतिक, यूरोप में ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार, प्रेरक पत्र आदि स्तंभ शुरू किए। इस पत्रिका का उदय ऐसे समय में हुआ, जब लोग अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष हाथ जोड़े खड़े रहते थे। किंतु इस पत्रिका ने एक नई चेतना भरने का काम किया। भारतेंदु आनरेरी मजिस्ट्रेट होकर भी निर्भीक लेखन करते थे। 30 नवंबर, 1872 के अंक में 'अंग्रेज स्तोत्र' नाम से एक गंभीर टिप्पणी छपी-चुंगी भी पुलिस तुम्हारी दोनों भुजाएं, अमले तुम्हारे नाखून, आमदनी तुम्हारा हृदय है, महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेज हम तुमको प्रणाम करते हैं, खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है। सेना तुम्हारा चरण है। उत्सव है विराट रूप, अंग्रेज तुम्हें मेरा प्रणाम है।'

इस टिप्पणी से अंग्रेजी राज्य का लालची और लुटेरा स्वरूप अच्छी तरह से स्पष्ट है। 23 मार्च, 1874 को इसी पत्र में एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित हुआ ''हम लोग सर्वांतर्यामी, नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे और पहिले से मोल ले चुके हैं तो, और आज के तिथि तक हमारे पास जो भी कपड़ा है, उनको उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लाएंगे पर नवीन मोल (खरीदकर) लेकर किसी भी प्रकार का विलायती कपड़ा नहीं पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही कपड़ा पहिरेंगे।

कवि वचन सुधा के बारे में राम विलास शर्मा ने लिखा है—''भारतेंदु ने विदेशी वस्तुओं के व्यवहार को त्यागने के लिए अपना प्रतिज्ञा पत्र छापा था। इसी में उन्होंने खान देश के बाढ़ पीड़ितो की मदद के लिए अपील छापी थी। इसी पत्रिका में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी नीति का भंडा फोड़ किया था। इसी के माध्यम से उन्होंने हिंदी के प्रचार और विकास के लिए आंदोलन किया था।

कवि वचन सुधा के आरंभिक वर्ष बड़े ही गौरवमय थे किंतु बाद में उसका गौरवपूर्ण इतिहास धूमिल होने लगा। सरकारी व्यवधान के कारण पत्रिका का प्रकाशन समय से नहीं हो पाता था। अपने व्यस्त जीवन के कारण भारतेंदुजी ने पत्रिका के समय पर न छपने के कारण इसका काम पं. चिंतामणि को सौंप दिया। कुछ समय तक तो उन्होंने भी संपादन समय पर किया। इसके बाद रमाशंकर व्यास ने इसे संपादित किया। सन् 1883 ई. में शिव प्रसाद सितारे हिंद के स्वर में स्वर मिलाकर पत्रिका निकलती रही। इससे क्षुब्ध होकर भारतेंदु बाबू ने लिखना बंद कर दिया और 1885 में भारतेंदु बाबू की मृत्यु के बाद इसका प्रकाशन बंद हो गया।

हरिश्चंद्र मैगजीन—कवि वचन सुधा के प्रकाशन के छह वर्षो के बाद भारतेंदु ने काशी से ही 15 अक्तूबर, 1873 को हरिश्चंद्र मैगजीन मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसमें पुरातत्व, उपन्यास, कविता, आलोचना, ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथ्य, दार्शनिक लेख, कहानियां एवं व्यंग्य आदि प्रकाशित किए जाते थे। इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर अंग्रेजी में इसकी उद्देश्य-वाणी छपती था। भारतेंदु हास्य विनोद के लेख से लेकर विज्ञान और पुरातत्व तक की सभी सामग्री अपनी पत्रिका में देना चाहते थे। उस समय के पत्रों की एक विशेषता थी कि पाठकों को सभी विषयों के बारे में परिचित कराने के लिए उसमें अनेक प्रकार के लेख प्रकाशित किए जाते थे। **'कवि वचन सुधा'** मासिक का प्रथम अंक कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

हरिश्चंद्र चंद्रिका—हरिश्चंद्र मैगजीन का नाम 1874 से हरिश्चंद्र चंद्रिका हो गया। अपने समकालीन सभी पत्रों में यह सबसे आकर्षक पत्र था। नौवें अंक से हरिश्चंद्र मैगजीन को

हरिश्चंद्र चंद्रिका नाम दिया गया। सरकार इसकी 100 प्रतियां खरीदती थी, किंतु जब कवि वचन सुधा में राजनीतिक लेख छपने लगे तो सरकार ने इसे भी खरीदना बंद कर दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने इस पत्रिका के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा-'हिंदी गद्य का ही एक परिष्कृत रूप पहिले पहल इसी चंद्रिका में प्रकट हुआ। कविताएं, नाटक, उपन्यास आदि पर लेख छपते थे।'

लेखकगण–उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकारों एवं लेखकों में पं. राधारमण गोस्वामी, बाबू गदाधर सिंह, बाबू काशीनाथ खत्री, लाला श्रीनिवास दास, बाबू तोताराम, पं. अबिकादत्त व्यास, पं. बिहारी लाल चौबे, बाबू नवीन चंद्र राय, प्रेमधन आदि प्रमुख थे। इन लेखेकों की प्रशंसा करते हुए बाबू बाल मुकुंद गुप्त लिखते हैं–'यद्यपि हिंदी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे फिर भी हरिश्चंद्र के लालित्यपूर्ण लेखों ने लोगों के जीवन में ऐसी जगह बना ली थी कि कवि वचन सुधा के प्रत्येक अंक के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था। इस पत्रिका ने नए-नए लेखकों को जन्म दिया।'

कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन एवं हरिश्चचंद्र चंद्रिका में प्रकाशित लेख विविध विषयों से परिपूर्ण होते थे। इसमें जहाज का सफर, युवराज के आगमन, कान में क्या-क्या होना चाहिए, नौकरों की शिक्षा, भूकंप क्यों? आदि विविध विषयों से युक्त रोचक, ज्ञानवर्धक और प्रभावी लेख छपते थे।

नारी शिक्षा और नारी जागरण के लिए भारतेंदुजी ने **'बालाबोधिनी'** पत्रिका का प्रकाशन किया। इसका मोटो वाक्य प्रेरक था-'स्त्रीजनों की प्यारी, हिंदी भाषा से सुधारी-मासिक।' 'नई बहन' की इसे संज्ञा दी गई।

'हिंदी नई चाल में ढली'—कहते हुए भारतेंदु ने हिंदी की भाषा को और समूची हिंदी पत्रकारिता की भाषा को नया स्वरूप और नई ऊर्जा दी। क्लिष्ट हिंदी के स्थान पर जनसाधारण-आमपाठक की समझ में आने वाली हिंदी को पत्रकारिता और अपनी रचनाओं के माध्यम से स्थापित किया।

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।' यह भारतेंदु की पत्रिका 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का मोटो-वाक्य था। उन्होंने हिंदी को पत्रकारिता के माध्यम से, अंग्रेजों के दमन के विरोध की भाषा के रूप में स्थापित किया।

भारतेंदु हिंदी पत्रकारिता के दीप-स्तंभ रहे। उन्होंने केवल 35 वर्ष के अपने अल्प जीवनकाल में पत्रकारिता और साहित्य के जो मानदंड स्थापित किए, उनकी बराबरी करने वाला समूचे हिंदी पत्रकारिता इतिहास में अन्य कोई भी व्यक्तित्व नहीं दिखाई पड़ता। उनके द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने तीन बड़े काम किए। हिंदी नाटक, गद्य, व्यंग्य और पत्रकारिता की भाषा को नवीन स्वरूप प्रदान किया। हिंदी पत्रकारिता में पुस्तकों की समीक्षा-समालोचना के पारंपरिक स्वरूप को भारतेंदु ने बिलकुल बदल दिया। पत्रकारिता में समाज सुधार को बल दिया और अंग्रेजों की दमनकारी सत्ता के मुखर विरोध का अपने पत्र-पत्रिकाओं को सशक्त माध्यम बनाया। राष्ट्रीय भावना के प्रचार-प्रसार हेतु पत्रकारिता का सार्थक 'टूल' के रूप में उपयोग किया। उन्होंने बहुत कम समय में (जन्म 1850 - निधन 1885) विपुल साहित्य के निर्माण के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार-प्रचार और जन जागरण के लिए पत्रकारिता को एक सशक्त माध्यम बना दिया।

11, कबीरमठ, सी.23/5, कबीरचौरा,
वाराणसी- 221001,

भारतेंदु की विरासत

डॉ. के. वनजा

अपने युग और समय के अनुरूप अतीत के प्रतिभावान रचनाकारों की प्रासंगिकता की तलाश हर चेतनासंपन्न पीढ़ी करती है। इससे जहां एक ओर अतीत के प्रति नई पीढ़ी की जागरूकता का पता चलता है तो दूसरी ओर अपने समय के प्रति उनके गहन एवं स्वाभाविक लगाव का बोध भी हमें प्राप्त होता है। अतीत का जो कुछ भी इस तलाश और पहचान के सिलसिले में जीवंत और प्राणवान बनकर पाठकों की जिज्ञासा को जगाते हैं, वे ही उसकी विरासत के रूप में आगे के युगों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं और उनकी अपनी उपलब्धियों के अंग बन जाते हैं। इसी रूप में परंपरा आगे बढ़कर विकास की नई-नई मंजिलें पार करती है। हम उसके आईने में महज वर्तमान को ही नहीं वरन अतीत और आगत को भी सिलसिलेदार प्रवाहमान श्रृंखलाबद्ध कड़ियों के रूप में रखकर उसकी जीवंत वास्तविकता तथा ज्वलंत संभावनाओं की जांच-पड़ताल करते हैं।

हम भारतेंदु और उनकी सर्जना को निरंतर परखते और पहचानते रहना चाहते हैं कि हम भारतेंदु को बराबर अपने साथ रखते हुए सार्थक बदलाव के लिए चल रहे आज के तमाम अभियानों में उनके अनुभवों को पाथेय के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं। जिस संसार में भारतेंदु जिए-मरे और जिस संसार को उन्होंने रचा-बसा, वह संसार भी हमारे लिए कतई अन-पहचान नहीं है। उनके विचारों के ताप का ही नहीं, उनके बीच उनके बने रहने के एक जीवंत एहसास का बोध भी हमें है। भारतेंदु की इस क्रांतिकारी विरासत को उसके सही संदर्भों में विचार का विषय बनाया जाए और दृढ़ता के साथ सामने रखा जाए, यही आज के संदर्भ में हमारा परम कर्त्तव्य है। भारतेंदु की विरासत को समूचे पैनेपन तथा समूची वस्तुनिष्ठता के साथ उजागर करने की जरूरत है। उनकी जीवंत आधुनिक मानसिकता को कतई नजरअंदाज नहीं करना है। भारतेंदु अपने समूचेपन के साथ हमारे समकालीन बने। वे अपने तीखे, गहरे, सूक्ष्म तथा तेज भाषा से हमें बहुत गहराई से चिंतन मनन करने के लिए मजबूर करते हैं।

यद्यपि भारतेंदु में बहुमुखी प्रतिभा हैं तो भी एक नाटककार के रूप में उनकी ख्याति सबसे ज्वलंत है। नाट्य-प्रयोग एवं विषय की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक दो नाटक हैं—'भारत दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी'। 'भारत दुर्दशा' हिंदी का पहला राजनीतिक नाटक है तो 'अंधेर नगरी' हिंदी का पहला आधुनिक नाटक है। इन दो नाटकों की विरासत अथवा प्रासंगिकता पर मुख्यतः तीन स्तरों पर विचार किया जा सकता है— राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक।

भारतेंदु का काल ब्रिटिश उपनिवेश का था। ब्रिटिश उपनिवेश में भारत सभी दृष्टियों से परास्त हो गया। भारत को पूर्णतः मटियामेट कर यहां की सारी संपत्ति को अपने देश की ओर ले जाना ब्रिटिशों का एकमात्र लक्ष्य था। 'भारत दुर्दशा' के पहले अंक में ही यह सूचित किया है—

''अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।''

भारत अपने अधिकार से हट गया, फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी और शिथिल अंग के भारत के रूप में उसकी दुर्दशा तो विदित होती है। वह भी नहीं भारत दूसरे अंक में दुर्योधन का प्रसिद्ध वाक्य याद करता है—''सूच्याग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।'' अंग्रेजों ने युद्ध का मार्ग अपनाया नहीं, उन्होंने कूटनीतिक चाल से सारा देश हड़प कर इसे श्मशान बना दिया। भारत का सारा ऐश्वर्य, सोचने-समझने की शक्ति, मान-अभिमान, धन, साहित्य, संस्कार सब उन्होंने छीन लिया। भारत अनाथ है, आश्रयहीन है। उसके बचने का रास्ता भी नष्ट हो गया। ऐसी एक नाजुक स्थिति में पूर्णतः थके-मांदे, मृतप्रायः भारत को प्रस्तुत किया गया है इस नाटक में।

उपर्युक्त नाजुक स्थिति की वजह मध्यकालीन भारतीय जीवन की निस्सारता थी। वे केवल ईश्वर और भाग्यवाद पर विश्वास रखते हुए भौतिकता की समृद्धि को अनदेखा कर रहे थे। इसलिए भौतिक क्षेत्र में जो आगे बढ़े, वे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की मदद से भारतीय भाग्यवादियों पर आसानी से विजय प्राप्त कर सके। भारतीय मिट्टी बौद्धिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उर्वर थी। लेकिन उस उर्वरता को नष्ट कर ब्रिटिश शासन भारत के लोगों की सारी क्षमताओं पर अंकुश लगाते हैं। यह भी नहीं सामाजिक शिथिलता एवं जर्जरता के लिए जितना काम कर सके वह सब उन्होंने किया। 'फूट डालो राज करो' की नीति उन्होंने सभी क्षेत्रों में फैलाई। भारत दुर्दैव ब्रिटिशों का प्रतीक है। हमारे यहां के लोगों को भी उन्होंने फौजी

बनाकर यहां के सर्वनाश के लिए उन्होंने बीज बोया। नाटक में अंधकार, मदिरा, आलस्य, रोग, सत्यानाश आदि को फैजी बनाकर भारत को घेर लिया गया। भारतीय जनता में इन सबको बढ़ावा देने का षड्यंत्र उन्होंने रचा।

धर्म को सबसे बड़ा हथियार बनाया गया। सत्यनाश वादा करता है कि ''बहुत हमने फैलाए धर्म। बढ़ाया छुआछूत का कर्म।'' उस उपनिवेश में बहुत से भारतीय ब्रिटिशों के साथ मिलकर भारत के खिलाफ काम कर रहे थे। उपनिवेशवादी व्यवस्था के लिए क्लर्कों (गुलामों) की जरूरत थी। इन क्लर्कों के जरिए और विदेशी शिक्षा के जरिए जनता की मानसिकता को उपनिवेशों के पक्ष में ढाल लेना ही ब्रिटिशों का लक्ष्य था। यह लक्ष्य उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा से पूरा किया। धर्म सही रास्ते से विचलित हो गया। कई प्रकार से कूपमंडूकता बढ़ी। सही पूजा-आराधना के बदले जादू-टोने का प्रचार हुआ। धर्म की दुर्व्याख्या से भारतीय जीवन को शिथिल बनाया गया। इसके साथ उस समय के राजा महाराजा अपव्यय के साथी थे। फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ आदि बढ़ते जा रहे थे। जिन-जिन मार्गों से भारतीय चेतना पर आघात पहुंच सका उन सबका इस्तेमाल इन ब्रिटिशों ने किया।

आखिर भारत को चेतना शून्य बनाया गया। उस चेतना शून्य स्थिति से उसको बचाने के लिए सांस्कृतिक जागरण की जरूरत आ पड़ी। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए समाज में संस्कृति का सामाजिक तथा मूल्यगत महत्त्व है। वाल्टर बेन्जामिन ने ठीक ही लिखा है कि किसी खतरे के समय संस्कृति का रचनात्मक स्मरण होता है। तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों ने अपने सांस्कृतिक जागरण को राष्ट्रीय जागरण में बदल दिया। उपनिवेश में नवजागरण का दायित्व दो संस्कृतियों की टकराहट में अपनी अस्मिता की पहचान में है। उपनिवेशवादी अंग्रेज यहां की संस्कृति को हीन दृष्टि से देखते थे। यद्यपि प्राच्य विद्याविद्, भारत के अतीत का गौरव-गान करते रहे तो भी तत्कालीन भारत को मुर्दा देश माना गया। औपनिवेशिक अनुभव उपनिवेश-विरोध के रूप में सामने आया। इसके मूल में किसी न किसी प्रकार का संघर्ष था। संघर्ष एक ऐसी वस्तु है, जो इसमें संलग्न व्यक्तियों को रचनात्मक बनाती है। संघर्ष और रचना का बहुत गहरा संबंध है।

'भारत दुर्दशा' में उपर्युक्त संघर्ष से प्रज्ज्वलित सांस्कृतिक क्षेत्र के कुछ मनीषी एकजुट हो गए। भारत को बचाने के मार्गों पर विचार विमर्श करते रहे हैं। वे सब रचनात्मक क्रांति से भारतीय चैतन्य को वापस लाने के पक्ष में थे। वे सब इस बात पर सहमत रहे कि ''सब लोग मिलकर एक चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक उन्नति हो।'' लेकिन 'कवि वचन सुधा' जैसी पत्रिका पर भी प्रतिबंध लगाने का सरकार की तरफ से जो उपक्रम हुआ, उससे यह विदित हो उठा कि सभी प्रकार से भारतीयों को परतंत्र बना कर भारत की पूरी बरबादी ही ब्रिटिश सरकार ने चाही थी।

अचेत भारत को जगाने के लिए भारत-भाग्य ने उसके कानों पर अतीत के गौरव को फूंक दिया। लेकिन इन सबका कोई असर इसलिए उस पर नहीं था कि यहां के सांस्कृतिक महत्त्व को ब्रिटिश शासक नहीं मानते थे। यहां के उस समय के महात्माओं ने असल में अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा तथा जनता की जागरूकता के लिए भारतीय संस्कृति का आधार ग्रहण किया था। इससे यह संकेत भी मिलता है कि भारतीय नवजागरण पाश्चात्य शिक्षा का परिणाम है। लेकिन इसे अनेक कारणों में से एक मानना सही होगा। भारत भाग्य की उक्ति से यह सूचना मिलती है कि चेतनता का लक्षण प्रकट हुआ, लेकिन पुराने सामाजिक भेदभावों, अत्याचारों एवं अन्यायों से मुक्ति की संभावना दिखाई नहीं देती। ''छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं।'' भारतेंदु हमेशा, भारत की उन्नति के लिए चिंतित थे। उन्होंने एक निबंध में लिखा—''भाई हिंदुओं! तुम भी मत मतांतर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ। इस महामंत्र का जप करो। जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो वह हिंदू है। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मण, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। कारीगरी जिससे तुम्हारे यहां बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहे, वह करो। देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिलती है, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है।'' भारत दुर्दशा का मूलमंत्र भी यही है।

भारत भाग्य भारत को जगाने के लिए कई ईश्वरों को बुलाता है। लेकिन कोई सुनता नहीं। अंत में पराजित होकर भारत भाग्य आत्महत्या कर लेता है। उसने कहा, ''मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता।'' इसका तात्पर्य है कि भारत को सचेत करने के लिए वीर कर्मठ योद्धाओं की जरूरत है। भाग्यवाद, ईश्वरवाद आदि कर्मक्षेत्र से बच जाने का मार्ग है। जो इस मार्ग पर अडिग रहते हैं, वे असल में निष्क्रिय एवं डरपोक लोग हैं इसलिए समय की जरूरत को मान कर भारत भाग्य खुद अपनी भूमिका समाप्त करता है। भारत में आधुनिकता के आगमन की सूचना अर्थात् भौतिक विकास का संकेत भाग्यवाद के अंत के साथ नाटक में प्राप्त होता है।

'अंधेर नगरी' को भारत दुर्दशा की अगली कड़ी माना जाना चाहिए। 'भारत दुर्दशा' में उन्होंने कहा था, ''किया चौपट यह सारा देश'' इसलिए उस चौपट देश की हालात पेश करने के लिए चौपट राजा की कहानी चुन ली गई। जिस देश के सारे के सारे क्षेत्र में मदिरा, धर्मिक उच्छृंखलता, अनावृष्टि, बुद्धिजीवियों की गुलामी जैसे तमोगुण फैल गए वहां सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा बना रहेगा। यह एक नगरी तक सिमटता नहीं बल्कि पूरे देशभर में व्याप्त है। एक देश का अंधेरापन उस देश की तत्कालीन शासन व्यवस्था पर आधारित है। इस नाटक में एक लोक कथा

के जरिए तत्कालीन शासन व्यवस्था पर अत्यंत तीखा व्यंग्य छोड़ा गया है, जो उसकी पूरी संरचना में घुल-मिल गया है। रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है—''भारतेंदु ने यहां यह दिखाया है कि पुरानी लोक-संस्कृति के रूपों को राजनीतिक चेतना फैलाने के लिए किस तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए।'' (भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं, पृष्ठ 132)

'अंधेर नगरी चौपट राजा' के मंगलाचरण का भाव ही पूरे नाटक में गूंजता रहता है। गुण-अवगुणों का भेद समझने में असमर्थ राज शासन में नीति एवं न्याय कैसे चलेंगे? अंधेर नगरी का वातावरण यथार्थ जीवन का ही प्रतिबिंब है। अंधेर नगरी के गुणी लोग चंदन और कीकर वृक्ष का भेद, हंस और काक का भेद, हाथी और गधा का भेद और कपूर एवं कपास का भेद न जानने वाले हैं। यहां सब वस्तुएं हैं, चाहे मानव हो, धर्म हो, कबाब हो, हलवा हो, सब्जी हो, जानवर हो। किसी में कोई अंतर नहीं है। यहां सब चीजें टके सेर बिकती हैं, ''टके सेर भाजी टके सेर खाजा''। महंत के ये विचार सबसे उल्लेखनीय हैं—

''सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास।
ऐसे देश कुदेश में, कबहूं न कीजै बास।।
कोकिल बायास एक सम, पंडित मूरख एक।
इंद्रायन दाडिम विषय, जहां न नेकु विवेक।।
बसिए ऐसे देस नहीं, कनक-वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।''

अंधेर नगरी की सत्ता, मूर्ख राजा एवं नौकरशाही मिल कर जनता का मनमाना शोषण करते आ रहे हैं। वहां का बाजार व्यंग्यात्मक ढंग से हिंदुस्तान की बुरी हालात का पोल खोल देता है। यहां टके का महत्त्व सर्वोपरि है। टके के लिए जाति, धर्म आदि बेचे जाते हैं। अंधेर नगरी अंग्रेजी राज्य का ही दूसरा नाम है। अंग्रेजी राज्य के हाकिम ही घासीराम के चने खाकर लोगों पर दूना टैक्स लगाते हैं। यहीं हिंदुस्तान का मेवा-फूट और वैर-टके सेर बिकता है। यहीं जैसे काजी वैसे पाजी हैं। यहीं दाल मंडी है, जहां की देवियां चूरन की शौकीन हैं और जहां अमले चूरन खाकर दूनी रिश्वत पचाते हैं। यहीं वेद-धर्म, कुल-मर्यादा, सचाई, बड़ाई, सब टके सेर बिके जाते हैं। इससे समकालीन नव उपनिवेशी बाजार कैसे भिन्न हैं?

इस अंधेर नगरी का राजा असल में चौपट ही होगा। न्याय चलाना उसके वश की बात नहीं है। क्या गलत है, क्या सही है, यह उसे आता नहीं है। उसके देश में सभी प्रकार का अन्याय चलता है। अपराध के लिए दंड अवश्य देगा, लेकिन भोगने वाला और कोई होगा। बाजार का आकर्षण बड़ा है। नाटक में अपने गुरुजी की आज्ञा न मानकर गोबर्धन दास टके सेर मिठाई खाता है और चौपट राजा की व्यवस्था में फंस जाता है। लेकिन इस नाटक में जो महंत है, वह चिंतनशील, सचेतन बुद्धिजीवी का प्रतीक है। 'भारत दुर्दशा' में भारत भाग्य ने कर्मवीरों की जरूरत की ओर इशारा किया था। यहां चिंतनशील बुद्धिजीवी वर्ग ब्रिटिशों के सामने लाचार हो गया है। यद्यपि 'भारत दुर्दशा' का सबसे सजीव हिस्सा किताबखाने वाला दृश्य है तो भी वहां जनता से विच्छिन्न बुद्धिजीवियों की असहाय दशा उकेरी गई है।

'अंधेर नगरी' में सचेतन सूझबूझ वाले महंत के जरिए चौपट राजा को फांसी पर चढ़ाना बहुत ही प्रतीकात्मक है। बुद्धिप्रबल लोगों के सामने चौपट राजा सुधबुध खोकर परास्त हो गया। ऐसे विवेकियों से ही भारत को चेतना मिलती है। संदर्भ के अनुसार विवेक का इस्तेमाल कर आगे बढ़ने पर उपनिवेशी ताकतें अवश्य डांवाडोल हो जाएंगी। ऐसे विवेकी लोगों के एकजुट होकर काम करने से भारत दुर्दैव यहां से चला जाएगा। इसलिए ग्रामीण और अनपढ़ जनता की भी समझ में आने वाली बातें लिखकर भारतेंदु ने अंग्रेजी राज्य की अंधेर नगरी की आलोचना ही नहीं, इस अंधेरगर्दी को खत्म करने की प्रबल इच्छा भी प्रकट की। इस इच्छा को चरितार्थ करने के उपलक्ष्य में महंत नामक पात्र की सृष्टि की गई। भारत दुर्दशा में अतीत का गौरव गान तो है पर वह जनमानस में चेतना भर देने तथा आत्मगौरव से सजग करने के उद्देश्य में ही किया गया है।

उपनिवेशवाद एक सच्चाई है, जिसका एक लंबा इतिहास है। इस दीर्घकालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की जड़ों ने भारतीय समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था तथा विकास योजना में व्यापक रूप से घुसपैठ की है, लेकिन आज भी उसके प्रतिरोध का क्रियात्मक प्रयास नहीं शुरू हुआ है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात साम्राज्यवादी शक्तियां मंडी की खोज में निकलने लगी थीं। यह साम्राज्यों एवं उपनिवेशों की स्थापना हेतु निकली। साम्राज्यवाद की नृशंसता, कुरूपता तथा उसकी परिणतियों से देशी लोग परेशान होने लगे। परिणामस्वरूप नवजागरण, नए राष्ट्रबोध तथा सामंती मूल्यों को चुनौती देने का कार्य आदि शुरू हुए। यह भी सच है कि नई राष्ट्रीयता, नवजागरण और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का संबंध उपनिवेशी शक्तियों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से है। असल में उन्हीं से प्राप्त ज्ञान-विज्ञान ने भारतीय जागरण के हेतुओं में मुख्य भूमिका निभाई है, चाहे पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त कुछ व्यक्तियों के जरिए हो। निजी संस्कृति की पहचान कर हीनता भाव के बिना व्यवहार करने की शैली नवजागरण काल में अपनाई गई। उक्त राष्ट्रीय संस्कृति के केंद्र में बहुलतावादी भारतीय संस्कृति को पहचानने का आग्रह, धर्मनिरपेक्षता, समाजवादी लोकतंत्र, स्वतंत्रता का मोह आदि बातें अंतर्निहित रही थीं। इसलिए धीरे ही सही, उसमें सभी वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म आदि का योगदान रहा।

आज भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के द्वारा जो नवउपनिवेशी साम्राज्यवाद पुष्ट हो रहा है उसके प्रतिरोध की जरूरत है। अमेरिका उस समय ब्रिटेन का प्रत्यक्ष उपनिवेश रहा है तो आज अमेरिका भूमंडलीकरण के नाम पर अपनी स्वार्थता के तहत विश्व को अपने लिए अनुकूल मंडी बना लेने का कुत्सित कार्य कर रहा है। भूमंडलीकरण का असली

लक्ष्य अविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों को आवश्यक आर्थिक तथा तकनीकी सहायता देकर उन्हें विकासोन्मुख करना तथा विश्व राष्ट्रों का खुला मंच तैयार करना भी है। लेकिन आज विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश तथा विश्व व्यापार संगठन अपने मूल लक्ष्य से विचलित होकर अमेरिकी साम्राज्यवाद को पनपने का अवसर दे रहा है। आज भारत में शहरों, गांवों के भेद के बिना हर दरवाजे पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं बैंकों के बिचौलिए खड़े हुए हैं, अपने आकर्षक वादों की तरफ जन साधारण का ध्यान आकर्षित करने तथा उन्हें फंसा लेने के लिए। इसके लिए सुविधा प्रदान कर रहे हैं हमारे देश के सत्ताधारी चौपट राजा लोग। अंधेर नगरी में बाजार सब चीजों की बिक्री का केंद्र है, वह भी नहीं वहां का प्रत्येक व्यापारी विज्ञापन के जरिए अपनी ओर उपभोक्ताओं को आकर्षित कर रहा है। वे सब देश के सारे तंत्रों से परिचित हैं। वे ही राजा से, नगरी की दंडनीति से, मुसलमान-ईसाई भेद-भाव को बनाए रखते हुए धर्म की बिक्री की संभावनाओं से परिचित हैं। यानी कि वे देश के हर स्पंदन को समझने वाले हैं। यही तंत्र है आज के बाजार का। अंधेर नगरी में सब चीजें टके सेर बिकी जाती हैं। आज एक चीज के बदले में दो या तीन मुफ्त में देने का जो तंत्र है, अंधेर नगरी के तंत्र से कहां भिन्न है? आज के विज्ञापनों का मुख्य नारा है 'मुफ्त और किश्त नीति'।

आज भारत की बहुत सी चीजों पर अधिकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों का है। खेती के क्षेत्र में, वनस्पति के क्षेत्र में, औषधियों के क्षेत्र में, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में सब कहीं भारत का स्वत्व नष्ट हो रहा है। यही नहीं विदेशी कंपनियों ने भारत के बाजारों पर भी अपना अधिकार जमा लिया। भारतेंदु ने सूझ-बूझ के साथ भारत दुर्दशा में ''धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी'' का सूत्र पकड़ कर अंग्रेजों की लूट का बुनियादी तौर से पर्दाफाश कर दिया था। उस समय आम जनता जिस प्रकार असली लूट से अनभिज्ञ थी, वैसे ही आज के नव उपनिवेश में छिपे छल की गहराई से अनबूझ होकर उसके जंजाल में फंस गई हैं।

साम्राज्यवादियों के खुले बाजार में शामिल होकर अपनी मातृभूमि को एक बाजार में परिवर्तित करके हमारे शासकों ने बड़ी भूल की है। हमारे देश के चौपट राजाओं की आंखे खुलवाने और नीति के जरिए जो भीषण अमानवीय एवं जनविरोधी स्थिति पैदा हुई, उससे अवगत कराने का कार्य समाज के बुद्धिजीवी वर्ग को अपना दायित्व समझना है, जैसे भारतेंदु ने रास्ता दिखाया है। आज के उपनिवेश के खिलाफ संघर्ष करने के लिए हमें उपनिवेशित दृष्टि से मुक्त होना अनिवार्य हो गया है। हर भारतीय स्वदेशी बनता जाए, तो नव उपनिवेश समाप्त हो जाएगा। ऐसे सांस्कृकितक विमर्श के लिए हमें भारतेंदु की ओर, उनके विवेक और तर्कबुद्धि की ओर पुनः देखना पड़ता है। विदेशी उपनिवेश के खिलाफ देश की आत्मा की खोज अथवा आत्मचेतस को जगाने का प्रयास भारतेंदु ने अपनी रचनाओं के जरिये किया, सचमुच वही कार्य इस नव-उपनिवेश कालीन अधिकांश रचनाकार करते आ रहे हैं। हम मुड़-मुड़ कर देखने को तैयार हैं भारतेंदु की ओर, तब उनकी रचनाएं हमारे लिए पाथेय बनती हैं, यह समय की अनिवार्यता है। इतने युग बीत जाने पर भी हमारे सामने समयानुकूल जिज्ञासाएं जगाते हुए हमसे संवाद करते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी को साथ देने की जो शक्ति भारतेंदु की रचना में है, वही है भारतेंदु की विरासत। प्रत्येक युग के प्रतिभावान रचनाकार हमें यही याद दिलाते रहते हैं कि ''हम प्रलय न होने देंगे।''

प्रोफेसर हिंदी विभाग,
कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्ची-22

भविष्यद्रष्टा भारतेंदु

डॉ. सुधाकर अदीब

प्रातः स्मरणीय भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य में आधुनिक हिंदी के जन्मदाता के रूप में सुविख्यात हैं। उनका व्यक्तित्व भव्य था और कृतित्व बहुआयामी। साहित्य की शायद ही कोई ऐसी विधा रही हो जिसमें उन्होंने अपने रचनाकाल में न लिखा हो और अपने लेखन से एक अनूठी छाप न छोड़ी हो। काव्य, नाटक, गद्य, व्यंग्य, अध्यात्म और यहां तक कि इतिहास के पन्नों से भी उन्होंने हिंदी साहित्य को बहुत कुछ दिया।

उनकी सबसे बड़ी देन हिंदी भाषा को आधुनिकता प्रदान करना और जन-जन में उसके महत्त्व को संचारित करना रहा है। भारतेंदु हरिश्चंद्रजी ने, जबकि भारत देश अंग्रेजों और अंग्रेजी की जकड़न में घुटन अनुभव कर रहा था, हिंदी की उन्नति के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है कि वाराणसी में जून, 1877 ई. के दिन हिंदी के विद्वानों की एक सभा बुलाई गई जिसमें 'हिंदी की उन्नति' विषय पर उपस्थित विद्वत्जन ने विचार-विमर्श किया। उसी अवसर पर हिंदी भाषा के परमाचार्य भारतेंदुजी ने एक विस्तृत भाषण दिया। भाषण क्या था? हिंदी की महत्ता और अंग्रेजों और अंग्रेजी भाषा के समक्ष तत्कालीन हिंदी की चिंताजनक स्थिति और उसकी उत्तरोत्तर उन्नति पर ही हमारे राष्ट्र के वास्तविक विकास पर उनका विषद भविष्य-चिंतन था। भारतेंदुजी ने अपने इस सुप्रसिद्ध व्याख्यान में 98 दोहों में हिंदी के प्रति अपनी चिंता व भविष्य की आश्वस्ति को पिरोया है और देशवासियों को हिंदी के महान उत्थान के लिए महान प्रेरणा दी है। इसी व्याख्यान में वे कहते हैं—

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के
मिटत न हिय को सूल।।
पढ़े संस्कृत जतन करि
पंडित भे विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन
कह न सकत एक बात।।
पढ़े फारसी बहुत विध
तौहू भए खराब।
पानी खटिया तर रहो
पूत मरे बकि आब।।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि
सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन
रहत हीन के हीन।।
यह सब भाषा काम की
जब लौं बाहर बास।
घर भीतर नहिं कर सकत
इन सों बुद्धि प्रकास।।''

इस प्रकार भारतेंदुजी ने राष्ट्र की सभी प्रकार की उन्नति का मूल उसकी अपनी भाषा को बताया है। साथ ही, संस्कृत व फारसी भाषा की जटिलता पर संकेत करते हुए अंग्रेजी भाषा के महत्त्व को नकारा नहीं है। परंतु उन्होंने निज भाषा के ज्ञान के बिना व्यक्ति को हीन ही माना है। अर्थात् अपने भाषा के संस्कारों के बिना व्यक्ति चाहे जितना बहुभाषी हो जाए, बहुविधि ज्ञान को प्राप्त कर ले, परंतु पूर्णतः उसे संस्कारित नहीं माना जा सकता है। हिंदी भाषा के विकास व उन्नति के लिए उनकी चिंता व योगदान अतुलनीय है। अपने काव्यमय व्याख्यान में एक विद्वान के दृष्टिकोण से उन्होंने बहुत सी बातों को स्पष्ट किया है। उन्होंने विदेशियों की तेजी से उन्नति का रहस्य भी उनका अपनी भाषा में ज्ञान-विज्ञान व साहित्य का होना बताया है। अभिव्यक्ति की संप्रेषणीयता निज भाषा में अधिक कारगर होती है उन्होंने इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया और यह सीख भी दी कि दुनिया का विविध प्रकार का ज्ञान-विज्ञान, जहां जो भी उत्तम है, इसे हमें ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए। इस क्रम में उन्होंने अनुवाद की महत्ता पर भी प्रकाश डाला है। भारतेंदुजी इस सिलसिले में लिखते हैं कि—

''विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा मांहिं प्रचार।।
जहां जौन को गुन लह्यो लियो जहां सो तौन।
ताही सों अंगरेज अब सब विद्या के भौन।।
पढ़ि बिदेस भाषा लहत सकल बुद्धि को स्वाद।
पै कृतकृत्य न होत ये बिन कछु करि अनुवाद।।
तुलसी कृत रामयनहु पढ़ जबै चित लाय।
तक ताको आसय लिखत भाषा मांहि बनाय।।
तासों सबहीं भांति है इनकी उन्नति आज।
एकहि भाषा महं अहै जिनकी सकल समाज।।
धर्म जुद्ध विद्या कला गीत काव्य अरु ज्ञान।
सबके समझन जोग है भाषा मांहिं समान।।''

वास्तव में भारतेंदुजी अपने समय के एक बहुत बड़े विचारक एवं भविष्यद्रष्टा थे। उन्होंने आधुनिक हिंदी की स्थिति को केंद्र में रखकर विपुल साहित्य रचा है, साथ ही अपने समय के रचनाकारों, कवियों, लेखकों, साहित्यप्रेमियों को हिंदी की उन्नति के प्रयास में लगे रहने और इस दृष्टि से साहित्य को रचने की निरंतर प्रेरणा दी—

''तासो सब मिलि छांड़ि कै दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय।
बच्च्यौ तनिकहू समय नहिं तासों करहु न देर।
औसर चूके ब्यर्थ की सोच करहुगे फेर।
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जत्न।

राज-काज दरबार में फैलावहु यह रत्न।
भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र।
पढ़हु पढ़ाबहु लिखहु मिलि छपवावहु कछु पत्र।
बैर बिरोधहि छोड़ि कै एक जीव सब होय।
करहु जतन उद्धार को मिलि भाई सब कोय।।''

अपने समय का श्रेष्ठ साहित्यकार और राष्ट्रभाषा का ध्वजवाहक वही होता है, जो साहित्यिक कर्म के साथ-साथ अपने युग की विसंगतियों को भी रेखांकित करता चलता है। केवल आत्ममुग्धता या आत्मानंद के लिए ही वह साहित्य नहीं रचता है बल्कि युगीन संत्रास व जन-जन में व्याप्त पीड़ाओं को अपने रचना-जगत में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यों तो जीव मात्र की पीड़ा एक संवेदनशील व्यक्ति के हृदय में व्याप्त होती है किंतु मानव जाति में जन्म लेने के कारण चेतना के स्तर पर मानव के उत्थान हेतु साहित्यकार की विशेष दृष्टि जाती है। भारतेंदु हरिश्चंद्रजी 'भारत दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' जैसे अनेक सुप्रसिद्ध समकालीन हिंदी नाटकों के प्रणेता थे और अपने समय के एक सिद्धहस्त अभिनेता भी थे। यदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समकालीन राजनीति परिदृश्य पर वे अपने इन नाटकों में कटाक्ष करते हैं, वहीं उनकी अतिशय संवेदनशीलता उनसे 'बकरी विलाप' जैसी कविता भी लिखवाती है। करुणा व व्यंग्य से आपूरित यह कविता अत्यंत मार्मिक है। इसमें भी विभिन्न दोहों में एक विलाप करती हुई बकरी के माध्यम से कवि ने मनुष्य की हिंसक वृत्ति के विरुद्ध अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति की है–

''जज्ञन में जप-जज्ञ बढ़ि अरु सुभ सात्विक धर्म।
सब धर्मन सों श्रेष्ठ है परम अहिंसा धर्म।।
पूजा लै कहं तुष्ट नहिं धूप दीप फल अन्न।
जौ देबी बकरा बधे केवल होत प्रसन्न।।
हे बिस्वंभर! जगत-पति जग-स्वामी जगदीस।
हम जग के बाहर कहा जो काटत मम सीस।।
जगन्मात! जगदंबिके! जगत, जननि जग-रानि।
तुव सन्मुख तुव सुतन को सिर काटत क्यों जानि।।''

इस प्रकार उन्होंने धर्म में पाखंड व बलि प्रथा के निषेध पर बल दिया है। उनका 'भारत दुर्दशा' (1875) में छपा एक दुखांत रूपक है। भारत दुर्दशा में मंगलाचरण के तत्काल पश्चात् प्रथम दृश्य में प्रारंभिक पंक्तियां ही हिंदी साहित्य में प्रायः उद्धृत की जाती हैं जिसमें एक योगी के मुख से कहलवाया गया है–

''रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

इस 6 अंकों में विभक्त नाटक में भारतेंदुजी ने आलस्य, मदिरापान, निर्लज्जता इत्यादि को पात्रों के रूप में अनूठे ढंग से प्रस्तुत करते हुए अनेक दुर्गुणों से युक्त भारतवर्ष की दुर्दशा एवं परतंत्रता को प्रकारांतर रूप से व्यक्त किया है। इस नाटक में धर्म, अध्यात्म, इतिहास और वर्तमान का स्वरूप उनकी लेखनी से एक अलग ढंग से चित्रित हुआ है। भारतीय संस्कृति व सभ्यता के प्रति युगपुरुष भारतेंदुजी की अंतर्व्यथा कहीं-कहीं तो एकदम सीधे-सपाट रूप में व्यक्त हुई है–

''हा! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट, प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊंचा है, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारतवर्ष के राजा चंद्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चंद्र, रंतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं, उसकी यह दशा! हाय, भारत भैया, उठो! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है।''

इस प्रकार भारतेंदुजी ने निरंतर हिंदी को अपने चिंतन से सदैव समृद्ध किया और पाठकों को भारतवर्ष के स्वाभिमान की प्रतिरूप हिंदी भाषा के गौरव को अपने हृदय में हरदम जगाए रखने के लिए, अपनी लेखनी के माध्यम से जीवनपर्यंत झकझोरा।

इसी प्रकार से उनका अत्यंत उल्लेखनीय व प्रसिद्ध एक नाटक है–'अंधेर नगरी'। यह नाटक अपने आप में न केवल भारतेंदुजी की विलक्षण व्यंग्यपूर्ण दृष्टि को दर्शाता है बल्कि उनकी अत्यंत तीव्र गति से चलने वाली लेखनी के लाघव का भी साक्षी है। यह नाटक 'अंधेर नगरी' एक प्रहसन के रूप में भारतेंदुजी ने बनारस में हिंदी भाषियों और कुछ बंगालियों की संस्था नेशनल थियेटर के लिए सन् 1881 में मात्र एक दिन में लिखा था और इसके बाद वह काशी के दशाश्वमेघ घाट पर उसी दिन अभिनीत भी हुआ। भारतेंदुजी इस संस्था के संरक्षक थे। इसी नाटक में यह सूक्त वाक्य आया है–

''अंधेर नगरी चौपट राजा
टके सेर भाजी टके सेर खाजा।''

इस अनोखे व्यंग्यपूर्ण नाटक में प्रकारांतर से अंग्रेजी राज्य पर कटाक्ष करते हुए एक विचित्र राज्य की कल्पना की गई है। जिसमें मूल्यवान से मूल्यवान और सस्ती से सस्ती वस्तु का भाव बराबर है। अर्थात् प्रतीक रूप में यदि देखें तो राजा की दृष्टि ऐसी बौरही है और वह राजा स्वयं ऐसा व्यसनी एवं प्रमादी व्यक्ति है कि उसका न्याय वस्तुतः अन्याय के सिवा और कुछ नहीं। वह दोषी व्यक्ति की जगह कोतवाल को फांसी चढ़ाने और कोतवाल के विकल्प के रूप में एक सर्वथा निर्दोष को मृत्युदंड देने में कोई अंतर नहीं करता। एक गुरुजी व उनके दो चेले उसकी 'अंधेर नगरी' में प्रवेश कर जाते हैं। जिसमें गुरु व उनका एक आज्ञाकारी चेला तो उस अराजकता से परिपूर्ण राज्य में रह कर कुछ ही देर में आशंकित हो उसे त्याग देते हैं। जबकि दूसरा निपट स्वार्थी व विवेकहीन चेला उस राज्य के मायाजाल में फंस जाता है और अंत में उसके फांसी चढ़ने तक की नौबत तक आ जाती है। इस नाटक में भारतेंदुजी की व्यंग्यपरक चुटीली शैली, गद्य व पद्य दोनों ही रूपों में बड़ी ही मोहक है। एक जगह वे लिखते हैं–

''कोकिल बायस एक सम, पंडित मूरख एक।
इंद्रायन दाड़िम विषय, जहां न नेकु विवेकु।
बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।''

अस्तु, अपने समय के हिंदी के हीरक हस्ताक्षर और हिंदी के पुरोधा भारतेंदु हरिश्चंद्रजी न केवल एक बहुआयामी रचनाकार, अभिनेता, संगीत में निष्णात विद्वान एवं समाजसेवी थे बल्कि वे अपने समय के सबसे बड़े संस्कृतिधर्मी, साहित्यरथी और भविष्यद्रष्टा थे।

–निदेशक, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान,
6, महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज,
लखनऊ-226001

भारतेंदु युग और हिंदी काव्य क्रीड़ा

डॉ. विमलेश कांति वर्मा

काव्य क्रीड़ा भारतीय कवियों को सदा से प्रिय रही है। साहित्यशास्त्रियों ने यद्यपि इसे निम्न कोटि का माना है और रस बोध में बाधक भी समझा है तथापि इस प्रकार की रचनाएं पर्याप्त हैं। भारतेंदु युगीन कवियों ने जहां एक ओर सुंदर रसात्मक लोकगीतों की सर्जना कर अपने काव्य को सब प्रकार से रसमय बनाने की चेष्ठा की है, वहां उन्होंने विविध प्रकार की क्रीड़ात्मक काव्य रचनाएं की हैं, जिनमें एक ओर बौद्धिक चमत्कार देखने को मिलता है और दूसरी ओर रस बाधा भी नहीं होती। ये रचनाएं कवि की बहुज्ञता, सामर्थ्य तथा काव्य कौशल की अधिक परिचायक है किंतु इनमें कुछ रचनाएं ऐसी भी हैं, जिनको पढ़कर पाठक भले ही कवि कौशल पर मुग्ध हो ले परंतु उसे यह ज्ञात हो जाएगा कि जहां एक ओर भारतेंदु, श्रीधर पाठक आदि रस सिद्ध कवींधर थे, वहीं दूसरी ओर उन्होंने ऐसी रचनाएं भी की हैं, जिनका रस से विशेष संबंध नहीं है और वे बौद्धिक व्यायाम की अपेक्षा रखती हैं।

चित्रालंकार काव्यक्रीड़ा के अंतर्गत हैं। चित्रालंकारों को काव्यशास्त्रियों ने प्रायः अधम कोटि का ही काव्य माना है क्योंकि वह व्यंजक कम है, अभिधात्मक अधिक। चित्रालंकार को शब्दालंकार तथा अर्थालंकार की श्रेणी में भी नहीं रखा गया है और कारण बताते हुए कहा गया है कि चित्र को शब्दालंकार मानना ठीक नहीं। उक्त चित्र केवल लेख में देखने से वैचित्र्य पैदा करता है और जो लिखे जाते हैं वे केवल संकेत हैं वर्ण या शब्द नहीं। शब्द तो आकाश का गुण है, आकाश में ही रहता है, कान से सुनाई पड़ता है, किंतु उक्त आकार तो आंख से ही दिखते हैं; कान से नहीं सुनाई देते और पत्रादि में रहते हैं, आकाश में नहीं। अतः वे शब्द नहीं हो सकते, अतएव उक्त चित्र शब्दालंकार नहीं हो सकता। उपर्युक्त समस्या के होते हुए भी लोग चित्रालंकारों को क्यों शब्दालंकार मानते हैं, इसका समाधान करते हुए साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने लिखा है—यद्यपि इस (चित्र) के वर्ण उन-उन आकारों में लेख द्वारा निविष्ट कर देने के कारण ही चमत्कार होते हैं तथापि जो वर्ण श्रोत्राकाश के साथ संबंध होने के कारण सुनाई देने पर चमत्कारक होते हैं उन आकाशनिष्ठ वर्णों के साथ आकारनिष्ठ वर्णों का औपचारिक (लाक्षणिक) अभेद मान लेने से इसे शब्दालंकार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि लिखित अक्षरों को वास्तविक शब्द तो नहीं कह सकते, किंतु शब्दों के ही संकेत होने के कारण लक्षण द्वारा उनमें गौण रीति से वर्णादि शब्दों का प्रयोग करके चित्र को शब्दालंकार माना जाता है।[1]

विश्वनाथ के उपर्युक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुतः विश्वनाथ स्वयं चित्रालंकार को शब्दालंकार मानने के पक्ष में नहीं थे। चित्रालंकारों को विश्वनाथ की ही भांति काव्यशास्त्रियों ने अलंकार नहीं माना है किंतु विवेचन सभी आचार्यों ने किया है, चाहे वे ध्वनिवादी हों, रसवादी या अलंकारवादी। इससे यह सिद्ध होता है कि यद्यपि एक ओर काव्यशास्त्रियों का वर्ग काव्यक्रीड़ा को काव्य मानने के पक्ष में नहीं था किंतु दूसरी ओर ऐसा शक्तिशाली वर्ग भी था जो चित्रालंकार और काव्यक्रीड़ा को महत्त्व देता था और काव्यशास्त्री जिसका विरोध करते हुए भी उपेक्षा नहीं कर सके और हीन तथा अधम काव्य कहे जाते हुए भी उसका प्रचलन बना रहा।

भारतेंदुयुगीन कवियों की काव्यक्रीड़ात्मक रचनाओं को प्रवृत्ति के आधार पर कई वर्गों में रख सकते हैं—

अंतर्लापिका—अंतर्लापिका वह पहेली है जिसका उत्तर उसी पहेली के अक्षरों में निहित रहता है। भारतेंदुयुगीन कवियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र अंतर्लापिका लिखने में सिद्धहस्त हैं। 14 दिसंबर, सन् 1861 ई. को क्वीन विक्टोरिया के पति एलबर्ट की मृत्यु पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अंतर्लापिका' शीर्षक से एक अंतर्लापिका बनाई थी जो अति प्रसिद्ध हुई। इस अंतर्लापिका में 36 प्रश्न पूछे गए हैं और छत्तीसों प्रश्नों के उत्तर 'अलवरत' इन पांच ही अक्षरों में (अलं, अव, अर, अल आदि रूप में) विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए इन चार छप्पय वाली अंतर्लापिका के दो छप्पय प्रस्तुत हैं—

''बस हित सानुस्वार दवे-वाणी मधि का है?
अद्यहि भाषा माहिं कहा सब माखन चाहैं?
को तुम हायौं सदा?
दान तुम नितहि करत किमि?
का तुव मीठे सुनत?
कहा सोहत नागिन जिमि?
महरानी तुम कहं का कहत?
अरि सिर पै तुम का धरत?
काजल की सोभा?
कौन तुव सैन सदा निज भुज करत?

तुम स्व-नारि मैं कहा?
कौन इच्छा तुव करई?
का करकै तुव सैन शत्रु को बल परिहरई?
कैसो तुव जन हियो?
ततो वाचक का भासा?
तुव अरि-सिर नित कहा?
कौन जल बरसत खासा?
तुव पग संगर में का करत?
कौन प्रथम पाताल लहि?
आमेदित कासों तुव वसन?
का ह्वै पर दल परत महि?''[2]

'अलवरत' के ही समान 'श्री जीवन जी महाराज' शीर्षक से भारतेंदु की एक अंतर्लापिका 'कविवचनसुधा' के 2 सितंबर, सन् 1872 ई. के अंक में प्रकाशित हुई थी। इसमें 'श्री जीवन जी महाराज' के गुणों का वर्णन है और सोलह प्रश्नों के उत्तर चार ही अक्षर 'श्री जीवन' से निकलते हैं–

''हरि की प्यारी कौन? देह काके बल धावत? 1-श्री 2-जी
कहा पदन मैं परि विशेषता बोध करावत? 3-व
कहा नवोढ़ा कहत? ठाकुरन को ही स्वामी? 4-न 5-श्री जी
सुरगन को गुरु कौन? बसत केहि थल रिसि नाभी? 6-जीव 7-वन
हरिवंशी धुनि सुनि सकल ब्रजबनिता का कहि भजैं? 8-वजी
वह कौन अंक जो गुननहूं कि ये स्प निज नहीं तजैं? 9-नव
अश्वपीठ कह धरत? कौन रवि के जिय भावत? 10- जीन 11-वनजी
राजा के दरबार सभहि सुधि कौन दिआवत? 12-नजीव
नवल नारि मैं कहा देखि जुव जन मन लोभा? 13-नव श्री
को परिपूरन ब्रह्म? कहा सरवर की शोभा? 14-श्री जीव 15-जीवन
धन, विद्या, मानादिक सुगुन भूषित को जग गुरु कह्यो? 16-श्री जीवन
इन सब प्रश्न को एक ही उत्तर श्री जीवन कहौ?'' [3]

हरिश्चंद्र लिखित निपनाष्टक का अंतिम अंश भी ऐसा ही है। इसमें रिपन शब्द के अक्षरों के विभिन्न संयोगो को सार्थक रूप में प्रयुक्त कर काव्य रचना की गई है–

''निज सुनाम के बरन किए तुम
सकल सबहिं विधि।
रिपु सब किए उदास दई
हिय राजभक्ति सिधि।।
महरानी को पन राख्यौ
निज नवल रीति बल।
परि मध न्याय तुला के
नप राख्यौ सम दुहुं दल।।
सब प्रजापुंज-सिर आपको
रिन रहिहै यह सर्व छन।।
तुम नाम देव सम नित जपत
रहिहैं हम हे श्री रिपन।।''[4]

अंतर्लापिका का ही एक रूप वह रचना है, जिसकी काव्य पंक्तियों के प्रथम प्रश्नों को पढ़ने से नए छंद की सृष्टि हो जाती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'वसंत टोली' नामक रचना इस पद्धति की प्रसिद्ध रचना है। यह संरचना हरिश्चंद्र मैगजीन में प्रकाशित हुई थी। इसके सामने निर्देश रूप में एक स्लिप पर छपा है–

''पहिलो बरन न वांचियों
यह बिनवत कर जोर।
जो पढ़िकै मानौ बुरौ
तो न दोस कछु मोर।।''[5]

इस सोलह दोहों तथा बत्तीस पंक्तियों वाली रचना के यदि प्रथम अक्षरों को क्रम से पढ़ा जाए तो निम्नलिखित छंद बनता है–

''जो बाचै या पतृको सो है सार हमार।
गदहा मूरख चूतिया चौपट निपट गंवार।।''[6]

हिंदी प्रदीप की आठवीं जिल्द की सातवीं संख्या में एक छोटी सी कविता प्रकाशित हुई है जिसके प्रारंभ में लिखा है–

''पहिलो अक्षर जिन पढ़ो
पढ़ि फिर करो न रोष।
फागुन को लक्षण यही
यामै मोर न दोष।।''

इसके बाद लोक शैली पर आधारित दो कविताएं छपी हैं जिनकी पंक्ति के प्रथम अक्षर को जोड़ने से 'होली का भड्डुआ है' की सृष्टि होती है–

''होय रही धूर उड़ाई, हंसें जग लोग लुगाई।
लीन्हें विषय रंग संग अपने
बल बुद्धि सबहिं गंवाई।
काज न लाज शरम से
कतहूं धीरज धर्म न साई।
भली यह रीति चलाई।।
डुली भूमि नहिं जाय भार
सहि भारत विपद फसाई।
वाद्य गान धुनि सबहि त्याग
अब सोचहु अपन भलाई।
है न कछु और उपाई।।''[7]

इसके अतिरिक्त ऐसी रचनाएं अनेक मिलती हैं जिनके प्रथम अक्षरों को पढ़ने से किसी छंद की सृष्टि तो नहीं होती किंतु कविता के शीर्षक की या उद्देश्य आदि की पंक्ति रूप में सृष्टि होती है 7–श्री न्याशनेल कांग्रेस भारत शुभाय 8 'होली का भड्डुआ है', 'श्री हिंदी प्रदीप का उद्देश्य' ऐसी ही सृष्टि है। हिंदी प्रदीप के एक अंक 9 के अंतिम कवर पेज पर 'श्री हिंदी प्रदीप का उद्देश्य' रचना इस प्रकार छपी थी।

''श्री हरि पद रच कृपा देश दुर्दशा सुधारन।
हिंदू गन मन गुहा महा तम लोभ निवारन।
दीप देश नव नेह भरि भरि तेड़ बारन।
प्रबलित उर्दू मुख कवलित हिंदी उद्धारन।
दीन प्रजा दुख हरन नागरी बरन प्रचारन।
परपद गत आरत भारत की आपद टारन।
काव्य कला कौशल शिल्प विद्यादि उबारन।
उत्तम उत्तम विषय देश भाषा संचारन।
देश काल नियमानुसार मारग पग धारन।
शत विधि निज उद्देश्य
शेष लौं पूरन कारन।''[10]

इसी प्रकार की एक अंतर्लापिका हिंदी प्रदीप में प्रकाशित हुई थी जिसके प्रत्येक चरण के

आद्यक्षर को पढ़ने से 'एडिटर अखबार' बन जाता है।

''एक बात को फिर फिर गावै,
डिस लायलटी को बरकावैं।
टरकावैं अवनति कहं दूर रहैं
देश की फिकिर में चूर।
अच्छी अच्छी बात सुनावैं
खरी खरी कहि वह विचकावैं।
बार बार आपुहि यह आवैं,
रसिक जनन को मन बहलावैं।।'[11]

हिंदी, अंग्रेजी तथा उर्दू के अक्षरों को संयुक्त करके काव्य रचना भी इस युग के कवियों की रुचि रही है। भारतेंदु, श्रीधर पाठक (प्रारंभिक रचनाएं) तथा अन्य अनेक कवियों की एक सी रचनाएं हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, हरिश्चंद्र मैगजीन, कविवचन सुधा आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होती रहती थीं। हिंदी प्रदीप में दो छंद इस रूप में प्रकाशित हुए थे–

A रे B र C रे न परहु रण खेत मांहिं, D ल तो निहारौं निज दिग्गज लखात है। E श क्यों मनाइए FG हत विचारि देश तुरत विदारिए H (च) भू कितेक बात है? I J म्लेच्छ सेन K ली हैं विचारि भला, लरिए L राई भाई प्रजा अकुलात है। ऐ M दमाते सूर नाम पै न डारो धूर ऐ N युद्ध औसर पै ढील न सुहात है।[12]

एरे बीर सीरेना परहु नणखेत मांहि डील तो निहारौ निज दिग्गज लखात है। ईश को मनाइए फजीहत विचारि देश तुरत बिदारिए चमू कितेक बात है। ई जे मलेच्छ सेन केती हैं बिचारो भला लरिये लराई भाई प्रजा अकुलात है। ऐ मदमाते सूरनाम पे न डारौं धूर ऐन युद्ध औसर पै ढील न सुहात है।

O खो है समैया नाहिं, P रको सुनैया कोउ, धीरज धरैया भैया एक न दिखात है। सर Q लर देश में फिरायो कलिराज आज R त अवस्था झूठ भारत की बात है। S ढील आलस को T का लगायो सिर U धन के यूथ आर्य V ज के नसात है। W न पास एक टेक्स X इज अनेक, पोत हू स Y देत देत Z डरात है।[13]

ओखो है समैया नाहिं पीर को सुनैया कोउ धीरज धरैया मैया एक न दिखात है। सरक्यूलर देश में फिरायों कलिराज आज आरत अवस्था झूठ भारत को बात है। ऐस ढील आलस को टीका लगायों सिर यूथान के यूथ आर्य वीज के नसात है। डबलऊ न पास एक टेक्स एक साइज् अनेक पोतहू सवाई देत देत जे डरात हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखित मनोमुकुल मालांतगर्त 'अथ इंगलैंडी-पारसीक-वर्ण चित्रिता राज राजेश्वरी आयीं' कविता में इंगलिश तथा उर्दू के लिपि चिह्नों का प्रयोग कर भारतेंदु ने कविता की है। यह इस प्रकार का विलक्षण उदाहरण है, जिसमें एक साथ रोमन, नागरी तथा फारसी लिपि चिह्नों का प्रयोग कर कवि चमत्कृति उत्पन्न करता है।[14]

वर्णों के समान ही अंकमयी रचना भी कवि मध्य काफी लोकप्रिय थी। इकाई की संख्या से लेकर अरब-पद्म तक की संख्याओं का प्रयोग कर भारतेंदु ने चमत्कार उत्पन्न किया है। अंकमयी राजराजेश्वरी स्तुति कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं।

''करि वि 4 देख्यो बहुत जग बिनु 2 स न 1।
तुम बिनु हे विक्टोरिये
नित 100 पथ टेक।।1।।
ह3 तुम यैप नै 80 कहत करि 100।
पै बिन 7 प्रताप बल सत्रु मरोरे भौंह।।2।।
किए 10000000000 बल 10000000000 के तनिकाहिं भौंह मरोर।
40 की नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर।।3।।
तुव पद 1000000000000000 प्रताप को करत सुकवि पि 100000000
करत 10000000 बहुत 100000 करि होत तऊ प्रति थोर।।4।।
तुम 31 ब मैं बड़ी तातें विरच्यो छंछ।
तुव जस परिमल ।।। लहि अंक चित्र हरिचंद।।5।।''[15]

इस प्रकार पढ़ैं–

(कर विचार देख्यो बहुत जग
बिनु दोस न एक।
तुम बिन हे विक्टोरिया नित
नौ सौ पथ टेक।।
हती न तुम पर सैन लै
असी कहत करि सौह।
पै बिन सात प्रातप बल
सत्रु मरोरे भौंह।।
किए खरब बल अरब के
तनिकहिं भौंक मरोर।
चालि सकी नहिं अरिन की
सैन सैन लखि तोर।।
तुव पद पद्म प्रताप को करत
सुकवि पि के रोर।
करत कोटि बहु लक्ष करि
होत तऊ प्रति थोर।।
तुम इकती सब में बड़ी तातैं विरच्यो छंद।
तुव जस परिमल पौन
लहि अंक चित्र हरिचंद।।)

रंग चित्र संबंधी काव्य क्रीड़ा का उदाहरण निम्नलिखित है–

''... दुति करि बैरि झट ... मुख मसि लाय।
... पीरजन ... लित ... हि इत पहवाया।।

[(पीरे) दुति करि बैरि झट (कारे)
मुख मसि लाय।
(हरे) पीरजन (नील) लित (लाल)
हिइत पठवाय।।]

दूसरे प्रकार की काव्य क्रीड़ात्मक रचनाएं वे हैं, जिनमें किसी खेल आदि की गणितीय विधि का वर्णन है। 'कवि वचन सुधा' में भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'चतुरंग'[16] नामक एक ऐसी ही कविता प्रकाशित है। इसमें तीन छप्पय हैं और तीनों में ही प्रायः संख्याओं का उल्लेख है। इनको कंठस्थ कर लेने से कवि का बनारस से प्रकाशित 'सुधाकर' नामक एक प्राचीन पत्र में इसी खेल पर एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें बताया गया था कि यह प्राचीन समय में हिंदुस्तान के किसी चतुर मंत्री ने बालक राजा को नीति सिखाने

हेतु बनाया था। बाबू राजेंद्र लाल कृत संग्रह में प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के नाम में 'चतुरंग क्रीड़न' नाम देखने से और भी सिद्ध होता है। भारतेंदु द्वारा लिखित 'चतुरंग' से कुछ अंश अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं–

''बीस, तीस, चौबीस, सात,
तेरह, उन्निस, कहि।
चारुक, दस, पच्चीस, बयालिस,
सत्तावन, लहि।।
इक्कावन, छत्तिस, इक्किस,
एकतिस, सोलह खर।
बारह, द्वै, सत्रह, सत्ताइस,
तैतिस, गिन झर।।
पच्चास, साठ, तैंतालिस, सैंतिस,
चौवन, चौंसठ लहिय।
सैंतालिस, बासठ, छप्पन,
उनतालिस, पैंतालिस कहिय।।
पैंतिस, एकतालिस, अट्ठावन,
बावन को गठ।
छियालीस, एकसठ, पचपन,
चालिस, तेइस अठ।
चौदह, उनतिस, चौवालिस,
चौंतिस, उनचासों।
उनसठ, तिरपन, तिरसठ,
अड़तालीस प्रकासो।।
अड़तिस, बत्तिस, 'हरिचंद' प्रदंह,
सुपांच, बाईस लहि
अट्ठाइस, ग्यारह, छबिस, नव,
तीन, अठारह, एक कहि...।।''

बुझउअल संबंधी काव्य क्रीड़ात्मक रचनाएं भी इस युग के कवियों को प्रिय रही हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'मूक प्रश्न', 'मानलीला', 'फूल', 'बुझउअल' तथा जानकीदत्त कृत 'बालकौतुक' इसी प्रकार की रचनाएं हैं। 'मूक प्रश्न' 'कवि वचन सुधा' में 30 अप्रैल, सन् 1877 ई. के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसके माध्यम से अनेक प्रश्न आदि करके किसी व्यक्ति ने मन में किस इच्छित वस्तु का ध्यान किया है, बताया जा सकता है।

'मूक प्रश्न' में एक छप्पय तथा चार दोहे हैं। छप्पय निम्न हैं–

''जीव एक, द्वै मृतक, वनस्पति तीजो जानो।
धातु चतुर्थी, शून्य पांच, जल छठयो मानो।।
रस सातों, आठवों पारथिव, नवों बसन कहि।
दस मुद्रा, मणि ग्यारह, बारहमो मिश्रित लहि।।
औषध तेरह, कृत्रिम चतुरदस, पंद्रह लेखन सकल।
हरिचंद जोड़ दोहान को कहहु प्रश्न फल अति विमल।।''[17]

इन पंद्रह वस्तुओं में संसार की समस्त वस्तुएं आ जाती हैं। ग्रंथावली के संपादक महोदय इसका स्वयं निर्देश भी निम्न रूप में करते हैं–

1. **जीव**–प्राणिमात्र; 2. **मृतक**–चमड़ा, मांस, लोम, केश, पंख, मल, भाला; 3. **वनस्पति**–पत्ता, फल, डाल, लकड़ी, फूल, गोंद, अल; 4. **धातु**–धातु एवं धातु निर्मित वस्तुएं; 5. **शून्य**–0; 6. **जल**–पानी और द्रव पदार्थ; 7. **रस**–घी, गुड़, नमक, भोज्य वस्तु मात्र; 8. **पार्थव**–पत्थर, खाक, कंकड़, चूना; 9. **वसन**–डोरा, रूई, रेशम; 10. **मुद्रा**–रुपया, पैसा, हुंडी, नोट, गहना; 11. **मणि**; 12. **मिश्रित**–मिश्रण; 13. **औषधि**–दवा, मद्य; 14. **कृत्रिम**–मानव निर्मित वस्तु; 15. **लेखन**–कागज, पुस्तक, कलम।

इसके बाद चार दोहे हैं। छप्पय को उत्तरदाता को कंठस्थ करके प्रश्नकर्ता से पूछना होगा कि जो वस्तु उसने सोची है या मन में ली है वह किस दोहे में है। जिन दोहों में वह कहेगा उन दोहों के दूसरे तुक की गिनती के संकेतों को जोड़कर जो फल हो वह छप्पय के उसी अंक में देखना चाहिए।

मान लीला, फूल, बुझउअल[18] और बाल-कौतुक[19] विस्तृत रचनाएं हैं लेकिन पद्धति लगभग समान ही है। जानकीदास कृत बाल-कौतुक ब्राह्मण में प्रकाशित हुआ था। बाल-कौतुक के तीन खंड हैं–(1) वृक्षान्वेषण, (2) पुष्पान्वेषण, (3) खगान्वेषण। वृक्षान्वेषण में पांच चक्र हैं, जिसमें वृक्षों के नाम उत्तरदाता बता देगा उसने कौन सा वृक्ष लिया है। दूसरे खंड में फूल लिखे हैं तथा तीसरे में पक्षियों के नाम का अनुसंधान होता है। इस प्रकार की बुझउअल की पद्धति के लिए वृक्षान्वेषण का कुछ भाग अवलोकनार्थ प्रस्तुत है। वृक्षान्वेषण के प्रथम खंड में पांच चक्र हैं, देखने का ढंग यह है कि ''प्रथमहिं शशि दूजे जुगुल तीजें जानों वेद। चौथे समुझिय जोरि कै जानि तजौ सब खेद।।'' अर्थात् पहले चक्र में यदि प्रश्नकर्ता का मनोगत वृक्ष हो तो पहला दोहा, तीसरे में हो तो चौथा, चौथे में हो तो आठवां यदि पहले और दूसरे में हो तो एक और दो तीसरा दोहा; पहले, दूसरे तीसरे में हो तो एक और दो और चार सातवां दोहा इसी भांति जानो। चक्रों की संख्याएं याद रखनी चाहिए, यथा–

पहले में 1, दूसरे में 2, तीसरे में 4, चौथे में 8, पांचवें में 16

पहला चक्र

	तेंदु	ताल	असोक	मौलिसिरी (बौलसिरी)
तेलबल	बत्तौनिया	करील	कल्पवृक्ष	नारियल
बेर	साल	नीम	चापट	मिरस
तुनि		पतंग		

दूसरा चक्र

	आम	नारियल	कुंद	बेर शमी
साल	सीताफल	नीम	अमिली	चापट पीपल
सिरस	कटहर	तुनि	हरसिंगार	पतंग

तीसरा चक्र

	कुंद	कैंच	सीताफल	केला
पीपल	तिलक	हरसिंगार	बड़	बेर
करील	मिरस (सिरस)	तेजबल	नीम	असोक
पतंग	तेंदू			

चौथा चक्र

	मेंहदी	शमी	असोक	
सीताफल	दत्तौनिया	कठर	तिलक	
हरसिंगार	पतंग	ताल	साल	
कैल	नीम	सैनाट	तुनि	
करील				

पांचवां चक्र

तेजबल	परियल	दत्तौनिया	सैनाट	हरसिंगार
तिलक	कटहर	नारंगी	बौरश्री	अमिली
चापट	तुनि	सिरस	करील	पतंग
केला				

उपर्युक्त पांच चक्रों के उपरांत प्रत्येक वृक्ष पर एक दोहा कहा गया है और इस प्रकार वृक्ष संबंधी कुल दोहों की संख्या 31 है। इन 31 दोहों के पहले चार दोहे ईश्वर वंदना संबंधी हैं, जहां अंतिम दोहे में यह भी कहा गया है कि यह 'वृक्ष विनोद' जानकीदत्त ने लिखा है।

चित्रालंकारों की रचना इस समय बहुत नहीं हुई किंतु फिर भी इनका पूर्णतया अभाव नहीं रहा। 'ब्राह्मण' में गतागत सारु छंद और कमलबद्ध चंचला छंद[20] प्रकाशित हुए, जो इस युग में चित्रालंकारों के अस्तित्व के सूचक हैं।

गतागत सारु छंद

घाम मघा पात तपा।
जाम मता पाख खपा।।

कमलबद्ध चंचला छंद

राम नाम प्रेम धाम।
जाम जाम छेम काम।।

घा	म
पा	त
जा	म
पा	ख

द्वयर्थक परिहासपूर्ण रचनाएं तो इस समय अनेक लिखी गई हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखित 'समधिन मधुमास' ऐसी ही द्वयर्थक कविता है। बारहखड़ी में तो प्रायः सभी कवियों ने कविताएं लिखी हैं। प्रतापनारायण मिश्र लिखित ककाराष्ट कलियुग ककहरा तो काफी प्रसिद्ध हुआ। बारहखड़ी के ही समान लोकोक्ति को आधार बनाकर छंद-रचना करना इस युग में लोगों को प्रिय था। हिंदी प्रताप, ब्राह्मण आदि उस युग की सभी पत्रिकाओं में ऐसी रचनाएं प्रकाशित हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने तो सौ से अधिक लोकोक्तियों को आधार बनाकर छंद रचना कर अपनी सामर्थ्य का अद्भुत परिचय दिया था। परसन की लोकोक्ति और उनके प्रत्युदाहरण नामक इसी प्रकार की रचना भी तत्कालीन पत्रिका पाठकों के मध्य काफी लोकप्रिय हुई थी। उदाहरण के लिए प्रतापनारायण मिश्र कृत लोकोक्ति शतक से दो छंद उद्धृत हैं—

''भजहुं प्रेममय देवता तजहु शोक समुदाय।
एकै साधै सब सधे सब साधे जब जाय।।
सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहिं चुप लातें खाव।
राजा करे सो न्याव है,
पांसा परे सो दांव।।''[21]

पहेलियां और मुकरियां एक प्रकार की काव्य क्रीड़ा ही है। हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, भट्ट, परसन आदि सभी ने मुकरियां लिखी हैं। पहेलियों की तुलना में इस युग में मुकरियां बहुत लिखी गई हैं। परसन ने तो मुकरी के नाम से दो शैलियां प्रयुक्त की हैं। एक का नाम 'मुकरी' तथा दूसरी का नाम 'मुकरी का दादा' रखा है।

संस्कृत में ग़ज़ल और लावनी लिखकर कवियों ने अपने संस्कृत भाषा पर अधिकार तो सूचित किया ही है, साथ ही एक प्रकार की काव्य विलक्षणता भी प्रस्तुत कर दी है। प्रतापनारायण मिश्र ने संस्कृत में ग़ज़ल और लावनी लिखी है। इसी प्रकार भारतेंदु ने संस्कृत में लावनी लिखी है जो हरिश्चंद्र मैगजीन में प्रकाशित हुई थी। उदाहरण के लिए लावनी का कुछ अंश प्रस्तुत है—

''कुंजं कुंजं सखी सत्वरं।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं।।
सर्वा अपि संगताः।
नो दृष्ट्वा त्वां तासु प्रिय सखिहरिणाऽहं प्रेषिता।।
मानं त्यज वल्लभे।
नास्ति श्री हरि सदृशो दयितो वच्मि इदं ते शुभे।।

गतिर्भिन्ना।
परिधेहि निचोलं लघु।
जायते निलंबो बहु।
सुंदरि त्वरां त्वं कुरु।।
श्री हरि मानसे वृणु।
चल चल शीघ्रं नोचेत्सर्वं निष्पत्तिहि सुंदरं।
अन्यद्भवनं मंदिरं चल चल दयितः।।''[22]

समस्या पूर्ति काव्य इस समय के कवियों का सर्वप्रमुख मनोरंजन साधन था। रसिकवाटिका आदि कुछ पत्रिकाएं तो समस्या पूर्ति के प्रकाशनार्थ ही निकलती थीं। भारतेंदु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र आदि सभी कवियों ने एक से एक उत्तम समस्या पूर्तियां रची हैं। शब्द से लेकर पंक्ति तक की समस्या रखी जाती थी और कवि उनकी पूर्ति करते थे। भारतेंदु, प्रेमघन आदि कवियों ने यद्यपि सभी प्रकार की समस्या पूर्तियां रची हैं किंतु अधिकांश शृंगारपरक हैं।

इस युग की काव्य क्रीड़ा पर यदि समीक्षा दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए तो निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

(1) भारतेंदु युग के कवियों की काव्य क्रीड़ा में विशेष रुचि थी और प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने इस प्रकार की रचनाएं की हैं।

(2) अधिकांश काव्य क्रीड़ात्मक रचनाएं चमत्कार प्रधान होते हुए भी रसशून्य नहीं हैं।

(3) चित्रालंकारों का प्रयोग अपेक्षाकृत अति न्यून है।

(4) समस्या पूर्ति संबंधी काव्य मात्र समस्या की पूर्ति ही नहीं है वरन् काव्यत्व का सुंदर निदर्शन भी है।

(5) संस्कृत में लिखी गई ग़ज़लें या लावनी शैलीगत नवीनता जरूर प्रस्तुत करती है, किंतु वे उर्दू की ग़ज़लों और भाषा की लावनी की तुलना में रस तथा काव्य सौंदर्य की दृष्टि से बहुत ही निम्न कोटि की हैं।

(6) मुकरियां, ककहरा तथा लोकोक्ति पर आधारित रचनाएं अधिकांशतः व्यंग्यपरक हैं।

73, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

हरिश्चंद्र की रचनाओं में अनूठी रागदारी

शशिप्रभा तिवारी

वाराणसी निवासी कलाविद् डॉ. उर्मिला शर्मा कहती हैं कि परंपरा का अर्थ है—प्रायः सुविदित। आज के संदर्भ में देखें तो शास्त्र और प्रयोग के साथ लोक और वेद को जोड़ रहा है। हमारे कला क्षेत्र में परंपरा के अनुकूल प्रयोग एवं नवीन सृजन में अभिप्रेत लागू है। अवश्य ही सुधिजन 'संग्रह ज्याग न बिनु पहचाने' का पालन करते हुए ही कला की परंपरा की संवर्द्धन और समृद्धि में तत्पर रहते हैं कि ''गुन न हेरायो, गुनगाहक हेरायो है'' की दशा समाज में न बन पाए। कवि के हृदय को श्रोता के हृदय में ले जाना। कथनीय के पूरी तरह हृदयमई करवा देना।

वास्तव में, गायिका शुभा मुद्गल ने तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास की रचनाओं को अपनी सुरीले सुरों में पिरोया है। बल्कि, भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाओं को शास्त्रीय संगीत में जिस तरह गाया है, वह अनूठा तो है ही साथ ही उन्होंने एक आदर्श स्थापित किया हिंदी के कवियों को इतने शिद्दत से महसूस करके उसे दिल से गाने का काम किया। गायिका शुभा मुद्गल कहती हैं कि भारतेंदु बाबू को साहित्य उनके पिता गोपालचंद्रजी से विरासत में मिला था। वह हिंदी के साथ संस्कृत, उर्दू, मराठी, बांग्ला, गुजराती और पंजाबी के विद्वान थे। वह अच्छे कवि होने के साथ उपन्यास, नाटककार, लेखक थे। रामविलास शर्मा कहते हैं कि भारतेंदुजी सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के बाद भारतीय समाज को जागरूक बनाने के लिए अग्रगण्य लेखक थे। वैसे तो उनकी कविताओं में सभी रस मिलते हैं, पर रीतिकालीन रसपूर्ण अलंकार, शृंगार और शांत रस प्रधान हैं। उन्होंने एक तरफ काव्य शैली में चौपाई, छप्पय, सोरठा, कुंडलियां, कवित्त, सवैया, धनाक्षरी लिखें हैं, वहीं दूसरी तरफ लोक छंदों में कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार और चैती भी खूब लिखा है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की लिखी कई रचनाओं को शुभा मुद्गल ने गाया है। उन्होंने गभजन ''भजूं तो गोपाल ही को'', दादरा ''आज की रतियां कठिन भई'', ''सइयां भए बेदर्दी'', ''सदा सुहागन'', ''भंवरा तेरा क्या फरमान'' को बहुत मोहक अंदाज में गाया है। भारतेंदु ने होली ''कैसी होरी खेलाई आग तन-मन में लगाई'', बसंत की होरी ''जोर भयो तन काम को आयो प्रकट बसंत'', होली ''हमहुं सब जानति लोक की चालनि'', ''ऊधो जो अनेक मन होते'' जैसी रचनाओं में भारतीय परंपराओं को निजी बोध के साथ लिखा है। भारतेंदु साहित्य की सांगीतिक प्रस्तुति के बारे में ख्याल कैसे आया? इसके जवाब में शुभा मुद्गल कहती हैं कि गायन की प्रस्तुति के विषय में संगीत के जरिए बातचीत हो। लोग संगीत और साहित्य का आनंद लेते हैं तो खुद पर भी गर्व महसूस होता है। इस सीडी के जरिए मेरी कोशिश है कि युवा पीढ़ी अपने रीति-रिवाजों को जानें। हम सब सीमेंट-पत्थर के घर में बंधकर रह जाते हैं। अपने को समझ नहीं पाते। शहरी जीवन की भाग-दौड़ और आपा-धापी में हम अपने आप को ही भूल जाते हैं। इलाहाबाद में जब रहते थे तब या मां के पास उत्तराखंड जाती हूं या गांव वाले घर पर जाती हूं, तो जीवन का आनंद लेते हैं। हमारे रीति-रिवाज जीवन, प्रकृति, पर्यावरण, आस-पास और समाज से जुड़ें हैं। उसमें हर इनसान का महत्त्व है, जैसे-पहले त्योहार आते थे तो मेंहदी लगाने वाली, चूड़ी पहनाने वाली मनहारिन, आलता लगाने के लिए ठकुराईन

खुद-ब-खुद चले आते थे। वे एक माहौल रचते थे। सावन के महीने में कोई नीम या आम की डाली पर कुंए की रस्सी से झूला डाल देता था। ऐसे पल अब तो जीवन में रहे नहीं। उसे संगीत के जरिए रचने की कोशिश कर रही हूं। वह अंदाज में पलटे-तानों से दिखाने की कोशिश करती हूं। यही तो हमारे साहित्यमय संगीत की विशेषता है। मैंने शास्त्रीय संगीत की विद्यार्थी होने के नाते राग, तान, पलटे का प्रयोग भारतेंदुजी की रचनाओं को गाने में किया। अब जैसे झूला का पद 'चलो री कदंब तले' है। इसमें कदंब का पेड़ लगा कैसा होता है? अब संगीत के विद्यार्थी कदंब का पेड़ कैसा होता है यह जानने के लिए या तो किसी पार्क में जाना होगा या मिनिएचर पेंटिंग देख सकते हैं। काव्य, संस्कृति, मिथक में क्या है? भारतेंदुजी की पैदाईश बनारस की थी और मेरी इलाहाबाद की। हम उनके पड़ोस के शहर हैं तो एक स्वाभाविक लगाव है। उनके साहित्य में इतनी सामग्रियां मौजूद हैं कि आप बस उसमें एक बार गोता लगाने की कोशिश करें तो बस डूबते ही जाएंगें। लगभग बारह साल पहले भारतेंदु समग्र प्रकाशित हुई थी। तब हमने तीस-पैंतीस पदों को रिकार्ड किया था। उसमें से सिर्फ पंद्रह को सीडी में शामिल कर पाए। हमारे रिकार्डिंग को वसुधा डालमिया ने खासतौर पर बहुत पसंद किया था।

आजकल ऑन लाइन सुविधाओं के कारण उपभोक्ताओं को तो संगीत सुनने की सुविधा हो गई है। पर इससे एलबम या सीडी कंपनियों को काफी नुकसान हो रहा है। इस संदर्भ में शुभा मुद्गल कहती हैं कि हमें अपने इस प्रयास में किसी रिकार्ड कंपनी ने मदद नहीं किया। अनीशजी और मैंने अपने प्रयासों से इस सीडी को लांच किया। सौभाग्य से हमें ऑन-लाइन वितरक मिल गए। वरना, आज के प्रतियोगिता के युग में कोई ऐसी कोशिश लोग पसंद करें या ऐसी संगीत किसी के जुबान चढ़े यह बहुत बड़ी बात है। जहां तक वीडियो एलबम बनाकर भारतेंदु के साहित्य-संगीत के प्रचार करने की बात है, मैंने उससे भी अपने को दूर रखा है। क्योंकि, आजकल वीडियो की रिकार्डिंगें भी भारत में नहीं की जाती हैं। अब आप भारतीय साहित्य को स्विटजरलैंड के प्राकृतिक दृश्य के साथ जोड़कर देखेंगें, तब क्या आनंद आएगा। इसके लिए, तो बनारस के घाट हों, गंगा की लहरें हों, तरह-तरह की रंग-बिरंगी नौकाएं हों और गाते-बजाते लोगों की टोली हो, तभी बात बनेगी।

(शुभा मुद्गल से बातचीत पर आधारित)

कितना कम जानते हैं हम भारतेंदु को!

डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र

भारतेंदु भवन का शिलापट

मुक्ति नगरी काशी के केंद्र में है 'चौक थाना', जिसके बगल से पीछे की ओर बढ़ जाती है नर्तकियों की प्रसिद्ध गली दालमंडी, जिसकी पहचान धीरे-धीरे खत्म हो गई है। ठीक पीछे बनारसी चाटों की मशहूर दुकानें सजाकर बैठी है नारियल वाली गली। इसी में अपनी पुश्तैनी 'सुंघनी साहु की दुकान' पर कभी 'कामायनी' महाकाव्य के रचयिता, छायावाद के प्रमुख स्तंभ जयशंकर प्रसाद बैठते थे। दायां मार्ग विश्वनाथ मंदिर और गोदौलिया चौक की ओर जाता है, जिस पर मोतीलाल बनारसी दास और चौखंभा संस्कृत प्रकाशन जैसे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के प्रकाशक हैं। सामने कचौड़ी गली है, जिसकी कचौड़ी-जलेबी की दुकानें मणिकर्णिका घाट पर शव जलाकर लौटे परिजनों की भूख-प्यास मिटाकर आज भी आबाद हैं। इस गली के कोने पर, मास्टर खेलाड़ी लाल की संस्कृत पुस्तकों की दुकान के सामने एक पान की भव्य दुकान हुआ करती थी, जिसके पान (स्वर्ण भस्म आदि के कारण) उन दिनों सौ

रुपए तक बिकते थे, जबकि एक सामान्य काशीवासी की घर-गृहस्थी का मासिक खर्च मात्र दस रुपए था। चौक के ठीक सामने से बायीं ओर मुलानाला और मैदागिन जाने वाली सड़क नीचे की ओर लुढ़कती है, जिस पर नीचीबाग है। नीचीबाग अब बाग नहीं है, बल्कि घनी आबादी वाला बाजार है। एक पुराना घंटाघर उसका स्मरण दिला रहा है। चौक थाने से इस सड़क पर सिर्फ दो कदम चलने पर वह पतली-सी गली आती है, जिसे ठठेरी बाजार कहते हैं। एक सदी पहले यह पूरा इलाका प्रसिद्ध व्यावसायिक केंद्र था, जहां से बनारसी साड़ियां देश के कोने-कोने में नववधुओं का शृंगार करने जाती थी। चौक थाना क्षेत्र अब वाहनों, दुकानों और चलते-फिरते लोगों से इतना भर गया है कि यहां चौपहिया वाहनों का आना-जाना बंद कर दिया गया है। या तो पैदल चलिए या बाइक पर या रिक्शे पर। बनारस की ट्रैफिक समस्या ऐसी विकट हो गई है कि यदि जल्दीबाजी हो तो पैदल चलिए। जिस दूरी को आप पैदल चलकर आधे घंटे में तय करेंगे, उसे रिक्शे से एक घंटे में और कार से तीन घंटे में। इसलिए मेरे पत्रकार मित्र धर्मेन्द्र सिंह ने अपनी सफारी कार के बजाय मुझे भजीजे के साथ बाइक पर ठठेरी बाजार भेजा।

बहुत वर्षों बाद ठठेरी बाजार की गली में घुसा हूं। उस पतली गली में दोनों ओर बाइक इस तरह पंक्तिबद्ध खड़े किए गए हैं कि उनके बीच से एक आदमी का निकलना भी मुश्किल है। मगर आने-जाने वाले पदयात्री बिना किसी शिकवा-शिकायत के जिस किसी तरह गुजर जाते हैं। बोलें भी कैसे? मुंह में मगही पान जो घुला है। पहले भी वे हष्ट-पुष्ट सांड़ों और गायों की हुड़पेट सहते ही रहे हैं, बिना कुछ बोले कारोबार का दिन होने के कारण यह गली काफी अस्त-व्यस्त है। इस गली में विश्वप्रसिद्ध राम भंडार है, जिसकी मिठाइयां कभी विदेशों में पार्सल होती थीं। इसी तरह ज्ञानचंद मुरब्बे वाले की दुकान भी गली की शान थी। अब ये दोनों दुकानें किसी तरह विदेशी कंपनियों के मुकाबले एक हारी हुई जंग लड़ रही हैं। रामभंडार से थोड़ा आगे बढ़ने पर भारतेंदु हरिश्चंद्र की पुश्तैनी हवेली आती है, जिसके कोने पर नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा लगाया गया वह शिलापट है, जिसमें भारतेंदु का संक्षिप्त विवरण है। उसके आगे खोमचा वाला मजे में आमरस बेच

शास्त्री जी के साथ कुमुद चंद्र

भारतेंदु के पिता गोपालचंद्र

रहा है। उसे क्या पता कि भारतेंदु कौन थे? सच पूछें तो आज के साहित्यप्रेमी ही उनके बारे में कितना जानते हैं? दरअसल उनका नाम भारतेंदु था भी नहीं। उनके पिता बाबू गोपालचंद्र ने उनका नाम हरिश्चंद्र रखा था। पिता स्वयं प्रतिष्ठित कवि थे, जो गिरिधरदास उपनाम से लिखते थे। जब ब्रिटिश सरकार ने कुशल अधिकारी राजा शिवप्रसाद को 'सितारे-हिंद' की पदवी दी, तो बनारस की जनता ने खड़ी बोली के उन्नायक बाबू हरिश्चंद्र को 'भारतेंदु' की उपाधि दे डाली। और चूंकि यह उपाधि आम जनता द्वारा दी गयी थी, इसलिए उनकी संज्ञा बन गई।

इससे पहले भारतेंदु भवन न जाने कितनी बार आया, याद नहीं। समय-समय पर यहां साहित्यिक गोष्ठियां होती रहती हैं। जब बनारस में 'आज' अखबार में था, तब बीच-बीच में अपने मित्र रत्नशंकर व्यास के साथ ठठेरी बाजार और गोपाल मंदिर का चक्कर लग ही जाता था। ज्ञानचंद के यहां का पापड़ और बांस के कोंपल का अचार मेरे घर में सबको प्रिय था। हवेली के द्वार पर कई साइन बोर्ड लगे हैं, जिनमें एक यह कहता है कि यहां भारतीय विद्या भवन का केंद्र भी चलता है। विदेशों में साहित्यकारों के भवन को संग्रहालय बना दिया जाता है, जहां पर्यटक को 500 रुपए तक शुल्क देना होता है। परिवार की परवरिश उसी आय से होती है। यहां वह जागरूकता नहीं है। इसलिए आय के वैकल्पिक उपाय करने ही होंगे। मुख्य दरवाजा हमेशा की तरह खुला हुआ है। केवल रात में बंद होता है। भीतर पांव रखते ही सबसे पहले पुश्तैनी 'ताम-झाम' और पालकी के दर्शन हुए। गिरीशचंद्रजी ने बताया कि आज भी परिवार में किसी की शादी होती है तो वर 'ताम-झाम' में आता है और नववधू पालकी में। ताम-झाम में आमने-सामने दो लोगों के बैठने की व्यवस्था है। कम ही लोगों को यह पता होगा कि ताम-झाम रईसों का पुराना वाहन है, जिसे चार कहार उठाते थे। अब यह शब्द आडंबर के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। दोनों वाहन विंटेज कार की तरह अब शोभा की वस्तु हैं।

गली में चाहे जितना शोरगुल हो, मगर हवेली का परिसर पूरी तरह निश्शब्द है। इसलिए हमारे पांवों की आहट ने हवेली के अंतेवासी गिरीशचंद्रजी को बता दिया कि हम लोग आ

गए हैं। पारंपरिक ढंग से ड्राइंग रूम में हमें ले जाया गया। खास बनारसी मिठाई और खास बनारसी पेय के साथ आत्मीय आवभगत हुई। दीवार पर गिरीशजी के पिता और भारतेंदु के भाई बाबू गोकुलचंद्र के पौत्र कुमुदचंद्रजी का आदमकद तैलचित्र टंगा है। वे अपने परिवार के ठिगने लोगों की तुलना में काफी लंबे थे। (इसका श्रेय उनके नाना भगवानदास की आनुवंशिकी को जाता है)। वे महाराज बनारस के एडी थे। दीवार पर उनके दो बड़े-बड़े फोटो टंगे हैं; एक रानी एलीजाबेथ और काशी नरेश के साथ; दूसरा तत्कालीन प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री के साथ। दीवार पर बाबू हरिश्चंद्र, उनके पिता बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) और पितामह बाबू हरशचंद्र और कुमुदचंद्रजी के पिता बाबू ब्रजचंद्रजी के फोटो लगे हैं। गोपालचंद्र भी सिर्फ 28 वर्ष की आयु लेकर आए थे, मगर इसी अवधि में उन्होंने 40 किताबें लिख डालीं। अपने पिता के साहित्यिक योगदान को रेखांकित करते हुए भारतेंदु ने एक जगह लिखा है,''सांप्रत काल के कवियों में श्री गिरिधरदास महान कवि हुए, क्योंकि व्याकरण और कोष तथा नाटक हिंदी में पहले इन्होंने ही बनाए।''

बकौल गिरीशचंद्रजी, अग्रवाल समाज का यह चौधरी परिवार नवाबों के शासन काल में बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद में कारोबार करता था। 1770 से 1780 के बीच यानी पलासी युद्ध के बाद मुर्शिदाबाद से भारतेंदु के प्रपितामह और बाबू हरषचंद्र के पिता बाबू फतेहचंद्र देश के बदलते हुए माहौल में नए व्यवसाय की तलाश में काशी आ गए। पहले यह परिवार लहुराबीर चौक के पास राम कटोरा मुहल्ले में रहता था। गिरीशजी बताते हैं कि उपन्यास सम्राट प्रेमचंद्र का निधन इनके घर ही हुआ था। 'चंद्रकांता संतति' आदि तिलस्मी उपन्यासों के रचयिता देवकी नंदन खत्री भी उसी मुहल्ले में रहते थे। चूंकि उन दिनों ठठेरी बाजार काशी का मुख्य व्यवसाय केंद्र था, इसलिए फतेह चंद्रजी यह मकान खरीदकर यहां आ गए। उनके एक ही पुत्र थे हरषचंद्र, जिनके इकलौते पुत्र बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) के दो पुत्र हुए—हरिश्चंद्र और गोकुलचंद्र। गोकुलचंद्र के दो पुत्र कृष्णचंद्र और ब्रजचंद्र। कृष्णचंद्र

भारतेंदु का मूल चित्र

रानी एलिजाबेथ और काशी नरेश के साथ कुमुदचंद्र

के तीन पुत्रों में से ज्येष्ठ मोतीचंद्र अमेरिका में चले गए और वहीं बस गए। बाकी दो भाई लक्ष्मीचंद्र और नारायणचंद्र वाराणसी में ही अन्यत्र रहते हैं। भारतेंदु की केवल एक पुत्री विद्यावती थी, भारतेंदु के ही परिवार की डॉ. प्रतिभा अग्रवाल कलकत्ता में 'अनामिका' नामक थियेटर ग्रुप की संस्थापक हैं और हिंदी रंगमंच में क्रांति लाने का श्रेय उन्हें जाता है। फिलहाल, इस हवेली में गिरीशचंद्रजी अपने पुत्र दीपेशचंद्र, पुत्रवधू और पौत्र कंदर्पचंद्र के साथ रह रहे हैं। इनके एकमात्र चाचा मोहनचंद्र सपरिवार जर्मनी में रहते हैं। ड्राइंग रूम के एक कोने में परिवार के आराध्यदेव भगवान श्रीकृष्ण का होलिकोत्सव शृंगार के अवसर पर लिया गया चित्र है, जिसकी पुष्पसज्जा मनोहारी है। गिरीशचंद्रजी बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी में भूविज्ञान के प्राध्यापक रहे हैं। उनको इस बात का धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने भारतेंदु के जीवन से संबंधित बहुत सारी दुर्लभ सामग्री, यहां तक कि कलम-दावात, इत्रदान, लेखन-सामग्री की मंजूषा, पत्रिकाओं के अंक, अनेक चित्र (जिनमें प्रेयसी मल्लिका के साथ हरिश्चंद्र भी हैं) बहुत संभालकर रखी हैं। सामान्यतः हिंदी क्षेत्र में परिवारवालों की रुचि केवल साहित्यकार की आर्थिक विरासत तक रहती है।

जिस ड्राइंग रूम में मैं आज बैठा हूं, उसमें कभी भारतेंदु बैठा करते थे, यह सोचकर ही रोमांचित हो उठता हूं। वे किस तरह के दरबारियों से घिरे रहते थे, उसका एक मनोरम चित्र स्वयं उन्होंने निर्लिप्त होकर खींचा है, जिसमें तत्कालीन बनारस के रईसों और उनके चाटुकारों का यथार्थ वर्णन है। ''कोई कहता था, आपसे सुंदर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था, आप-सा पंडित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था, चमेली जान आप पर मरती है, आपके देखे बिना तड़प रही है, कोई बोला हाय! आपका फलाना कवित्त पढ़कर रात भर रोते रहे, दूसरे ने कहा आपकी फलानी ग़ज़ल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गायी, सारी मजलिस लोटपोट हो गई, तीसरा ठंडी सांस भरकर बोला—धन्य हैं, आप भी गनीमत है बास क्या कहैं कोई जी से पूछे, चौथा बोला आपकी अंगूठी का पन्ना

क्या है कांच का टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है। एक मीर साहब चिड़ियावाले ने चोंच खोली, बेपर की उड़ाई, बोले कि आपके कबूतर किससे कम हैं वल्लाह कबूतर नहीं परीजाद हैं, खिलौने हैं, तस्वीर हैं, हुमा पर साया पड़े तो उसे शहजाद बना दें, ऐसे ही खूबसूरत जानवरों में ईसाई लोग खुदा का नूर उतरना मानते हैं, इनको उड़ते देखकर किनके होश नहीं उड़ते, कसम कलामुल्लाह शरीफ की, मटियाबुर्जवालों ने ऐसे जानवर ख्वाब में भी नहीं देखे। एक दलाल घोड़े की तारीफ कर उठा, जौहरी ने खच्चरों की तरफ बाग मोड़ी, बजाजा बाग की स्तुति में फूल-बूटे कतरने लगा। सिद्धांत यह कि मैं बिचारा अकेला और वाहवाहें इतनी कि चारों ओर से मुझे दबाए लेती थीं और मेरे ऊपर गिरी क्या फिसली पड़ती थीं।''

हमारे देश के लिए सौभाग्य की बात है कि 19वीं सदी के एक ही दशक में तीन महान व्यक्ति भारत की धरती पर अवतरित हुए—स्वामी विवेकानंद 12 जनवरी, 1863 को, रवींद्रनाथ टैगोर 4 मई, 1861 को और महात्मा गांधी 2 अक्तूबर, 1869 को। भारतीय इतिहास का यह अद्‌भुत स्वर्णिम योग था। ये तीनों महापुरुष आधुनिक भारत में अपने-अपने क्षेत्र के उन्नायक बने। स्वामी विवेकानंद धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में, गुरुदेव टैगोर साहित्य में और महात्मा गांधी स्वाधीनता संग्राम और सार्वजनिक जीवन में। तीनों महापुरुषों के जन्म से एक दशक पहले ही क्रांति का बिगुल बजाने के लिए काशी की धरती पर भारतेंदु हरिश्चंद्र 9 सितंबर, 1850 को अवतरित हो चुके थे। भारतेंदु टैगोर से एक दशक पहले उत्पन्न हुए थे, मगर टैगोर की तुलना में बहुत कम आयु लेकर आए थे। टैगोर सन् 1861 से 1941 तक कुल अस्सी वर्ष रहे और 'शांति निकेतन' के कार्यों से बचे समय में लगातार लिखते रहे। भारतेंदु सितंबर 1850 से जनवरी 1885 तक कुल 34 वर्ष 3 महीने 27 दिन जी पाए। और यह जीवन ही क्या था? पांच वर्ष की आयु में मां चल बसी और नौ वर्ष की आयु में पिता। संयुक्त परिवार का कवच नहीं होता तो वे उस मुकाम तक कभी नहीं पहुंच पाते। इतनी छोटी-सी उम्र लेकर आए

आगे ताम-झाम और पीछे पालकी

जीर्ण-शीर्ण नाचघर

भारतेंदु ने खड़ी बोली की नींव को उसी तरह विपुल साहित्य रचकर मजबूत किया, जैसे टैगोर ने लगभग उन्हीं दिनों बंगला में किया। लेकिन दोनों की भूमिका एक समान नहीं थी। टैगोर के पहले ईश्वरचंद्र विद्यासागर (1820-1891), वंकिमचंद्र चटर्जी (1838-1894) जैसे महापुरुषों ने बंगला भाषा की आधारभित्ति तैयार कर दी थी। विद्यासागर ने बंगला भाषा सिखाने के लिए जो दो भागों में 'वर्ण परिचय' लिखा था, वह आज भी उतना ही लोकप्रिय है। इसी प्रकार, बंकिमचंद्र ने जो 'दुर्गेश नंदिनी' और 'कपालकुंडला' जैसे उपन्यास प्रारंभ में ही लिखकर बंगला को चलने के लिए खरंजा बिछा दिया था।

भारतेंदु को विरासत में ऐसा कुछ नहीं मिला। हिंदी का विशाल भवन बनाने के लिए उन्हें सुर्खी-चूना, ईट-औजार सब स्वयं जुटाना पड़ा। जमीन भी बंगाल की तरह उर्वरा नहीं मिली। वे पैदा हुए उस प्राचीन नगरी काशी में, जिसे कोई भी नई पहल पसंद नहीं है। यहां तक कि गोस्वामी तुलसीदास को भी अपने अप्रतिम महाकाव्य 'रामचरित मानस' को काशी के बुढांठू पंडित समाज में जमाने के लिए विश्वनाथ मंदिर में परीक्षा देनी पड़ी। भारतेंदु को यह परीक्षा बारंबार देनी पड़ी, मगर इसके बावजूद उन्होंने इतना विपुल साहित्य लिखा है, वह भी विभिन्न विषयों पर, विविध विधाओं में और विभिन्न भाषाओं में, कि देखकर आश्चर्य होता है। टैगोर इस वैविध्य में भारतेंदु के सामने नहीं ठहरते। भारतेंदु ने ब्रजभाषा, खड़ी बोली, संस्कृत, उर्दू, बंगला, गुजराती, पंजाबी आदि तमाम भाषाओं में लिखा और पूरे अधिकार के साथ लिखा। उनकी रची संस्कृत में सैकड़ों कविताएं हैं, ब्रज और खड़ी बोली में हजारों, बंगला और उर्दू में भी सैकड़ों। खास बात यह है कि जिस भाषा की रचना पढ़िए, मास्टरपीस दिखेगी। उन्होंने अंग्रेजी में भी लिखा है, जो उस समय के प्रगतिशीलता की कसौटी थी। इतना भाषा-वैविध्य और विद्या-वैविध्य टैगोर में कहां है? हां, भारतीय साहित्याकाश का वह संधिकाल धन्य था, जब एक ओर बंगाल में 'रवि' (सूर्य) चमक रहा था और दूसरी ओर बनारस में 'इंदु'(चंद्रमा)। काश कि भारतेंदु को टैगोर की भांति दीर्घायु मिलती और बंगाली समाज जैसा काव्यप्रेमी और जाग्रत समाज मिलता। भाषा-चेतना से रहित। हिंदीभाषी समाज अपने साहित्यकारों की अवहेलना के लिए कुख्यात है। अपनी भाषा, अपने साहित्य के प्रति जब कोई लगाव न

गिरीश चौधरी के साथ लेखक

हो, तो साहित्यकारों की पूजा-अर्चना केवल माला-फूल तक सिमटना स्वाभाविक है। जिन हिंदी प्राध्यापकों को साहित्य मंदिर का पुजारी नियुक्त किया जाता है, वे मूर्तियों को खिसकाकर स्वयं पुजवाने बैठ जाते हैं। ऐसे में, यदि हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी के श्रीकृष्ण चंद्र बेरी ने मात्र 30 रुपए में 1200 पृष्ठ का 'भारतेंदु समग्र' न निकाला होता, तो उनका साहित्य भी 'आप्तवाक्यं प्रमाणम्' बनकर रह जाता। यह 'समग्र' यदि 'रवींद्र रचनावली' की तरह भव्यता से छपी जाए तो पृष्ठों की संख्या 12 हजार से ज्यादा पहुंच जाएगी।

भारतेंदु से पहले हिंदी का रूप वह नहीं था, जो आज है। वह उर्दू, हिंदुस्तानी और दक्खिनी हिंदी का मिला-जुला रूप था, जिसमें ब्रज और भोजपुरी का भी पर्याप्त पुट था; जिसमें साहित्य के नाम पर लोकगीत और लोक कथाएं मात्र थीं। इंशा अल्लाह खां (1756-1818) की हिंदी में लिखी कहानी 'रानी केतकी की कहानी' पुस्तक जरूर प्रसिद्ध हुई, मगर वे मूलतः उर्दू के कवि थे और उर्दू के प्रथम शब्दकोश 'दरिया-ए-लताफ़त' के रचयिता थे। बनारस के निकटवर्ती आरा नगर के मुंशी सदा सुखलाल नियाज, लल्लूजी लाल औ सदल मिश्र की इस अर्थ में ऐतिहासिक भूमिका रही है। लल्लूजी लाल (1763-1825) ने कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट के अनुरोध पर चतुर्भुज मिश्र की ब्रजभाषा में लिखी पुरानी पुस्तक 'प्रेम सागर' को खड़ी बोली में प्रस्तुत किया, जो खड़ी बोली की प्रथम पाठ्य पुस्तक बनी। इसके अलावा उन्होंने सिंहासन बत्तीसी, बेताल पचीसी, शकुंतला नाटक भी खड़ी बोली में (ब्रज-उर्दू मिश्रित) प्रस्तुत की। हिंदी के प्रथम शैलीकार सदल मिश्र (1767-1848) ने अपनी संस्कृत-ब्रज मिश्रित भाषा में संस्कृत 'चंद्रावली' का भाषानुवाद 'नासिकेतोपाख्यान' (1803) नाम से किया। उसकी पीठिका में वे तत्कालीन परिदृश्य और प्रारंभिक शैली की झलक प्रस्तुत करते हैं।

''चित्र विचित्र सुंदर-सुंदर बड़ी-बड़ी अटारिन से इंद्रपुरी समान शोभायमान, नगर कलिकता महाप्रतापी बीर नृपति कंपनी महाराज के सदा फूला फला रहे, कि जहां उत्तम-उत्तम लोग बसते हैं और देश-देश से एक से एक

गिरीश परिवार

गुणी जन आय-आय अपने-अपने गुण को सुफल करि बहुत आनंद में मगन होते हैं। नाम सुन सदल मिश्र पंडित भी वहां आन पहुंचा वो बड़ी बड़ाई सुनि सर्वविद्यानिधान ज्ञानवान महा-प्रधान श्री महाराज गिलकृस्त साहब से मिला कि जो पाठशाला के आचार्य हैं। तिनकी आज्ञा पाय दो एक ग्रंथ संस्कृत से भाषा वो भाषा से संस्कृत किए।''

वह समय ब्रिटिश साम्राज्य की अति साधारण भाषा अंग्रेजी के वर्चस्व का था। देश की सार्वभौमिकता अंग्रेज व्यापारियों की ईस्ट इंडिया कंपनी के चंगुल से निकलकर 'राजराजेश्वरी' विक्टोरिया की मुट्ठी में चली गई थी। आज की तरह लोगों को छूट नहीं थी कि वे जब चाहें, जिसे चाहें, गरिया दें। अपने कारोबार, गौरव और प्रतिष्ठा को किसी तरह बचाने के लिए देश के सभी व्यापारी, जमींदार, रईस, राजे-महाराजे, नवाब-निजाम दिल्ली के वायसराय और लंदन की महारानी के सामने पूंछ डुलाने के लिए बाध्य थे। इसी मानसिकता और भाषा-परिवेश में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी नवजागरण की नींव रखी थी। वे अजीब परिस्थिति में फंसे थे। एक ओर पारिवारिक व्यवसाय और नागरिक प्रतिष्ठा, उन्हें महारानी की जयजयकार करने, उनके चट्टे-बट्टों की जी-हुजूरी करने और प्रशस्ति-गान करने के लिए बाध्य करती थी, दूसरी ओर अपने देश की दुर्दशा उनसे देखी नहीं जाती थी। फलस्वरूप उन्होंने जयकारा भी खूब लगाया और जनसामान्य को जाग्रत करने के लिए उद्यम भी बहुत किया। उन्होंने अपने खर्च से 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'उचितवक्ता', 'हरिश्चंद्र', 'बाल बोधिनी' जैसी हर वर्ग के लिए उपयुक्त पत्रिकाएं निकाली। विभिन्न भाषाओं के नाटकों को हिंदी में रूपांतरित कर तथा स्वयं मूल रूप से नाटक-प्रहसन आदि लिखकर सही अर्थों में हिंदी में नाटकों का सूत्रपात किया। भारतेंदु मंडल के नाम से साहित्यकारों का मंच तैयार किया, जिससे पं. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण प्रेमघन जैसे रचनाकार सार्थक सृजन के प्रति सक्रिय हुए। नई शिक्षा के लिए चौखंभा विद्यालय का बिरवा लगाया और अपने खून-पसीने से सींचकर उसे बड़ा किया। आज वह छोटा-सा बिरवा, जिसकी आर्थिक चिंता हमेशा उन्हें खाए जा रही थी, हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर

महाविद्यालय के रूप में वट वृक्ष बन चुका है। शुद्ध सात्विक वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की, जिसकी साप्ताहिक बैठकों में संकीर्तन और गीता-भागवत (दशम स्कंध) के पारायण का विधान था। इसके सदस्यों को एक प्रतिज्ञा पत्र भरना पड़ता था, जिसमें 'परम प्रेममाय भगवान श्री राधिका रमण' का भजन करना, भगवान से किसी प्रकार की कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना न करना, अन्न को महाप्रसाद मानकर ग्रहण करना विहित था और हिंसा-मदिरा-मांस का सेवन पूर्णतः वर्जित था। उन्होंने वैष्णव समाज के लिए एक परीक्षा लेने की योजना भी बनाई थी, जिसमें उत्तीर्ण होने वाले को 150 रुपए देने का प्रावधान था, जो समय की मुद्रा के मूल्य की दृष्टि से बहुत अधिक था। उन्होंने देश-देशाटन किया और उसका यात्रावृत लिखा। ये यात्रावृत उस समय की देश की परिस्थिति को जानने के लिए पठनीय हैं। इनमें जगह-जगह उनका आक्रोश देखते ही बनता है। मात्र दो छोटे-छोटे स्केच यहां रखना चाहूंगा।

पहला उद्धरण लखनऊ यात्रा का है जो कभी अवध राज्य की राजधानी हुआ करता था।

''जहां पहिले जौहरी बाजार और मीना बाजार था, वहां गदहे चरते हैं और सब इमामबाड़ों में किसी में डाकघर, कहीं अस्पताल, कहीं छापाखाना हो रहा है। रूमी दरवाजा आसफुद्दौला की मस्जिद और मच्छीभवन का सरकारी किला बना है। बेदमुश्क के हौजों में गोरे मूतते हैं।''

दूसरा उद्धरण उनकी जबलपुर यात्रा से संबंधित है।

''यहां पैसा साढ़े पंद्रह आने तो बिकतई हैं, दो अन्नी और चरअन्नी भुजाने में भी एक-एक पैसा भुजाना लगता है। ऐसा अंधेर हमने और किसी स्थान में नहीं देखा। एक्केवाले को चरअन्नी दिया तो वह कहता है कि यह तो पंद्रही पैसे हुए। एक पैसा और चाहिए। एक और लड़के को सात पैसे के पलटे दोअन्नी दिया।''

वे 15 वर्ष की अवस्था में पूरे परिवार को लेकर जगन्नाथ पुरी गए थे। वहां भी उन्होंने जगन्नाथ की मूर्ति के साथ भैरव की मूर्ति देखकर तहकीकात में जुट गए और सिद्ध किया कि दोनों मूर्तियां एक साथ नहीं रखी जा सकतीं, क्योंकि दोनों देवों की प्रकृति एक-दूसरे के विरुद्ध है। यहीं पर बंगाल के नवजागरण से उनका साक्षात्कार हुआ और लौटकर वे सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक-धार्मिक नवजागरण के विशाल रथ को कुछ चेतनाशील मित्रों के साथ खींचने लगे। उन्होंने प्रारंभ में ही अंग्रेजी की तुलना में हिंदी में विभिन्न विषयों पर साहित्य की अनुपलब्धता को भांपकर एक महत्त्वपूर्ण आह्वान किया था, जिस पर उनके समकालीन साहित्यकारों ने पूरा ध्यान दिया।

''लखहु न अंग्रेजन करी उन्नति भाषा माहिं।
सब विद्या के ग्रंथ अंग्रेजिन मांह लखाहिं।।
विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक
प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा माहिं प्रचार।।''

उन्होंने अपनी अधिकतर कविताएं ब्रजभाषा में लिखी, जो चार सौ वर्षों में भारत के बहुत बड़े भूभाग की साहित्यिक अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम थी। अन्य तत्कालीन कवियों की तरह ही वे भी खड़ी बोली को गद्य और ब्रज को पद्य की भाषा मानते थे। सन् 1883 में, यानी अपने जीवन के सांध्यकाल में, उन्होंने इस विषय पर एक लेख भी लिखा था, जिसमें स्पष्ट कहा था।

''मैंने आप कई बेरे परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी। इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा में ही कविता करना उत्तम होता है। खड़ी बोली में कविता मीठी नहीं बनती तो मुझको सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है। इससे कविता अच्छी नहीं बनती।''

उनका यह मानना एक दृष्टि से सही था, क्योंकि आज भी शास्त्रीय नृत्य-संगीत की बंदिशें ब्रजभाषा में ही होती हैं। मगर पिछली एक सदी में खड़ी बोली ने अपने को इतना मांजा कि अब वह काव्य-रचना की सहज सुलभ भाषा बन गई है। हिंदी सिनेमा के गीत तो शत-प्रतिशत खड़ी बोली में ही होत हैं। वैसे, भारतेंदु के लिए ब्रज में लिखना उतना ही सहज था, जैसे मछली का पानी में तैरना। हजारों पद और दोहे लिखे। सभी पद बाकायदा राग-रागिनियों में बद्ध। उन्होंने विभिन्न भाषाओं में किस मास्टरी के साथ कविताएं लिखीं, इसके दो-एक प्रमाण प्रस्तुत हैं।

'रसा' के नाम से लिखी गई उनकी उर्दू ग़ज़लों के कुछ मतले अर्ज हैं—

1. दश्त पैमाई का गर कस्द मुकर्रर होगा।
   हर सरे खाए पए आबिला नश्तर होगा।।

2. आ गई सर पर कज़ा
   लो सारा सामां रह गया।
   ऐ फलक क्या-क्या हमारे
   दिल में अरमां रह गया।।

3. दिल आतिशे हिजरां से
   जलाना नहीं अच्छा।
   अय शोल-रुखो आग
   लगाना नहीं अच्छा।।

4. उठा के नाज़ से दामन
   भला किधर को चले।
   इधर तो देखिए बहरे-खुदा,
   किधर को चले।।

संस्कृत में भी उनके श्लोक इतने मंजे हुए हैं, कि आश्चर्य होता है। संस्कृत में 'राजराजेश्वरी विक्टोरिया' की स्तुति भी की थी, जहां से एक श्लोक उद्धृत है—

''नानाद्वीप-निवासिनो नृपतयः

स्वैरुतमांगैर्नतैः
आदेशाक्षरमालिकां यदुदितां
मालामिवाबिभति।
यत्कीर्तिः शरदिन्दुसुन्दररुचिर्व्याप्नोति
कृत्स्नां महीं।
सेया सर्वजनातिगस्व-विभवा कासां गिरां
गोचराम्।।''

'चंद्रिका' उपनाम से उन्होंने बंगला की साधु भाषा में जो कविताएं लिखी, उनमें से बानगी के तौर पर एक कविता देना मैं आवश्यक समझता हूं।

''आदरे आदरे भालो तो छिले
जे तोमार अनुगत तार कि करिले।
नव जलधर तुमि तृषित चातकि आमि
ओहे प्राननाथ कोथा बारि बिंदु बरषिले।
प्रानप्रिय प्रानधन बल जानता एमन
'चंद्रिका' हृदये केन गो दिले।''

उन्होंने गुजराती और पंजाबी में भी लिखा। सुन लीजिए उनकी गुजराती कविता की बस दो पंक्तियां—

''वारा दीठैयो नव मुखचंद
कामणगारा नैणावे।
वारी श्रवण पाड़या श्रवणे
तव अमृत बैणाबे।''

उन्होंने इतिहास लिखा, भारत का भी, संपूर्ण सृष्टि का भी। यह इतिहास अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य पर आधारित और किसी अंग्रेज के लिखे इतिहास से ज्यादा प्रामाणिक है। एक पुरातत्ववेला के रूप में रामायण और महाभारत का काल-निर्धारण एक बड़ा काम है। इस्लाम और ईसाई धर्म पर भी साधिकार लिखा। क्या-क्या नहीं लिखा उन्होंने? कौन-सा विषय छोड़ा उन्होंने? यदि आपके पास भारतेंदु साहित्य है, तो आप आज भी बहुज्ञ हैं। उनके समय के भारत को जानने के लिए उनका साहित्य का जादुई शीशा है, जिसमें दूर-पास का सब कुछ दिखाई देता है। इतना व्यापक फलक भारत क्या, दुनिया की किसी भी भाषा के रचनाकार में नहीं मिलता।

भारतेंदु ने सात वर्ष की आयु में पहला स्वतंत्रता संग्राम देखा था। उस संग्राम के दिनों में बनारस रेजिडेंसी ने उनके परिवार पर पूरा भरोसा किया था। वे एक ही सांस में 'अंग्रेज राज सुख साज, सबै बिधि भारी' और 'पै धन विदेश चलि जात यहै है ख्वारी' दोनों बातें कहने के लिए बाध्य थे। वे उस समय उत्पन्न हुए थे, जब भारत पर ऐसी कंपनी सरकार शासन कर रही थी, जिसके बारे में ब्रिटिश संसद तक में यह बात गूंज उठी कि 'धरती पर आज तक कोई भी सरकार इतनी भ्रष्ट, इतनी विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नहीं पाई गई।' बनारस में उनके हितैषी राजा शिव प्रसाद 'सितारेहिंद' (1823-1895) थे, जो रणथम्भौर के क्षेत्रिय थे। उनके पूर्वज भी मुर्शिदाबाद से वाराणसी आए थे। उन्होंने भी इतिहास, भूगोल, धर्म, व्याकरण आदि पर कुल 35 पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'इतिहास तिमिर नाशक' उल्लेखनीय है, क्योंकि इसमें उन्होंने अंग्रेज इतिहासकारों की धूर्ततापूर्ण स्थापनाओं का डटकर खंडन किया था। दुर्भाग्य यह है कि अंग्रेज इतिहासकारों की भ्रांतियां, ऐसे खंडनों के बाबजूद, अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीय बच्चों में फैलाई जा रही है। राजा साहब प्रभावशाली शिक्षा अधिकारी थे, इसलिए स्कूलों में हिंदी के प्रवेश में बाधक बन रहे उर्दू-समर्थकों की लामबंदी को रोकने में उन्होंने ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी। उन्हें ब्रिटिश सरकार की वफादारी और काबिलियत के लिए 'सितारे-हिंद' और 'राजा' उपाधियां मिलीं। भारतेंदु उन्हें अपना गुरु मानते थे। विशाखदत्त के संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस' के अनुवाद को उन्होंने राजा साहब को ही समर्पित किया था।

सन् 1882 में मिस्र पर भारतीय सेना की विजय पर टाउन हाल में राजा साहब की अध्यक्षता में विशाल सभा हुई, जिसमें भारतेंदु ने लंबी कविता 'विजयिनी विजय-पताका' पढ़ी, जिसमें एक स्वर यह था—

''स्वामिभक्ति किरतज्ञता दरसावन हित आज।
छांड़ि प्रान देखहिं खरो आरज बंस समाज।''

लेकिन इस प्रशस्ति-वाचक कविता का दूसरा स्वर यह भी था—

''होत सिंह को नाद जौन
भारत-बन मांही।
तंह अब ससक सियार स्वान
खर आदि लखाहीं।''

यह अलग बात है कि अंग्रेज कलक्टर को यह बारीकी समझ में नहीं आई और उसने राजा साहब और भारतेंदु की वफादारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अपनी हर राज-प्रशस्ति में जहां मौका मिला है, भारतेंदु ने ऐसे ही कांटा चुभोया है। पराधीनता के दुख से संतप्त होकर कहीं-कही गुस्से में वे कह भी बैठे हैं, ''अब तो तपस्या करके गोरी गोरी कोख में जन्म लें तब संसार में सुख मिलै।'' वे एक ऐसे शरारती बच्चे की तरह व्यवहार करते हैं, क्लास में टीचर के सामने पूर्ण अनुशासित दिखता है, लेकिन मौका पाते ही उसे अंगूठा भी दिखा देता है, मुंह भी चिढ़ा देता है। वे इस माने में खांटी बनारसी थे कि जो किया, खुल्लम खुल्ला किया। उन्होंने कभी अपने प्रशस्ति-गान को अध्यात्म में लपेटकर छायावादी नहीं बनाया। इस कारण उन्हें सजा भी भुगतनी पड़ी।

देश की चिंता हमेशा उन्हें सताती रहती थी, यहां तक कि अपने लोकगीतों में भी उनका जाग्रत स्वर झनझना उठता है।

''लिखाय नाही देत्यौ पढ़ाय नाहीं देत्यौ।
सैयां फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यौ।।
लहंगा दुपट्टा नीक ना लागे।
मेमन का गाउन मंगाय नाहीं देत्यौ।।
सरसों का उबटन हम ना लगैबैं।
साबुन से देहियां मलाय नाहीं देत्यौ।।
बहुत दिनां लग खटिया तोड़िन।
हिंदुन का काहें जगाय नाहीं देत्यौ।।''

भारतेंदु में कम से कम समय में बड़ा काम करने और सबको साथ लेकर चलने की

अद्‌भुत क्षमता थी। उन्होंने अच्छे गीतों का संग्रह करने के लिए और हिंदी-संस्कृत की नवप्रकाशित पुस्तकों को मंगवाने के लिए विज्ञप्तियां भी पत्रिकाओं में छपाई थीं। उनका अति-प्रसिद्ध प्रहसन 'अंधेर नगरी' सिर्फ एक दिन में लिखा गया था, वह भी अपने संरक्षकत्व में बने नेशनल थियेटर के आग्रह पर। तमाम रचनाएं उन्होंने मित्रों के आग्रह पर की थीं। विक्टोरिया या युवराज की प्रशस्तियां भी उन्होंने सरकारी आग्रह पर ही लिखी थीं। 'अंधेर नगरी' नाटक पहली बार दशाधमेध घाट की सीढ़ियों की दर्शकदीर्घा में बैठे हजारों दर्शकों के सामने खेला गया था। कितना बड़ा दुस्साहस था उन दिनों इस राजनीतिक व्यंग्य को लिखना और मंचित करना। भारतेंदु से पहले हिंदी नाटक लगभग शून्य था। उन्होंने सामान्यजन के मनोरंजन के बहाने जागृति लाने के लिए अनेक प्रहसन लिखे, जिनमें 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में उनका वैष्णव भक्त पूरे तेवर से प्रकट हुआ है। 'सत्य हरिश्चंद्र' उनका पहला मूल नाटक है जो उन्होंने बच्चों में भारतीय आदर्शों की शिक्षा देने के लिए लिखा था। अपने नाटकों की भाषा भी उन्होंने बनारसी समाज से ली थीं, जैसे—'मांस कचर-कचर के खाना' 'लोकसान होता है' 'जिसको व्यभिचार करना होगा सो करैं ही गी'।

ब्रिटिश काल में बनारस की शान रहा वह नाचघर आज जीर्ण-शीर्ण हो गया है, जहां 1860 में भारतेंदु ने मात्र दस वर्ष की आयु में 'जानकी मंगल' नाटक में नायक का पाठ किया था। कैंट एरिया में स्थित यह ऐतिहासिक भवन खंडहर में बदल गया है। इससे सटे हुए डीएम और एसएसपी के बंगले हैं, मगर वे असहाय हैं, क्योंकि ऊपर से कोई आदेश नहीं है। राजतंत्र पानी है, ऊपर से नीचे की ओर आता है। लोकतंत्र आग है, जो नीचे से ऊपर जाता है। हमारे सेवकों को अभी भी ऊपर देखना है, नीचे नहीं। ब्रिटिश शासन ने यही तो किया है। नियम-कानून के नाम पर हमारे नागरिकों के विवेक और चिंतन को एक ब्लैक बॉक्स में भरकर हिंद महासागर में डुबो दिया है। सरकारी कहकमा आज भी भारतेंदु की गोपियों की भाषा में बोल रहा है।

''हरि संग भोग कियो जा तन से
तासों कैसे जोग करैं?

देवधा हाउस, 5/2 वसंत विहार एंक्लेव,
देहरादून–248006

रचनाकारों से अनुरोध

- ❑ **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें।**
- ❑ **रचना अनावश्यक द्वप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 2000 शब्दों तक है।**
- ❑ **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कलाकृतियां अवश्य भेजें।**
- ❑ **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्‌धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- ❑ **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- ❑ **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- ❑ **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- ❑ **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- ❑ **रचना के अंत में अपना पूरा पता और फोन नंबर अवश्य लिखें।**

भारतेंदु साहित्य में लोकतत्त्व

प्रो. गिरीश चंद्र चौधरी

भारतेंदु का समग्र साहित्य लोकतत्त्वों से ही ओतप्रोत है, कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने कविता, गद्य, नाटक अथवा जो कुछ लिखा उसमें लोक कल्याण, लोक ज्ञान इत्यादि लोक संबंधी सामग्रियों से भरा पड़ा है। यहां तक कि यात्रा-विवरण भी जो दिया गया है, उसमें लोकतत्व पूर्णतः सृजित एवं दिग्दर्शित है। इन सबका कारण भारतेंदु की दृष्टि थी जो देशभक्ति, उन्नति पर आधारित थी। सन् 1857 का संघर्ष वे देख चुके थे, उनका बालपन देश-चिंता में उद्वेलित हो उठा था। इस प्रकार वे अपनी कृतियों को मोड़ते कि लोकतत्व का सम्मिलिन हो। अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

लोक हेतु भारतेंदु का ध्यान पत्र-प्रकाशन पर गया। सन् 1867 में 'कवि वचन सुधा' का पहला अंक निकला। उद्देश्य था कि भारतीय समाज की तत्कालीन पीड़ा को पहचानना और बतलाना। साथ ही उसका निराकरण भी करना। पत्र का मुखपृष्ठ उनका यह सिद्धांत वाक्य बतलाता था। यथा—

''खल गगन सो सज्जन दुःखीमति
होहिं हरि पद रति रहैं।
उपधम छूटै सत्व नित भारत गहै
करदुख बहै।।
बुध तजहि मत्सर नारि नर
सम होहिं जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की
अमृतवाणी सब कहै।।''

इस सिद्धांत वर्णन में भारतेंदु ने तत्कालीन पीड़ा एवं अंगेजों की दमन नीति का लोक प्रभाव स्पष्ट बताया। तत्कालीन विदेशी शासन की कर नीति, भारतीय समाज में दुष्टों से त्रसित सज्जनवृंद भगवान के प्रति मति में लगाव, अनेक उपधर्मों से ग्रसित समाज जो दिग्भ्रमित हो रहा था तथा सबसे पहले भारत में स्वतंत्रता का उद्घोष कि 'सत्वनिज भारत गहै' कहकर किया गया है। अंत में उस समय जो छन्द्रियवनित कविताओं का बोलबाला हो रहा था, उसके लिए भारतेंदु ने जनमानस को आगाह किया। इसका उन्हें दुःख था कि श्रृंगारिक वह भी अश्लील साहित्य न प्रचलित हो। लोक कल्याण की दृष्टि से यह कवित्त उनकी पत्रिका को पोषित करता रहा। पत्रिका के सभी अंकों में भारतीयों की ज्ञानवृद्धि यहां तक कि विज्ञान के नवीन आविष्कारों का वर्णन भी कराया जाता। शासन की दुर्दात नीति भी उजागर कर भारतीयों को जगाया जाता रहा।

भारतेंदु सदैव भारतीय स्त्रियों के प्रति चिंतित रहते। उनकी शिक्षा की स्थिति से वे दुःखी थे। उनके कल्याण हेतु 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली। सिद्धांत वाक्य में भारत की प्राचीन गौरवमयी स्त्रियों को स्मरण दिलाने नवीन स्त्री-समाज को उन्नति का संदेश दिया—

''को हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष या में कछु न विभक्ति।।
वीर प्रसविनी बुध बधु होइ दीनता खोय।
नानी नर अरधंग की साचिहिं स्वामिनी होय।।''

ऐसा नहीं था कि वे केवल विदेशी शासन की आलोचना करते थे कि देश-कल्याण का कोई कार्य नहीं होता अपितु प्रशंसा भी करते कि जनता का सेवाकार्य होता था। रेल यातायात शुरू होने पर लिखा—

''धन्य सहबनि जॉन चलाइस रेल।
मानो जादू किहिस दिखाइस खेल।''

आपने राज की खुशहाली भी बताई पर आर्थिक शोषण न भूल जनता को आगाह किया—

''अंग्रेज राज सुख साज, सबै विधि मारी।
पै धन विदेश चलिजात यहं दुख ख्वारी।।''

अंग्रेजी भाषा के खोखलेपन को लोक में उजागर कर कहा—

''सब गुरुजन को बुरौ बतावै
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्व न झूठी तेजी,
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेजी।।''

परंतु लोकतत्त्व को बतलाते वे ये नहीं भूल चुके कि—

''जो भारत जग में रहयो सबसे उत्तम देश।
ताही भारत में रहियो जब नहिं सुख को लेस।।''

भारतवासियों को असहाय निरूपाय बता भगवान के चरणों में शरण लेने को कहा—

''सब विधि नासी प्रजा भारत
कहूं न रह्यो अवलंब।
जागो-जागो करुनानायतन फेर
जागिहौ नाथ कब।।''

भारत के शहरों का भ्रमण कर नगरवासियों की अच्छाइयों तथा बुराइयों को उजागर करते। बस्ती शहर देख कर कहा कि बस्ती यह तो उजाड़ क्या? रेल यात्रा की कठिनाइयों एवं भारतीय यात्रियों की अंग्रेज यात्रियों द्वारा

दुर्दशा खूब देखते एवं लिखते—''यहां सेकेंड क्लास की गाड़ी ऐसी टूटी-फूटी जैसे हिंदुओं की किस्मत और हिम्मत'', व्यंग्यपूर्ण चित्रण से वास्तविकता बनाते। परंतु इन सबका माध्यम भाषा थी। देश की भाषा की उन्नति उनका लक्ष्य बना और कह उठे—

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिये को सूल।।''

भाषा, वह भी, जो मां से सिखई हो, उसकी उन्नति की बात की है न कि केवल हिंदी की। परंतु अंग्रेजी पढ़ने को भी कहा कि ''सब गुण होत प्रवीण'' परंतु अपनी भाषा न छोड़ते की सलाह समाज को दी। भाषा की उन्नति कैसे करें जिसको कोई नहीं बतलाता था कि—

''भाषा सोधहु अपनी,
होई सबै एकत्र।
पढ़त पढ़ावहु लिखहु मिलि,
छपवावहु कछु पत्र।।''

यह कोई कोरी सलाह नहीं अपितु व्यावहारिक निर्देश है।

हमारे हिंदू धर्म एवं मुसलमान धर्म की अच्छाइयों को बताते थे। जैसे—''कर्म के प्रभाव से वह सब बात मुसलमानों को सहज प्राप्त है। उनमें जाति नहीं, चौका चूल्हा अलग नहीं, विलायत जाने पर रोक नहीं। ये बातें हिंदुओं में नहीं।'' इस लोकतत्त्व को भली प्रकार उभारा।

अपनी दानशीलता से लोक कल्याण करते। उनका साहित्य दान की गाथाओं से भरा पड़ा है। परंतु सुपात्र को दान देते न कि कुपात्र को। सुधाकर द्विवेदीजी को एक कवित्त पर एक अशर्फी इनाम दी। इस व्यवहार द्वारा दानशीलता की आवश्यकता लोक में प्रचार करते। विद्यार्थियों के लिए आप सदा चिंतित रहते। यथा बनारस कॉलेज के अध्यापक से गणित पर एक पुस्तक लिखवाई जो आज तक चलती है।

लोकज्ञान प्रसार में भारतेंदु हरिश्चंद्र के पूर्व बुक रिव्यू की परंपरा नहीं थी। अच्छे साहित्य के आंकलन हेतु यह आवश्यक है। इसकी परंपरा का शुभ आरंभ उन्होंने किया और 'व्यामोह बिद्रावण' तथा 'बीज गणित' नामक दो पुस्तकों का रिव्यू छापा। लोक को साहित्य से परिचय प्राप्त कराने की विधा का प्रारंभ हुआ।

हिंदी पत्रकारिता के मानो वे जनक थे। काशी से तीन पत्र एवं एक स्त्रियों हेतु निकाला था। पत्रों द्वारा वे यात्रा-विवरण देते। अपनी रुड़की, हरिद्वार, गोरखपुर इत्यादि की यात्राओं का बड़े मजेदार सूचनापूर्ण महत्त्व के पत्र होते थे। लोगों को पत्र प्रेषण से जहां की यात्रा करें उसका विवरण प्राप्त हो तो दूसरे अनभिज्ञ न रहें यही ध्येय था। नवीन आविष्कारों का जिसे अंग्रेज भारत में लाए थे, बड़ा सुंदर वर्णन रहता था। समाज को अनेक सूचनाएं प्राप्त होती थीं। पत्रों को वे संपादक के नाम पत्र से छापते।

हिंदी में नाटकों का जन्मदाता वे ही थे। 'सत्य हरिश्चंद्र' की रचना सत्य की महत्ता एवं उसमें काशी का वर्णन नाटक का प्राण है। महात्मा गांधी ने यह पढ़ कर सत्य की महत्ता जानी थी। लोक कल्याण का कार्य नाटकों द्वारा हुआ। इसमें 'अंधेर नगरी' प्रमुख है। तत्कालीन अर्थव्यवस्था की दुर्दश से परिचय कराया गया है। 'भारत दुर्दशा' नाटक द्वारा भारत में विदेशी शासन की हालत का चित्रण एवं भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन कर देशवासियों को जगाया। 'नीलदेवी' नाटिका से स्त्रियों में जागरण कराने का कार्य बखूबी हुआ है। 'मुद्राराक्षस' से भारत की प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण कर सिकंदर एवं नंद जैसे शासकों का कुकृत्य दर्शाया गया जो भारतीयों को इतिहास से परिचित करवाता है। लोक कल्याण का कार्य राजनीति द्वारा संभव है, विशेषकर चाणक्य नीति द्वारा यह भारतीयों के संज्ञान में लाया गया है।

त्योहारों के आनंद उनसे अछूते न रहे। होली, दीवाली एवं सभी अन्य लोकमान्य त्योहारों द्वारा भारत की जनता को इन त्योहारों के मनाने में देश की गरीबी, पराधीनता को न भूलने की सलाह देते। लोगों को आनंद में डूबने के अतिरिक्त त्योहारों से शिक्षा भी ग्रहण करने को कहते रहे। सजीव चित्रण विशेषकर काशी का, करके, हमारी कमजोरियों को भी बताते एवं उनसे बचने की लोक कल्याण की बात करते थे। यथा होली पर कवित्त लिखा—

''डफ बज्यो भारत भिखारी का।
केशर रंग गुलाल मूलि गयो।।
कोऊ पूछत नहीं पिचकारी की।
चहुं दिसि काल पुर सो भारत में।।
मय उपज्यो महामारी का।।''

निरीह जनता को इन त्योहारों से दुर्दशा से बचने को कहते रहे—

'भारत में मची है होरी।
इक ओर भाग-अभाग एक दिसि,
होय रही झकझोरी।।
अपनी अपनी सब जय चाहत,
होड़ परी हुई औरी।।''

भारतीय जनता को शासन के कानूनों का परिचय एवं सूचना देने हेतु भी आप सोच रहे थे। एक पत्र 'नीतिप्रकाश' के नाम से निकालने का उपक्रम भी किया। इसमें हिंदी में कानूनों, उनकी व्याख्या, निर्णय भी देने का विधान बनाया था। जन-कल्याण-कार्य कानून में विशेष रूप से अपने पत्रों में छापते, वह भी हिंदी में जबकि सभी कानून उर्दू या अंग्रेजी में छपते थे। सामान्यजन को उनका उपयोग दुरूह होता था। भारतेंदु का यह लोकहितैषी कार्य आम जनता को बहुत राहत पहुंचाने वाला था।

भारतेंदु ने अपने समस्त साहित्य को कहीं न कहीं लोक से जोड़ा है। उनकी मुकरियों में जो आधुनिक काल की विधाओं से जुड़ी हैं, उनमें लोक कल्याण स्पष्ट है। तत्कालीन पढ़े-लिखे नौजवानों, ग्रेजुएटों को भी काम नहीं मिल पा रहा था, उनकी दुर्दशा पर पीड़ित हो उन्होंने लिखा—

''तीन बुलावे तेरह आवै,
अपनी-अपनी व्यथा सुनावै।
आंखें फूटे मरै भरै नहीं पेट,
क्यों सखि साजन, नहीं ग्रेजुएट।।''

उस समय अंग्रेजों ने चुंगी प्रथा बड़ी कड़ाई से चलाई थी। उसकी निरर्थकता आम आदमी को थी। यथा कहा कि–

''धन लेकर कुछ काम न आवै,
ऊंची नीची राह दिखावै।
समै पड़ै पर सीधे गुंगी,
नहिं सखि साजन, नहिं सखि चुंगी।।''

अंग्रेजी भाषा के अवगुणों से लोक को आगाह करते हुए उन्होंने कहा कि–

''सब गुरुजन को बुरौ बतावै,
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्व न झूठी तेजी,
कहु सखि साजन, नहीं अंग्रेजी।।''

उनके समय में भी पुलिस का हाल आज जैसा था, जिसे उजागर किया–

''रूप दिखावत सर्वस लूटै
फंदे में जो पड़ै न छूटै।
कपट कटारी जिसमें हूलिस,
नहिं सखि साजन, हां सखि पुलिस।।''

मदिरा की बुराई करते हुए जनमानस को दूर रहने को हिदायत दी–

''मुंह जब लागै तब नहीं छूटै,
जाति मान धन सर्वस लूटै।
पागल कर मोहिं करै खराब,
क्यों सखि साजन, नहीं शराब।।''

समाचार-पत्रों की सार्थकता भी बताई–

''सतएं अठएं घर आवै,
तरह तरह की बात सुनावै।
घर बैठा ही जोड़े तार,
क्यों सखि साजन, नहीं अखबार।।''

कानूनी दांव-पेच से भी जनता को परिचित करवाया–

''नई नई नित तान सुनौ,
अपने जाल में जगत फंसावै।
नित नित हमें करै बल सून,
क्यों सखि साजन, नहीं कानून।।''

भारतेंदु ने चौंतीस वर्ष की संक्षिप्त-सी आयु में राष्ट्रभाषा हिंदी की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए कितना कुछ किया उन्हें शब्दों में समेटना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। नाटक, अनुवाद, व्यंग्य, कविता, लेख, यात्रा-वृत्तांत, संपादन इत्यादि द्वारा उन्होंने राष्ट्रभाषा हिंदी को जन-जागरण का माध्यम बना दिया। अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा व सत्य हरिश्चंद्र जैसे नाटक जनता के बीच इसलिए भी लोकप्रिय हुए क्योंकि उन्होंने सिर्फ लिखा ही नहीं, उनके सार्वजनिक मंचन में भाग लेकर सीधे जनता तक पहुंचाया। समाज-सुधार के माध्यम से वास्तविक अर्थों में वह राष्ट्रीयता के संघर्ष को ही आगे बढ़ा रहे थे। यह काम केवल अकेले न कर अपने भारतेंदु मंडल से करवाया और एक बुद्धिजीवियों का प्रणीत आंदोलन खड़ा किया। यह उनकी निश्छल साधना ही थी, जिसके फलस्वरूप न केवल हिंदी साहित्य में अमर हुए बल्कि उनके असाधारण साहित्यिक, सामाजिक योगदान की नींव पर देश की स्वतंत्रता का संघर्ष लगातार आगे बढ़ने के लिए प्रेरित हुआ।

भारतेंदु भवन, चौखंबा, वाराणसी-221001

भारतेंदु हरिश्चंद्र की काव्यात्मक प्रवृत्तियां

डॉ. भवानी सिंह

भारतेंदु हरिश्चंद्र उस समय भारत की धरती पर पैदा हुए, जिस वक्त पूरा देश अंग्रेजी शासन की गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ था। संपूर्ण भारत में स्वतंत्रता को लेकर संघर्ष एवं आंदोलन हो रहे थे। ब्रिटिश शासन से प्रभावित लोग अंग्रेजी समझना, पढ़ना और बोलना बड़े गौरव की बात समझते थे। इन सब घटनाओं के मध्य 9 सितंबर, 1850 को भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म काशी के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जब देश में प्रथम 'स्वतंत्रता संग्राम' हुआ उस समय भारतेंदु की आयु केवल सात वर्ष थी। 1857 में शुरू हुई क्रांति का प्रभाव संपूर्ण भारत पर पड़ा और राष्ट्रवादी चेतना अधिक फैलती गई। परिणामस्वरूप समाज और भारतीय साहित्य पर भी इसका प्रभाव खूब दिखाई दिया, जिससे भारतेंदु हरिश्चंद्र भी अछूते नहीं रह सके। उस समय हिंदी भाषा के प्रति लोगों का आकर्षण कम था, क्योंकि अंग्रेजों की नीति से हमारे साहित्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा था। इस सब परिस्थितियों में उन्होंने समाज और देश की दशा पर विचार किया तथा राष्ट्रवादी चेतना को न केवल साहित्य जगत में रूपायित किया बल्कि आम जनता को प्रेरित करके अपनी रचनाओं के माध्यम से अंग्रेजी शासन की दमनकारी नीतियों का भी पर्दाफाश किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में हर विधा का सृजन किया और कई प्रभावशाली रचनाएं लिखी हैं, जिसमें कविता, नाटक, निबंध, व्याख्यान आदि प्रमुख हैं। उन्होंने गद्य और पद्य में समान रूप से लिखा तथा हिंदी साहित्य को नया मार्ग दिखलाने में इनका सबसे बड़ा योगदान रहा है। हिंदी काव्य को नए-नए विषय में प्रवृत करने और गद्य की नवीन विधाओं के विकास में उनकी अभूतपूर्व भूमिका रही। भारतेंदुजी ने हिंदी की कविता को रीतिकाल के श्रृंगारपूर्ण और राज-आश्रम के वातावरण से निकल कर राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार आदि की स्वस्थ भावनाओं से ओत-प्रोत कर उसे सामान्य जन से जोड़ दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—''...हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषय की ओर प्रवृत करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए।'' गोस्वामी तुलसीदास के उपरांत हिंदी साहित्य में भारतेंदु एकमात्र व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने प्रचलित शैलियों और विभिन्न काव्य भाषाओं में खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, गुजराती मुख्यतः ब्रज का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। इसलिए प्रसादजी ने उन्हें ही 'हिंदी साहित्य का प्रथम यथार्थवादी' कवि माना है। वस्तुतः भारतेंदु हरिश्चंद्र ने देश में व्याप्त निर्धनता, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण को ही अपने साहित्य सृजन का उद्देश्य बनाया। हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। अतः हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में अनेक नाटक लिखकर उन्होंने हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की काव्य कृतियां—भारतेंदु हरिश्चंद्र ने न केवल हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी सृजनात्मक प्रतिभा दिखाई, अपितु एक ही विधा में भी अपनी विविध रुचियों का प्रदर्शन किया। भारतेंदु का समस्त काव्य संग्रह संकलन काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा 'भारतेंदु ग्रंथावली' दूसरा खंड के अनुसार उनके काव्य ग्रंथों की संख्या सत्तर है। उनका यहां परिचय देना तो असंभव है, केवल नामावली प्रस्तुत की गई है—

1. भक्त-सर्वस्य, 2. प्रेम-मालिका, 3. कार्तिक स्नान, 4. वैशाख-माहात्म्य, 5. प्रेम सरोवर, 6. प्रेमाश्रुवर्षण, 7. जैन कुतूहल, 8. प्रेम-माधुरी, 9. प्रेम-तरंग, 10. उत्तरार्द्ध भक्तमाल, 11. प्रेम प्रलाप, 12. गीत गोविंदानंद, 13. सतसई श्रृंगार, 14. होली, 15. मधु-मुकुल, 16. राग-संग्रह, 18. वर्षा विनोद, 18. विनय-प्रेम-पचासा, 19. फूलों का गुच्छा, 20. प्रेम-फुलवारी, 21. कृष्ण चरित्र, 22. श्री अलवरत वर्णन, 23. श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र, 24. सुमनांजलि, 25. प्रिस आव वेल्स के पीड़ित होने पर कविता, 26. श्री जीवन जी महाराज, 27. चतुरंग, 28. देवी छद्म लीला, 29. प्रातः-स्मरण मंगल पाठ, 30. दैन्य प्रलाप, 31. उरेहना, 32. तन्मय लीला, 33. दान लीला, 34. रानी छझ लीला, 35. संस्कृत लावनी, 36. वसंत होली, 37. स्फुट समस्याएं, 38. मुंह-दिखावनी, 39. उर्दू का स्यापा, 40. प्रबोधिनी, 41. प्रातः समीरन, 42. बकरी-विलाप, 43. स्वरूप चिंतन, 44. श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन, 45. भारत-भिक्षा, 46. श्री पंचमी, 47. सर्वोत्तम स्त्रोत, 48. निवेदन-पचंक, 49. मानसोपायन, 50. प्रातः स्मरण स्तोत्र, 51. हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान, 52. अपवर्गदाष्टक, 53.

मनोमुकुलमाला, 54. वेणुगीति, 55. श्रीनाथ-स्तुति, 56. मूक प्रश्न, 57. अपवर्ग पंचक, 58. पुरुषोत्तम पंचक, 59. भारत-वीरत्व, 60. श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र, 61. श्री राम लीला, 62. भीष्म स्तवराज, 63. मान लीला फूल बूझौवल, 64. बंदर सभा, 65. विजय वल्लरी, 66. विजयिनी-विजय-वैजयंती, 67. नए जमाने की मुकरी, 68. जातीय संगीत, 69. रिपनाष्टक, 70. स्फुट कविताएं।

उपर्युक्त ग्रंथ सूची के देखने मात्र से स्पष्ट होता है कि भारतेंदु का काव्य क्षेत्र कितना व्यापक है। उनका रचनात्मक व्यक्तित्व समूचे हिंदी साहित्य पर छाया रहा। वह हिंदी साहित्य का पथ-प्रदर्शन तो करते ही रहे, साथ ही, सभी प्रचलित विधाओं का नव प्रवर्तन भी किया। इसलिए आधुनिक काल के आरंभिक वर्षों के काल को सभी साहित्यकार भारतेंदु युग कहते हैं। वे युग जागरण के दूत थे। उनमें जहां प्राचीन के प्रति मोह था, वहीं नवीन के प्रति आकर्षण। अपनी कवित्व की प्रतिभा का उन्होंने सदुपयोग किया। उनकी इन सेवाओं के कारण ही देश ने उन्हें भारतेंदु की उपाधि से विभूषित किया। उनका स्थान आधुनिक हिंदी साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनके युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियां विद्यमान थीं। अतिशय शृंगारिकता, अलंकार, मोह रीति, निरूपण एवं चमत्कारप्रियता के कारण कविता जन-जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतिकाल के दयामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उभरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र का काव्य क्षेत्र में पदार्पण हुआ। वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बंधी-बंधाई परिपाटी से कविता को मुक्त करके ताजी हवा में सांस लेने का सुअवसर प्रदान किया। अतः भारतेंदु काव्य की सबसे बड़ी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती है कि भारतेंदुजी ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड़ दिया। परिणामस्वरूप तत्कालीन हिंदी पर भारतेंदु के व्यक्तित्व और कृतित्व का असाधारण प्रभाव पड़ा। इसलिए हिंदी साहित्य के इतिहास में इस कालखंड को भारतेंदु युग की संज्ञा से अभिहित किया गया।

भारतेंदु काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां—भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके अंतर्युग के कालखंड की सुधारात्मक दृष्टि के कारण आंदोलनों का युग भी कहा जाता है। वास्तव में सुधार की भावना और प्रयत्न भारतेंदु काव्य की प्रमुख चेतनावृत्ति है। राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से यह युग और भारतेंदुजी का व्यक्तित्व निश्चय ही अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है। इस युग में समाज, धर्म और राजनीति के क्षेत्र में जितने प्रकार के भी आंदोलन चले, भारतेंदुजी ने सभी के सूक्ष्म प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किया। उन्होंने भक्ति और शृंगार की परंपराओं की पवित्रता और साहित्यिकता की भी सशक्त ढंग से रक्षा की। युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भारतेंदुजी ने आंतरिक मानवीय करुणा को तो उभारा ही, धार्मिक असहिष्णुता, अंधविश्वासों का विरोध कर उचित नव मूल्यों को प्रश्रय दिया। साहित्य को विशेषतः कविता को शृंगार के अश्लील दलदल से निकाल कर जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया। भारतेंदु के काव्य से यह धारणा भी निर्मूल प्रमाणित हो गई कि ब्रज भाषा की तुलना में खड़ी बोली या हिंदी साहित्यिक अभिव्यक्तियों के लिए उचित भाषा नहीं है। इन्हीं सब कारणों से भारतेंदुजी के कृतित्व के प्रभाव से जिस साहित्यिक नवयुग का उदय हुआ है वह भी पूर्णतः उन्हीं की चेतनाओं के अनुरूप था। उनके प्रयत्नों से परंपरागत संगत मानवीय प्रवेश संभव हो सका। भारतेंदुजी काव्य व्यापक एवं विस्तृत है। उनमें जो प्रमुख प्रवृत्तियां हैं निम्नवत् रूप से हैं—

राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति—भारतेंदु हरिश्चंद्र की काव्य रचनाएं राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति से ओतप्रोत हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रवादी चेतना को न केवल रूपायित किया बल्कि आम जनता को प्रेरित भी किया। उनकी कविताओं में राष्ट्र प्रेम की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रीतिकालीन काव्य परंपरा से हट कर उन्होंने आधुनिक हिंदी कविता को जिन नवीन प्रवृत्तियों की ओर मोड़ा, उनमें राष्ट्रीयता अथवा देशभक्ति का स्वर सर्वप्रमुख और सर्वोच्च रहा। विदेशी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना के संचार का प्रयास भारतेंदु और उनके सहयोगी कवियों ने किया है। भारतेंदु का रचना काल का समय वह काल था, जब अंग्रेजों की दमनकारी नीतियां पूरे देश में पांव पसार चुकी थीं। इसके बावजूद भारतेंदु उनकी निंदा करने से कभी नहीं डरे। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण का चित्र मुखर होकर अंकित किया—

''भीतर भीतर सब रस चूसै,
हंसि-हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।।''

देशभक्ति और राजभक्ति का अद्भुत समन्वय भारतेंदुजी की काव्य रचना में मिलता है। अंग्रेज कुशल शासक व्यवस्था कर रहे थे। पर भीतर ही भीतर भारत का आर्थिक शोषण भी कर रहे थे, इसका उल्लेख भारतेंदु जी की कविता की निम्न पंक्तियों में मिलता है—

''अंग्रज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।।''
—(भारत दुर्दशा)

अंग्रेजों की चतुराई और वाक्पटुता का स्पष्ट अद्भुत चित्रण इनकी कविता में मिलता है। देश की पीड़ा को अभिव्यक्त करने में भारतेंदुजी कभी पीछे नहीं रहे। उन्होंने निर्भीक होकर अपने काव्य का सृजन किया और लिखा है कि जिस भारत को हम पूरे विश्व में सर्वोत्तम मानते थे आज उसी भारत

से खुशियां गायब हो चुकी हैं।

राष्ट्रीय एवं देशभक्ति की भावना से भारतेंदु की कविताएं ओतप्रोत हैं। वे देश और समाज की चिंता लगातार करते रहे हैं और अपने अतीत को याद करते हुए भारत की इस दशा से दुःखी भी हुए—

''जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखती,
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती।।
अब जहं देखहु तहं दुखहि दिखाई।
हा, हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''
—(भारत दुर्दशा)

भारतेंदुजी की देशभक्ति और राष्ट्रीयता संबंधी कविताएं उन्हें राष्ट्रीयता का प्रबल समर्थक सिद्ध करती हैं। वास्तव में वह राष्ट्रीयता के मूल प्रवर्तक थे, क्योंकि वे प्रथम कवि हैं जिन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास को कवि के रूप में निहारा और अतीत की गौरव गाथाओं का विस्मरण नहीं किया।

भारतेंदु के देशप्रेम का दूसरा रूप विदेशी शासकों के विरोध के रूप में स्फुटित हुआ। एक ओर उन्होंने देशवासियों को जगाने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर वे अंग्रेज शासकों की कुटिल नीति की भर्त्सना स्थान-स्थान पर करते हैं। उन्होंने लार्ड रिपन जैसे भारत के सच्चे हितैषी की स्तुति में 'रिपनाष्टक' लिखा था, किंतु इसी से हिंदी के कुछ आलोचक उन्हें 'राजभक्त' समझने की भूल कर बैठे हैं। अंग्रेजो की अफगान-विजय पर वे कविता लिखते हैं। केवल शीर्षक को ही देखने से यह कविता राजभक्ति द्योतक प्रतीत होती है। किंतु इसके भीतर विद्रोह की आग भरी हुई है—

''आर्य्य गगन को मिल्यौ,
जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यों,
यह यह नहिं जान्यों जात।।
काबुल सों इनको कहा,
हिये हरख को आस।
ये तो निज धन नास सौं
इन सों और उदास।।''

अंग्रेजों की अफगानिस्तान विजय पर सारे देश में दीवाली मनाई गई थी, किंतु भारतेंदु इसका विरोध करते हुए पूछते हैं—आर्यों को इससे क्या मिला? वे क्यों खुशी मनाते हैं... इस युद्ध से भारत की क्षति हुई है। वे अंग्रेज शासकों की कूटनीति का स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं—

''स्ट्रैची डिजरैली लिटन
चितय नीति के जाल।
फंसि भारत जरजर भयो,
काबुल युद्ध अकाल।
सृजन मिले अंग्रेज को,
होय रूस की रोक।
बढ़े ब्रिटिश वाणिज्य,
पै हमको केवल सोक।।
भारत राज मंझार जौ
कहुं काबुल मिली जाई।
जज्ज कलक्टर होइ है
हिंदु नहिं तित धाई।।''

अंत में अंग्रेजों की नीति का रहस्योद्घाटन करते हुए निर्भीकतापूर्वक घोषित करते हैं—

''शत्रु शत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमाशा।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजै आता।।''

वस्तुतः भारतेंदु ने यहां जिस साहस का परिचय दिया है, वह उस युग के लिए आश्चर्य की बात कही जा सकती है। विदेशी शासकों की ऐसी स्पष्ट आलोचना मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि भी, जिन्होंने कि राष्ट्रीय आंदोलन को अपनी आंखों से देखा था, नहीं कर सके, जबकि उन्हें राष्ट्र कवि की संज्ञा दी जाती है।

भक्ति भावना—भारतेंदुजी को भक्ति भावना पैतृक विरासत में मिली थी। उनके पिता भक्त थे और अपना समय हरि कीर्तन में बिताते थे। भारतेंदु काव्य में नवीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार यद्यपि नए-नए विषय का प्राधान्य रहा किंतु कविता के पुराने विषयों का भी पूरी तरह निषेध नहीं किया जा सका। उन्होंने ईश्वर भक्ति विषयक अनेक सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं। इन कविताओं में कहीं तो निर्गुण उपासक संतों की सी विरक्ति भावना देखने को मिलती है और कहीं वैष्णव भक्तों की तन्मयता है, ऐसी कविताओं में भारत को उसकी दुर्व्यवस्था से पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

''ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की
रज जामै सिर भीजै।।''

भारतेंदु की भक्तिपरक रचनाओं में—'भक्त-सर्वस्व', 'कार्तिक स्नान', 'वैशाख माहात्म्य', 'उत्तरार्द्ध-भक्तमाल' आदि ग्रंथ विशुद्ध भक्ति भाव से ओतप्रोत हैं। भारतेंदुजी पुष्टिमार्गीय भक्त थे और बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। उनकी अधिकांश रचनाओं में राधा कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम, क्रीड़ाओं व रासलीला आदि का सुंदर शृंगारिक चित्रण किया गया है। सूर और नंददास भक्त कवियों की भांति भारतेंदु की भी यही अभिलाषा थी—

''मेरे तो साधन एक ही हैं,
जग नंदलाला वृषभानु दुलारी।
नैन भरि देखि लेहु पर जोरी,
मनमोहन सुंदर नट नागर
श्री वृषभानु किसोरी।।
कहा कहूं छवि कहि नहिं आवै
वह सांवर यह गोरी।।''

भारतेंदुजी ने अपने आराध्य देव की विभिन्न लीलाओं का चित्रण प्रीतिपूर्वक किया है। 'देवी छद्मलीला' आदि कविताओं में कृष्ण में विभिन्न रूपों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। राधा कृष्ण की छवि को उन्होंने एक भक्त की दृष्टि से देखा है—

''नैन भरि देखो गोकुल चंद।
संग सोहत वृषभानु-नंदिनी
प्रमुदित आनंद-कंद।।
'हरिचंद' मन लुब्ध मधुप
तंह पीवत रस मकरंद।।''

उनकी भक्ति भावना में तन्मयता की चरम स्थिति का भी बोध होता है—

''सब बृज बरजौ, परिजन खीझौ,
हमरे तौ हरि प्रान।

'हरिचंद' हम मगन प्रेम-रस
सूझत नाहिंन आन।।''

भक्ति काल में जहां ईश्वर की स्तुति मोक्ष प्राप्ति व वैराग्य भावना के वशीभूत होकर की जाती थी, वहीं भारतेंदुजी की भक्ति भावना में जहां एक ओर विशुद्ध भक्ति भावना के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर उसमें राष्ट्र और देशभक्ति का अद्‌भुत समन्वय होता है। हिंदी कविता के आज तक के इतिहास में यह विशेषता पहली बार दृष्टिगोचर होता है कि वे भगवान की स्तुति करते हुए आत्मरक्षा का निवेदन नहीं वरन् देशरक्षा की हित याचना करने लगता है। जैसे–

''डुबत भारत नाथ बेगि जागो, अब जागो।
आलस दव एहि दहनु हेतु चहुंदिसि सों लागों।।
महामूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो।
कृपा दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो।।''

वस्तुतः भारतेंदु के काव्य में भक्ति की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का विकास होता है। यदि उनके शेष काव्य को छोड़कर केवल भक्ति संबंधी रचनाओं का अध्ययन किया जाए तो वे सचमुच एक उच्च कोटि के भक्त-कवि दिखाई पड़ेंगे।

शृंगारिकता–रीतिकाल के कवियों ने समाज की ओर से अपनी आंखें बंद कर ली थीं, परंतु भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रुचि दिखाई। उनकी 'प्रेम-सरोवर', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम फुलवारी' आदि कविता में प्रेम तरंग शृंगार की भावना की सुंदर अभिव्यक्ति का चित्रण हुआ है। वय संधि को प्राप्त नायिका का सुंदर चित्र द्रष्टव्य है–

''सिसुताई अजौं न गई तन तैं,
तउजोबन जोंति बटोरे लगी।
सुनि कै चाचा 'हरिचंद' की कान,
कछुक दै भौंह मरोरैं लगी।।
बचि सासु जैठानिन सों, पिय तें,
दुरि घूंघट में दृग जोरै लगी।
दुलही उलही सब अंगन तें,
दिन द्वै तैं पियूष निचौरैं लगी।।''

प्रेम के उच्च आदर्श को लेकर भारतेंदु शृंगार वर्णन में प्रवृत्त हुए हैं। उन्होंने प्रेमालंबन-नायिका सौंदर्य का आख्यान किया, किंतु उसमें स्थूल शारीरिकता एवं अश्लीलता को प्रायः स्थान नहीं दिया गया।

भारतेंदु के प्रेम वर्णन में यद्यपि कहीं-कहीं संयोग की घड़ियों का भी प्रवेश हुआ किंतु अधिकता उसमें विरह वर्णन की है। उन्होंने वियोग की विभिन्न अनुभूतियों की व्यंजना अत्यंत स्वाभाविक शब्दों में की है। प्रियतम के एक गांव में भी रहते हुए प्रेमिका के दर्शनों की लालसा उसे सदा उत्कंठित बनाए रखती है–

''एक ही गांव में बास सदा
घर पास इहौ नहिं जानति हैं।
पुनि पांचवें सातवें आवत-जात
की आन न चित में आनति हैं।।
हम कौन उपाय करैं इनको
'हरिचंद' महा हठ ठानति हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना
अंखियां दुखियां नहिं मानति हैं।।''

भारतेंदु की इन प्रेमानुभूतियों की स्वाभाविकता, सरलता एवं गंभीरता के संबंध में अधिक कहना व्यर्थ है। संभवतः हिंदी कवियों में घनानंद को छोड़ कर अन्य किसी के काव्य में ऐसी मार्मिक उक्तियां उपलब्ध नहीं होगी। रीतिकालीन वासनामूलक शृंगार सर्वदा के लिए बंद कर दिया और हृदय की गूढ़ अंतर्दशाओं का उद्‌घाटन किया। प्रेम के संयोग-वियोग दोनों पक्षों का सफल व सरस चित्रण किया है।

सामाजिक चेतना–भारतेंदु समाज-सुधारक थे। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों तथा पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण की कटु आलोचना पर भारतीय समाज में और प्रगतिशील परंपराओं की पुनः स्थापना पर बल दिया। स्त्रियों की अशिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, बाल-विवाह, छुआछूत और जाति-पाति, जन्म-पत्री मिलाने की अशास्त्रता, बालकों की शिक्षा, भ्रूण हत्या, फूट और वैर, स्वदेश प्रेम, धार्मिक पाखंड आदि विषयों पर भारतेंदुजी ने कविताएं लिखीं–

''रोबहु सब मिली आबहु भारत भाई।
हा-हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।।''

उपर्युक्त पंक्तियों में भारत के वैभवशाली इतिहास का स्मरण कर और वर्तमान समय की भारत दुर्दशा देखकर उनका हृदय रो उठता है, जिसका चित्रण 'भारत दुर्दशा' रचना में मिलता है। उन्होंने छुआछूत की घृणित परंपरा की ओर इस पंक्ति में संकेत किया–

''बहुत हमने फैलाये धर्म,
बढ़ाया छुआछूत का कर्म।''

भारतेंदु ने अपनी कविता में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों का चित्रण भी द्रष्टव्य होता है–

''चूरन अमले जो सब खाते,
इनी रिश्वत तुरंत पचावें।
चूरन भी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।।''

प्रकृति चित्रण–भारतेंदु ने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा प्रकृति के स्वतंत्र रूपों का स्वच्छंद एवं विशेष रूप से चित्रण किया। उन्होंने एक ओर तो वसंत, वर्षा आदि ऋतुओं के मनोहारी चित्र अंकित किए, दूसरी ओर गंगा, यमुना, चांदनी आदि का सुंदर चित्रण किया। भारतेंदु कृत 'वसंत होली' में 'वसंत' का वर्णन है तथा 'चंद्रावली' में क्रमशः गंगा और यमुना की स्वतंत्र छवि का अंकन करने का प्रयास किया गया है। प्रकृति के माध्यम से नायक-नायिका की शृंगार चेष्टाओं का निरूपण भी किया गया है, जिसमें यमुना की शोभा कितनी दर्शनीय है–

''तरीन तनुजा तट तमाल वहु छाए।
झुके कूल सौं जल परसन हित मन हूं सुहए।।''

हास्य और व्यंग्य–भारतेंदु काव्य में हास्य-व्यंग्य एक महत्त्वपूर्ण अंग बन कर समाविष्ट

हुआ। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों पर किए गए, चुभते व्यंग्यों को सुन कर बरबस हंसी आ जाती है। 'नए जमाने की मुकरी' शीर्षक कविता की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

''मुंह जब लागै तब नहिं छूटै,
जाति मान धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहिं करै खराब,
क्यों सखि साजन नहीं शराब।।''

कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में मद्यपान के संबंध में उनकी व्यंग्योक्ति का सुंदर चित्रण हुआ है। भारतेंदु का हास्य-व्यंग्य प्रायः सोद्देश्य है। तत्कालीन 'इंदर सभा' जैसे निम्न स्तरीय नाटकों का उपहास करते हुए उन्होंने 'बंदर सभा' की रचना की। जिसकी कुछ पंक्तियां निम्नवत हैं–

''सभा में दोस्तो बंदर की आमद है,
गधे और फूलों के अफसर की
आमद आमद है।
मरे जो घोड़े तो गदहा या बादशाह बना,
उसी मसीह के पैकट की
आमद आमद है।।''

'नए जमाने की मुकरी' में भारतेंदु ने 'अंग्रेज', 'पुलिस', 'खिताब' आदि पर तीखे व्यंग्य किए हैं–

''भीतर-भीतर सब रस चूसे,
हंसि के तन मन धन चूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन, नहिं अंगरेज।।
कपट कटारि जिय में हुलिस,
क्यों सखि सज्जन, नहिं पुलिस।।
इनकी उनकी खिदमत करो,
रुपया देते-देते मरो।
तब आवै मोहिं करन खराब,
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब।।''

शैली एवं भाषा–भारतेंदुजी ने मुख्यतः मुक्तक एवं गीति शैली का प्रयोग किया है। उनके मुक्तकों में भावात्मकता एवं मार्मिकता विद्यमान है। प्रायः इन्होंने कवित्त, सवैये एवं दोहों को अपनाया है। उनके गीतों में गीतिकाव्य के सभी गुण भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता एवं कोमलता मिलती है–

''सखी ए नैना बहुत बुरे।
तब सों भए पराए हरि सों अब सों जाई जुरे।।
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत तलफत तनिक बुरे।
मेरी सीख प्रीत सब छांड़ो ऐसे थे निगुरे।।
जग खोइयौ वरज्यौ वै
ए नहिं हठ सों तनिक मुरे।
'हरीशचंद' देखत कमलन से
विष के बुते छुरे।।''

इसके अतिरिक्त भारतेंदुजी ने कुछ छोटे-छोटे प्रबंध गीति भी लिखे हैं। जैसे–'देवी छद्मलीला', 'तन्मयलीला', 'रानी छद्मलीला' आदि। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने यद्यपि खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, गुजराती आदि अनेक भाषाओं में काव्य रचना की है, परंतु उन्होंने मुख्यतया ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। उनकी काव्य सरलता, सरसता एवं प्रवाह का गुण विद्यमान है तथा साथ ही कूल ओज एवं माधुर्य का समावेश भी किया है। जैसे–

''उठहु वीर तलवार खाचि
मारहु धन समर।
लोह लेखनी लिखहु आर्य
बल जवन-हृदय पर।।
मारू बाजै बजैं कहीं
धौंसा घहराहीं।
उड़हि पताका शत्रु-हृदय,
लखि लखि थहरबाहीं।।''

यहां वीर रस के अनुकूल ओजपूर्ण शब्दों का समावेश है।

अतः भारतेंदु काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महाकवि ने भक्ति, शृंगार, सामाजिक चेतना, राष्ट्र प्रेम, हास्य-व्यंग्य, प्रकृति, ब्रज भाषा एवं विभिन्न भाषा आदि भिन्न-भिन्न भावनाओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। वस्तुतः उनका काव्य किसी न किसी रूप में वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल–चारों कालों के साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है। भारतेंदु की समता हिंदी का कोई कवि नहीं कर सकता। अपने सांवरे के गुणों का गान करने वाले सूरदास में भावुकता तो थी, किंतु उनकी दृष्टि एक ही क्षेत्र तक सीमित रही। महाकवि तुलसीदास का काव्य क्षेत्र तो व्यापक था, किंतु उनका आविर्भाव ही उस युग में हुआ था, जबकि आधुनिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का विकास नहीं हुआ था। रीतिकालीन कवि भी कोरी शृंगारिकता तक ही सीमित थे। एक सच्चा भक्त, एक सच्चा रसिक और सच्चा राष्ट्रभक्त तथा प्राचीन और नवीन–दोनों युगों का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो वह भारतेंदु हरिश्चंद्र ही हैं, जिन्होंने अपने काव्यों में राष्ट्रीयता, उत्कृष्ट देशप्रेम, सामाजिक सुधार, अन्यायपूर्ण, कुशासन की निंदा की और उदात्त भावनाओं की पृष्ठभूमि बनाकर हिंदी साहित्य में एक नई राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का आलोक फैलाया। यह भारतेंदु युग की वह प्रवृत्तियां थीं, जिसने हिंदी साहित्य के वर्तमान युग की नींव रखी।

अनुसंधान अधिकारी
एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का उत्कृष्ट केंद्र)
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-5

'सत्य हरिश्चंद्र' के भारतेंदु
तत्कालीन समाज का दर्पण : मुक्ति की कल्पना

डॉ. गोपाल कमल

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लोक में व्याप्त कथा को सार्वजनीन बनाने के लिए अपने महत्त्वपूर्ण नाटकों, संग्रहों के बाद सत्य हरिश्चंद्र नाटक की रचना की। पहली अवाक् फिल्म चुनने के पीछे मानस में व्याप्त कथा ही रही होगी। हिंदी की पहली मूक फिल्म राजा हरिश्चंद्र ही थी।

नाटक स्कूल के बच्चे द्वारा भी खेला जा सकता है। 1876 के साल की कल्पना करें। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के तकरीबन बीस साल होने को आ गए हैं। 'भारत दुर्दशा' में जनता की भूख और बीमारी का वर्णन है। तुलसी का कलिकाल आ ही गया लगता है। अंग्रेजों ने आक्रमण शुरू कर दिया है। धर्म-कर्म का नाश हुआ है क्या? वाराणसी वर्णन में स्पष्ट होगा।

नाटक की विषयवस्तु शास्त्र एवं लोकसम्मत है। वाल्मीकि रामायण 52-60 सर्ग, महाभारत का शांति पर्व (141वां अध्याय) एवं कालिका पुराण के 84वें अध्याय में व्याप्त कथाओं के सूत्रों को जोड़ कर कथा बुनी गई है सत्यवादी की। धर्म का मूल सत्य है। गांधीजी को भी वैष्णव धर्म का मूल आधार यही मिला था। सत्यपथ पर चलने वाले का कष्ट वर्णन ध्येय नहीं, वरन् सत्यपथ पर उच्चतम की प्राप्ति, श्रेयस की प्रेयस के ऊपर श्रेष्ठता का गुणगान है यह नाटक।

भारतेंदु को अवकाश था कि वे विश्वामित्र द्वारा शासित/उत्कोचित राज्य के लोगों की पीड़ा बयानते। पर शायद हरिश्चंद्र के चरित्र चित्रण को उतना ही पर्याप्त है कि वे शैव्या, रोहिताश्व एवं गिने-चुने चरित्रों जैसे धर्म, पाप, चांडाल, भूत-प्रेत, विश्वामित्र, निधि सिद्धि प्रयोग आदि से निर्वहण कर लेते हैं। कायदे से इसे मिनिमलिस्ट ही कह सकते हैं। पात्रों, चरित्रों एवं पृष्ठभूमि के चित्रण में। चार अंकों का, कम दृश्यों में नाटक सरलता से खेला जाने योग्य है। बालसुलभ रोचक बना है।

''क्या क्या कारण थे ऐसे नाटक चुनने के। तत्कालीन ब्रिटिश महारानी का शासन कहीं दिखता है? भूत प्रेत के नाचों में, शवों पर प्रेतों के उछाह में क्या अकालमृत्यु की छाया है?''

श्मशान का विशद वर्णन क्यों? काशी वर्णन भी है, पर छोटा ही है। गंगा वर्णन तो परंपरा में—संस्कृत तथा अवधी-ब्रज की परंपरा में आवश्यक है। पंडितराज जगन्नाथ की स्तुतियों की ध्वनियां तो रोज ही सुनाई पड़ती रही होंगी हरिश्चंद्र को।

पर भारतेंदु ने चौथे अंक को विस्तार दिया है। क्यों? एक टेबल देता हूं जिसमें संपूर्ण भारत के दुर्भिक्षों के मरणों का आकलन है।

''कलि बारहिं बार दुकाल परे
बिन अन्न दुखी, सब लोग मरे।''
—(तुलसीदास का कलि वर्णन)

तत्कालीन समाज में ऋण है, शोधन है, लगान है, अकाल-कवलित मृत्यु है। पर सत्य है जो 'अनब्रिटिश' है। दादा भाई नौरोजी की किताब का नाम है ' पावर्टी एंड अनब्रिटिश रुल इन इंडिया '। क्यों?

टेबल देकर बयानता हूं।

बड़े अकाल (1860-1908)

साल	सूखा ग्रस्त इलाका	मृत्यु (अनुमानित)	टिप्पणी
1860	उत्तर-पश्चिम प्रदेश (यू.पी) और दक्षिण-पूर्व पंजाब (हरयाणा)	200,000	
1865-66	उड़ीसा तथा पास के क्षेत्र	1300,000	
1866	बिहार और बंगाल	135,000	
1866-67	मद्रास प्रेसिडेंसी	450,000	
1868-69	अजमेर-मारवाड़ पश्चिमी राजपूताना	105,000 ज्ञात नहीं है	मारवाड तथा बीकानेर में अधिक मृत्यु दर

साल	सूखा ग्रस्त इलाका	मृत्यु (अनुमानित)	टिप्पणी
1868-69	उत्तर-पश्चिम प्रदेश	600,000	
1869-70	पंजाब बंबई प्रेसीडेंसी मध्य प्रदेश	600,000 250,000 ज्ञात नहीं है	
1876-78	मद्रास प्रेसीडेंसी बंबई प्रेसीडेंसी मैसूर और हैदराबाद के राज्य	3,500,000 800,000 ज्ञात नहीं है	दिल्ली दरबार
1877-78	उत्तर-पश्चिम प्रदेश पंजाब और कश्मीर	1,250,000 ज्ञात नहीं है	
1888-89	गुजरात उड़ीसा की सहायक नदी राज्यों उत्तरी बिहार	150,000 ज्ञात नहीं है ज्ञात नहीं है	अधिक मृत्यु दर कम मृत्यु दर
1890-92	मद्रास प्रेसीडेंसी	45,000	
1896-97	उत्तर-पश्चिम प्रदेश, डेक्केन (बंबई और मद्रास), मध्य प्रदेश, पंजाब और बर्मा	4,500,000	
1898	—	650,000	अनुकूल मौसम होने पर भी भुखमरी के कारण मृत्यु दर जारी है।
1899-1900	मध्य प्रदेश बरार बंबई प्रेसीडेंसी पंजाब अजमेर-मारवाड़ और राजपूताना	188,000 126,000 745,000 126,000 ज्ञात नहीं है	अकाल के कारण कुल 1.25 लाख लोगों की मृत्यु होने का अनुमान लगाया जाता है।
1905-06	बंबई-डेक्कन बुंदेलखंड जिले (उत्तर-पश्चिम प्रदेश)	235,062 ज्ञात नहीं है	अधिक मृत्यु दर
1907-08	यू.पी. (पुराना उत्तर-पश्चिम प्रदेश)	ज्ञात नहीं है	कम मृत्यु दर

अकालग्रस्त श्मशानित चौथा अंक
आभार इरफान हबीब की पीपल्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया, इंडियन इकौनोमी 1858-1914

और क्या क्या था जो भारतेंदु को उद्वेलित करता था? तत्कालीन समाज में अंग्रेजी, अंग्रेजों तथा नई व्यवस्था का प्राबल्य। समाज के गरीब-गुरबों का दुःख। भारतीयों की अस्मिता का सतत हनन का प्रयास। अंग्रेजी राज समाज की बेइमानियां।

तो क्या खड़ा करते हैं भारतेंदु?

गांधी की कल्पना वे क्या 1876 में ही कर चुके हैं? या फिर ऐसे सुधारक की जो भारत की दुर्दशा को समझे? या फिर 'रामराज्य' जैसे 'हरिश्चंद्र राज्य' की। विश्वामित्र को भी जिसकी आकांक्षा रही है।

नहीं, यह मात्र हरिश्चंद्र को छलकपट से दान लेने दिलाने का इंद्रवत आचरण नहीं है। न ही वह काले स्लेट पर खड़िया से, सफेद पेंट से लिखना है। विश्वामित्र इसीलिए नहीं कृष्ण क्रूर बनाए गए हैं, डार्क पेंट किए गए हैं कि हरिश्चंद्र का चरित्र उज्ज्वल दीखे। हां नाटकीय उपकरण के लिए वह भी हुआ है।

पर एक धीरोदात्त नायक की सत्य परीक्षा, सत्यबल में आस्था की परीक्षा तथा सत्य की दिग्विजय का डिंडिम घोष भारत के जन-जन में नवीन प्राण का, नव उत्साह का संचार कर सकता है—ऐसा भी उद्दिष्ट लगता है।

गंगा स्तुति को ब्रज-अवधी में गायन की परंपरा में, संस्कृतज्ञों की नगरी में, हरिश्चंद्र के आगमन पर अनायास फूट पड़ने वाले सवैए में यों फूटता है।

''नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्यमुक्ता मुनि मोहति।।
लोल लहर लहि पवन एक पैं इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत
मिटावत।।
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत।।
श्री हरिपदनख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर सरबस।।
शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल।।
सगर सुअन सठ सहस्स परम जल मात्रा उधारन।
अगिनित धारारूप धारि सागर संचारन।।''

पंडितराज जगन्नाथ को अगर स्तुति करते, गंगा में स्वयं को विसर्जित करने की आप कल्पना कर पाएं तो शायद हरिश्चंद्र का मन भी थाह पाएंगे। पर ऋण चुकाए बिन, दक्षिणा दिए बिन हरिश्चंद्र की मुक्ति कहां? अतः कहते हैं—

''असनं वसनं येषां चैवाविधानतः।
मगधेनसमाकोशी गंगाप्यंगारवाहिनी।।''

वैसे ही काशी का वर्णन है। नाटक में छंद से चांद उतर आता है। समां बंध जाता है। वैसे ही जब कविता भारतेंदु की हो। सिद्धहस्त कवि की।

नाटक सर्वांगसुंदर पूर्ण है। नए युग के आगमन को, नए युग प्रवर्त्तक की नव लीला को उद्यत समाज को पथ दिखाने को यह नाटक बना है।

बालेश्वर बाबू के कहने पर बालोपयोगी साहित्य के नाम पर लिखा गया परंतु युग की वेदना को, अंग्रेजी राज के ताने-बाने की सड़न को पहचानता हुआ। सत्य की स्थापना करता हुआ नाटक खूब खेला जाता है।

प्रसंगों की तुलना करें तो बनारस का घाट - चौथा अंक आज भी अनेकानेक फिल्मों, नवीन चित्रकारों का प्रिय रहा है। ऋतुपर्ण घोष की फिल्मों में एक को याद करें (चोखेर बाली) तो बनारस के घाट के आस-पास एक ही सीढ़ियों के पास इतने सारे दृश्य फिल्माए गए हैं कि 120-125 मिनट की फिल्म का जरूरी पच्चीस-तीस मिनट वहीं गुजरता है। नई फिल्मों में क्यूं घाट, श्मशान, मृत्यु शोक नए-नए रूपों में, रूपकारों में प्रकट होते हैं—कोई बताएगा क्या युग विशेष की पहचान है यह नाटक। भारतेंदु के कृतित्व का सुंदर सिरमौर है। विशेषताएं गिनाते गिनाते तो पूरी किताब बन जाएगी।

रवीन्द्रनाथ की 'आंख' में भी वही 'किरकिरी' चुभ गई थी। ऋतुपर्ण ने ऐश्वर्या राय के कई अनूठे प्रसंग, रकीब नायक, उसकी मां की मृत्यु के, वैष्णव संगीत के साथ अद्भुत रूप से प्रस्तुत किए हैं। बनारस के घाट का, मृत्यु की बाट का यहीं आकर्षण शायद नाटक में भी खिला है। चौथे अंक के प्रस्फुटन में।

मंगलम् तो हरिश्चंद्र स्वयं मानते हैं—

''खल गनन सो सज्जन दुखी मति होई,
हरिपद रति रहे।
उपधर्म छूटैं सत्व नित भारत गहै,
कर दुख बहै।।
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं,
सब जग सुख लहैं।
तजि ग्रामकविता सुकविजन की
अमृत बानी सब कहै।।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का बलिया वाला व्याख्यान— एक क्रांतिदर्शी कवि

डॉ. मंजु तंवर

आज हमारा देश उठापठक के अजीबोगरीब दौर से गुजर रहा है। हर तरफ अराजकता है, आपाधापी है। नासा के महीने पहिले और मौसम विभाग के दिनों पहले, समय पूर्व संचेतना के बावजूद देवभूमि विध्वंस का ग्रास बन जाती है, तो शांति का प्रतीक (बिहार का बौद्ध गया) बमों की भेंट चढ़ जाता है। यह कोई एकाध वाकया नहीं, निरंतर, निर्बाध, अविरल वेग की धारा सा सर्वत्र प्रवाहमान! पर सब कुछ बिखरा-बिखरा और खंडित। दरअसल विशेषकर ब्रिटिश शासन के बाद जब से भारत में आर्थिक उदारीकरण का दौर शुरू हुआ है, तब से पूरा समाज पूरी तरह दो भागों में स्पष्ट रूप से बंट गया है। एक वर्ग खुले बाजार का पूरा लाभ उठा रहा है और जूठन बिखेर रहा है। जबकि दूसरा वर्ग इस जूठन को बटोरने की होड़ में बेतहाशा भाग रहा है। इसी भागमभाग में उसका मूल कहीं खो सा गया है, अब बचा है तो केवल बाजार। बाजार की इसी चकाचौंध में जातिवाद से लेकर संप्रदायवाद और अंधविश्वास ले लेकर दकियानूसीपन, मूल्यों और धरती से पलायन, व्यक्ति और अहम् आदि इस कदर हावी हो गए हैं कि रोजी-रोटी, इनसानियत, राजनीति, समाज नीति, धर्म नीति, अर्थ नीति आदि मानों सब भरभराकर अंतिम सांसें गिन रहे हों। ऐसे में भारतेंदु हरिश्चंद्र का स्मरण गाहे बगाहे और प्रासंगिक हो उठता है।

आज वे सदेह हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी बतकही में ही हम अनेक ज्वलंत प्रश्नों से गुजरते हुए हरदम कहीं उन्हें अपने आस-पास ही महसूस कर सकते हैं। उनकी खुली सटीक और स्फुलिंग विचारों वाली परिपक्व दृष्टि बहुत दूर तक सोचने पर विवश करती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंग्रेजी राज को क्षय का रोग कहा था और अंततः वे अंग्रेजों के भारत छोड़ कर चले जाने की ही कामना करते रहे। उनकी दृष्टि में अंग्रेजी राज से भारत का संबंध कुछ ऐसा था, जैसे एक परदेशी पति से भारतीय स्त्री का होता है कि उसे एक न एक दिन तो जाना ही है। देश, राजनीति, धर्म और अर्थ के न जाने कितने स्फुलिंग प्रश्न उनके संपूर्ण जीवन साहित्य में बिखरे पड़े हैं। आज के प्रसंग में हम उनके अंतिम व्याख्यान को केंद्र में रखकर कुछ ऐसे ही पहलुओं को टटोलने का प्रयास भर करेंगे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का अंतिम व्याख्यान— ''भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?'' पहली बार 3 दिसंबर, 1884 को 'नवोदिता हरश्चिंद्र चंद्रिका' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद तो मानो अनेकों पत्र-पत्रिकाओं में उसे छापने की होड़ सी लग गई थी और अंततः वह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में स्वीकार किया गया और 'बलिया वाले' व्याख्यान के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

समकालीनों की दृष्टि में भी वह ''एक बड़ा ललित, गंभीर और समयोपयोगी व्याख्यान'' था। लेकिन उसके इस रूप को सामने लाने का ऐतिहासिक कार्य डॉ. रामविलास शर्मा ने ही किया था। 'भारतेंदु युग' (1942) नामक पुस्तक में उन्होंने ही सबसे पहले भारतेंदु के उस व्याख्यान में व्यक्त क्रांतिकारी, सामाजिक और राजनीतिक विचारों का उद्घाटन किया और उसे भारतवर्ष की श्रेष्ठ वक्तृता में गिने जाने योग्य माना। इसके बाद से क्रमशः डॉ. सुधीरचंद्र, डॉ. ज्ञानेंद्र पांडेय और डॉ. वसुधा डालमिया जैसे इतिहासकारों ने उस व्याख्यान की व्याख्या को निश्चित रूप से गहराई और बारीकी से समझाने की कोशिश की। जिसमें डॉ. रामबिलास शर्मा की व्याख्या के प्रति कई गंभीर संदेह भी उभर कर सामने आए।

डॉ. सुधीरचंद्र को भारतेंदु में सर्वत्र एक प्रकार का 'दुचित्तापन' दिखाई पड़ता है—राजभक्ति और देशभक्ति को लेकर भी, हिंदु-मुस्लिम भेदभाव के सवाल पर भी, यहां तक कि 'स्वेदशी' के मामले में उनके आचार-विचार को बंटा हुआ देखते हैं। इसी तरह डॉ. ज्ञानेंद्र पांडेय को भारतेंदु का राष्ट्रवाद 'अनिश्चित'-सा प्रतीत होता है, जबकि डॉ. रामबिलास शर्मा को भारतेंदु में 'एक सम्मिलित राष्ट्र की कल्पना' स्पष्ट दिखाई देती है। डॉ. वसुधा डालमिया का मत इनसे बिलकुल अलग रूप से सामने आता है कि भारतेंदु का जोर इस बात पर है कि सब उन्नतियों का मूल 'धर्म' है और डॉ. रामबिलास शर्मा इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य पर मौन रहे। यह भी सत्य है कि इन सब टिप्पणियों में इतिहासकारों द्वारा एक साहित्यकार पर की गई विवेचना में इतिहास और साहित्य की जातिगत सीमाओं को नकारा नहीं जा सकता। कहना न होगा कि भारतेंदु हरिश्चंद्र का बलिया वाला वह ऐतिहासिक व्याख्यान अनेक बौद्धिकों के विवाद के चलते एक विवादास्पद दस्तावेज

के रूप में भी उभर कर सामने आया। इसलिए अब हम जब भारतेंदु हरिश्चंद्र को याद करने चले हैं तो क्यों न एक बार फिर उस पर चिंतन मनन कर लिया जाए।

पूरे व्याख्यान के विन्यास में एक अंतर्निहित योजना है और भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उसे साकार करने के लिए अपनी सिद्ध नाट्य कला के सारे कौशल का भरपूर इस्तेमाल किया है। व्याख्यान में संस्कृत के श्लोक, उर्दू के शेर, हिंदी के काव्यांश, पुराण और इतिहास के चरित्र, चुटकुले, लतीफे, कहावतें और रूपक तो हैं ही और इन सबके बीच है—उनके स्फुटिक विचार। व्याख्यान के विषय का उल्लेख आरंभ में ही नहीं बल्कि एक दो पैराग्राफ के बाद आता है, जहां वे लिखते हैं—''मुझको मेरे मित्रों ने कहा कि तुम इस विषय पर आज कुछ कहो कि हिंदुस्तान की कैसी उन्नति हो सकती है?'' और इसके बाद थोड़े विलंब से कहते हैं, ''भाई हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधार किस चिड़िया का नाम है।''... सब उन्नतियों का मूल धर्म है। डॉ. वसुधा डालमिया ने भारतेंदु हरिश्चंद्र में इसी 'उन्नति' और 'धर्म' को विशेष रूप से इंगित किया है।

वस्तुतः व्याख्यान का बीज शब्द 'उन्नति' ही है। 'उन्नति' से भारतेंदु का ठीक ठाक तात्पर्य क्या है? कहते हैं कि स्वयं भारतेंदु ने अपने व्याख्यान में अंग्रेजी का शीर्षक दिया था—'हाउ कैन इंडिया बी रिफार्मड' स्पष्ट है कि 'उन्नति' का अर्थ सुधार हैं। जबकि यह भी सच है कि वे अपने व्याख्यान में उन्नति और सुधारना दोनों शब्दों को दो परस्पर पूरक संकल्पनाओं के रूप में इस्तेमाल करते हैं। व्याख्यान के आरंभ में ही वे जब हिंदुस्तानी लोगों को 'रेल की गाड़ी' कहते हैं, तो तुरंत ही वे इंजन की बात भी करते हैं। कामना करते हैं कि हिंदुस्तानी लोगों को कोई आगे बढ़ाने वाला तो हो। हिंदुस्तानी लोगों को आगे बढ़ने की अपील करते हुए वे प्रायः यूरोप और अमेरिका के अलावा जापान में उद्योग-वाणिज्य की प्रगति का आदर्श प्रस्तुत करते थे। वस्तुतः उनकी नजर में उन्नति का प्रगतिवाचक अर्थ उद्योग, वाणिज्य, विज्ञान और टेक्नोलोजी तक सीमित था और इस उद्योग, वाणिज्य की उन्नति में सबसे बड़ी बाधा थी उपनिवेशवाद। उसमें भी अंग्रेजी राज के उपनिवेश को उन्होंने भारत की उन्नति में सबसे बड़े बाधक के रूप में देखा।

31 अगस्त, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में 'सच मत बोल' शीर्षक संपादकीय में वे लिखते हैं—''जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वाधीन हुआ, वैसे ही भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है परंतु भारतवर्ष के उपनिवेशित होने से इसके विपक्ष में बहुत आपत्ति है।'' यहां यह विशेष उल्लेखनीय है कि इस उपनिवेशवाद के संदर्भ में ही उन्होंने भारतवर्ष में मुसलमानों के राज को अंग्रेजों के राज से भिन्न माना। उसी टिप्पणी में भारतेंदु ने लिखा था—''मुसलमान लोग सौ गुना अव्ययी थे, परंतु वे लोग इस देश के वासी थे, इससे उनका अर्थ समुदाय इसी देश में व्यय होता था।'' स्पष्ट है कि मुस्लिम शासन में भारत का उपनिवेश नहीं था। उपनिवेश हुआ अंग्रेजी राज में, जिससे देश का सारा धन विदेश चला जाता है। उल्लेखनीय है कि अपने व्यापार के अनुभव और 'कवि वचन सुधा' में 1880 के मध्य में दादा भाई नौरोजी के 'पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया' नामक पुस्तक के लेखों ने भारतेंदु को गहराई तक प्रभावित किया। उनके आर्थिक राष्ट्रवाद और स्वदेशी चिंतन में इसकी स्पष्ट छाप सहज ही देखी जा सकती है। इसीलिए व्याख्यान के अंत में वे कहते हैं—''परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत करो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।''

भारत वर्ष की उन्नति में विदेशी भाषा के साथ आंतरिक बाधा है, जिसे भारतेंदु हरिश्चंद्र गहरे अहसास के साथ निबटाना चाहते थे। इसी आंतरिक बाधा को वे 'सुधारना' या 'सुधार' कहते हैं। उन्नीसवीं सदी के युग को गुजराती में आज भी 'सुधार युग' कहते हैं। कहना न होगा कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने धर्म को सब उन्नतियों का मूल कहा है। उनकी नजर में समाज नीति, राजनीति, मत-मतांतर आदि सब इस धर्म नीति पर या तो आधारित हैं या किसी न किसी रूप से उससे जुड़े हुए हैं। उनका मानना था कि धर्म नीति और समाज नीति में कुछ ऐसे रूप हैं, जो देश काल के अनुसार बदले जा सकते हैं। जैसे विदेश-यात्रा, विवाह-पद्धति, जात-पात, छुआछूत आदि। इन सब सामाजिक व्यवस्थाओं में आवश्यकतानुसार परिवर्तन संभव है और उचित भी।

इसके अलावा धर्म का एक रूप और है, जिसका संबंध आत्मा और परमात्मा से है। इस संदर्भ में वे सच्चे वैष्णव थे बल्कि इससे भी आगे बढ़कर वे वैष्णवता को ही भारत का राष्ट्र धर्म मानते थे। उनके ''वैष्णवता और भारतवर्ष'' नामक लेख को इस दृष्टि से बलिया वाले व्याख्यान का पूरक कहा जा सकता है। सही मायने में भारतेंदु हरिश्चंद्र की वैष्णवता उनके भारतवर्ष की तरह ही अपने में धर्म के एक विशाल फलक को समेटे हुए है। जिसमें यदि नाभादास के 'भक्तमाल' के सभी प्रकार के भक्तों का स्थान है तो 'उत्तर भक्तमाल' का भी वही स्थान है, जिसकी रचना स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने की।

वस्तुतः वैष्णवता की इस अवधारणा का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी में धार्मिक वाद-विवादों के मंथन से हुआ, जिसमें ब्राह्मो समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन के साथ-साथ ईसाई व यूरोपीय धर्मों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस धार्मिक संवाद की विस्तृत चर्चा डॉ. वसुधा डालमिया ने अपने शोध ग्रंथ 'नेशननालाइजेशन ऑफ हिंदू ट्रेडिशन'' 1997 में भी की है। डॉ. रामबिलास शर्मा ने भी माना कि भारतेंदु ने जिस राष्ट्र की कल्पना की थी, उसमें सभी धर्मों और मत-मतांतरों के लिए स्थान था। इसीलिए एक

स्थान पर जहां भारतेंदु हरिश्चंद्र यह लिखते हैं कि ''मुसमान भाईयों को भी उचित है कि इस हिंदुस्तान में बस कर वे लोग हिंदुओं को नीचा समझना छोड़ दें।'' तो दूसरी ओर ''यह मुसलमान हरिजन पर कोटिक हिंदु वारिए'' जैसी पंक्ति लिखकर वे अपनी वैष्णवता की नई परिभाषा लिख रहे थे। जबकि यह भी आकस्मिक नहीं है कि 1884 में जब भारतेंदु हरिश्चंद्र बलिया के ददरी में यह कह रहे थे कि जो हिंदुस्तान में रहे वह हिंदू। ठीक उसी समय सय्यद अहमद खान भी लाहौर में यही बात कर रहे थे। लेकिन इन सबके गर्भ में छिपी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र केवल उन्नति और आगे बढ़ने जैसे मिशन के लिए ''मछली की आंख पर अर्जुन के ध्यान' की तरह सजग रहने के लिए भी सचेत करते हैं। इसीलिए घुड़दौड़ का एक रूपक बांधते हुए वे ऐलान करते हैं—''यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जाएगा फिर कोई उपाय किए भी आगे न बढ़ सकेगा।''

दरअसल बलिया वाले व्याख्यान से भारतेंदु हरिश्चंद्र के व्यक्तित्व का वह क्रांतिदर्शी कवि उभर कर सामने आता है, जिसकी संपूर्ण सर्जनात्मक ऊर्जा अपने देश व धरती की ठेठ परंपरा से स्यूत होती है, जिसमें लोक पुनर्नवा बन बन कर सामने आता है। उनका हृदय वैष्णव जरूर है, लेकिन किसी मठ का भोगी नहीं है, बल्कि उसमें अनीति, अन्याय और शोषण के विरुद्ध एक धधकती हुई आग भी है और दीन दुखियों के लिए करुणा भी है। इस अर्थ में भारतेंदु हरिश्चंद्र आज और भी अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर,
सत्यवती कॉलेज (सांध्य),
अशोक विहार, दिल्ली

भारत की गरिमा के गायक : भारतेंदु और भारती

डॉ. इंदरराज वैद

भारत बहुभाषा-भाषी देश है। इसके उत्तर में आर्य परिवार और दक्षिण में द्रविड़ परिवार की अनेक समृद्ध भाषाएं प्रचलित हैं। ये सभी प्रादेशिक भाषाएं एक ही जीवन-दर्शन की वाणी दे रही हैं और सभी रचनाकार संपूर्ण राष्ट्र का समस्त चिंतन, अर्चन और स्तवन करने में समान रूप से सन्नद्ध हैं। अनेकता में एकता हमारे लोक-जीवन की अपूर्व विशेषता तो है ही, हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार भी है। देशभक्ति की एक भावना डोर में हम सब बंधे हैं।

भारत की पराधीनता हमारे राष्ट्रीय इतिहास की एक ऐसी घटना थी, जिसने एक सीमित समय के लिए हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को ढंक दिया था। कालांतर में इस देश की जनता ने उत्साह के साथ स्वतंत्रता के लिए अपनी भूमिका निभाई। वही भूमिका हमारी विजय के रूप में प्रतिफलित हुई। सन् 1857 की क्रांति के बाद तो देश का वातावरण ही बदल गया था। पराधीन भारत के स्वाभिमानी नागरिकों का ब्रिटिश सरकार ने पग-पग पर विरोध करना, तिरस्कार करना और उसे हर प्रकार से प्रताड़ना देना आरंभ कर दिया था। कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी और निर्भीक लेखनी के माध्यम से जनता को स्वतंत्रता का मंत्र सिखाया। फलतः क्रांतिकारियों ने अपने रक्त से स्वतंत्रता संघर्ष का इतिहास लिखा। भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में क्रांतिदर्शी और पुरोधा कवि उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने अथक प्रयास से सर्वत्र राष्ट्रीयता की गंगा प्रवाहित की और लोगों को स्वदेश के लिए समर्पित होने की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान की। ऐसे ओजस्वी राष्ट्र-साधक कवियों की परंपरा को सुशोभित और गौरवांवित करने वाले मनीषियों में आधुनिक हिंदी के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र और तमिल के उन्नायक महाकवि सुब्रह्मण्य भारती का स्थान श्रेष्ठ है। सीमित और अल्प रचना-काल में इन दोनों महाकवियों ने अपनी भावनाओं की जिस रूप में वाणी प्रदान की, वह अन्य किसी साहित्य में दुर्लभ है। इन दोनों महाकवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व में एक ऐसी समानता है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक आर्य जाति के गौरव सूर्यवंशी महाराज हरिश्चंद्र का प्रतिमान है तो दूसरा तमिल जनता के इष्टदेव स्वामी सुब्रह्मण्य का। भारतेंदु बाबू महाराजा हरिश्चंद्र की तरह सत्यनिष्ठ और परोपकारी थे तो भारती भी सुब्रह्मण्य की भांति तेजस्वी और स्वाभिमानी थे। दोनों सत्यनिष्ठ, दयालु, तेजस्वी महापुरुष थे। भारतीय साहित्याकाश में बाबू हरिश्चंद्र और सुब्रह्मण्य चांद और सूरज की तरह सुशोभित हैं। दोनों की आत्माएं भारत की आत्मा के साथ आत्मसात हो चुकी हैं।

भारतेंदु का जन्म विश्वनाथपुरी काशी में भाद्रपद शुक्ल 5 (ऋषि पंचमी) संवत् 1907 वि., 9 सितंबर, 1850 ईस्वी को हुआ था। भारती का जन्म 11 दिसंबर, 1882 ई. को मद्रास राज्य में तिरुनेलवेली जिले के एट्टयापुरम् नामक स्थान में हुआ था। भारतेंदु की माता का नाम पार्वती देवी था तो भारती की जननी का लक्ष्मी था। यों, सरस्वती के सपूत तो दोनों ही थे। भारतेंदु विद्वान् कवि गोपालचंद्र उपनाम गिरिधरदास के सुपुत्र थे तो भारती भी कुशल गणितज्ञ पं. चिन्नास्वामी अय्यर के आत्मज थे। भारतेंदु ने अपने कवि जीवन का श्रीगणेश अपने पिता के आशीर्वाद की छांह तले किया था तो भारती ने भी अपने पिता से प्रोत्साहन पाकर अपनी काव्य प्रवृत्ति को उद्भासित किया था। पांच वर्ष की अवस्था में ही काव्य-रचना करके भारतेंदु बाबू ने अपने पिता से 'तू मेरा नाम बढ़ावेगा' का आशीर्वाद ले लिया था। जो दोहा उन्होंने अपने पिता को रचकर सुनाया था, वह इस प्रकार है—

''लैं ब्यौड़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर के सैन को हनन लगे भगवान।।''

भारती ने भी अल्प आयु में तुकबंदियां करनी आरंभ कर दी थीं। पं. क.म. श्रीराम शर्मा लिखते हैं—''भारती के साथ भी कुछ ऐसी ही बात थी। पिताजी पुत्र को डांटते कि 'क्या बात है सुबय्या, तू गणित पर ध्यान नहीं देता। तेरा तो बाल काल है, यही लिखने का समय है', भारती पिता को जवाब देने का साहस तो नहीं करते पर मन ही मन गुनगुनाते— बाल, काल, पाल, लाल, माल ये सब जाल है। मतलब यह कि अनुप्रास वाले शब्दों के संग्रह का उनको बचपन से ही बड़ा शौक था।'' (दे. कविश्री माला सुब्रह्मण्य भारती, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा, पृ. 33)। कविता लिखना दोनों ने बचपन से ही आरंभ कर दिया था। स्कूली पढ़ाई में दोनों का मन नहीं लगता था छोटी अवस्था में ही भारतेंदु ने समस्या पूर्तियां करके अपने पिता को और विद्वानों को विस्मित कर दिया तो भारती ने भी अपने अध्यापकों और पंडितों को दांतों

तले उंगली दबाने को विवश कर दिया था। भारती तो 'कालमेघम्' के नाम से विख्यात ही हो गए। एक बार अध्यापक ने कविता सुनाने का आदेश दिया तो भारती ने किन्हीं कारणवश अस्वीकार कर दिया। अध्यापक ने नाराज होकर कहा—'बड़े कालमेघम् बने फिरते हो। एक कविता तक नहीं सुना सकते?' प्रत्युत्तर था भारती का—''मेघ कहीं किसी की आज्ञा से बरसते हैं? कालमेघम् हूं न, कविता भी अपनी ही मर्जी से सुनाऊंगा।'' ऐसे थे स्वाभिमानी सुब्रह्मण्य भारती।

दोनों कवियों को बचपन में ही, (जब वे पांच वर्ष की अवस्था के थे) मातृसुख से वंचित हो जाना पड़ा था। 9 वर्ष की अवस्था में भारतेंदु ने अपने पिता को खो दिया और 14 वर्ष की अवस्था में भारती ने अपने पिता को खो दिया। एक ने पंद्रह वर्ष की अवस्था में जगन्नाथ पुरी की यात्रा की तो दूसरे ने उसी उम्र में काशी की। दोनों धार्मिक परंपराओं और रीति-रिवाजों के अंधसमर्थक नहीं थे। दोनों ने रूढ़ियों का प्रतिकार किया। भारतेंदु ने तर्पण का विरोध करते हुए अपने माता-पिता से पूछा था कि पानी में पानी डालने से लाभ क्या है? भारती ने भी काशी में अपनी फूफी कुप्पंमाल के यहां रहते समय दाक्षिणात्य ब्राह्मणों के लक्षणों का त्याग कर दिया था। उन्होंने अंग्रेजी फैशन के बाल कटवाना और मूंछें रखना आरंभ कर दिया था जबकि एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण के लिए यह सब वर्जित था। भारतेंदु ने पुरी के मंदिर में पूजास्थल से भैरव की मूर्ति हटाकर छोड़ी तो भारती ने आगे चलकर एक हरिजन बालक कनकलिंगम का यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न करवाया था। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ही पुरानी मान्यताओं और रूढ़ियों के विरोधी तथा नई व स्वस्थ परंपराओं के जन्मदाता थे।

अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के द्वारा दोनों ही कवियों ने अपने समाज को अत्यधिक प्रभावित किया था। दोनों परम उदार, परोपकारी, समाजोद्धारक महापुरुष थे। भारतेंदुजी ने अपनी सारी संपत्ति साहित्य-सेवा, परोपकार और धर्मार्थ कार्यों में व्यय कर दी थी। जब भी अवसर मिलता, भारती भी औरों की मदद करने से कभी नहीं चूकते थे। ऐसे कितने ही अविस्मरणीय प्रसंग हैं, जिनसे दोनों की उदारता का पता चलता है। दोनों ने जीवनभर साहित्य की सेवा की। यद्यपि अंतिम दिनों में दोनों की लेखनी शिथिल पड़ गई थी, फिर भी मृत्युपर्यंत उनके हृदय से स्वदेश और स्वभाषा की अथाह भक्ति छलकती रही। महाकवि भारतेंदु ने 6 जनवरी, 1885 ई. को चौंतीस वर्ष की अवस्था में अपने भौतिक शरीर का त्याग कर दिया और महाकवि भारती 11 सितंबर, 1921 ई. को 39 वर्ष की आयु में स्वर्ग सिधारे। वास्तव में इतने कम समय में विपुल परिमाण का उत्कृष्ट साहित्य रचकर स्वभाषा की अनवरत सेवा करने वाले भारतेंदु और भारती के समान निष्ठावान सेवक संसार में विरले ही होंगे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र और सुब्रह्मण्य भारती दोनों ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार थे। दोनों सिद्धहस्त कवि, सफल पत्रकार और गुणग्राही लेखक थे। भारतेंदु की कविताओं का प्रकाशन लगभग साढ़े आठ सौ पृष्ठों में हुआ है और लगभग इतने ही पृष्ठों में उनके कोई डेढ़ दर्जन मौलिक अनूदित नाटक छप चुके हैं और इनके छोटे-मोटे लेखों, पत्रों व टिप्पणियों से तो हजारों पृष्ठ भरे पड़े हैं। महाकवि भारती ने भी विशाल साहित्य का सृजन किया था। सैकड़ों राष्ट्रभक्तिपूर्ण, ईश्वर संबंधी, दार्शनिक और साहित्यिक कविताओं के अतिरिक्त भारती ने लगभग ढाई हजार पंक्तियों में 'पांचाली शपथम्' नामक प्रबंध काव्य का प्रणयन भी किया। ज्ञानरथम् चंदिरिकैयिन् कदै, नवतंदिर कदैगल, तरासु, वियासंगल आदि उनकी प्रसिद्ध गद्य रचनाएं हैं। भारतेंदु की भांति भारती भी अपनी गद्य रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, जातीय गौरव, समाजोद्धार, नारी-जागरण और अध्यात्म को वाणी देते हैं।

बाबू हरिश्चंद्र और सुब्रह्मण्य दोनों आरंभ में कुछ समय के लिए क्रमशः हिंदी और तमिल के अध्यापक थे। तदनन्तर उन्होंने एक पत्रकार का जीवन अपनाया। पत्रकारिता के क्षेत्र में दोनों का ही अमूल्य और स्मरणीय योगदान है। कवि वचन-सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन (बाद में हरिश्चंद्र चंद्रिका) बाल बोधिनी आदि पत्रिकाओं का भारतेंदु ने और इंदिया, बाल भारत, कर्मयोगी आदि पत्रिकाओं का भारती ने संपादन-संचालन किया था। दोनों ही निष्ठावान निर्भीक पत्रकार थे। जिस प्रकार खड़ी बोली में साहित्य रचकर भारतेंदुजी ने आधुनिक हिंदी की नींव डाली थी। उसी प्रकार अपनी विशिष्ट प्रस्तुति से भारतीजी ने भी तमिल भाषा और उनकी शैली में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया था।

भारतेंदु के संबंध में बाबू शिवनंदन सहाय लिखते हैं—''बाल्यावस्था में ही कविता की ओर इनका झुकाव हो चला था और उसी समय से अपनी रचनाओं से लोगों को प्रभावित करने लगे थे। बारह वर्ष की अवस्था में इनका लिखा हुआ प्रथम ग्रंथ प्रकाशित होकर सर्वसाधारण को हस्तगत हुआ जो 'विद्यासुंदर' नाटक था। फिर तो धीरे-धीरे इनकी लेखनी ने विलक्षण प्रसवन शक्ति प्रदर्शित की। 18-20 नाटकों की अवतारणा हुई। कविता, इतिहास, परिहास, जीवन-चरित्र, पुरातत्व संबंधी नाना प्रकार के नूतन ढंग की पुस्तकों से इन्होंने हिंदी-साहित्य को सुशोभित कर दिया।'' (हरिश्चंद्र, हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, सितंबर, 1975 ई., पृ. 352)

भारती के गद्य-साहित्य के संबंध में जीवनी-लेखक विश्वनाथन् की टिप्पणी देखें—''गद्य साहित्य के इतिहास में भारती की कृतियों ने एक नए युग का उद्घाटन किया है। वास्तव में वे एक लंबे समय से अनुभूत आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। उन्होंने सरल, स्पष्ट एवं सशक्त शैली के द्वारा, अद्भुत सूझबूझ और व्यंग्य के द्वारा, विविध तरह की जानकारियों

के द्वारा, मनुष्य और मनुष्येतर जगत के प्रति अपने उदार दृष्टिकोण, अपनी मौलिकता, अपनी सहानुभूति एवं चित्ताकर्षित करने की अपनी कला के द्वारा तमिल को नया जीवन प्रदान किया। (भारती एंड हिज वर्क्स, भारती प्रचुरालयम, प्र. संस्करण, 1929 ई., पृ. 36)''

भारतेंदु और भारती दोनों ही विविध भाषाओं के मर्मज्ञ पंडित थे। भारतेंदु ने जिस प्रकार संस्कृत, उर्दू, बंगला और गुजराती में मौलिक रचनाएं की। उसी प्रकार भारती ने भी संस्कृत और अंग्रेजी में मौलिक लेखन किया है। भारतेंदु की तरह भारती ने संस्कृत और बंगला रचनाओं का तमिल में अनुवाद भी किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की अनूदित रचनाओं में मुद्रा राक्षस और गीतिगोविंद (मूल संस्कृत), दुर्लभ बंधु (मूल अंग्रेजी मर्चेंट ऑफ वेनिस) और भारत-जननी (मूल बंगला) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कवि भारती ने भी भगवद्गीता और पतंजलि के योगसूत्र का संस्कृत से तथा रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानियों का बंगला से तमिल में अनुवाद किया। अपनी कई तमिल कविताओं का अंग्रेजी में रूपांतरण भारती ने स्वयं किया है। दोनों ही कवियों के अनुवाद अत्यंत सहज एवं प्रभावपूर्ण हैं।

भारतेंदु और भारती दोनों राष्ट्रीय कवि हैं। यद्यपि इन्होंने लौकिक प्रेम, ईश्वर और दर्शन से संबंधित अनेक रचनाएं की हैं फिर भी इनकी रचनाओं का राष्ट्रीय स्वर ही इनकी प्रशस्ति का प्रधान कारण है। दोनों कवियों की रगों में राष्ट्रीयता का खून दौड़ता था। उनके विचारों में भारत की प्राचीन संस्कृति का अनुराग झलकता था और उनके स्वर में सोये हुए राष्ट्र पुत्रों को जगाने का ओज उमड़ता था। दोनों ही कवियों की तूलिका ने भारत के सांस्कृतिक गौरव, उसके आदर्श और उसके स्वरूप का मनोहर चित्रांकन किया है। भारतेंदु ने परतंत्र भारत की हीन अवस्था का अत्यंत मार्मिक वर्णन किया है तो भारती ने पराधीन भारत के स्वाभिमान और शौर्य को चुनौती दी है। एक की कविताओं में कसक, व्यंग्य और आक्रोश की वाणी है तो दूसरे के गीतों में स्वाभिमान और चुनौती का स्वर है। एक ने देश की तत्कालीन स्थिति को देखकर प्रायश्चित करने के लिए देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा था—''रोअहु सब मिलि कै, आवहु भारत भाई। हा, हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।'' (भारत दुर्दशा) तो दूसरे ने देश की दुरवस्था से क्षुब्ध होकर कहा—''निर्बल कंधों वाले भारत! दूर हो जा, दूर हो जा, दूर हो जा! दुर्बल मानस वाले भारत! दूर हो जा, दूर हो जा, दूर हो जा!''

भारतेंदु ने पराधीन भारत के इतिहास-प्रसिद्ध स्थलों की दुरवस्था पर धिक्कारते हुए कहा था—

''हाय पंचनद, हा पानीपत।
अजहुं रहे तुम धरनि बिराजत।।
हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहुं खरो भारतहिं मझारी।।
जा दिन तुव अधिकार नसायो।
ताहि दिन किन धरनि समायो।।
रह्यो कलंक न भारत-नामा।
क्यों रे तू वाराणसि धामा।।''

उपर्युक्त पंक्तियों में भारतेंदु की मातृभूमि के प्रति अनन्य आत्मीयता के दर्शन होते हैं। वे पराधीन देश के नागरिकों को जगाने के लिए स्वातंत्र्योन्मुख होने की ऐसी प्रेरणामयी प्रताड़नाएं अनेक अवसरों पर देते हैं। तमिल कवि भारती भी इसी प्रकार अपने देशवासियों को ललकारते हुए कहते हैं—

''एन्रु तणियुम् इंद सुतंतिर दाहम्?
एन्रु मडियुम् एंगल् अड़िमैयिन मोहम्?
एन्रे मदन्नैकै विलंगुगल् पोगुम्?''

अर्थात् हमारी स्वतंत्रता की तृषा कब शांत होगी? हमारा दासत्व-मोह कब मिटेगा? कब हमारी मां की हथकड़ियां टूटेगी?

दोनों कवि यह जानते थे कि जब तक हममें फूट रहेगी, तब तक हमें स्वतंत्रता का वरदान नहीं मिल पाएगा। एकता के संबंध में दोनों कवियों के उद्गार अत्यंत प्रेरक हैं। भारतवासियों को एक होकर देशसेवा करने को उद्घोषित करते हुए भारतेंदु कहते हैं—

''फूट बैर को दूर करि बांधि कमर मजबूत।
भारत माता के बनो, भ्राता पूत सपूत।।''

एक होकर जीने की शिक्षा देते हुए भारतीजी भी अपने वंदेमातरम् गीत में लिखते हैं—

''एक हैं तो जिंदगी, सबका ही विकास।
एकता नहीं तो होगा, सबका ही विनाश।।
कोटि-कोटि मरना-जीना, संग पाएंगे।
वंदे मातरम् का नारा हम लगाएंगे।।''

भारतेंदु और भारती दोनों ही धार्मिक सहिष्णुता और धर्म-निरपेक्षता के समर्थक थे। उनकी दृष्टि सांप्रदायिक नहीं थी। दोनों धर्मों की अनेकता और ईश्वर की एकता के विश्वासी थे। धर्म और ईश्वर संबंधी भारतेंदुजी की उदार भावना का पता उनकी इन पंक्तियों से चलता है—

''तेरा दम भरते हैं हिंदू
अगर नाकूस बजता है।
तुझे ही शेख ने प्यारे
अजां देकर पुकार है।।
तुम्हारा नूर है हर शै में
कह से कोह तक प्यारे।
इसी से कह के हर हर तुमको
हर हिंदू ने पुकारा है।।''

''एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'' के इस सिद्धांत का प्रतिपादन भारती की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है—

''तीयिनै कुंबिडुम् पापरि-नित्तम्
दिक्कै वणंगुम् तुरुक्कर
कोइल् शिलुवैयिन् मुन्नै निन्रु
कुंबिडुम् येशू मदत्तार।
यारुम् पणिन्दिडुम् देयवम्-पोरुल्
याविनुम्-निग्निडुम् देयवम्
पारुक्कल्ले देयवम् ओन्रु-इदिल्
पर्पल शण्डैगल् वेण्डाम्।।''

अर्थात् अग्नि को पूजने वाले ब्राह्मण, प्रतिदिन दिशाओं को सर झुकाने वाले मुसलमान और मंदिर में क्रास के आगे खड़े होकर प्रार्थना करने वाले ईसाई, ये सब जिस ईश्वर की पूजा करते हैं वह सर्वव्यापी और सर्ववंदित है। सबका ईश्वर एक ही है, इसमें झगड़ना कैसा?

दोनों समाजोद्धारक कवियों ने जाति-भेद और वर्ण-भेद का विरोध किया था। यदि भारतेंदु ने कहा कि—''जाति में कोई चाहे ऊंचा हो या नीचा, सबका आदर कीजिए। जो जिस योग्य हो उसे वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों का तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।'' तो भारती का भी कहना था कि ''जाति नाम की कोई चीज नहीं होती। कुल को छोटा-बड़ा समझना पाप है। नीति, सद्बुद्धि, शिक्षा और प्रेमपूर्ण व्यवहार से लोग बड़े बनते हैं।''

नारी-जाति की दयनीय स्थिति से दोनों ही व्यथित थे। विदेशी नारियों की तुलना में भारतीय नारियों का पिछड़ापन उन्हें बहुत अखरता था। स्त्रियों की दुरवस्था के लिए दोनों कवियों ने पुरुष जाति को लताड़ा और समानता का व्यवहार करने का संदेश दिया। भारतेंदुजी ने लिखा है—

''जो हरि सोई राधिका
जो शिव सोई शक्ति।
जो नारि सोई पुरुष,
या मैं कुछ न विभक्ति।।
पितु पति सुत करतल कमल
लालित ललना लोग।
पढ़ै गुनै सीखै सुनै
नासै सब जग सोग।।
वीर प्रसविनी बुध बधू
होय हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की
सांचेहि स्वामिनी होय।।''

यानी, शिक्षा अर्जित करके नारी सही अर्थ में पुरुष की अर्धांगिनी बने और अपने अधिकारों की प्राप्ति करे, यही भारतेंदु की कामना थी। तो भारती ने भी लिखा है—''स्त्री और पुरुष आंखों के समान हैं। अपनी एक आंख को फोड़ना अच्छा नहीं। यदि स्त्रियां शिक्षित हो जाएंगी तो सारे संसार का भला होगा।''

भारतेंदु और भारती दोनों भारतमाता के अनन्य सेवी और उसकी यशोगाथा के अनुपम गायक थे। दोनों ने उसके अत्यंत भव्य और दिव्य स्वरूप को अपने शब्दों में रूपायित किया है। भारतेंदु ने उस भारतेश्वरी की प्रशस्ति गाई है, जिनकी क्रोधाग्नि में महासाम्राज्यों को राख कर डालने की क्षमता है तो भारती ने उस भारत-जननी का गुणगान किया है, जो अपने विरोधियों और शत्रुओं के लिए साक्षात् दुर्गा का ही रूप धारण कर लेती है। यथा—

(अ) ''भाजे से फिरत शत्रु इत-उत दौरि-दौरि,
दबत जमानि जाको जोहत जुलूस है।
ब्रह्म अस्त्र ऐसी तोपें, तोपें एकै बार फौज़
विमल गोली बंदूक दारू कारतूस है।
ऐसो कौन जग में विलोकि सकै जौन इन्हें,
देखि बल बैरि-दल रहत मसूस है।
प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिसरें क्रोध
ज्वाल आगे रोम मोम रूस फूस है।''

(आ) ''अरबदु कोडि तडक्कै गळालुम्
अरंगळ् नडत्तुवळ् ताय् तनै
चेरुवदु नाडि वरुबवरैत्तुगळ्
शेयदु किडत्तुळ् ताय।
भूमियिनुम् पोरै मिक्कुडैयाळ् पेरुम
पुण्णिय नेन्जिनल ताय, एनिल
तोमिलैप्पार मुननिन्र डुंगार कोडुन
दुर्गैयनै यवळ् ताय्।।''

अर्थात् साठ करोड़ सशक्त हाथों से युद्ध करने वाली और विरोधियों का दर्प चूर-चूर कर देने वाली है हमारी मां। भूमि से अधिक सहनशील पवित्र हृदय वाली हमारी मां है पर शत्रुओं के लिए साक्षात् भयंकर दुर्गा है।

भारत, भारतमाता, भारत की प्रकृति, भारत की प्रजा की प्रजा आदि का गुणगान करने वाले भारतेंदु और भारती मातृभाषाओं के प्रति भी उतने ही निष्ठावान और जागरूक थे। दोनों ही सारस्वत सपूतों ने अपनी-अपनी मातृभाषाओं को माता मानकर उनकी आराधना और सेवा की। अपने प्राणों से प्रिय हिंदी भाषियों को संबोधित करते हुए भारतेंदु ने कहा था—

''करहु विलंब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सबको मूल।।''

भारती ने भी तमिल भाषियों का आह्वान करते हुए लिखा है—''विश्वभर में तमिल भाषा के समान मधुर कोई अन्य भाषा नहीं है। हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए कि मधु-सी मीठी तमिल की आवाज संसारभर में फैले।'' दोनों ही कवि यह चाहते थे कि उनकी भाषाओं का समस्त विश्व में प्रचार हो और वे विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं के समकक्ष स्थान प्राप्त कर सकें। इसीलिए तो भारतेंदु ने कहा—''प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जत्न।'' दोनों ही महाकवियों ने अंग्रेजी के स्थान पर स्वभाषा की स्थापना पर बल दिया है। भारतेंदु ने अपने देशवासियों को ताड़ना देते हुए कहा था—''परदेशी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस। परबस ह्वै कब लौं कहो, रहिहो तुम ह्वै दास।'' तो भारती ने इससे भी कठोर शब्दों में गुलाम भारत की भर्त्सना करते हुए लिखा है—''अपने घर की भाषाओं की उपेक्षा करके अन्य भाषाओं में मन रमाने वाले भारत! दूर हो जा, दूर हो जा, दूर हो जा।'' दोनों ने मातृभाषा प्रेमियों और प्रचारकों का आह्वान करते हुए कहा कि संसार में जितनी भी ज्ञान विज्ञान की निधि है, उसे वे अपनी भाषा के लिए एकत्रित करें। यथा—

(अ) ''विविध कला, शिक्षा अमित,
ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु
भाषा मांहि प्रचार।''

—भारतेंदु

(आ) ''शेन्द्रिडु वीर एट्टु दिक्कम् कलै
शेल्वंगळ् यावुम् कोणर्न्दिंगु शेपीर''
—भारती

अर्थात् आठों दिशाओं में जाओ और ज्ञान की सारी सामग्री बटोरकर तमिल को समृद्ध करो।

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से दोनों क्षुब्ध थे। भारतेंदु ने यदि लिखा—

''अंग्रेजी पढ़िकै जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिनु रहत हीन के हीन।।''

तो भारती ने भी अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हुए कहा—''जो शिक्षा हमें अपनी संस्कृति व इतिहास से विमुख करती है, हमें अजनबी बनाती है, वह किस काम की? वह अहितकर है। मैं इसे डंके की चोट कहने को तैयार हूं।''

भारतेंदु और भारती की राष्ट्रीयता का पर्याय थी भारतीयता और उसका अर्थ था मातृभूमि और मातृभाषा प्रेम। दोनों ने मातृभूमि की अर्चना और मातृभाषा की सेवा में अपने जीवन का तिल-तिल होम कर दिया। दोनों विशुद्ध और व्यापक अर्थ में भारत के जातीय कवि थे। दोनों स्वातंत्रय संघर्ष के पुरोधा, अपने समय के सार्थवाह, क्रांतद्रष्टा, नव-जागरण के अग्रदूत कवि थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र और सुब्रह्मण्य भारती दोनों चंद्र और सूर्य की तरह भारत के राष्ट्रीय साहित्यकाश में अनंतकाल तक चमकते रहेंगे।

14, नारायण अपार्टमेंट
स्ट्रीट 10, नंगनल्लूर, चेन्नई–600061

भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में हास्य-व्यंग्य

डॉ. एनी राय

नाटक साहित्य की एक सशक्त विधा है। जिसके द्वारा जनता से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित होता है। यही कारण है कि भारतेंदु जैसे सामाजिक उन्नयन में महत्त्वपूर्ण हिस्सा निभाने के आकांक्षी, प्रखर राजनीतिक चेतना संपन्न रचनाकार ने साहित्य की अन्य विधाओं (जैसे कविता, निबंधादि) की तुलना में नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम बनाया है। भारतेंदु ने अपने युग की राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना को पहचानकर उसे अपने नाटक में स्थान दिया। उनके नाटक युग-चेतना का परिणाम है। अपने युग का कोई ऐसा विषय नहीं था, जिसकी ओर उनका ध्यान न गया हो। उनका नाटक सामाजिक जागरण तथा सुधार की बलवती आकांक्षा से प्रेरित है, साथ ही उनके नाटक लेखन का ध्येय प्रखर राजनीति क्रांतिकारी चेतना था, जो सृजन जगत से बाहर भी राजनीतिक लेखों के प्रकाशन तथा जनसभाओं के संबोधन में प्रखर रूप से उजागर होती रही। अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए तथा उसे और अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के उद्देश्यों से उन्होंने हिंदी में पहली बार व्यंग्य को जीवन के सभी क्षेत्रों के चित्रण के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित किया।

भारतेंदु युग की स्थिति कुछ ऐसी थी, जिसे भारतेंदु और प्रभावात्मक ढंग से पाठक के सामने उपस्थित करने के उद्देश्य से हास्य और व्यंग्य को माध्यम के रूप में अपनाया। वे स्वंय एक संभ्रांत, कुलीन और धनाढ्य परिवार में पैदा हुए थे, जो स्वभावतः आलस्य, विलास, पाखंड, ऐश्वर्य-प्रदर्शन, चाटुकारिता आदि दुर्गुणों से भरा था। अपने वर्ग दुर्बलताओं के बीच रहते और उनके अंशतः प्रभावित होते हुए भी वे देश की हीनावस्था को नजरअंदाज न कर सके। भविष्यद्रष्टा की भांति नैतिक प्रेरणा, अपने समाज को निस्संग वस्तुपरक दृष्टि से देखने और परखने की असाधारण क्षमता के बल पर वे स्वयं अपने वर्ग की कमजोरियों पर हंस सके, उसे व्यंग्य बाणों का निशाना बना सके।

भारतेंदु ने सामंती संस्कारों से घिरे धनी व्यापारी वर्ग, जमींदारों, राजे-राजवाड़ों जो स्वाभिमान और शौर्य के पुराने सामंती संस्कारों से कोसों दूर अंग्रेज शासकों के हाथों की कठपुतली मात्र थे, उन पराश्रित परजीवी वर्ग के यथार्थवादी जीवन को अपने व्यंग्य का विषय बनाया। महंतों, पंडे-पुजारियों, संयासियों आदि धर्म के दलालों, तीर्थ स्थानों, पूजा-पाठ, दान आदि के अवसर पर जनता को लूटने वाले इन पाखंडियों की काली करतूतों पर भी भारतेंदु की पैनी दृष्टि पड़ी और उन्हें बेनकाब करने के उद्देश्य से उन्होंने व्यंग्य का माध्यम चुना।

अपनी लेखनी में हास्य और व्यंग्य का पुट देकर भारतेंदु ने देश के उन नवशिक्षित, महत्त्वाकांक्षी नौकरशाही वर्ग को भी आड़े हाथों लिया जो पद, यश, सम्मान तथा उपाधियां प्राप्ति के लिए विदेशी शासनकर्ताओं की खिदमत में दिन-रात लगे रहते। उन्होंने उन तथाकथित समाज-सुधारकों और बुद्धिजीवियों की खिल्ली उड़ाई, जो 'राजद्रोह' या 'डिसलायल्टी' के आरोप के भय से देश की उन्नति के लिए आवश्यक सामाजिक और प्रशासनिक सुधारों की मांग करने का साहस नहीं रखते थे।

भारतेंदु के नाटकों में हास्य और व्यंग्य के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि वह उनकी गहरी और व्यापक राष्ट्रीय चेतना, उदार धार्मिक दृष्टिकोण और प्रगतिकामी सामाजिक विचारों से संपन्न है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारतेंदु का स्थान अद्वितीय है, जिनके व्यंग्य का क्षेत्र बहुत व्यापक, प्रखर और स्वस्थ सामाजिक चेतना से संपृक्त है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के रचनाकाल की अवधि मुख्य रूप से 1865 से लेकर 1885 तक का है, जिसके एक ओर किसानों और सिपाहियों का राष्ट्रीय विद्रोह तो दूसरी ओर ह्यूम के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म। भारतेंदु अपनी रचनाओं के माध्यम से भारत की ओर मुख्य रूप से हिंदी प्रदेश की अनेक सामाजिक, राजनीतिक प्रतिबंधों के बीच खोखले सुधारवाद की आलोचना करते हुए वस्तुतः परोक्ष रूप से उस समग्र राजनीतिक मुक्ति की मांग कर रहे थे, जो 20वीं शदी के पूर्वार्द्ध में पूर्ण स्वराज्य या स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में दिखाई दी।

सात साल की अल्पायु में भारतेंदु ने पहला राष्ट्रीय विद्रोह देखा था। 1857 के इस विद्रोह के संबंध में भारतेंदु ने अधिक चर्चा नहीं की। अपनी सच्ची राष्ट्रीय भावनाओं के कारण न वे इस विद्रोह का विरोध कर सकते थे और न ही राजद्रोही कहलाने के डर से खुलेआम कहीं समर्थन करते थे। 1857-58

का विद्रोह ही नहीं बल्कि भावी विद्रोह को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने विशाल राजनीतिक-सैनिक क्षमता पैदा कर ली थी, जिसका विरोध करना निहत्थे और एकाकी भारतवासियों के वश में नहीं था। फिर भी इस संकटापन्न स्थिति में भारतेंदु ने कभी अंग्रेज साम्राज्यवाद का समर्थन नहीं किया। उन्होंने अपनी प्रहसनात्मक या फंतासीपरक रचनाओं, विशेषकर नाटकों में ब्रिटिश साम्राज्वादी व्यवस्था को निर्ममता से उघेड़ा और भारत की असह्य पीड़ा की कहानी सुनाई। उन्होंने एक गहरी आशा के साथ सोए हुए आलसी, रूढ़िग्रस्त देशवासियों को जगाने की महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देशक का कार्य किया है। भारतेंदु ने सबसे पहले एकांगी नवजागरण के बदले समग्र नवजागरण का सूत्रपात किया था। उन्होंने मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में सुधार लाने की कोशिश की। अपने नाटकों में विशेषकर 'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी' और 'विषस्य विषमौषधम्' में भारतेंदु ने व्यंग्य शैली अपनाकर तत्कालीन राजनीतिक विसंगतियों पर तीव्र प्रहार किए हैं।

1857 के सिपाही विद्रोह के बाद शासन की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश सरकार के हाथों में चली गई। 1858 में महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र प्रसारित होने के बाद भारत में अत्यंत कड़ा आपातकाल लागू हो गया, जिसके खिलाफ आवाज उठाना मुश्किल था। यह घोषणा पत्र अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ को दृष्टि में रखकर अत्यंत चालाकी भरा बनवाया गया था। इस काल में अंग्रेजों की उदारता केवल दिखाने भर के लिए थी। आतंक और लूट का कोहराम चारों ओर वैसे ही मचा था। भारतेंदु युग में अंग्रेजों की खोखली सुधार व्यवस्था और उदारता की नीति केवल गिने-चुने भारतीय जमींदारों, नौकरशाहों तथा खिदमतगारों के स्वतंत्र वर्ग तक सीमित थी।

एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आतंक तथा खोखली सुधारवाद और दूसरी तरफ भारतीय जनता की भीतर ही भीतर सुलगती, क्रांतिकारी अकुलाहट इन्हीं परिस्थितियों में भारतेंदु ने साहित्य को जनमानस और जनमानस को साहित्य तक पहुंचाने का महान् ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए मिथकीय संकेतों तथा प्रहसनात्मक फंतासियों का मार्ग अपनाया।

भारतेंदु ने अपने नाटक 'विषस्य विषमौषधम्' में भारत में सामंतवाद पतन के ऐतिहासिक अनिवार्यता के संबंध में व्यंग्य भरे स्वर में लिखा है—''सुख भी तो हिंदुस्तान में तीन ही ने किया—एक मुहम्मदशाह ने, दूसरी वाजिदअली शाह ने, तीसरे हमारे महाराज ने। मुहम्मदशाह के जमाने में नादिरशाही हुई, वाजिदअली से लखनऊ छूटा, अब देखें उनकी कौन गति होती है।'' बडौदा नरेश मल्हार राव जैसों की गति वस्तुतः पतनोन्मुख सामंतवाद की गति थी, जिसके कारण नादिरशाह की परंपरा में अंग्रेजीराज की स्थापना हुई। भारतीय सामंतवाद यूरोपीय सामंतवाद की तरह विकसित न हो सकने और राजाओं और महाराजाओं की मल्हार राव जैसी दयनीय स्थिति के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद को पनपने का अनुकूल अवसर मिला।

अपने राजनीतिक लाभ की दृष्टि से समस्त देश को निहत्था बनाने के लिए अंग्रेजों ने शस्त्रों को रखने पर एक्ट पास किया। अत्याचारों के विरुद्ध समकालीन अनेक लेखक अंग्रेजों की इस कूटनीति को अच्छी तरह समझ चुके थे। फलतः समाज के भीतर नवजागरण पैदा करने के लिए उन्हें व्यंग्य को अस्त्र के रूप में अपनाना पड़ा।

भारतेंदुकाल में राजनीतिक स्वार्थ की दृष्टि से वाणी की स्वाधीनता पर रोक लगाने के लिए तीन एक्ट पास हुए। इस काल के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि राजनीतिक दृष्टिकोण से यह भारत के लिए अशांति का काल था। अतः भारतीय साहित्यकारों ने विशेषकर भारतेंदु ने अपने युग की स्थिति का सही अनुमान कर अपनी लेखनी में व्यंग्य को आधार बनाकर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में राजनीतिक दशा सुधारने का सराहनीय कार्य किया।

ब्रिटिश शासन के समय हुए सीमित सुधार व्यवस्था के कारण उस युग के लेख और विशेषकर भारतेंदु के बीच-बीच में 'जीवौ सदा विक्टोरिया रानी' तथा अनेक प्रशस्तिपरक गीत लिखने के कारण अनेक आलोचक उन्हें राजभक्त मानते थे लेकिन उनके संबंध में यह कहा जा सकता है कि यह उनके देशप्रेम की एक झलक है। राजभक्ति परक गीत लिखने के कारण उन्हें 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' का खिताब मिला, पर वे उसे उलटकर अंधेरी मजिस्ट्रेट कहते थे। भारतेंदु ने अपने समय के अंग्रेज शासकों की खिदमत करने वालों और उपाधियों के आकांक्षी राजाओं के संबंध में कहा है... ''सरकार अंग्रेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है, उनको 'स्टार ऑफ इंडिया' की पदवी मिलती है।'' भारतेंदु सिर्फ आधुनिकीकरण प्रेमियों के समर्थक थे, जो अंग्रेजों के चित्तानुसार उदारता न रखकर 'स्वत्व निज भरत गहै' की विचारधारा में विश्वास रखते थे। जो अंग्रेजों के चित्तानुसार कार्य करते थे— ऐसे रूढ़िवादियों तथा बुद्धिजीवियों का विरोध भारतेंदु ने उपरोक्त व्यंग्य शब्दों में किया है।

अंग्रेज शासक देशी राजाओं को अपने स्वार्थपूति के लिए कठपुतली की तरह नचाते थे। उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व न था। भारतेंदु ने अपने नाटक 'विषस्य विषमौषधम्' में इस अवस्था पर व्यंग्य करते हुए लिखा है, ''कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया जैसे शतरंज के राजा, जहां चलाई वहां चलै।''

अंग्रेजों ने भारत की प्रजा के आंखों में धूल झोंककर अपनी स्वार्थपूर्ति के खातिर अनेक प्रणालियों एवं साधनों का उपयोग किया।

उनमें से एक साधन ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का भी है। पद के प्रलोभन से प्रेरित कितने ही मूढ़ मनुष्य अपने अर्जित पूंजी रिश्वत के नाम पर तिलांजलि कर देते हैं और पद पाकर अपने अधिकार का दुरूपयोग करते हैं। सरकार भी उन्हीं व्यक्तियों को ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाना पसंद करती है जो अकल में चाहे मोटा हो लेकिन उनके पीछे हाथ जोड़े जी हजूरी अवश्य करता हो। 'प्रेमजोगिनी' नाटक में भारतेंदु ने उनकी दशा का बड़ा ही सजीव चित्रण किया—''बाबू... और अंधेरी मजिस्ट्रेट का क्या हाल? रामचंद्र—हाल क्या है? सब अपने-अपने रंग में हैं। काशीप्रसाद अपनी कोठीवाली ही में लिखते हैं, शहजादे साहब तीन घंटे में एक सत्तर लिखते हैं, उसमें सैंकड़ों गलती। लक्ष्मीसिंह और शिवसिंह अच्छा काम करते हैं और प्रयागलाल भी कहते हैं, पर वह पुलिस के शत्रु हैं और विष्णुदास बड़े ... हैं। दीवानराम हुई नहीं, बाकी रहे फिजिशयन सो वो तो अंग्रेज ही हैं, पर भाई मूर्खों को बड़ा अभिमान हो गया है, बात बात में तपाक दिखाते हैं और छह महीने को भेज दूंगा कहते हैं।'' 'अंधेर नगरी' प्रहसन के पांचवे अंक में गोबरधनदास अंधेर नगरी की प्रशंसा करता हुआ कहता है—''सांच कहैं तो पनही खावैं, झूठे बहुविधि पद्वी पावैं'' इस पंक्ति में जिस तथ्य की ओर संकेत है, वह आज और विकृत रूप में हमारे समाज में सम्मान पाता है, जिसके बाह्य और अंतर में बहुत बड़ी फाक होती थी—बाहर से सभ्य और अंदर में कुटिल और कपटी।

राष्ट्रीय हित और सुधार के सामने भारतेंदु अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तुच्छ समझते थे। अपने स्वतंत्र भावना तथा राष्ट्रप्रेम के कारण उन्हें सरकार की कोपदृष्टि भी सहनी पड़ी। उस समय कोई ऐसा राजनीतिक नेतृत्व नहीं था जो जनता के दुःख और अपमानों का सही अनुमान लगा सके। भारत दुर्दशा (1876) की रचना भारतेंदु ने दुष्ट लिटन के शासनकाल में की थी। इस नाटक में भारतेंदु काल में देश की दुर्दशा की तस्वीरों का सही वर्णन है। वर्ण-व्यवस्था, दरिद्रता, भूख, महामारी, मंहगाई, फूट, कलह, आलस्य, राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक उन्माद भारत दुर्दशा इन सबकी प्रतीक था। 'भारत दुर्दशा' नाटक में कुछ शिक्षित बुद्धिजीवियों के संबंध में भारतेंदु का कहना है—''कुछ पढ़े-लिखे लोग देश सुधारना चाहते हैं। हहा-हहा। एक चना से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों का दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को हुक्म न दूंगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो। हैं! हमारी पॉलिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख! यह क्यों? मैं अपनी फौज ही भेज के सब चौपट करता हूं।''

भारतेंदु के समय शिक्षा के प्रचार-प्रसार से एक नया शिक्षित वर्ग पैदा हो चुका था, जो ब्रिटिश उपनिवेशवाद को देश की आधुनिकीकरण और तरक्की का मार्ग मानता था तो दूसरी ओर कुछ ऐसे प्राचीनवादी थे जिन्हें देश की वास्तविकता उन्नति से कोई सरोकार न था। चाहे जो भी शासन करें उनको केवल राज करने वालों की खिदमत करना है। 'विषम विषभौषधम्' नाटक में भारतेंदु ने तत्कालीन राजाओं की स्थिति में संबंध में व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—...पासा पड़े सो दाव, राजा करे सो न्याव। कहें जो लोग बस उसको बजा-बजा कहिए। इनका राज गया तो क्या आश्चर्य है। यह कुछ आज थोड़े हुई है सनातन ने चली आई है और फिर राजनीति रक्षा भी तो इसी से होती है। पर ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा की सरकार ध्यान रखती।... धन्य है ईश्वर! सन् 1599 में जो लोग सौदागरी करने आए थे, वे आज स्वतंत्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं। वाह यह तो बुद्धि का प्रभाव है और यह तो इनके सुशासन और बल का फल है। साढ़े सत्तरह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बंद था तो हिंदुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई है, सिर्फ चावल है सो गोरे खाएं। हम लोग मांड पीकर रहेंगे।

भारतेंदु साहित्य और राजनीति का घनिष्ठ संबंध मानते हैं उनके साहित्य का अधिकांश भाग राजनीति कथन पर आधारित है। उनके सुधारवाद की सबसे बड़ी खूबी है कि उसके पीछे एक स्पष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण है। 'भारत दुर्दशा' नाटक में सरकार की निरंकुशता का प्रभावोत्पादकता ढंग से वर्णन इस प्रकार हुआ है—

(डिसलायल्टी का प्रवेश)

सभापति—(आगे से ले लाकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहां तशरीफ लाए हैं? कुछ हम लोग सरकार के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं। हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं।

डिस.—नहीं, नहीं, तब सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे।

बंगाली—(आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है। सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला? व्यर्थ की विभीषिका।

डिस.—हम क्या करें, गवर्नमेंट का पॉलिसी यही है। कवि वचनसुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उसके पकड़ने को हम भेजे गए? हम लाचार हैं।

××× ××× ×××

सभा.—तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है?

डिस.—इंग्लिश पॉलिसी नामक एक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से।

इस कथन से भारतेंदु की गहरी राजनीतिक सूझ-बूझ और उच्चकोटि के प्रहसन कला का परिचय मिलता है। जनता और विच्छिन्न बुद्धिजीवियों की असहाय दशा का यथार्थ चित्रण हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। सबके चरित्र अलग-अलग, सबकी बोली अलग-अलग लेकिन उनके वार्तालाप में यथार्थ की एक सजीव झांकी देखने को मिलती है। इसके

बाद की डिसलायल्टी की बातचीत से अंग्रेजों की आतंकवादी नीति पर भी प्रकाश पड़ता है।

'अंधेर नगरी' नाटक में भी भारतेंदु ने परोक्ष रूप से देश की शासन व्यवस्था पर तीखा व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए शिष्य गोबरधनदास के माध्यम से कहते हैं मानो राजा कहीं विदेश में बैठा है और देश का शासन व्यवस्था वहां के अमलों और प्यादों द्वारा चलाया जा रहा है। अमलों की निरंकुशता पर प्रकाश डालते हुए गोबरधनदास कहता है–

''भीतर स्वाह बाहर सादे।
राजा करहिं अमले और प्यारे।।
अंधाधुध मच्चौ सब देसा।
मानहुं राजा रहत विदेसा।।''

यहां प्रयोग किए गए 'स्वाह' और 'अंधाधुंध' शब्दों का व्यंग्यात्मक प्रयोग देश की तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल और अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण नीति का स्पष्ट रूप दर्शाते हैं।

भारतेंदु कृत नाटकों का भली-भांति अनुध्यान करने पर हम देखते हैं कि भारतेंदु को जहां-जहां अवसर मिला, वहां उन्होंने अपने व्यंग्य शैली में देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और विशेषकर राजनीतिक विसंगतियों का खुला प्रहार किया। उनके 'भारत दुर्दशा' नाटक को ही देख लें, जहां भारत में अंग्रेजों के शासन के प्रति कटु और सच्ची आलोचना की गई है। कौओं, कुत्तों और स्यारों की चहल-पहल के बीच श्मशान में फटेहाल भारत का प्रवेश होता है। यह नाटक भारतेंदु के देश की हीनावस्था के प्रति व्यथित हृदय की पुकार है। भारत दुर्दशा, सत्यानाश फौजदार, आलस्य, मदिरा, रोग, अंधकार आदि भारत का नाश करने पर अड़े हुए हैं। इस नाटक में 'अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी' पंक्ति में भारतेंदु ने अंग्रेजों की स्वार्थ भावना के प्रति व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी की है। इस नाटक में वर्णित किताबखाने वाला दृश्य का अतीव सजीव वर्णन हुआ है। जहां भारत, भारत दुर्दशा, भारत भाग्य आदि अमानवीय विचार प्रतीकों के बदले एडिटर, कवि, बंगाली, महाराष्ट्री, देशी सज्जन आदि बहुत ही स्पष्ट मानवीय रूप में चित्रित हैं। इस दृश्यों में भारतेंदु की गहरी सूझ-बूझ के साथ उनकी प्रहसन-कला का परिचय मिलता है।

भारतेंदु ने नाटक को जनता का मनोरंजन करने के साथ उसका राजनीतिक शिक्षण करने का शक्तिशाली साधन भी बनाया। इनके गीत और हास्य भरे वाक्य लोगों के जवाब पर चढ़ गए हैं और भारतेंदु की प्रहसन कला यहां अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देती है।

'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' में चित्रगुप्त के जरिए भारतेंदु ने उन पर व्यंग्य किया है, जो उस समय के अधःपतित राजाओं की सेवा करते थे। उनका उद्देश्य केवल अपना स्वार्थ हासिल करना था। देश चाहे मिट्टी में मिले, इससे उनका कोई मतलब न था। ''महाराज, मंत्रीजी की कुछ न पूछिए। इसने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजाकर हां में हां मिलाई, मुंह पर स्तुति पीछे निंदा, अपना घर बनाने से काम, स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े। घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के बिना इसने न धर्म जाने और न कर्म जाने–यह मंत्री व्यवस्था है। प्रजा पर कर लगाने में तो पहले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।''

अंग्रेजों के शासनकाल में राजनीतिक क्षेत्रों में घूसखोरी का प्रचलन व्यापक रूप से चल रहा था। चाहे थाने हो या कचहरी या सरकारी दफ्तर, हर तरफ रिश्वत का बोलबाला था। भारतेंदु ने इसका खुलकर विरोध किया, अपने नाटक वैदिक हिंसा हिंसा न भवति में। न्यायालय में प्रचलित घूसखोरी का नग्न चित्र व्यंग्य शैली में प्रस्तुत किया है। यमराज के दरबार में श्रीयुत गृह-राज के मंत्री चित्रगुप्त द्वारा संचित की हुई धनराशि को यमराज के चरण कमलों में अर्पित करता हुआ चित्रगुप्त स्पष्ट करता है–''अरे दुष्ट यह भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग यहां के न्यायकर्ताओं के भांति जंगल में पकड़कर लाए हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। जहां से तू आया है और जो गति तेरी है सभी घूस लेने वालों की भी होगी।''

'अंधेर नगरी' प्रहसन में भी भारतेंदु ने सरकारी हाकिमों, अमलों, पुलिस, कचहरी में फैले रिश्वतखोरी पर प्रकाश डाला है। घासीराम कहता है–''चना हाकिम सब जो खाते सब पर दुना टिकस लगाते'' इससे स्पष्ट होता है कि अंग्रेज राज ही 'अंधेर नगरी' में तब्दील हो गया है, जहां का नौकरशाह जनता को दोनों हाथों से लूट रहे हैं और यह लूट भारतीय सामंतों के माध्यम से हो रही है। जाहिर है, भारतेंदु की विचारधारा अंग्रेजी राज विरोधी के साथ-साथ सामंत विरोधी भी हैं। इसका सर्वोत्कृष्ट प्रमाण यह कि वे सिर्फ राज्यव्यवस्था की ही कटु आलोचना नहीं करते बल्कि जातिवाद, ऊंचे तबकों की निष्क्रियता और काहिलों को भी आड़े हाथों लेते हुए उन पर सीधा प्रहार करते हैं–

''हिंदू चूरन उसका नाम,
विलायत पूरन इसका नाम।
चूरन जब से हिंद है आया,
इसका धन बल सभी घटाया।
चूरन चला दाल की मंडी,
इसको खाए सब रंडी।
चूरन अमले सब जो खावै,
दूनी रिश्वत तुरंत पचावै।''

इस प्रकार विवेकहीनता एवं अराजकतापूर्ण स्थिति में घूसखोरी तथा सिफारिशों के बिना काम न होना उस समय यह अराजकतापूर्ण स्थिति शासन व्यवस्था के उच्च पदाधिकारी वर्गों से लेकर निचले स्तर के कर्मचारियों तक फैली हुई थी। अपने 'विषस्य विषमौधम्' नाटक में भारतेंदु ने इस व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा है–भंडाचार्य–''...और निवाह भी इसी से है। हजार जान दे मरो।

शिफारिश नहीं तो कुछ भी नहीं। जान भी दे तो बादशाह ही न था। फिर भी भाई शिफारिशियों का कल्याण है। तो 'हमहुं कह अब ठाकुर सोहाती। हसब टठाब फुलाउब गालू' पर हमसे न होगा। भला कहां हिंदुस्तानी सिफारिश दरबार, कहां हमसे पंडित।''

भारत की राजनीतिक फूट पर व्यंग्य कसते हुए भारतेंदुजी अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक में 'भारत' पात्र द्वारा अपने देश की अतीत को दुत्कारते हुए कहते हैं—''अरे पामर जयचंद! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूब जाता था?... हाय! मैंने जाना था कि अंग्रेजों के हाथ में आकर हम अपने को दुःखी मानकर जन्म बितावेंगे पर दैव से वह भी न सहा गया। हाय! कोई बचाने वाला नहीं।'' इस वाक्य से यह भी संकेत होता है कि अंग्रेजों के शासन के कारण भारत का पतन अवश्यंभावी है।

'अंधेर नगरी' अंग्रेज राज्य का ही दूसरा नाम है। 'अंधेर नगरी' के अन्यायी राजा की स्थिति के द्वारा भारतेंदु ने तत्कालीन शासकों के राज्य में होने वाले अत्याचारों की ओर संकेत करते हैं। 'अंधेर नगरी' के राजा का वही अंत होता है जो होना चाहिए। इस प्रहसन में जनता को अपना तीव्र असंतोष प्रकट करने का मौका मिला। जिसे वह शत्रु समझती है, उसका अंत देखकर हर्ष हुआ। इस प्रहसन की सजीवता का कारण उसकी साम्राज्य विरोधी भावना है। नाटक लिखने और पढ़ने वाले यही कहते हैं अंधेर नगरी में रहने वालों का यही हाल होना चाहिए।

'अंधेर नगरी' में भ्रष्ट, चरित्रहीन मद्यप राजा के चरित्र चित्रण पर भारतेंदु ने तत्कालीन शासकों की चारित्रिक पतन पर भी व्यंग्य किया है, जो दिन-रात शराब और मस्ती में डूबे रहते थे जिनका देश के शासन व्यवस्था से कोई सरोकार न था। 'अंधेर नगरी' प्रहसन में चित्रित राजा राजसभा में भी शराब पीता है। मदिरापान के बाद कल्लू बनिए की कथा है, जिसकी दीवार गिरने से बकरी दबकर मरती है। राजा के चरित्र को उजागर करती कुछ पंक्तियां इस तरह हैं—

राजा : (नौकर से) कल्लू बनिया की दीवार भी अभी पकड़ लाओ।

मंत्री : महाराज दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा : अच्छा उसका भाई, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मंत्री : महाराज, दीवार ईंट चूने की होती है, उसका भाई-बेटा नहीं होता।

राजा : अच्छा कल्लू बनिए को पकड़ लाओ। (नौकर लोग छोड़कर कल्लू बनिए को पकड़ लाते हैं।)

राजाः क्यों वे बनिए, इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई।

मंत्री राजा को बताता है कि 'बरकी' नहीं बकरी दबकर मरी है। इस संशोधन की अवहेलना राजा इस तरह करता है, जैसे बरकी और बकरी को कोई अंतर नहीं। भारतेंदु ने मदिरापान की निकृष्टता की चरम परिणति राजा के इस कथन में दिखानी चाही है, जहां वह कहता है—''क्यों वे भिश्ती, गंगा-जमुना की किश्ती, इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।'' इन संवादों में भारतेंदु ने प्रत्यक्ष रूप से राजा के चारित्रिक पतन पर तो प्रकाश डाला है साथ ही परोक्ष रूप से राजा में भारतीय सामंतों में फैले भ्रष्टाचार और उसके पोषक तत्त्वों की धज्जियां उड़ाई हैं। उपर्युक्त संवादों में हास्य के साथ-साथ व्यंग्य, विद्रूप और कटाक्ष की भी मार्मिक व्यंजना हुई है।

ब्रिटिश और अफगानिस्तान के मध्य चल रहे युद्ध के दौरान ब्रिटिश राजसत्ता की हार पर व्यंग्य करते हुए भारतेंदु ने बादाम पिस्ते वाले मुगल के माध्यम से 'अंधेर नगरी' में कहा है—''अमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंग्रेज का भी दांत खट्टा हो गया। नाटक को रुपया खराब किया बेवकूफ बना।''

भारतेंदु ने अपने नाट्य साहित्य को राष्ट्रीय उन्मेष का माध्यम बनाकर जनजागरण एवं जनचेतना की भावना जगाने का महान कार्य किया। उन्होंने अपनी व्यंग्य शैली द्वारा राष्ट्रीय जागरण, जनजागृति एवं स्वातंत्र्य प्रेम का जो शंख फूंका उसकी गूंज आज भी सुनाई पड़ती है, जिसके फलस्वरूप साहित्यिक क्रांति के साथ समाजोद्धार की भावना भी जन-जन के हृदय में व्याप्त होने लगी।

'अंधेर नगरी' प्रहसन में निरंकुश, अन्यायी राजा के शासन प्रणाली के साथ-साथ उसकी अंधी न्याय प्रणाली पर भी प्रकाश डाला गया है। 'अंधेर नगरी' के राजा को जब बकरी को मारने वाला तथाकथित दोषी नहीं मिलता तो वह क्रमशः दीवार को, दीवार के मालिक को, कारीगर को, मजदूर को, मशक बनाने वाले को, कसाई को यहां तक कि दीवार को पकड़ लाने का आदेश देता है और जब न्यायोचित बात सिरे नहीं चढ़ती तो केवल इस तथ्य के आधार पर 'किसी न किसी को तो सजा देना जरूरी है' तो वह गोबरधन को ही फांसी का दंड देने का आदेश देता है।' ''बकरी मारने के अपराध में किसी-न-किसी को तो सजा जरूरी होनी है। नहीं तो न्याय न होगा। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस देश की न्याय व्यवस्था ऐसी है, वहां की शासन व्यवस्था कैसी होगी। देश की राजनीतिक स्थिति को दर्शाने में इससे अधिक सक्रिय व्यंग्य और कहीं दुर्लभ है।''

'अंधेर नगरी' प्रहसन में नाटककार ने देशी नरेश की अव्यवस्था पर प्रहार करते हुए समसामयिक अंग्रेजी राज प्रबंध पर व्यंग्य करते हुए कुंजड़िन द्वारा कहते हैं—''जैसे काजी वैसे पाजी, रैयत राजी टके सेर भाजी।'' इस नाटक के पांचवें अंक में भी नाटककार ने अंग्रेजों के राज प्रबंध और देशी शासकों पर प्रकाश डालते कहते हैं।

''अंधेर नगरी अनबूझ राजा।
टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।
नीच ऊंच सब एकहि ऐसे।
जैसे भडुए पंडित तैसे।।

××× ××× ×××

''धर्म अधर्म एक दरसाई।
राजा करै जो न्याव सदाई।।
गो दिज श्रुति आदर नंहि होई।
मानहुं नृपति विधर्मी कोई।।''

ऊंच नीच सब एकहिं सारा।
मानहुं ब्रह्म ज्ञान विस्तारा।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा।
टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।''

भारतेंदु अपने युग की शासन व्यवस्था को भली-भांति पहचान चुके थे। साथ ही यह भी देख चुके थे कि देश की जनता का यहां की शासन प्रणाली से कोई सरोकार नहीं है। 'जैसी राजा, वैसे ही प्रजा थे।' दोनों अपने में मस्त। प्रजा का सुख-दुःख अपने तक ही सीमित था। 'अंधेर नगरी' प्रहसन में भारतेंदु ने गोरबधनदास चरित्र के माध्यम से प्रजा के इस मनोभाव पर प्रकाश डाला है—''गुरुजी हमको नाहक यहां रहने को मना किया था। माना कि देश बहुत बुरा है, पर अपना क्या? हम किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चभाना है, मजे में आनंद से रामभजन करना।''

हम कह सकते हैं कि 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में मैथलीशरण गुप्त, प्रेमचंद आदि प्रगतिशील और जनवादी लेखक जिस साम्राज्वाद और सामंतवाद के विरोध को अपना प्राथमिक कर्त्तव्य व दायित्व समझकर अपनी कलम को हथियार के रूप में प्रयोग कर विद्रोह करते रहे उसकी बुनियाद भारतेंदु जैसी दूरदर्शी व्यक्तित्वों ने रखी थी। उनके नाटकों को भली-भांति अध्ययन करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि जब-जब उन्हें अवसर मिला उन्होंने अपनी नाट्य कृतियों में देश की दयनीय परिस्थिति और समस्याओं का नग्न चित्रण किया है। इन परिस्थितियों को और अधिक प्रभावात्मक बनाने के लिए उन्होंने व्यंग्य को केवल माध्यम के रूप में अपनाया है ताकि लोग परिस्थिति की भयानकता को समझे उसे बदलने की कोशिश करें। उन्होंने प्रहसनों एवं नाटकों के भीतर राजनीतिक व्यंग्य को इस प्रकार संजोया कि समाज के वास्तविक मार्गदर्शन में पूर्ण सहायक सिद्ध हुए। उनके राजनीतिक व्यंग्य बहुत ही मार्मिक और प्रभावात्मक हैं, जो आज भी समाज के भीतर राजनीतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

भारतेंदुकालीन समाज में बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह जैसी प्रथाओं के प्रचलन के साथ ही खान-पान, पर्दा प्रथा, ढोंग, व्यभिचार, अनैतिकता, छुआछूत, जमींदारी, सूदखोरी, पाश्चात्य फैशन का अंधानुकरण आदि सामाजिक व्याधियां अपना सिक्का जमा चुके थे। अंधविश्वास, राजाओं के अन्याय, अत्याचार, पुरोहितों के कुकर्म आदि के कारण समाज दिन-ब-दिन पतन की ओर धंसता चला जा रहा था। समाज के सुधारक स्वयं भी इस अनैतिकता के फंदे में फंसे हुए थे। यों कहें तो भारतेंदुयुगीन समाज प्रत्येक दृष्टि से पथभ्रष्ट हो चुका था। समाज में एक नए मध्यवर्ग का उदय हो रहा था। धर्म और विदेशी राजनीति की आड़ में समाज में अनेक व्यभिचार फैल रहे थे। ऐसी अंधकारभरी परिस्थिति में भारतेंदु का उदय हुआ। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज की विसंगतिपूर्ण स्थिति सुधारने, सामाजिक चेतना और समाज को जीवित रखने के उद्देश्य से व्यंग्य को माध्यम के रूप में अपनाया। समाज में हर तरफ फैले शोषण पर बेधड़क प्रहार करना उनका लक्ष्य मात्र था।

भारतेंदु ने साहित्य को हमेशा सामाजिक जीवन की कसौटी पर रखकर देखा। उनके लिए साहित्य मनोरंजन का माध्यम मात्र न था बल्कि साधारण जनता को चेतना संपन्न बनाने तथा उन्हें जागरूक करने का आवश्यक हथियार था। उनका मानना था कि ''साहित्य जनता की सेवा के लिए है तथा आजादी और गुलामी के बीच न साहित्य तटस्थ रह सकता है, न साहित्यकार। आज हमें न सिर्फ नई चेतना के बाधक साहित्य की रचना करनी है, बल्कि उस पर अमल भी करना है।'' भारतेंदु ने इन पंक्तियों से साक्षात् कर लेने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु अपने समय के कितने जागरूक साहित्यकर्मी थे। वह साहित्य की सामाजिक भूमिका को कितना आवश्यक मानते थे। लेखक और पाठक के बीच विचारों की एकरूपता रचना के सामाजिक सरोकार को प्रामाणिक बनाता है और युंगातकारी आंदोलन खड़ा करता है। भारतेंदु के शब्द और कर्म में एकरूपता थी। वे पाठक के दैनंदिन जीवन के अच्छे जानकार थे। उनके सुख-दुःख का अहसास उन्हें था। इसी बल पर भारतेंदु ने सामाजिक सुधार के उद्देश्य से तदीयसमाज, यंगमेंस एसोसिएसन, काशी सार्वजनिक सभा, वैश्य हितैषी सभा, अदालत में हिंदी जारी करने की सभा, बनारस इंस्टीट्यूट, कारमाइकेल लाइब्रेरी, बाल सरस्वती भवन आदि संस्थाओं की स्थापना की। इनके जरिए भारतेंदु ने सामाजिक जागरण का बिगुल बजाया। जाति-प्रथा, धार्मिक अंधविश्वासों जैसी अनेक रूढ़ियों के प्रति उन्होंन भारतीय जनता को सचेत किया। उन्होंने यह महसूस किया था कि लेखकों को रचना कर्म के साथ सामाजिक कार्यों में भी सक्रिय भागीदारी लेनी चाहिए क्योंकि तभी भारतीय जनता की वास्तविक हालात में सुधार आएगा तथा राष्ट्रीय चेतना का व्यापक प्रचार-प्रसार होगा। भारतेंदु जितना अपने रचना कर्म के प्रति सक्रिय, प्रतिबद्ध थे उतना ही सामाजिक कार्यों में भी सक्रिय अंशग्रहण करते थे। सन् 1872 में खानदेश के बाढ़ पीड़ितों के लिए घूम-घूमकर चंदा इकट्ठा करने का काम तथा 'तदीय समाज' जैसी धार्मिक संस्थओं के स्वदेशी आंदोलन से जोड़ देने काम भारतेंदु जैसे सामाजिक कर्म

के प्रतिबद्ध रचनाकार से ही संभव था।

भारतेंदु ने सामाजिक रूढ़ियों तथा विसंगतियों को अभिव्यक्त करने वाले नाटकों का मंचन करके दर्शकों को उनके ठोस यथार्थवादी जीवन से परिचित कराने के साथ उनमें इस तरह की रुचि और आस्था पैदा की, जिससे लोग नाट्यमंडली की ओर आकर्षित हों। भारतेंदु के कुछ प्रारंभिक नाटकों का अध्ययन करके यह मान लेना कि उनके नाटक रीतिकालीन श्रृंगारिक नाटकों की मानसिकता से मुक्त नहीं अनुचित है। यह सही है कि उनके प्रारंभिक कुछ नाटकों में रीतिकालीन श्रृंगारिक तत्व मौजूद हैं लेकिन इसके बावजूद सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना के सकारात्मक तत्त्वों का परिणाम उनके नाटकों में पर्याप्त परिमाण में मिलते हैं। भारतेंदु एक सजग कलाकार के हैसियत से यह अच्छी तरह जानते थे कि केवल यथार्थ और नैतिकता का वर्णन करके पारसी रंगमंच के प्रभाव से दर्शकों को अचानक दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्होंने हास्य और व्यंग्य के हल्के लेपन, यथार्थ और नैतिकता से साक्षात् कराके भारतीय जनता को राष्ट्रीय चेतना से संपन्न किया।

भारतेंदु देश के खासकर हिंदी प्रदेश के सामाजिक पिछड़ेपन पर बहुत चिंतित थे। उन्होंने पश्चिमी सभ्यता के साथ-साथ परंपरावाद का भी विरोध किया था। वह हिंदी प्रदेश के लोगों को आपसी बैर और रूढ़िवादिता के चंगुल से मुक्त रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने एकता और भाईचारे के साथ-साथ लोगों के शिक्षित होने पर बहुत जोर दिया। उनका सामाजिक सरोकार विस्तृत था। उनका ध्यान जितना नए साहित्यिक रूपों और विधाओं पर था, उतना लोककथाओं और लोकतत्वों पर भी था। जितना शिक्षित वर्ग पर था, किसान वर्ग पर भी था। वह साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध मानते थे इसलिए उनके साहित्य में जनता के सामंतवाद-साम्राज्यवादी संघर्ष का चित्रण बहुत स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है।

भारतेंदु द्वारा रचित नाटकों जैसे 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' में सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य के माध्यम से प्रकाश डाला गया है।

'भारत दुर्दशा' नाटक में डिसलायल्टी (राजद्रोह), आशा, निर्लज्जता, सत्यानाश फौजदार, भारत आदि का मानवीकरण किया गया है। इसमें भारत फटे चीथड़े लपेटे आता है, जिसका तात्पर्य है कि सारा देश भूख और अर्ध नग्न हो गया है। भारत दुव आधा क्रिस्तानी और आधा मुसलमानी वेश धारण किए हुए आता है, जो यह संकेत करता है कि भारत देश मुसलमानी और क्रिस्तानी राज्यों के कारण अधोगति को प्राप्त हुआ है। निर्लज्जता खुले अंगों के रूप में आती है, जिसका अभिप्राय है कि पराधीनता के कारण देशवासियों के जीवन से लोकलाज की भावना तिरोहित हो गई है। इस नाटक में भारत दुर्देव अपनी सेना-रोग, आलस्य, मदिरा, अंधकार भारत पर आक्रमण करने के लिए भेजता है। इससे यह संकेत मिलता है कि इन सारी विध्वंसकारी सेनाओं के कारण भारत की आज यह दुर्दशा है।

भारतेंदु ने देश में फैले धार्मिक अंधविश्वासों, छुआछूत, दुर्भिक्ष, पारस्परिक फूट, कलह, अविद्या, धनहीनता, रोग, कर की समस्या, निज भाषा के प्रति उदासीनता, अंध परंपरा आदि का अत्यंत क्षोभपूर्ण वर्णन किया है। अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' में भारत की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए भारतेंदु ने कहा है—

''रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।। ध्रुव।।''

××× ××× ×××

सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

××× ××× ×××

तह रही मूढ़ता कलह अविद्या राती।
अब जहं देखहु तहं दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

'भारत दुर्दशा' नाटक के द्वितीय अंक में भारत जो समग्र भारतीय समाज का प्रतीक है, को हम भारत के दुर्दशा पर पश्चाताप करते हुए देखते हैं—''अरे यहां की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़ चरित्र, सत्य सब कहां गए।''

भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' में सत्यानाश फौजदार चरित्र के माध्यम से देश की हीनावस्था का चित्रण इस व्यंग्य भरे गीत में की है—

××× ××× ×××

''वह हमने फैलाये धर्म।
बढ़ाया छुआछूत का कर्म
होके जयचंद हमने एक बार।
खोले ही दिया हिंद का द्वार।
हालांक चंगेजों तैमूर।
हमारे अदना अदना सूर।
दुरानी अहमद नादिरशाह।
फौज के मेरे तुच्छ सिपाह।
हैं हममें तीनों कल बल छ।
इसी से कुछ नहिं सकती चल।
पिलौगें हम खूब शराब।
करेंगे सबको आज खराब।।''

समाज में फैले पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, रिश्वतखोरी आदि दुर्नीति पर प्रकाश डालने के लिए भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' नाटक में फौजदार चरित्र के माध्यम से व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—''मैंने बड़े बांके वीर भेजे। अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितर-बितर कर दी। अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए। फैशन ने तो बिल और टोटले के इतने गोले मारे कि बंटाधार कर लिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब तक पीछा करके

खूब भगाया। तुहफे, घूस और चंदे के रोसे बम के गोल चलाए कि 'बम बोल गई बाबा की चारों दिसा' घूमम निकल पड़ी। मोटा भाई बना बनाकर मूंड लिया। एक तो खुद ही यह सब पंडिया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धांय धांय गिनी गई वर्णमाला कंठ कराई...।''

भारतेंदुकालीन समाज में आपसी द्वेष, कलह दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। भारतेंदु ने भारत के कलंकित इतिहास पर क्षोभ प्रकट करते हुए व्यंग्य के माध्यम से समाज के पथभ्रष्ट लोगों को उचित मार्गप्रदर्शन करने की कोशिश की है। उन्होंने 'भारत दुर्दशा' नाटक में पृथ्वीराज और जयचंद की पारस्परिक फूट के दुष्परिणाम दिखाकर पाठक के हृदय में नई चेतना एवं जनजागरण फैलाने की कोशिश की है—''अरे पामर जयचंद तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूब जाता था।''

समाज में फैले आपसी भेदभाव, स्वार्थ भावना आदि पर प्रकाश डालते हुए 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेंदु ने फौजदार के चरित्र के माध्यम से व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—'फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निबर्लता इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं के फौज में हिला मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर गरूड़ हो गए। फिर अंत में भिन्नता गई। इसने ऐसा सबको काई की तहर फाड़ा कि भाषा धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक एक योजन पर अलग-अलग कर दिया। अब आवैं, बचा ऐक्य देखें आकर ही क्या करते हैं।''

देश में एकता की कमी और आपसी कलह पर दुःख प्रकट करते हुए 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेंदु ने योगी के माध्यम से कहा है—

''लरि वैदिक जेन डुबाई पुस्तक सारी
करि कलह बुनाई जबनसैन पुनि भारी
तिन नासी बुधिबल विद्या धन बहुबारी
छाई अब आलस-कुमति-कलह अँधियारी
मरा अंध पंगु सब दीन हीन बिखलाई
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।''

भारतेंदु समाज में जनता हैजा, डेंगू, महामारी, मलेरिया आदि कालग्रासी रोगों से आक्रांत होते थे लेकिन या तो गरीबी के कारण या अशिक्षा और लापरवाही के कारण उनका इलाज सही ढंग से नहीं हो पाता था और उन्हें अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ता था। भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' नाटक में 'रोग' चरित्र के माध्यम से इस दयनीय अवस्था पर प्रकाश डालते हुए व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—''मेरा प्रभाव जगत विदित है। कुपथ्य का मित्र और पथ्य का शत्रु में ही हूं। त्रैलोक्य में ऐसा कौन है, जिस पर मेरा प्रभुत्व नहीं। नजर, श्राप, भूत, प्रेत, टोना, टनमना, देवी देवता सब मेरे ही नामांतर हैं। मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने, पंडित, सिद्ध लोगों को गिनत हैं। (आतंक से)'' भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे। ह हा! चुंगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है। यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम भी 'जस-जस सुरसा वदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।''

भारतेंदु युग के लोगों में अनेक प्रकार का अंधविश्वास प्रचलित था। लोग चेचक की बिमारी को माता का प्रकोप समझकर पूजते थे, जिससे लोगों की अकाल मृत्यु होती थी। उस समय चिकित्सक भी सेवा को ही अपना धर्म न मानकर अपने कर्त्तव्य को जीविका निर्वाह का एक स्वार्थपूर्ण साधन मात्र मानते थे। भारतेंदु ने भारत दुर्दशा नाटक में राग चरित्र के माध्यम से इस पर प्रकाश डालते हुए व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—''महाराज! भारत तो अब मेरे प्रवेश मात्र से मर जाएगा। घेरने का कौन काम है? धन्वंतरि और काशीराज दिवोदास का अब समय नहीं है और न सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक ही है। वैदकी केवल जीविका हेतु बची है। काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों की प्रकृति में भी भेद पड़ गया। अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेंगे, जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा। तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे। हम भेजेंगे विस्फोटक हैजा, डेंगू, भला इनको हिंदू लोग क्या रोकेंगे? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानते तो हई नहीं, फिर छुट्टी हुई। वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जाएंगे और इन्हीं को देवता करके पूजेंगे। यहां तक कि मरे शत्रु डॉक्टर और विद्वान इसी विस्फोटक के नाश का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहेंगे तो भी ये सब उसको शीतला के डर से न मानेंगे और उपाय आहत अपने हाथ प्यारे बच्चों की जान लेंगे।''

लोगों का आलस भारत की हीनावस्था का मूल कारण है। अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेंदु ने प्रतीक मात्र आलस्य चरित्र के माध्यम से इस पर प्रकाश डालते हुए व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—''अजी तुम बड़े आलसी हो, तुम्हारी छाती पर आम पड़ा है सिर्फ हाथ मे उठाकर मुंह में डालने में आलस है। ... सच है किस जिंदगी के वास्ते तकलीफ उठाना, मजे में हालमस्त पड़े रहना।'' सुख केवल हम में है। आलसी पड़े कुंए में वहीं चैन है।

इसी अंक में भारतेंदु ने आलस्य के माध्यम से गजल के द्वारा भारतवासियों की कर्मण्यता की नीति पर व्यंग्य भरे स्वर में कहा है—

''दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठ के कहीं जाना नहीं अच्छा।।
बिस्तर पर मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।

××× ××× ×××

धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिंहा दे।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा।।
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा।।
फाको से मरिए पर न कोई कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छा जमाना नहीं अच्छा।।

सिजदे से दर बिहिश्त मिले दूर कीजिएं।
दोजख ही सही सिर झुकाना नहीं अच्छा।।
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या।।
ए मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा।।''

इतना ही नहीं आलस का यहां तक कहना है—''कोऊ नृप होड हमें का हानी, चेरि छांडी नहीं हाउब रानी तथा 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम, दास मलूका कह गए, सबके दात राम।'... भई जगत में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सबसे अच्छी। घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना और न कहीं आना सब खाना, हगना, मूतना, सोना, बात बताना, तान मारना और मस्त रहना। अमीर के सर पर और क्या सुरखाब का पर होता है। जो कोई काम न करे वहीं अमीर।''

भारतेंदु ने इस व्यंग्य भरे वाक्यों में यह दिखाने की कोशिश की है कि इसी आलसी प्रवृत्तियों के कारण भारतवासियों को पराधीनता की जिंदगी बितानी पड़ी।

''निरुद्यमता और आलस का सजीव चित्रण भारतेंदु के नाटक 'भारत जननी' में भी देखने को मिलता है। जब लक्ष्मी भारतवासियों को सोता हुआ छोड़कर समुद्र पार चली जाती है तब भारत जननी अपने पुत्रों को जगाने का प्रयत्न करती है। वह वह एक को उठाती है तो दूसरा सो जाता है। दूसरे को उठाती है तो पहला सो जाता है। इस प्रकार भारत मामा सबको जगाती है। किंतु सबके सब पूर्ववत् सो जाते हैं।'' इस प्रवृत्ति के कारण भारत पराधीनता की बेड़ियों में दो सौ साल तक जकड़ा रहा। यहां की संपत्ति विदेश चली गई और हमारा देश दिन-पर-दिन निर्धन होता गया।

भारतेंदु युग में लोग मदिरा के सेवन में भी व्यस्त थे। इसका सेवन उच्च रईस वर्ग के लोग करते थे। साथ ही समाज के सभी वर्ग के लोग इसके प्रभाव से अछूते न थे। लोग इसके सेवन को बुरा न समझते थे और वेद, पुराण आदि की दुहाई देकर इस दुर्व्यसन को सही सिद्ध करने में व्यस्त थे। भारतेंदु अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' में प्रतीक पात्र मदिरा के माध्यम से व्यंग्य भरे वाक्यों में इसका चित्रण करते हुए कहते हैं—

''दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम।।
जाति सुरा विद्या सुरा, बिन मद रहै न कोय।
सुधरी आजादी सुरा, जगत सुरामय होय।।
ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य अरु, रौयद सेख पठान।
दै बताई मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान।।

××× ××× ×××

मद्य पी विधि जग को करत,
पालत हरि करिपान।
मद्यहि पी के नाश सब,
करत शंभु भगवान।।
विष्णु बारूणी, पोर्ट पुरूषोत्तम, मद्य मुरारि।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिजा, ब्रांडी ब्रह्म विंचारि।।
मेरी तो धन बुद्धि बल,
कुल लज्जा पति गेह।
माय बाप सुत धर्म सब
मदिरा ही न संदेह।।''

××× ××× ×××

इस व्यंग्य भरे गीत में भारतेंदु मदिरा के व्यापक प्रभाव को व्यक्त किया है। साथ ही उनका यह भी कहना है कि मदिरापान करने वाले मदिरा को ही भगवान के प्रसाद जैसा मानते हैं। मदिरा ही उनका माता-पिता, भाई-बहन, बंधु सब कुछ है। मदिरा ही उनके सुख-दुःख का चिर सहचर है।''

भारतेंदु युग में लोग पाश्चात्य सभ्यता की ओर उन्मुख हो रहे थे। भौतिक विलासिता की खोज में लोग पैसे को ही सब कुछ मानते थे। इस मूल्यहीनता के दौर में अच्छाइयां और बुराइयां हावी होती जा रही थीं। सच्चाई अपना मूल्य खो चुकी थी। चारो ओर झूठ का बोलबाला था। भारतेंदु ने अपने युग की इन सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश करते हुए 'अंधेर नगरी' प्रहसन में जात वाला ब्राह्मण प्रतीक पात्र के जरिए व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—''एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाए और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचैं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं। टके वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद, धर्म्म, कुल-मरजादा, सच्चाई-बड़ाई सब टके सेर।''

थोड़े में ही संतुष्टि भारत की हीनावस्था का भी कारण है। यह लोगों में आलसी प्रवृत्ति को भी बढ़ावा देती है। भारतेंदु ने इस संतोष वृत्ति पर तीव्र व्यंग्य किया है। भारत दुर्दशा के पूछने पर सत्यानाश फौजदार संतोष वृत्ति पर विचार व्यक्त करते हुए कहता है—''महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया। राजा-प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। राजा न रहा पेंशन ही सही, रोजगार न रहा सूद ही सही, वह भी नहीं तो घर ही का सही। 'संतोष पर सुख' रोटी ही को सराह-सराह खाते हैं। उद्यम की ओर देखते नहीं। निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मैडेल जरूर मिले। व्यापार को इन्होंने मारा।''

भारतेंदुकालीन समाज में वेश्यावृत्ति का प्रचलन भी चारों ओर दिखाई दे रहा था। लोग अभाव और असुविधाओं में दिन बिताने के बावजूद वेश्याओं के ऊपर धन लुटाते थे। भले ही नीच से नीच साधन क्यों न अपनाना पड़े लेकिन अपने एय्याशी में कोई कमी नहीं करते थे। भारतेंदु ने अपने नाटक 'प्रेमजोगिनी' के गीत 'देखी तुम्हारी काशी' में काशी के निवासियों की वेश्यावृत्ति पर कट्टर व्यंग्य किया है।

''घर की जोरू लड़के भूखे दास और दासी।
दाल की मंडी रंडी पूजे मानो इनका मासी।।''

'अंधेर नगरी' प्रहसन में भी पाचक बाला चरित्र के माध्यम से नाटककार ने इन वेश्यावृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है–

''चूरन चला दाल की मंडी।
इसको खाएंगी सब रंडी।।''

इस प्रहसन में मछलीवाली चरित्र के माध्यम से व्यंग्य भरे कटाक्ष शब्दों में इन वेश्यावृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है–

''लाख टका कै वाला जौवन,
ग्राहक सब ललचाय।
नैन-मछरिया रूप जाल में,
देखत ही फंसि जाय।।''

'भारत जननी' नाटक में लक्ष्मी ने भारतवासियों के इन चारित्रिक पतन पर दुःख भरे स्वप्न में कहा है–

''लखौ मत्त भए सै सोअत् ह्वै
अचेत तजि सब मति।
घन गरजै जल बरसै इन पर
बिपत्ति पैर किन आई।
ये बजमारे तनिक न चौंकत
ऐसी जड़ता छाई।।
मयो घोर अंधियार चहुं दिसि
ता महं बदन छिपाए।
निरलज परे खोइ आपुनपौ
जगतहूं न जगाए।।
कहा करैं इत रहि कै अब
जिय तासों यहै बिचारा।
छोड़ि मूढ़ इन कहे अचेत हम
जात लधि के पारा।।''

भारतेंदु युग में नगरों की स्थिति भी अत्यंत खराब थी। इस काल में अन्य नगरों के भांति काशी की दशा भी अत्यंत शोचनीय थी। 'प्रेम जोगिनी' नाटक में काशी की पतनोन्मुख दशा पर प्रकाश डालते हुए व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है–

''आधी कासी भाट भंडेरिया
वाम्हन और संन्यासी।
आधी कासी रंडी मुंडी
रांड खानगी खासी।।
लोग निकम्मे भंग गंजड़
लुच्चे बे-बिसवासी।
महा आलसी झूठे शहर्दे
बे-फिकरे बदमासी।।
आप काम कुछ भी करैं नहिं
कौरे रहैं उपासी।
और करे तो हसैं बनावैं
उसको सत्यानाशी।।

××× ××× ×××

मैली गली भारी कतवारन
सड़ी चमारिन पासी।
नीचे तल से बदबू उबलै
मनो नरक चौरासी।।
कुत्ते मूंकत काटन दौड़ें
सड़क सांड सौ नासी।
दौड़े बंदर बने मुछंदर
कूदैं चढ़े अगासी।।

××× ××× ×××

देखी तुमरी कासी भैया,
देखी तुमरी कासी।।''

भारतेंदुजी काशी की सामाजिक दुरावस्था पर प्रकाश डालते हुए भविष्य में इसके और भी हीनावस्था पर क्षोभ प्रकट किया है। अपने क्षोभपूर्ण उद्‌गारों को उन्होंने 'प्रेमजोगिनी' नाटक में सुधाकर के माध्यम से व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है–''हा! क्या इस नगर की यही दशा रहेगी? जहां के लोग ऐसे मूर्ख हैं, वहां आगे किस बात की वृद्धि की संभावना करें। केवल इस मूर्खता छोड़ इन्हें कुछ आता ही नहीं। निष्कारण किसी को बुरा भला कहना। बोली ही बोलने में इनका परम-पुरुषार्थ। अनाब-शनाब जो मुंह में आया बक उठे, न पढ़ना न लिखना। हाय! भगवान इसका कब उद्धार करेगा!

भारत की पतीतावस्था पर क्षोभ प्रकट करते हुए भारतेंदु ने 'नीलदेवी''' नाटक में गीत के माध्यम से कहा है–

''सब भांति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहूं वीर वर मारते की सब आसा।।

××× ××× ×××

वीरता एकता ममता दूर सिधरि है।
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरि है।

××× ××× ×××

अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा।।''

भारतेंदुकाल में नारियों की दशा भी अत्यंत दयनीय थी। उन्हें अशिक्षा के अंधकार के कारण घर के चारदीवारी के भीतर ही दिन बिताना पड़ता था। देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। लेकिन जिस देश में पुरुषों की स्थिति अत्यंत लाचार हो, जो आलसी और निरुद्यमी हो, उस देश की नारी से क्या अपेक्षा की जा सकती है। भारतेंदु ने अपने नाटक 'भारत जननी' में इस पर प्रकाश डालते हुए कहा है–''कोई काल ऐसा था कि इस भूमि की स्त्रियां भी विद्या, संभ्रमा, शौर्य, औदार्य्य में जगत विख्यात थीं, कहां के पुरुष अब उद्यमशून्य हो केवल सूद या नौकर पर संतोष कर बैठे हैं। उद्योग किस चिड़िया का नाम है इसको मानो स्वप्न में भी नहीं जानते।''

भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों का अध्ययन के बाद हम यह कह सकते हैं कि उनके सभी नाटकों में विशेषतः मूल नाट्य कृतियों में सामाजिक व्यंग्य बिखरे पड़े हैं। अपने युग की सामाजिक परिस्थिति का व्यंग्य के माध्यम से चित्रण द्वारा भारतेंदु ने भारत की हीनावस्था को सुधारने का अति सुंदर प्रयत्न किया है।

उनके द्वारा चित्रित सामाजिक व्यंग्य प्रायः पाठक के हृदय पर सीधा एवं अति प्रखर प्रहार करने में सफल हुए हैं। उनके नाटकों का अध्ययन करने के बाद यह निःसंदेह रूप में कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने सामाजिक व्यंग्यों का प्रयोग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में अपनाकर भटके हुए, पथभ्रष्ट समाज को नई दिशा, एक नई चेतना और नए जागरण पैदा करने की कोशिश की। जिसने आगे चलकर भारतीय समाज को अपने अधिकार और अपने दायित्व के प्रति सचेत किया।

भारतेंदु युग की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के समान उसकी आर्थिक परिस्थिति भी अत्यंत दयनीय थी। अंग्रेजों का भारत आगमन व्यापारिक उद्देश्य से हुआ था। उसका उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ उठाना था। उनका प्रत्येक कार्य इस उद्देश्य की सिद्धि हेतु था। अंग्रेजों ने इस प्रकार की नीति का अवलंबन किया, जिससे भारत से कच्चा माल निर्यात होकर इंग्लैंड जाता था और वहां से बने माल की बिक्री भारत में होती थी। मशीनों के प्रचलन के कारण भारत का हस्त उद्योग मिट रहा था और कारीगर लाचार होकर कृषि की ओर झुक रहे थे। कृषकों की हालात भी अत्यंत शोचनीय थी। एक ओर लगान चुकाने का बोझ और दूसरी ओर प्राकृतिक अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, अकाल आदि का दुष्प्रभाव साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य की सीमावर्ती राज्यों के खर्चे का भार भी किसानों का उठाना पड़ता था। कपड़ों के व्यवसाय करने वाले जुलाहे की हालात भी अत्यंत शोचनीय थी। भारतीय बाजार में विदेशी वस्तुओं पर अत्याधिक कर तथा चुंगी लगा देने से भारत से निर्यात व्यवस्था समाप्त होने के साथ ही अपने देश में भी भारतीय जुलाहों का कपड़ा खाना बंद हो गया। ''मारीगर-पेशा लोगों के खत्म हो जाने की वजह से बहुत बड़े पैमाने पर बेकारी फैली। ये करोड़ों आदमी, जो अब तरह-तरह के समान तैयार करने के काम में अलग-अलग धंधों में लगे हुए थे, अब क्या करते? वे कहां जाते? अब उनका पुराना पेशा खुला हुआ नहीं था और नए पेशे के लिए रास्ता रोका हुआ था। हां वे मर सकते थे। असहाय हालत से बचने का यह रास्ता तो हमेशा खुला होता है और वे करोड़ों के तादात में मरे भी।'' भारत में स्थापित ईस्ट इंडिया कंपनी भारत के आर्थिक शोषण का मुख्य केंद्र था और जब 1857 के विद्रोह के बाद कंपनी के शासन की बागडोर अंग्रेज सरकार के हाथों चली गई, तब छोटे-मोटे सुधारों के अतिरिक्त अंग्रेजों के शोषण नीति में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं दिया।

भारतेंदु अपने युग की आर्थिक विसंगतियों और अंग्रेजों की शोषण नीति को अच्छी तरह समझते थे। अतः उन्होंने अपने साहित्य की विविध विधाओं जैसे नाटक, काव्य, निबंध आदि में आर्थिक दशा सुधारने तथा उसे और भी प्रभावात्मक ढंग से पाठकों तब पहुंचाने के लिए व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है। लोग देश की आर्थिक स्थिति को समझे और उसे सुधारने की कोशिश करें, यही उनका मूल उद्देश्य था।

भारतेंदु काल में पहले के अपेक्षा भारत से अधिक धन, अनाज, कच्चा माल इंग्लैंड भेजा जाता था, जिससे भारत का आर्थिक कोष दिन-प्रतिदिन खाली होता जा रहा था। भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर अत्यंत दुःख प्रकट करते हुए भारतेंदु का कहना है—

''अंग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यह अति ख्वारी।
ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।
सबके ऊपर टिकस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

भारतेंदु को जब ये ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों की सुधार भावना के पीछे उनकी अपनी स्वार्थ भावना है, तब उन्होंने वास्तविकता के प्रति जनता का आकर्षित करना चाहा। अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारत दुर्देव प्रतीक पात्र के जरिए ब्रिटिश साम्राज्य की शोषण नीति का व्यंग्यात्मक चित्रण करते हुए कहा है—

''कौड़ी कौड़ी को करूं
मैं सबको मुहताज।
भूखै प्रान निकालूं इनका,
तो मैं सच्चा राजा मुझे...

××× ××× ×××

भरी बुलाऊं देस उजाडूं, महंगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊं धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी,
मुझे इक राक्षस माना जी।''

भारत दुर्देव की इस वाणी में तत्कालीन भारत की आर्थिक दशा का अत्यंत क्षोभपूर्ण चित्रण हुआ है। अकाल, महंगाई और कर के बोझ ने तत्कालीन जनता विशेषकर कृषकों की कमर तोड़ दी थी।

कृषकों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए 'भारत दुर्दशा' नाटक में सत्यानाश फौजदार के माध्यम से भारतेंदु ने अत्यंत क्षोभपूर्ण तथा व्यंग्य भरे शब्दों में कहा है—''उसका बल तो आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया। लाही, कीड़े, टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की। बीच में नील ने भी नील बनकर अच्छा लंका दहन किया।'' इस संवाद के माध्यम से भारतेंदु ने अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि के द्वारा भारत की आर्थिक स्थिति को कमजोर बनाए जाने वाले कारणों पर प्रकाश डाला है।

भारतेंदु युग में लोग अपनी निर्धनता का सारा दोष भाग्य को देते थे। अपनी निर्धनता के कारण उन्हें या तो भिक्षावृत्ति का अवलंबन करना पड़ता था या अपनी लाचारी के कारण

आत्महत्या करनी पड़ती थी। भारतेंदु जनता की इस लाचारी को अच्छी तरह हृदयंगम करने के साथ ही उनकी कायरता पर खिल्ली उड़ाई है। 'भारत दुर्दशा' नाटक में निर्लजता प्रतीक पात्र के जरिए उन्होंने व्यंग्य भरे स्वर में कहा है—मेरे आहत तुमको अपने प्राण की फिक्र। छिः छिः! जीओगे तो भीख मांग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। का हुआ जो धन-मान सब गया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र को अपने देश के विगत ऐश्वर्य पर जितना गर्व था, उसकी वर्तमान अधोगति पर उतना ही दर्द और ग्लानि भी। समाज और राजनीति तीनों क्षेत्रों में राष्ट्र का पतन चरम सीमा पर पहुंचा था। धर्म और समाज की जो अराजकतापूर्ण स्थिति मुसलमानों के आने के पूर्व थी, जिसके कारण देश मुसलमान शासकों से पराजित हुआ था, उसके निवारण का अंशतः प्रयत्न भक्ति आंदोलन द्वारा हुआ था, पर कालांतर में भक्ति आंदोलन की वह शक्ति भी क्षीण हो गई थी और उसका स्वरूप पाखंड से आच्छन्न हो गया था। भक्ति के केंद्र जो जातीय जीवन में शक्ति संचार के लिए निर्मित हुए थे, अब दुराचार और अनाचार के अड्डे बन गए थे। अंग्रेजों की राजनीति ने इन समस्याओं को और जटिल बना दिया था और देश में भयंकर दरिद्रता, भुखमरी, महामारी, टैक्स का बोझ, आर्थिक शोषण आदि अनेक भयंकर व्याधियां फैलाए थे। किंकर्तव्यविमूढ़, अनेक यंत्रणाओं से छटपटाते हुए मृतप्रायः देश की दुर्दशा देखकर भारतेंदु का हृदय गहरी वेदना से भर गया था। देश की यह दुर्दशा ही भारतेंदु के साहित्य की प्रेरक शक्ति है। देश के आत्मसम्मान को जगाने के उद्देश्य से उन्होंने प्राचीन गौरव का गान और उच्चादर्शों का अनुकीर्तन किया पर देश की दुर्दशा के सामने उनका यह प्रयास आटे में नमक के बराबर था। इस कारण भारतेंदु ने देश के अतीत गान के साथ-साथ वर्तमान हीनावस्था का भी चित्रण किया। जनता पर प्रभाव डालने के उद्देश्य से उन्होंने वर्तमान राजनीतिक दुरावस्था, सामाजिक अधोगति, धार्मिक अधःपतन का जो चित्रण व्यंग्य शैली में किया है, वह युगों-युगों तक जनता का प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

138, उदय पार्क, नई दिल्ली- 110049

आधुनिक हिंदी भाषा व साहित्य के प्रथम पुरुष

सुभाष सेतिया

आज हिंदी भाषा न केवल भारत की राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में निरंतर लोकप्रियता तथा राष्ट्रीय स्वीकार्यता की सीढ़ियां चढ़ रही है बल्कि निकट भविष्य में विष्व भाषा बनने का स्वप्न देखने लगी है। हिंदी इस समय जिस बुलंदी को छू रही है, उसके पीछे केवल आज की पीढ़ी का ही नहीं बल्कि अतीत में हिंदी को दृढ़ता व शक्ति प्रदान करने वाले अनेक विद्वानों, लेखकों तथा पत्रकारों के तप और त्याग का भी हाथ है। ऐसे सभी हिंदी सेवियों में उन्नीसवीं सदी के मध्य में जन्मे साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने न केवल हिंदी गद्य का सूत्रपात किया बल्कि आधुनिक साहित्य की सभी विधाओं में कलम चला कर हिंदी को अपने पांव पर खड़ा होने योग्य बनाया। भारतेंदु जैसे युग प्रवर्तक, व्यक्ति रोज-रोज जन्म नहीं लेते। साहित्य जगत में उनका पदार्पण उस समय हुआ जब हिंदी भाषा और साहित्य घुटने के बल चलने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने कुशल नेता की भांति केवल 34 वर्ष के अल्पकालिक जीवन में हिंदी के लड़खड़ाते कदमों को अपने मौलिक चिंतन तथा सृजनात्मक प्रतिभा का संबल देने के साथ-साथ उसे अंगेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के समक्ष सिर ऊंचा कर खड़ा होने का सामर्थ्य और आत्मविश्वास प्रदान किया। भारतेंदुजी ने अपने समय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर छाप छोड़ने के अलावा कविता, नाटक, कहानी, निबंध, यात्रा वृतांत, संस्कृति, पुरातत्व जैसे विषयों पर कलम चलाई और अनेक पत्रिकाओं का संपादन किया। हिंदी भाषा व साहित्य में उनके इस व्यापक तथा प्रेरक हस्तक्षेप के कारण ही अनेक साहित्यकारों ने उनके काल को भारतेंदु युग का नाम दिया है।

आधुनिक हिंदी भाषा एवं साहित्य के इस युग पुरोधा का जन्म 9 सितंबर, 1850 को उस समय की सांस्कृतिक एवं कला नगरी वाराणसी में हुआ। भारतेंदुजी का जन्म तो संपन्न वैश्य परिवार में हुआ किंतु बहुत छोटी आयु में ही माता-पिता का साया उनके सिर से उठ गया। 5 वर्ष की आयु में माता और 9 वर्ष की अवस्था में पिता चल बसे। हरिश्चंद्र की मां की मृत्यु के उपरांत उनके पिता बाबू गोपालराय ने दूसरा विवाह किया किंतु अपनी विमाता से हरिश्चंद्र के संबंध ठीक नहीं बन पाए और वास्तव में उनका लालन-पालन उनसे चार साल बड़ी बहन मुकुंदी बीबी ने किया। मुकुंदी बीबी का भारतेंदुजी के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा जो एक साथ उनकी मां, बहन और सखी थी। भारतेंदु जीवनभर अपना सुख-दुख अपनी इसी बहन से बांटते रहे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। पंडित ईश्वरी दत्त संस्कृत, मौलवी ताज अली उर्दू तथा पंडित नंद किशोर अंग्रेजी पढ़ाने के लिए आते थे। कुछ समय के लिए वे उस समय के विख्यात विद्वान तथा हिंदी के लेखक राजा शिव प्रसाद 'सितारेहिंद' के पास भी पढ़ने के लिए गए।

पिता की मृत्यु के बाद हरिश्चंद्र क्वींस कालेज में दाखिल हो गए। कालेज में संस्कृत और अंग्रेजी पढ़ते थे। बताया जाता है कि वे कालेज के दिनों में बहुत शौकीन किस्म के छात्र थे और पढ़ाई में उनका मन नहीं लगता था। किंतु कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वे हर पाठ तत्काल याद कर लेते थे। 1863 में 13-14 वर्ष की आयु में उनका विवाह मन्नो देवी से हुआ। मन्नो देवी धनी परिवार की कन्या थी किंतु विशेष सुंदर न थी। रसिक प्रवृत्ति के हरिश्चंद्र का मन अपनी पत्नी में कभी नहीं रमा और आगे चलकर उनकी मित्रता मल्लिका और माधवी नाम की महिलाओं से हुई। इस प्रसंग को लेकर डॉ. राम विलास शर्मा द्वारा लिखे गए ये शब्द उल्लेखनीय हैं, ''उनके चरित्र की दृढ़ता इस बात के से ज़ाहिर होती हैं कि वे अपनी कमजोरियां छिपाकर लोगों का आदर नहीं पाना चाहते थे।'' माधवी और मल्लिका से उन्हें आजीवन स्नेह रहा और उसे छिपाना तो दूर, उन्होंने उनके बनाए पदों को अपने संग्रहों में जगह दी''। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि भारतेंदुजी ने मल्लिका से बंगला से तीन उपन्यास अनूदित करवाए और उनका संपादन किया।

जैसा कि पहले कहा गया है, हरिश्चंद्र रसिक प्रवृत्ति और शाहखर्च व्यक्ति थे। वे अपनी पैतृक संपत्ति को मित्रों और चाटुकारों के बीच लुटाने लगे तो उनके भाइयों को आपत्ति हुई और विवाद अधिक न बढ़े इसलिए 21 मार्च, 1870 को संपत्ति का बटवारा हो गया। हरिश्चंद्र के हिस्से कई गांव, मकान, दुकानें, जमीन, सोना-चांदी और नकद राशि आई। इतनी बड़ी संपत्ति हाथ में आने के बावजूद वे अपने खुले खर्च तथा विलासितापूर्ण जीवन

के आदी होने के चलते चार-पांच साल में ही सब कुछ लुटा बैठे और कर्जदार बन गए। किंतु भारतेंदुजी ने अपनी संपत्ति केवल शान शौकत पर नहीं लुटाई। उन्होंने साहित्य और पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ-साथ हिंदी भाषा और शिक्षा के प्रसार तथा समाज सेवा के कामों पर भी धन खर्च किया। उस जमाने में उन्होंने समाज की वास्तविक आवश्यकता को पहचान कर लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने चौखंभा विद्यालय की स्थापना की, जहां शिक्षा निःशुल्क थी और बच्चों को पाठ्य सामग्री मुफ्त दी जाती थी। अनाथ बच्चों को खाना भी दिया जाता था। साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने के लिए उन्होंने 'कविता वर्धिनी सभा' नाम की संस्था खड़ी की। इसकी बैठकें उनके घर पर होती थीं, जिनमें कविताएं पढ़ी जाती थीं और नए कवियों को पुरस्कार आदि देकर उन्हें काव्य रचना के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। 'समस्या पूर्ति' के माध्यम से भी काव्य प्रतिभा विकसित करने के प्रयास किए जाता थे। उन्होंने 'पैनीरीडिंग क्लब' भी बनाया, जिसमें लेखकों को आमंत्रित किया जाता, जो अपनी रचनाएं पढ़ते थे।

शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के साथ-साथ समाज तथा देश हित के अनेक अभियानों का भी भारतेंदुजी ने नेतृत्व किया। 1873 में उन्होंने 'तदीय समाज' नाम के संगठन की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य मद्य और मांस के सेवन का विरोध करना था। संस्था द्वारा शराब और मांस का सेवन छोड़ने या शुरू न करने के शपथ-पत्र लिखवाए जाते थे। इसके साथ यह संस्था गोरक्षा की दिशा में भी काम करती थी। 1877 में भारतेंदुजी ने 60,000 लोगों के हस्ताक्षर से युक्त एक पत्र ब्रिटिश सरकार को भेजा, जिसमें गोरक्षा के लिए कानूनी उपाय करने की मांग रखी गई। होमियोपैथी चिकित्सा का भारत में चलन होने पर उन्होंने 'होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय' प्रारंभ किया। इस चिकित्सालय के लिए वे हर माह 120 रूपए देते थे। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए परीक्षा में सफल रहने वाली लड़कियों को पुरस्कार देते थे। यही नहीं, बंगाल, बंबई, मद्रास जैसे विश्वविद्यालयों की परीक्षाएं उत्तीर्ण करने वाली लड़कियों को बनारसी साड़ी भेजा करते थे। वे समाज सुधार तथा देश भक्ति की भावना को बल देने वाली कई अन्य संस्थाओं के पदाधिकारी भी थे। इसी तरह की एक संस्था थी 'बनारस इंस्टीट्यूट' जिसकी स्थापना उनके गुरू राजा शिव प्रसाद 'सितारेहिंद' ने की। सभासद के रूप में भारतेंदुजी अनेक विषयों पर अपनी राय प्रकट करते थे। भारतेंदुजी ने व्यापार के क्षेत्र में भी हाथ-पांव मारे। उन्होंने 'हरिश्चंद्र एंड ब्रदर्स' नाम का प्रतिष्ठान बनाया, जिसका उद्देश्य लोगों को वास्तविक दाम पर चीजें उपलब्ध कराना था। किंतु व्यापार करना उनके बस में नहीं था और कुछ वर्ष बाद यह प्रतिष्ठान बंद करना पड़ा।

भारतेंदुजी के जीवन के जो दो प्रमुख पहलू उभर कर आते हैं, वे हैं 'स्वत्व निज भारत गहे' और 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, अर्थात् भारत के प्रति स्वाभिमान और हिंदी भाषा के प्रति प्रेम व सम्मान। हम कह सकते हैं कि यही दो पहलू उनके जीवन व साहित्य के मूल मंत्र थे। हिंदी के विकास के लिए उन्होंने न केवल साहित्य तथा पत्रकारिता का सहारा लिया बल्कि इसके लिए उन्होंने अपनी संपत्ति भी खर्च की और अनेक अभियान चलाए। हिंदी हित को आगे बढ़ाने की धुन में उन्होंने विदेशी सत्ता के सामने झुकने तक में संकोच नहीं किया। हिंदी के विकास की आवश्ययकता की ओर शासन का ध्यान आकर्षित करने के विचार से उन्होंने ब्रिटिश शासन के गुणगान का रास्ता तक अपनाया। उन्होंने 'हिंदी नई चाल में ढले'' मंत्र का उद्घोष किया। हिंदी का जो संस्कृतनिष्ठ स्वरूप उन्होंने प्रस्तावित किया, उसका उस समय भी विरोध हुआ और बाद में भी वाद-विवाद चलता रहा। किंतु इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि उनके द्वारा निर्मित नींव पर ही आगे चलकर आधुनिक हिंदी की इमारत खड़ी हुई। भारतेंदुजी के जीवन के एक विरोधभास की प्रायः चर्चा होती है कि एक ओर वे स्वदेशाभिमान की दिशा में प्रयास करते रहे और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार की वंदना का कोई अवसर नहीं छोड़ते थे। एक ओर उन्होंने भारत की निर्धनता तथा अन्य विद्रूपताओं पर खुलकर व्यंग्य बाण चलाए तो दूसरी ओर देश की संपत्ति का दोहन करने वाली ब्रिटिश सत्ता की वंदना जारी रखी। भारतेंदुजी को इस राजभक्ति का फल भी मिला। अंग्रेजों ने उनकी राजभक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें म्युनिसिपल बोर्ड का कमिश्नर तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। यहीं नहीं उनकी पत्रिकाएं भी सरकार द्वारा खरीदी जाती थीं।

भारतेंदुजी की साहित्य-सृजन यात्रा उनके कालेज के दिनों में ही आरंभ हो गई थी। कालेज में पढ़ने से अधिक उनका ध्यान शाही रहन-सहन और खान-पान पर रहता था, किंतु कविता लिखने का शौक उन्हें उसी दौरान लग गया। जैसा कि इस उम्र में होता है उनकी कविताएं अधिकांशतः श्रृंगारिक हुआ करती थीं। इस संदर्भ में राधाकृष्ण दास लिखते हैं, ''कालेज में अंग्रेजी और संस्कृत पढ़ते थे, पर रसिकराज हरिश्चंद्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था। परंतु वही प्राचीन ढर्रे की श्रृंगार रस की।'' यह सही है कि अधिकतर साहित्यकारों की भांति भारतेंदुजी की सृजनात्मक प्रतिभा का प्रथम प्रस्फुटन कविता के माध्यम से हुआ, किंतु उनका युग प्रवर्तक रूप गद्य के माध्यम से प्रकट हुआ, जिसका स्वरूप निर्धारित करने में उनकी ऐतिहासिक भूमिका रही। गद्य में जो विधा उन्हें सबसे प्रिय थी और जिसे सजाने-संवारने पर उनका सबसे अधिक ध्यान गया, वह है नाटक। नाटक हमारे देश की परंपरागत लोकप्रिय विधा है, जिसे संस्कृत साहित्य में गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। किंतु हिंदी में नाटक को साहित्य तथा मंच की विधा के

रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय भारतेंदुजी को ही जाता है। उन्होंने भले ही साहित्य की सभी विधाओं में अपनी प्रतिभा का उपयोग किया किंतु नाटकों की रचना और उसे हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए उन्हें सैदव याद किया जाएगा। यद्यपि भारतेंदुजी से पहले कुछ लोगों ने हिंदी नाटकों की रचना की थी, किंतु भाषा, विषय और गुणवत्ता की दृष्टि से वे नाटक की कसौटी पर खरे नहीं उतरते थे। ये भारतेंदुजी ही थे, जिन्होंने नाटक को एक तरह से रद्दी की टोकरी से उठाकर पुस्तकों की अलमारी में स्थान दिया।

भारतेंदुजी ने मौलिक नाटकों की रचना करने के साथ-साथ संस्कृत, बांगला, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं के नाटकों का अनुवाद भी किया। माना जाता है कि उन्हें नाटक लिखने की प्रेरणा बंगला नाटकों को पढ़कर मिली। अपनी जगन्नाथपुरी की यात्रा के दौरान उन्होंने एक बंगला नाटक खरीदा, जिसे पढ़कर वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने हिंदी में नाटक लिखने का संकल्प कर लिया। यह भी मान्यता है कि उसी समय उन्होंने 'प्रवास' नामक नाटक लिखा था किंतु वह उपलब्ध नहीं है। भारतेंदुजी ने 11 मौलिक नाटक लिखे। इनमें से कुछ नाटक मंचित रूप में बहुत प्रसिद्ध हुए और आज भी उनका मंचन किया जाता है। उनके प्रमुख नाटक हैं, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम जोगिनी, भारत दुर्दशा, सत्य हरिश्चंद्र, अंधेर नगरी और भारत जननी। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करने तथा देशाभिमान जगाने के उद्देश्य से अपने नाटकों की रचना की। उनके कुछ नाटक रामायण, महाभारत के आख्यानों तथा पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। भारतेंदुजी ने कुछ नाटकों में अभिनय भी किया। नाटक के क्षेत्र में उनके ऐतिहासिक एवं अविस्मरणीय योगदान को देखते हुए आज भी अनेक स्थानों पर भारतेंदु नाट्योत्सवों का आयोजन होता है।

नाटकों के बाद जिस विधा पर भारतेंदुजी की सबसे अधिक कृपा रही, वह है कविता। विषय, अभिव्यक्ति, शैली और भाषा की दृष्टि से उनका काव्य संसार विविध रंगों में रंगा दिखाई देता है। इस तरह की विविधता उनके समकालीन किसी भी दूसरे कवि में दिखाई नहीं देती। उनकी प्रारंभिक कविता मुख्तया शृंगार रस से आप्लावित है और बाद की कविताओं का भी मुख्य स्वर प्रेम रहा है। उनके कई संग्रहों में प्रेम शब्द का इस्तेमाल हुआ है जैसे कि प्रेम मलिका, प्रेमाश्रुवर्षण, प्रेम सरोवर आदि। प्रेम के बाद जिस विषय पर अधिक कविताएं लिखी गई हैं, वह है राजभक्ति। उन्होंने राजभक्ति की सामान्य कविताओं के अलावा ब्रिटिश शासन की उपलब्धियों अथवा मुख्य घटनाओं से प्रेरित होकर भी राजभक्तिपूर्ण, कविताओं की रचना की। भारतेंदुजी के जीवनीकार मदन गोपाल लिखते हैं—''1869 में जब प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आए, तब उन्हें बनारस दिखाने के लिए हरिश्चंद्र को नियुक्त किया गया। हरिश्चंद्र ने उन्हें बनारस की सैर कराई। इतना ही नहीं, उन्होंने बनारस के प्रसिद्ध ब्राह्मणों और पंडितों को प्रिंस की प्रशस्ति में कविता लिखने को आमंत्रित किया। इन कविताओं को बाद में प्रकाशित करके प्रिंस ऑफ वेल्स को समर्पित किया गया''। भारतेंदुजी की कविताएं ब्रजभाषा में है किंतु उन्होंने कुछ कविताएं खड़ी बोली में भी लिखीं। वास्तव में भारतेंदुजी अच्छी तरह जानते थे कि भावी कविता खड़ी बोली में होगी। उन्होंने स्वयं भले ही अधिकांश काव्य रचना ब्रजभाषा में की किंतु अनेक नए कवियों को खड़ी बोली में कविता लिखने को प्रेरित किया। वे हिंदी के साथ-साथ उर्दू में भी कविता लिखते थे। उन्होंने 'कासिद' नाम से उर्दू का रिसाला निकालने की भी योजना बनाई थी किंतु इसे सिरे नहीं चढ़ाया जा सका। उनकी उर्दू गजलों का संग्रह 'बहार गुलशन' नाम से प्रकाशित हुआ। उन्होंने कई व्यंग्य रचनाएं भी उर्दू में लिखीं।

निबंध विधा को संपन्न करने में भी भारतेंदु का अप्रतिम योगदान रहा है। उन्होंने समसामयिक समस्याओं के अलावा इतिहास, पुरातत्व, धर्म जैसे विषयों पर अनेक सारगर्भित निबंध लिखे। ऐतिहासिक विषयों पर लेखन की परंपरा उनसे पहले हिंदी में विद्यमान नहीं थी। उनके ऐतिहासिक निबंध तथ्यों और प्रमाणों पर आधारित होते थे। 'रामायण का समय', कालचक्र, बादशाह दर्पण आदि उनके उल्लेखनीय ऐतिहासिक निबंध हैं। उनके अनेक लेखों में उनकी राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सोच की झलक मिलती है। समाज सुधार के अभियानों में सक्रिय भागीदारी करने के साथ-साथ उन्होंने इन विषयों पर प्रेरक लेख भी लिखे। स्त्रियों की स्थिति, विधवा विवाह, भ्रूण हत्या जैसे विषयों पर उनके कई लेख प्रकाशित हुए। भारतेंदुजी के यात्रा वृत्तांत भी हिंदी साहित्य की अनमोल संपदा हैं। सच तो यह है कि वे स्वयं एक सैलानी थे। अपने प्रारंभिक जीवन में ही उन्होंने देश के अनेक शहरों का भ्रमण कर लिया था। सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से संवेदनशील होने के कारण वे हर क्षेत्र के विशिष्ट पहलुओं को आत्मसात कर लेते थे, जिससे उनके यात्रा वृत्तांत विश्वसनीय तथा रोचक बन पड़ते थे। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''भारतेंदु की यात्रा सिर्फ शौकीनों की यात्रा नहीं थी। यह उनकी शिक्षा का अंग था। यात्रा में उन्हें कई कष्ट उठाने पड़ते थे।'' वास्तव में उनके यात्रा वृत्तांत अपने समय के दस्तावेज हैं। यात्रा वृत्तांत के रूप में उन्होंने जहां नई विधा का प्रवर्तन किया, वहीं अपने अनुभव और भाषा पर आधिपत्य के कारण उसे साहित्यिक विधा की प्रतिष्ठा प्रदान की।

भारतेंदुजी की महानता का एक विशिष्ट पहलू यह है कि वे जितने बड़े साहित्यकार हैं, उतने ही बड़े पत्रकार भी हैं। उन्होंने केवल साहित्यिक नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पत्रिकाओं का कुशल संपादन किया। उन्हें आधुनिक हिंदी पत्रकारिता का जनक घोषित करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। उनके द्वारा संपादित मुख्य पत्रिकाओं

में कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, बाल बोधिनी, हरिश्चंद्र चंद्रिका शामिल हैं। कवि वचन सुधा, पहले कविता की मासिक पत्रिका थी लेकिन बाद में उसमें गद्य रचनाएं भी छपने लगीं। यह पहले मासिक थी, जो अंततः साप्ताहिक हो गई। हरिश्चंद्र मैगजीन का प्रकाशन कवि वचन सुधार से पांच वर्ष बाद हुआ और कालांतर में इसका नाम हरिश्चंद्र चंद्रिका हो गया, जो छह साल तक चली। उन्होंने महिलाओं के लिए 'बाल बोधिनी' पत्रिका निकाली, जो चार वर्ष चली। उन्होंने धार्मिक पत्रिका 'भगवद् भक्ति तोषिणी' का भी संपादन-प्रकाशन किया किंतु यह अधिक समय तक नहीं चल सकी। इन पत्रिकाओं की विषय सामग्री देखकर ज्ञात होता है कि भारतेंदु युग के आरंभिक दौर में साहित्य तथा पत्रकारिता को अलग-अलग नहीं माना गया। उनमें साहित्य के साथ-साथ विभिन्न विषयों पर लेख भी छपते थे। भारतेंदु ने अपनी प्रतिभा के बल पर हिंदी पत्रकारिता की जो बेल लगाई वह आज विभिन्न दिशाओं में फैल कर साहित्य, ज्ञान और सूचना के समूचे क्षेत्र पर छा गई है। पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके ऐतिहासिक योगदान का सम्मान करते हुए सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा पत्रकारिता पर मौलिक पुस्तकों/पांडुलिपियों के लिए दिए जाने वाले 75,000 रुपए के पुरस्कार का नाम भारतेंदुजी के नाम पर रखा गया है।

विश्वास करना कठिन है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, जब हिंदी भाषा और साहित्य का अरूणोदय हो रहा था, इतनी विधाओं में इतना व्यापक और सार्थक लेखन करने वाली एक विभूति अवतरित हुई। हिंदी जगत इस प्रतिभाशाली सर्जक और यशस्त्री पत्रकार के योगदान का सदा ऋणी रहेगा। हिंदी भाषा एवं साहित्य को नई दिशा देकर उसे विविधता और संपन्नता प्रदान करने वाले इस युगांतकारी लेखक का निधन 6 जनवरी, 1885 को वाराणसी में हुआ।

सी-302, हिंद अपार्टमेंट्स, प्लाट नं.-12, सेक्टर-5, द्वारका, नई दिल्ली-110075

उदारवादी व्यक्तित्व के धनी

डॉ. पुष्पा सिंह 'विसेन'

भारतेंदुजी के विषय में यह कहना शत-प्रतिशत सही होगा कि वे एक उदारवादी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। अपनी उदारता एवं संवेदना के चलते ही जीवनपर्यंत कभी भी उन्हें आक्रोश एवं क्रोध का बंधन नहीं जकड़ सका। बाल्यावस्था में अपनी मां को खो देने वाला यह बालक विमाता के दुर्व्यवहारों को सहते हुए भी कभी उनके प्रति अपने मन में आक्रोश नहीं ला सका। बनारस के नामी सेठ अमीचंद के वंश में जन्म पाकर भी धन संपन्न होने का अहंकार अपने भीतर कभी भी पनपने नहीं दिया। मात्र दस वर्ष की आयु में पिता के साए से भी वंचित हो जाना, ऐसी विषम परिस्थितियों में भी स्वयं को विचलित नहीं होने देने वाले व्यक्तित्व को अपने भीतर अंकुरित करना कोई सामान्य बालक के बस की बात नहीं।

आधुनिक काल का यह युग भारतेंदु युग के नाम से भी जाना जाता है। वह एक ऐसा युग था कि देश गुलामी के उन मजबूत जंजीरों में जकड़ा हुआ था, जिसमें भारतवासियों का सांस लेना भी मुश्किल था। अंग्रेजों की हुकूमत या यों कहें कि उनका अत्याचार उस समय चर्मोत्कर्ष पर था तो कुछ गलत नहीं होगा। यह अत्याचार सिर्फ यहां के देशवासियों की दुर्दशा तक ही नहीं सीमित था, बल्कि हमारी राष्ट्रभाषा को भी पूर्ण रूप से पतन के गर्त में ढकेल उसका भविष्य समाप्त करने के लिए तत्पर था। अंग्रेजों के सानिध्य में रहने वाले पदलोलुपता से ग्रसित हमारे भारतीय लोग भी अपनी प्रबल भावना के साथ उनके काम काज के प्रति पूर्ण रूप से आकर्षित थे। स्वयं भारतेंदुजी के पूवर्ज भी अंग्रेजों के मुरीद रहे थे। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अंग्रेजों के साथ उनके शासनकाल में भी लोग उनके अत्याचारों को नजरअंदाज कर उनकी भाषा अंग्रेजी पढ़ना एवं समझना अपने लिए गौरव की बात समझते थे। अंग्रेजी सीख कर गर्व महसूस करते थे।

ऐसी विषम परिस्थिति में अपने लेखन के माध्यम से अपनी राष्ट्रभाषा हितार्थ संर्घषरत हो जाना बहुत ही कठिन कार्य था। किंतु यह कार्य तन मन धन से पूर्ण समर्पित होकर किया भारतेंदुजी ने। हमारी राष्ट्रभाषा के प्रति हमारे ही लोगों का आकर्षण कम होता जा रहा था। अंग्रेजी भाषा एवं उसकी नीतियां हमारे साहित्य को अपने बुरे असर से प्रभावित करती जा रहीं थी। हमारी सभ्यता एवं संस्कृतियों के साथ भी अपनी नकारात्मक एवं ओछी सोच द्वारा प्रहार किया जा रहा था जो असहनीय था। ऐसे समय में देश, भाषा एवं समाज के विषय में सोचना उनकी दयनीय दशा पर विचार करना कोई आसन कार्य नहीं था। लेकिन अपनी लेखनी के माध्यम से निडरतापूर्वक अंग्रेजी हुकूमत का पर्दाफाश कर उनके साम्राज्य की हकीकत को सामने रखने का साहसिक कार्य इन्होंने ही किया। अपनी लेखनी के द्वारा अपनी भाषा को एक नई दिशा दी। उस समय के विद्वानों ने इनकी विलक्षण, अनोखी प्रतिभा को पहचाना। इनकी साहित्यिक एवं राष्ट्रहितार्थ क्षमता को पहचाना और इन्हें भारतेंदु की उपाधि दी। इस उपाधि से नवाजे जाने के बाद आधुनिक काल का यह युग भारतेंदु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नौ सितंबर, अठारह सौ पचास (9.9.1850) में जन्म लेना और छह जनवरी अठारह सौ पच्चासी (6.1.1885) में संसार से विदा ले लेना, मात्र पैंतीस वर्ष की आयु में इतना कुछ कर जाना किसी भी साधारण व्यक्तित्व के लिए संभव नहीं था। उस समय की परिस्थितियों के बीच अपने उदारवादी व्यक्तित्व के कारण ही भारतेंदुजी अपनी राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए तन, मन, धन से अपने आप को समर्पित कर पाए। जरूरतमंद मित्रों, साहित्यकारों एवं संस्थाओं को साहित्यहितार्थ खुल कर मदद करना भारतेंदुजी के उस स्नेह एवं आस्था को दर्शाता है, जो अपने राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के प्रति था। अर्थ संबद्ध परिवार में चंचला की अपार कृपा थी। जिसका लाभ स्वयं के हित न उठाकर उन्होंने भाषा, देश, समाज के लिए दान स्वरूप दिया। उनकी यही उदारवादी प्रवृत्ति उन्हें ऋणी कर गई। चंचला तो चलायमान होकर चली गई। जो अंदर से उन्हें चिंतित रखते हुए जर्जर कर बीमार कर गई। शारीरिक शिथिलता अपना वर्चस्व बढ़ाते हुए उन्हें क्षीण करती जा रही थी। आखिरकार वह उन्हें कर्ज के भार तले दबाए हुए उन्हें प्राणांत तक ले गई। बाल्यावस्था का समय मातृविहीन रहा। विमाता भी

कुमाता का व्यवहार अपनाती रही। बीच का जीवन भी देश एवं भाषा के लिए लेखन के द्वारा संघर्षरत रहा यह सब कुछ वे अपने उदारवादी व्यक्तित्व के द्वारा ही कर पाए। संसार से विदा लेते हमारे हिंदी साहित्य को जो अमृत्व प्रदान कर गए वह हिंदी के लिए उनका अद्वितीय वरदान है।

हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषाओं के प्रति भी भारतेंदु की गहरी रुचि थी। पढ़ाई के समय में भी वे अन्य भाषाओं को स्वयं के अध्ययन द्वारा सीखते रहे। इन्हें, संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला एवं अंग्रेजी का भी ज्ञान था। वाराणसी के क्वींस कालेज में पढ़ते समय इनका मन पढ़ाई से कोसों दूर भागता रहा, लेकिन अपनी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की तीव्रता के चलते अनोखी ग्रहण क्षमता पाई थी। अतः ये सभी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर जाते थे। बनारस में उस समय के बहुत ही प्रसिद्ध लेखक राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के प्रति भारतेंदुजी की अपार श्रद्धा थी।

मात्र पंद्रह वर्ष की आयु में साहित्य सेवा में निरंतर रम जाना भारतेंदु के व्यक्तित्व का वह साहित्यिक दर्पण है, जिसमें हम स्वयं को देख परख कर निखार सकते हैं। कुछ अच्छा सृजन कर सकते हैं। अठारह वर्ष की आयु में ही इन्होंने ''कविसुधावचन नाम पत्र शुरू कर दिया था। इसमें उस समय के वरिष्ठ विद्वानों की रचनाएं प्रकाशित हुआ करतीं थी। बीस वर्ष के होते ही अपनी कर्मठता एवं प्रतिभा के द्वारा उस समय ये ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाए गए, और ठीक उसी समय में आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए। पत्र-पत्रिकाओं की बात करें तो 1868 में कवि सुधा नामक पत्रिका का आरंभ किया। 1876 में इन्होंने दो पत्रिकाएं निकाली, जिनका नाम 'हरिश्चंद्र मैगजीन' एवं 'बाल बोधिनी' था। उसी समय इन्होंने इन पत्रिकाओं के समानांतर कई साहित्यिक संस्थाएं भी खड़ी की। हिंदी साहित्य एवं भाषा दोनों ही क्षेत्रों में इनकी अद्‌भुत देन को हमारा साहित्य समाज बखूबी समझता है। भाषा के क्षेत्र में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित कर उसे वह स्वरूप प्रदान किया, जो उर्दू भाषा से बिल्कुल अलग है और हिंदी भाषा की क्षेत्रीय बोलियों का रस लेकर पला-बढ़ा। इसी भाषा को माध्यम बनाकर भारतेंदुजी ने अपने संपूर्ण गद्य साहित्य का सृजन किया है। साहित्य सेवा के साथ-साथ समाज सेवा की भावना से ओत-प्रोत उनका जीवन रहा। गरीब, दुखिया लोगों की सहायता वे अविलंब करते थे। साहित्यकारों, मित्रों का भी वे सदा ही ध्यान रखते थे। चिंतारहित धन व्यय करने वाला ऐसा व्यक्तित्व बिरले ही कभी-कभी संसार में आता है। भारतेंदु जी के जैसा न कोई व्यक्ति पहले था और न ही उनके बाद साहित्य जगत में पैदा हुआ।

इनकी काव्य सृजनता को देखें तो उसमें अपने समय के प्रचलित एवं प्रख्यात सभी छंदों को अपने लेखन में अपनाया है। हिंदी के अलावा संस्कृत, उर्दू एवं बांगला भाषा के छंदों को भी स्थान दिया है। इनका काव्य संस्कृत के शार्दूल विक्रीडित, वंसत तिलका, शालिनि एवं हिंदी के सोरठा, सवैया, छप्पन, रोला, कुंडलियाक्ति, घनांछरी आदि एवं बंगला के पयार व उर्दू के रेखता उवं गज़ल छंदों से सुशोभित हुआ है। इतना कुछ करने पर भी वे कहां ठहरने वाले थे। इन सबके अलावा भी उन्होंने लावनी, चैती, मल्हार, कजरी, ठुमरी आदि लोक छंदों को भी अपने काव्य के माध्यम से व्यवहार में लाने का अपने तरीके का अलग ही प्रयोग किया। ऐसी विशेषता काव्य जगत में शायद अकेले भारतेंदुजी के भीतर ही थी। अलंकारों की बात की जाए तो इन्होंने इनका प्रयोग सहज रूप से अपने काव्य में किया है। उत्प्रेक्षा, उपमा, संदेह एवं रूपक आदि अलंकारों के प्रति इनकी गहन रुचि प्रतीत होती है। शब्दालंकार भी प्रयोग में मिलता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेंदुजी को साहित्य स्वामी की उपाधि दी जाए तो अनुचित नहीं होगा। इन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि क्षेत्रों को अपनी साहित्य सृजना के द्वारा इतना कुछ दिया है जो अपूर्व है हिंदी भाषा के लिए नवजागरण का संदेश लिए अवतरित युग पुरुष, साहित्य पुरुष कुछ भी कहा जाए वह कम होगा। हिंदी के सर्वांगीण विकास के लिए किए गए महत्त्वपूर्ण कार्य को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। भाषा, भाव एवं शैली को नवीनता एवं मौलिकता के संगम में समाहित कर इनके समावेश के द्वारा उनको आधुनिक काल के अनुरूप बनाना सभी के बूते की बात नहीं थी। भारतेंदुजी का दुर्लभ कार्य ही उन्हें 'आधुनिक हिंदी के जन्मदाता' के रूप में प्रतिष्ठित करता है। साहित्य जगत में हिंदी नाटकों का सूत्रपात भी इनके द्वारा ही हुआ।

कुशाग्र बुद्धि के महान साहित्यकार भारतेंदुजी अपने समय के साहित्यिक अगुवा भी थे। मातृभाषा की सेवा में अपना सर्वस्व यानी सब कुछ निःस्वार्थ रूप से न्योछावर करने वाले, इन व्यक्ति के द्वारा कितने ही प्रतिभावान रचनाकारों को जीवनामृत मिला। इनके द्वारा निकाले गए पत्र-पत्रिकाओं में संपादकीय माध्यम के द्वारा इनके विचार प्रगतिशीलता एवं साहित्यिक दृष्टिकोण का परिचय सभी साहित्य जगत वालों को मिलता था। भारतेंदुजी भाषा, देश हितार्थ अपनी अनेकों विशेषताओं के द्वारा अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व को एक अलग मुकाम मुहैया करवाया जहां लाखों में शायद कोई एक पहुंच पाता है।

जीवन का अंतिम समय धन रहित था और कष्टयुक्त था। यह कहावत चरितार्थ हो रही थी कि–

''चिता मुर्दे को जलाती है, चिंता जिंदे को''

अतः दुःचिंताओं के कारण अल्पायु में ही वे युवावस्था में यह संसार छोड़ गए। उनके द्वारा एक साहित्यिक युग का निर्माण हुआ 'भारतेंदु युग' आज भी वे साहित्य गगन के वह दिवाकर हैं, जो कभी भी अस्त नहीं हो सकते। काशी नगरी पतिगृह बना यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

अंत में आज के संपूर्ण साहित्य जगत की तरफ से भारतेंदुजी जैसे उदारवादी, संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार को शत्-शत् नमन करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं।

''तू बन गया इक युग,
जग पा रहा साहित्य सुख,
तूने सृजन किया भूल दुख,
अल्पायु में दिया भारतेंदु युग।''

मकान नं.-207/3
वसुंधरा गाजियाबाद

युगपुरुष

डॉ. पुष्पा सिंह 'विसेन'

आधुनिक हिंदी साहित्य के
सृजन का दायित्व निभाने
युग पुरुष तुम धरा पे आए थे
बाल्यावस्था के सारे दुःख भूल
'काव्य कलश' छलकाए थे
पावन हुई काशी की धरती
देश, समाज, साहित्य को इक
नया आयाम मिला, सभी
को युगानुसार स्वरूप दिया
ये पुण्य साहित्यकर्म निभाए थे
संवेदना अथाह संचित किए
हुए, प्रेम सुधा, प्रिया के लिए
मुक्त रूप से बरसाए थे।
तृप्त कर दिया, प्रिया की 'देह धरा'
प्रकृति विधि यूं तुम निभाए थे
अपने दिव्य ज्ञान से सींचित किया
साहित्य, भाषा, संबृद्ध बनाए थे
कर गए, दुर्लभकार्य इतने सारे
हिंदी भाषा के नूतन कोपल
यूं खिल-खिल मुस्काए थे
सिर्फ भारतेंदु ही नहीं उपाधि
तुम साहित्य जगत के भीष्म
पितामह भी यहां कहलाए थे
'भाषा उन्नति' हित, तुम ले
अवतार धरा पर अल्प समय
के लिए युग निर्माण हेतु आए थे
देश, भाषा उन्नति के लिए अर्पित
जीवन, तुम शिथिल हो स्वयं
स्वास्थ्य भी अपना गंवाए थे
अंतिम यात्रा की बेला में
कष्टों को आलिंगन बद्ध कर
नश्वर देह से मुक्ति पाए थे
खुल गए थे स्वर्ग द्वार सभी
स्वयं स्वर्ग के राजा इंद्र
स्वागतार्थ खड़े स्वर्गद्वार
प्रतीक्षारत आतुर नयनों में
आनंद अश्रु भर निहारते
तुम्हें आलिंगन में भर
गले अपने स्नेहिल लगाए थे
आनंदित था स्वर्गलोक समूचा
आगमन से तुम्हारे, वहां भी
भौरों ने मधुर गान सुनाए थे
गुंजित ध्वनि पर अप्सराएं भी
थिरकी थी, वाद्य तरंगों ने भी
मधुर गीत गाए थे
दे गए थे धरा पर जो तुम
वह स्नेह वात्सल्य वहां
सभी ने तुझ पे लुटाए थे
इक बार तुम फिर से धरा पर
अवतरित, होकर फर्जनिभा
जाओ, साहित्य जगत की
स्वार्थी गुटवंदियों को तुम
मिटा जाओ, आज भी
इक नए युग की जरूरत है
साहित्य की दुनिया हुई यहां
बदसूरत है, स्वार्थपरता की
है यहां होड़ लगी आज
भी एक भारतेंदु की हमें
बहुत जरूरत है। श्रद्धा
स्वरूप यह काव्यांजलि
तुम्हें अर्पित करती हूं
बिन ज्ञान तुम्हें यह
शब्द सुमन अर्पित करती हूं।

राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी

वीरेंद्र कुमार यादव

देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। भारत में शासन की भाषा अंग्रेजी स्वीकार की जा चुकी थी। अंग्रेजी हुकूमत में पद लोलुपता की भावना प्रबल थी। बड़े ओहदों के लिए लालायित भारतीय, अंग्रेजी और विदेशी सभ्यता अपनाकर खुद गौरवान्वित महसूस करने लगे थे। भारतीयों में जो खुद को सभ्य और सुशिक्षित समझते थे, वे हिंदी को हेय दृष्टि से देखने लगे थे। अंग्रेजी की नीति से हमारे साहित्य पर बुरा असर पड़ रहा था। हमारी संस्कृति के साथ खिलवाड़ किया जा रहा था। ऐसे समय में जब हिंदी को एक दृढ़ आत्मविश्वासी कुशल नेतृत्व की आवश्कता थी, जिसमें युग परिवर्तन की क्षमता, राष्ट्रीयता की रक्षा कर सकता हो अथवा मात्र भाषा की रक्षा के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर सकता हो। ऐसे वातावरण में हरिश्चंद बाबू अवतरित हुए। इनका जन्म काशी नगरी के प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के वंश में 9 सितंबर, 1850 को हुआ। इनके पिता का नाम बाबू गोपाल चंद्र था। ये भी ब्रज भाषा से संपन्न कवि थे। इनके घराने में वैभव और प्रतिष्ठा थी। जब इनकी उम्र 5 वर्ष की थी तो माता जी चल बसीं और 10 वर्ष की आयु में पिताजी चल बसे। इनका विवाह 13 वर्ष की आयु में हो गया था। इनका निधन भी अल्पायु में ही 6 जनवरी, 1885 को हो गया। घर के साहित्यिक वातावरण का प्रभाव भारतेंदु पर पड़ा। उन्होंने 5 वर्ष की अवस्था से ही दोहों की रचना करनी शुरू कर दी थी।

वे विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने सर्वप्रथम समाज और देश की दशा पर विचार किया और फिर अपनी लेखनी के माध्यम से विदेशी हुकूमत का पर्दाफाश किया। जहां भारत के गौरवशाली अतीत से उनका मन प्रफुल्लित था, वहीं विदेशी दासता के कारण उनके कवि हृदय में टीस उठती रहती थी। वे विदेशी भाषा की अपेक्षा स्वदेशी भाषा के प्रबल पक्षधर थे। राजनीतिक दासता से तो हमने मुक्ति पा ली लेकिन भाषायी दासता से पूर्ण मुक्त होना अभी शेष है। राजभाषा के रूप में हिंदी को प्रोत्साहित करने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र पहले व्यक्ति थे। भाषा, धर्म, राजनीति, अध्यात्म, राष्ट्रीयता तथा सभी क्षेत्रों में भारतेंदु जी ने लिखा।

इन्होंने अपनी परिस्थितियों से गंभीर प्रेरणा ली। इनके मित्र मंडली में बड़े-बड़े लेखक, कवि एवं विचारक थे, जिनकी बातों से प्रभावित थे। इनके पास विपुल धनराशि थी, जिसे इन्होंने साहित्यकारों की सहायता हेतु मुक्त हस्त से दान किया।

अपने जीवनकाल में लेखन के अलावा और कोई कार्य नहीं किया। तभी तो 35 वर्ष की अल्पायु में 72 ग्रंथों की रचना करना संभव हो सकता था। इनकी विद्वता से प्रभावित होकर 27 सितंबर, 1880 में 'सार सुधा निधि' नामक, पत्रिका में एक प्रस्ताव प्रकाशित हुआ था कि बाबू हरिश्चंद्र को 'भारतेंदु' की उपाधि से विभूषित किया जाए। समस्त हिंदी संसार ने तब इन प्रस्ताव का हृदय से स्वागत किया था और बाबू हरिश्चंद्र सदा के लिए हिंदी भाषी जनता के 'भारतेंदु' बन गए थे। इस उपाधि का मूल्य तब आज के नोबेल पुरस्कार से भी बढ़कर था। यह जनता की दी हुई उपाधि थी, जो तब भी सरकार और उसके समर्थकों के लिए चुनौती के रूप में थी, क्योंकि तभी सरकार ने राजा शिवप्राद को 'सितारेहिंद' बनाया था। भारतेंदु जनता के बनाए अपने भारतेंदु थे।

यद्यपि भारतेंदुजी विविध भाषाओं में रचना करते थे, किंतु ब्रजभाषा, पर इनका असाधारण अधिकार था। इस भाषा में इन्होंने अद्‌भुत श्रृंगारिकता का परिचय दिया है। इनका साहित्य प्रेममय था क्योंकि प्रेम को लेकर इन्होंन सप्त संग्रह प्रकाशित किए हैं। 'प्रेम माधुरी' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है—

''मारग प्रेम की समुझै
हरिश्चंद्र यथारथ होता यथा है।
लाभ कुछ न पुकारने में,
बदनाम ही होने की सारी कथा है।
बाबरे हैं ब्रज के सिगरे
मोहि नाहक पूछता कौन विथा है।''

'बादशाह दर्पण' इनका इतिहास की जानकारी प्रदान करने वाला ग्रंथ है।

इनके प्रमुख नाटक वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—1873, भारत दुर्दशा—1875, सत्य हरिश्चंद्र—1876, नीलदेवी—1881, अंधेर नगरी—1881, कृष्ण चरित्र 1881 इत्यादि।

उनमें अपने देश के प्रति बहुत बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने सामाजिक समस्या उन्मूलन की बात की। अपने समकालीन शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध जनता को जगाने की परंपरा इस देश में बहुत पुरानी है। अतीत में अकबर के दरबारी कवि पृथ्वी राज तथा गोरा-बादल के रचनाकार, जयमल, सूदन, जोध-राज, चंद्रशेखर एवं भूषण आदि ऐसे कई रचनाकार हो चुके हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा समकालीन शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध जनता को समय-समय पर जगाया था। परंतु संपूर्ण भारतीय जनता को संगठित कर ऐसे आततायी शासकों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा का इनमें अभाव है तथा ऐसी प्रेरणा का अभ्युदय हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र के लेखन से ही प्रारंभ होता है। भारतेंदु एवं उनके सहयोगी रचनाकार राष्ट्रीय यथार्थ के प्रत्येक पहलू पर अपनी दृष्टि गड़ाए हुए थे तथा परिणाम पर पहुंच चुके थे कि जब तब भारतवासी अपने देश के गौरवमय अतीत को याद नहीं करेंगे तब तक उनमें से दौर्बल्य एवं हीनभावना का निष्कासन संभव नहीं होगा। इसी मूल भावना को आधार भूमि में रखकर अत्यंत निश्छल उदगार के साथ भाव प्रवण भारतेंदु ने सरलतम शब्दों में भारत के महान स्वरूप की बड़ी मार्मिक मीमांसा प्रस्तुत की है।

विश्व में सब समय, विद्या, कला, संस्कृति, शांति तथा धन-वैभव में समृद्ध एवं अग्रणी रहने वाला भारत आज जीर्ण-शीर्ण अवस्था को पहुंच चुका है। भारतेंदु को यह दशा बड़ी ही कष्टकर लगती है। ''अब सबके पीछे-सोहू परत लरबाई! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।'' जैसी पंक्तियां लिखकर अन्यत्र भी उन्होंने अपने अंतःस्थल के बड़वानल को उड़ेल कर रख दिया है। ''रिहा करता नहीं सैय्याद हमको मौसिमे गुल से कफस में, दम जो घबराता है सर दे-दे पटकते हैं'' जैसे शेर लिखकर बंद पिंजड़े में कैद पक्षी की भांति फड़फड़ा कर रह जाने की विवशता उनके समक्ष है, क्योंकि उनके आंखों के सामने की सीधी सादी भारतीय जनता पर ब्रिटिश सरकार द्वारा दिन-रात जुल्म ढाए जा रहे हैं। वह निर्दोष है पर उसमें उस पौरूष तथा नैतिक साहस का नितांत अभाव है, जो किसी विवेक शून्य आततायी को अपनी बात मनवाने को बाध्य कर सके। जनता तो जनता है, यहां के राजे-महाराजे तक असंगठित एवं अकर्मण्य बनकर विदेशी शासकों के चरण रज अपने सिर पर धारण करने को बेचैन रहते हैं। अपनी हरिश्चंद्र चंद्रिका पत्रिका मई-सितंबर अंक–1875 में बड़े साफ शब्दों में भारतेंदु ने भारतीय रियासतों की इस दुर्बलता की ओर संकेत किया है।

''राज-भेंट सबही करौ
अहौ अमीर नवाब।
हाजिर हवै झुकि-झुकि करौ
सवै सलाम-अदब।।''

भारतेंदु संकुचित दायरे के कायल नहीं थे। उनके जेहन में यह बात बिल्कुल घर कर गई थी जनता के ऐक्य में इतना सामर्थ्य होता है, जो बड़े-बड़े आततायी की कठोर से कठोर दंड शलाका को भी झुका दे। ऐसी ऐक्य तथा संघ शक्ति को ध्यान में रखकर उन्होंने हिंदू राष्ट्र को बड़ा ही व्यापक रूप प्रदान किया ताकि अनेकता में भी एकता लाकर अत्याचारी शासकों के विरुद्ध संघर्ष तेज किया जा सके। उनका तो स्पष्ट उद्घोष था कि इस महामंत्र का जप करो। जो हिंदुस्तान में रहे चाहे वह किसी रंग या जाति का क्यों न हो वह हिंदू है। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठी, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, बौद्ध तथा मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। देश के संबंध में इसी उदांत भावना की अगली कड़ी के रूप में भगवान भक्त भारतीय मुसलमानों की एक लंबी नामावली बनाकर उत्तरार्द्ध भक्त माल में उन्होंने शामिल करा दिया जिसका सिद्धांत वाकया था, ''इन मुसलमान हरिजन पै कोटिन हिंदू वारिए।''

जुलाई सन् 1874 में अपने द्वारा प्रकाशित कवि वचन सुधा पत्रिका के संपादकीय लेख में भारतेंदु ने अत्यंत पीड़ापूर्वक लिखा था, ''बीस करोड़ भारतवासियों पर पचास हजार की संख्या वाले अंग्रेज शासन करते हैं।'' यह स्थिति असह्य है। इस बीस करोड़ में हिंदू-मुसलमान दोनों हैं। दूसरे देशों के लोग क्या अंग्रेजों से लड़कर मुक्त नहीं हुए? वे अगर मुक्त हुए तो भारत के लोग मुक्त क्यों न हो? अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरणा लेने की बात सर्वप्रथम उन्हीं की मस्तिष्क की उपज थी। इससे भारत भी स्वतंत्रता लाभ कर सकता है, यह उन्हीं का कथन था। स्मरण रहे कि जिन दिनों अंग्रेज शासक भारतीय जनता को बार-बार एक स्वस्थ तथा न्यायपूर्ण शासन देने का दंभ भर रहे थे, उन दिनों भी इस अस्त्रपूजक अंग्रेज शासकों के काले कारनामों का भंडाफोड़ कर रहे थे।

''तुम्हें गैरों से कब फुर्सत
हम अपने गम से कब खाली।
चलो बस हो चुका मिलना न
हम खाली न तुम खाली।''

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक भारत में मुसलमान शासकों के समय से चली आ रही फारसी सरकारी कार्यालयों एवं कचहरियों की भाषा थी, जबकि भारतीय जन सामान्य की यह भाषा नहीं थी। इससे जनता को बड़ी कठिनाइयों का सामन करना पड़ता था। इन्हें दूर करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सन् 1836 में एक कानून पास किया, जिनके अनुसार सरकारी कार्यों के लिए हिंदी के शब्द प्रयुक्त होने थे। जिसकी लिपि अरबी-फारसी के ही रहे। किंतु इस कानून ने जनता का कोई हित न हुआ उल्टे देश में जहां-तहां आंदोलन शुरू हो गए तथा हिंदू तथा मुसलमान दोनों

के बीच भेद-भाव बढ़ते चले गए। भारतेंदु एवं उनके मंडल के सहयोगी इस बात पर दृढ़ थे कि जब तक इस देश की एक अपनी भाषा नहीं होगी विदेशियों से चलने वाला हमारा संघर्ष दमदार न होगा। अतः इन लोगों ने मिल-जुल कर जून 1877 में भारतेंदु हरिश्चंद्र के सभापतित्व में एक 'हिंदी वर्द्धनी सभा' नाम की संस्था स्थापित की। इस अवसर पर भारतेंदु ने हिंदी भाषा संबंधी एक बड़ा ही सारगर्भित व्याख्यान दिया जिसमें अंग्रेजी तथा संस्कृत से लेकर अरबी-फारसी आदि समस्त भाषाओं से हिंदी को सरल, सुबोध एवं सहज ग्राह्य बताकर हिंदी के पक्ष में वकालत की गई। इस व्याख्यान के अंतर्गत कुल 98 दोहे हैं और इसका 5 वां दोहा सार्वकालिक एवं सनातन है, जिसे राजभाषा के संदर्भ में सर्वाधिक ख्याति मिल चुकी है।

''निजभाषा उन्नति अहै
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान कै
मिटत न हिय को शूल।।''

यह बात बेहिचक कही जा सकती है कि स्वदेशी भावन के सृजन से लेकर राजभाषा हिंदी के प्रचार प्रसार की लंबी यात्रा की ओर भारतीय जनता को ले जाने का श्रेय सर्वप्रथम भारतेंदु को ही है।

''परतंत्र भारत ने भारतेंदु, प्रताप नारायण, प्रेमधन, महावीर प्रसाद द्विवेदी से लेकर प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण तथा दिनकर सरीखे कई मूर्धन्य रचनाकार पैदा किए पर आज का स्वाधीन भारत उलूल-जूलूल रचनाकार एवं उसी रंग में रंगे पाठक भी पैदा कर रहा है। जबकि आज भी देश-दशा में बहुत सी वैसी ही बातें देखने को मिल रही है जो भारतेंदु के समय थी।'' वस्तुतः आज की स्थिति में राष्ट्र हितों से विमुख तथा अपने ही व्यक्तिगत स्वार्थों के पीछे पागल बनी हुई वर्तमान पीढ़ी के लिए भारतेंदु जैसे राष्ट्रप्रेमी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रेरणा एवं प्रोत्साहन लेने की आवश्यकता है।

इन्होंने अपने कार्यों से हिंदी साहित्य के क्षेत्र में सदा के लिए स्थायी रूप से स्थान बनाया है। अपनी विशिष्ट सेवाओं के कारण ही ये आधुनिक हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्तक कहे जाते हैं।

भारतेंदु का यश दिगंत व्यापी था। अतः उसकी प्रगति को समेट पाना शब्द-सामर्थ्य के बाहर की बात है।

153 एम.आई.जी., लोहियानगर, कंकड़बाग
पटना–800020

हिंदी के प्रणेता—युग प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र

स्नेह ठाकुर

इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश-परंपरा के कुल-दीपक, अपने समय के प्रसिद्ध कवि बाबू गोपालचंद्र 'गिरिधरदास' के सुपुत्र कविवर भारतेंदु हरिश्चंद्र जिन्हें कविता तो विरासत में मिली थी, उस विरासत को उन्होंने अपने बल-बूते पर जिस ऊंचाई पर पहुंचाया वह किसी भी साहित्य-प्रेमी, हिंदी-प्रेमी का मस्तक उनके प्रति भाव-विह्वल हो श्रद्धा से नतमस्तक कर उसे अभिभूत कर देता है।

हरिश्चंद्र ने बचपन से ही काव्य-रचना आरंभ कर दी थी, उन्होंने अल्पायु में ही कवित्व-प्रतिभा एवं सर्वतोमुखी रचना-क्षमता का ऐसा भव्य परिचय दिया था कि उस समय के पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने 1880ई. में उन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि से सम्मानित किया, हरिश्चंद्र ने 'होनहार बिरबान के होत चीकने पात' की उक्ति को चरितार्थ किया था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र काशी के अत्यंत समृद्ध परिवार में जन्मे थे, इनका जीवन राजसी वैभव का था, किंतु भारतेंदु ने धन की सदैव उपेक्षा की, वे महान् दानी थे, उनका अंतिम समय अभावग्रस्त था। भारतेंदु हरिश्चंद्र न केवल महान् साहित्यकार थे, वरन् महान् मानव भी थे, वे अत्यंत जीवंत एवं मित्र परायण व्यक्ति थे, उनकी जिंदादिली की कहानियां साहित्य-क्षेत्र के साथ-साथ काशी के लोक-जीवन में भी प्रचलित हैं, उन्होंने अपने जैसे समान-धर्म साहित्यिक एकत्रित किए, उन्हें प्रोत्साहित किया और उनकी रचनाएं छापी, इसलिए भारतेंदु युग में एक भारतेंदु मंडल भी था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का व्यक्तित्व हिंदी साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तन का सूचक था। उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नए मार्ग पर खड़ा किया, वे साहित्य के नए युग के प्रवर्तक हुए, उस काल में यद्यपि नए-नए विचारों, भावनाओं का संचार हो चुका था पर हिंदी उनसे दूर थी, भारतेंदु का पूर्ववर्ती काव्य साहित्य जिसकी महिमामयी वाणी जो संतों के महिमामंडित आश्रमों, उनकी पावन पुनीत कुटीरों से निकल राजाओं और रईसों के दरबार में पहुंच गयी थीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उस काव्य-सुधा को दरबारीपन से निकाल, भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी की अमृतमयी जल-धारा से ओत-प्रोत कर, उसे जन-मानस के संमुख लोक-जीवन के हितार्थ खड़ा कर दिया। रीतिकालीन कविता समाज के उच्च वर्ग की रुचि तक सीमित थी, उस युग में काव्य का भाव-क्षेत्र संकुचित और अभिव्यक्ति कृत्रिम हो गई थी, भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी कविता की इस जड़ता को दूर किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र राष्ट्रीय विचारों के देश-प्रेमी व्यक्ति थे, उनका साहित्य साम्राज्यवाद का विरोध करता है। देश की विषमता का चित्रण करता है, उसकी पीड़ा व्यक्त करता है और उस विषमता को दूर करने की प्रेरणा देता है, साहित्य उस राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना का सहचर बन रहा था जो साम्राज्यवाद के साथ सामंतवाद का भी विरोध करने लगा था।

भारतेंदु के साहित्य में भक्ति, रीति और आधुनिक धाराएं हैं, किंतु उनका ऐतिहासिक महत्त्व आधुनिक साहित्य के प्रवर्तक के रूप में हैं क्योंकि नए बोध पर आधारित यह धारा ही विकसनशील थी। इन गुणों के कारण आधुनिक साहित्य के प्रारंभिक दौर को भारतेंदु-युग कहा जाता है। परवर्ती हिंदी साहित्य का विकास जिस-जिस दिशा में हुआ उस पर सबसे पहले भारतेंदु और उनके सहयोगी रचनाकार चले थे।

भारतेंदु और उनके सहयोगी रचनाकारों ने अधिकांशतः ब्रजभाषा में ही कविता की है यद्यपि भारतेंदु ने स्वयं, संभवतः प्रयोग के लिए खड़ी बोली में भी कविता की है, उर्दू में 'रमा'नाम से तो वे कविता करते ही थे, भारतेंदु ने खुसरो जैसी पहेलियां और मुकरियां भी लिखी हैं। उनके अनेक सहयोगियों की भी काव्य के क्षेत्र में यही स्थिति थी, किंतु इस विषय में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि इनकी बज्र भाषा रीतिकालीन कवियों की ब्रजभाषा से भिन्न है इन ब्रजभाषा पर वैचारिकता और गद्यात्मकता का दबाव है। इसका वाक्य-गठन खड़ी बोली के वाक्य-गठन में ढला है। भारतेंदु ने भक्ति और काव्य रीति दोनों परंपराओं में कविता की है।

भारतेंदु और भारतेंदुयुगीन कवियों ने कविता से गद्य का काम लिया था, भारतेंदु ने तो एक पूरा भाषण ही दोहों में लिखा था, यह इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि काव्य भाषा के लिए उस समय खड़ी-बोली की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा था।

इस दौरान भाषा-समस्या की ओर ध्यान आकर्षित हुआ था, जातीय चेतना, राष्ट्रीय

चेतना के रूप में भाषा-समस्या की ओर भारतेंदु हरिश्चंद्र का ध्यान जाना। अभूतपूर्व बात थी, उन्होंने लिखा—

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को शूल।।''

भारतेंदु युग में ही जीवन की समस्याएं कविता की विषय-वस्तु बन गई थी, भारतेंदु की प्रकृतिपरक कविताओं में भी देश की दुर्दशा और भविष्य के स्वप्न के विचार आ जाते हैं। यहां पुराने विषय नया बोध और नए संदर्भ जगाते हैं।

भारतेंदु की कविताएं विविध-विषय-विभूषित हैं—भक्ति, शृंगारिकता, देश-प्रेम, सामाजिक परिवेश और प्रकृति के विभिन्न संदर्भ को लेकर उन्होंने विपुलता से, लगभग सत्तर काव्य-कृतियों की रचना की, जो कहीं सरसता और लालित्य में अद्वितीय हैं तो कहीं वर्णनात्मकता की परिधि में सीमित 'प्रेम-मालिका', 'प्रेम-सरोवर', 'गीत गोविंदानंद', 'वर्षा-विनोद', 'विनय- प्रेम-पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणु-गीति' आदि उनकी उल्लेखनीय काव्य-कृतियां हैं।

भारतेंदु अपनी अनेक रचनाओं में जहां प्राचीन काव्य-प्रवृत्तियों के अनुवर्ती रहे, वहां नवीन काव्य-धारा के प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है, राजभक्त होते हुए भी वे देशभक्त थे, दास्य-भाव की भक्ति के साथ ही उन्होंने माधुर्य-भाव की भक्ति भी की है, नायक-नायिका के सौंदर्य-वर्णन में ही न रम कर उन्होंने उनके लिए कर्त्तव्य का भी निर्देश किया है, इतिवृत्तात्मक काव्य-शैली में हास्य-व्यंग्य का समावेश किया है, अभिव्यंजना-क्षेत्र में भी उन्होंने परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों को अपनाया है, जो उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्ति को दर्शाता है। 'हिंदी भाषा' में प्रबल हिंदीवादी के रूप में सामने आने पर भी उन्होंने उर्दू-शैली में कविताएं लिखी हैं। काव्य-रचना के लिए ब्रज-भाषा को ही उपयुक्त मानने पर भी वे खड़ी-बोली में 'दशरथ-विलाप' व 'फूलों का गुच्छा' कविताएं लिखते हैं। काव्य-रूपों की विविधता उनकी विशेषता है। छंदोबद्ध कविताओं के साथ ही उन्होंने गेय पद-शैली में अपनी प्रवीणता स्थापित की है। संक्षेप में, कविता के क्षेत्र में वे नवयुग के अग्रदूत थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र से आधुनिकता का श्रीगणेश हिंदी काव्य में हुआ है, इस संदर्भ में आधुनिकता का अर्थ है—अपने वातावरण, अपने परिवेश के प्रति जागरूकता, भारतेंदु तथा उनसे प्रभावित कवियों में अपनी एवं देश की परिस्थितियों के प्रति जागरूकता है, भारतेंदु युग का हिंदी कवि राजदरबारों की कृपा पर निर्भर नहीं है। वह उच्च वर्ग की रुचि के अनुसार काव्य सृजन हेतु बाध्य नहीं है। वह समाज के निकट आया और उसने युग-भावना को अपनी रचना में अभिव्यक्ति दी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र सामाजिक और राष्ट्रीय स्थिति के प्रति सजग थे। विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा, खान-पान आदि निषेधों से उत्पन्न कुपरिणामों पर प्रकाश डालने वाली भारतेंदु की निम्नांकित पंक्तियां युग के कवि की जागरूकता की परिचायक हैं—

''विधवा विवाह निषेध कियो,
विभिचार प्रचारयो।।
रोकि विलायत गमन कूप मंडूक बनायो।।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो।।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।।
ईश्वर सौं सब बिमुख किए हिंदुन घबराई।।
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाई।।
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाई।।''

देश की रूढ़वादिता, देश की निर्धनता, समाज के कर्णधार कहलाने वाले नेताओं की स्वार्थपरता, पारस्परिक कलह और सामाजिक दिशाहीनता पर भारतेंदु हरिश्चंद्र क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं—

''रोवहु सब मिलिकै, आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।
तहं रहीं मूढ़ता कलह अविद्या राती।
अब जहं देखेहु तहं दुःखहिं दुःख दिखाई।।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।
धन विद्या बल मान वीरता कीरत छाई।
रही जहां तित केवल अब दीनता लखाई।।''

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने आर्थिक विषमता, स्वाधीनता, नारी-शिक्षा, धार्मिक पाखंड, हिंदी भाषा सब पर अपने विचार प्रकट किए, उनका व्यक्तित्व आंदोलनकारी था, वे सच्चे अर्थ में करुणावान थे, वे व्यक्ति नहीं संस्था थे, इसीलिए वे नई चेतना के प्रतिनिधि, प्रतीक साहित्यकार बन पाए, प्रणेता, युग-प्रवर्तक बने।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) ने अपने संक्षिप्त जीवन-काल में हिंदी काव्य को समाज और जन-भाषा के निकट लाकर आधुनिकता का मार्ग दिखाया था।

जागरण-काल में समाज के अभिजात्य वर्ग ने नहीं वरन् सामान्य जन ने जागृति का परिचय दिया था। चेतना की समुचित अभिव्यक्ति के लिए जन-भाषा की आवश्यकता थी, ब्रज भाषा के साथ रीतिकालीन सामंतीय पतनशील काव्य की परिपाटी जुड़ी हुई थी। इससे मुक्त होने के लिए भारतेंदुयुगीन कवियों ने जन-भाषा खड़ी-बोली का विकास किया।

कवि होने के साथ ही साथ भारतेंदु पत्रकार भी थे। 18 वर्ष की आयु में ही, 1868 ई. में उन्होंने 'कवि वचन सुधा' नामक प्रसिद्ध पत्रिका निकाली। इसमें साहित्यिक रचनाएं तो होती ही थीं, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचार और टिप्पणी भी होती थीं। इसी पत्रिका में उन्होंने विलायती कपड़े के बहिष्कार की अपील और ग्राम-गीतों के संकलन की योजना प्रकाशित की थी। उनके संपादन में प्रकाशित होने वाली हिंदी के लिए महत्त्वपूर्ण 1873 ई. में प्रकाशित दूसरी पत्रिका 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक

मासिक पत्रिका थी। बाद में इस पत्रिका का नाम उन्होंने 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' रख दिया, 1874 ई. में उन्होंने स्त्री-शिक्षा के लिए 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली।

नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ी-बोली की गद्य-शैली के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया था।

भारतेंदु काल में ही गद्य की विधा सहसा अत्यंत लोकप्रिय हो उठी थी, नाटक पत्र-पत्रिका, उपन्यास, कहानी इन सबमें गद्य साहित्याकाश पर विस्फोटित-सा हो उठा, अपने इंद्रधनुषी रंगों से गद्य ने सबको सम्मोहित कर दिया।

नाटक की विधा काव्य की भांति हमारे साहित्य में प्राचीन है, इसका सूत्रपात और विकास संस्कृत साहित्य-परंपरा में हो चुका था, और अब हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में, भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से यह विधा नए रूप में सामने आई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसका विकास तीव्रतर गति से हुआ है।

गद्य रचना के अंतर्गत भारतेंदु का ध्यान नाटकों की ओर गया। भारतेंदु ने काफी संख्या में मौलिक नाटक लिखे और बंगला तथा संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया। उनके मौलिक नाटक थे—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'चंद्रावली', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत दुर्दशा', 'नील देवी', 'अंधेर नगरी', 'प्रेम जोगनी', 'सती प्रताप' और 'चंद्रावली' में प्रेम का महत्त्व है। वहीं 'भारत दुर्दशा' में देश की दशा का, 'विषस्य विषमौषधम्' में देसी रियासतों के कुचक्रों के जीवन की झांकी है। 'अंधेर नगरी' उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यंग्य-नाटक है, जो सत्ता की विवेकहीनता का रूप प्रस्तुत करता है।

उनके द्वारा अनूदित नाटक हैं—'विद्यासुंदर' (18 वर्ष की आयु में इसका उन्होंने बंगला से हिंदी में अनुवाद किया था), 'पांखड-बिडंबन', 'धनंजय-विजय', 'कर्पूर-मंजरी', 'मुद्रा-राक्षस', 'सत्य हरिश्चंद्र' और 'भारत-जननी'। भारतेंदु ने यात्रा वर्णन भी लिखा है। उन्होंने सुदूर देहाती क्षेत्रों की यात्रा बैलगाड़ी से की। 1865 ई. में उन्होंने जगन्नाथ पुरी की जो यात्रा की थी, उसका उनके जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

भारतेंदुयुगीन साहित्य भारतीय समाज के पुराने आधार-स्तंभों से संतुष्ट न रह सुधारवादी की भूमिका में अवतरित हो रहा था। भारतेंदु और उनके साथी समर्थ साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य को सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतना से आलोड़ित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की जीवन को समझाने-बुझाने, उसे देखने, उस पर तार्किकता से विचार करने की अपनी ही एक दृष्टि थी। साहित्य को उन्होंने वृहत्तर जीवन की संगति के रूप में देखा उससे अलग नहीं।

देशभक्त के रूप में भी भारतेंदु हरिश्चंद्र अविस्मरणीय हैं। 1874 ई. में उन्होंने विलायती कपड़ों का बहिष्कार करने का व्रत ले लिया था और साथ ही देशवासियों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दी थी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाओं से न केवल हिंदी साहित्य में आधुनिक युग का उदय हुआ वरन् वे साहित्यकार के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। यथार्थ-बोध के साथ-साथ विषमता की पहचान, उनका अहसास और विषम स्थिति से उबरने की छटपटाहट, भारतेंदु हरिश्चंद्र की विशेषता है, आधुनिक साहित्य रस-मग्न करने के स्थान पर आनंद के साथ कर्म की प्रेरणा भी देने लगा। साहित्य सामाजिक चेतना और उत्तरदायित्व से युक्त हो गया। रीतिवादी साहित्य से आधुनिक साहित्य की यही विशेषता थी। यह विशेषता ही भारतेंदु युग को रीतिकालीन साहित्य से पृथक करती है, इस विशेषता के कारण ही भारतेंदु युग हिंदी के आधुनिक साहित्य का प्रवर्तक युग है और इसके प्रवर्तक थे भारतेंदु हरिश्चंद्र।

सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त होने पर साहित्य की विषय-सामग्री विस्तारित हुई, साहित्य की विषय-सामग्री-परिधि में ऐसी अनेक विषय-वस्तु समाहित हो गई जो पहले उसमें न थी। परिणामतः अनेक नई विधाओं का भी प्रवर्तन हुआ इनमें से अधिकांश गद्य विधाएं थीं। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामाजिक विषयों पर विचारों का प्रसार हुआ। हिंदी साहित्य में नई विधा, संपादकीय और निबंध का आविर्भाव हुआ। हिंदी के इन निबंधों का रूप थोड़ा अनगढ़ था। वे ललित, विचारपरक, अनौपचारिक और व्यंग्य-विनोदपूर्ण थे। भारतेंदु का 'स्वर्ग की विचार-सभा' उल्लेखनीय है। भारतेंदु ने 'नाटक' नामक निबंध में अपने मौलिक विचार प्रकट किए हैं, जहां इस निबंध में उन्होंने यह बतलाया है कि नाटककार को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए वहीं नाटक की दृश्यता और उसकी प्रभावोत्पादकता पर भी बल दिया है। समकालीनता के दबाव को रचना के लिए आवश्यक बताते हुए उन्होंने लिखा है, ''सहृदयगण के अंतःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकीय दृश्य-काव्य प्रणयन करने योग्य है।'' इस निबंध को विचारपरक निबंध और साहित्यालोचन दोनों विधाओं में रखा जा सकता है। भारतेंदु के नाटक संबंधी इन विचारों को हिंदी आलोचना का प्रवर्तन माना जा सकता है। यह हिंदी आलोचना का प्रारंभिक रूप था।

उपर्युक्त तथ्य को दृष्टिगत् रखते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र को हम हिंदी की आलोचना विधा का जनक भी मान सकते हैं। यद्यपि कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने नाटक संबंधी विचार नाटककार की हैसियत से व्यक्त किए हैं। समीक्षक या आलोचक की हैसियत से नहीं, तथापि विचारों के इस प्रकटीकरण को ही हम हिंदी आलोचना का प्रारंभ मान सकते हैं। भारतेंदु ने नाटक पर विचार करते समय उसकी प्रकृति, समसामयिक जन-रुचि एवं प्राचीन नाट्यशास्त्र की उपयोगिता पर विचार किया है। उन्होंने बदली हुई जन-रुचि के अनुसार नाट्यशास्त्र में परिवर्तन करने पर विशेष बल दिया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के

नाटक-विषयक लेख में आलोचना के गुण मिल जाते हैं। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। ऐसी दशा में उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रथम आलोचक कहना अतिशयोक्ति न होगी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का ध्यान उपन्यास विधा की ओर भी गया था। उन्होंने एक बार अपने एक मित्र को लिखा था, ''जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गए हैं, अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी संपादक जैसे बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरणजी कोई भी उपन्यास लिखे तो उत्तम''।

भारतेंदु ने 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नामक कहानी लिखनी शुरू की थी, जिसे वे पूरा नहीं कर पाए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कश्मीर-कुसुम' और 'बादशाह दर्पण' लिख कर इतिहास-लेखन तथा जयदेव का जीवनवृत्त लिखकर जीवन-चरित लिखने की प्रवृत्ति का शुभारंभ भी किया है।

रीतिकाल के बाद आधुनिक काल का आरंभ हुआ और पुनर्जागरण के अग्रदूत के रूप में भारतेंदु का आविर्भाव हुआ। भारतेंदु की सांस्कृतिक-साहित्यिक चेतना का धरातल व्यापक था। उन्होंने उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के संदर्भ में हिंदी का विकास किया और उसे प्रादेशिक स्तर से ऊपर उठाकर भारतीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया, इसके बाद जागरण-सुधार की चेतना प्रबल हुई जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का उदय हुआ।

भारतेंदु-युग अथवा पुनर्जागरण-काल का उदय हिंदी कविता के लिए नवीन जागरण के संदेशवाहक युग के रूप में हुआ था। इस युग की कविता का बहुल अंश वस्तुनिष्ठता, बुद्धिवादिता, वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता से युक्त है, किंतु कुछ कवियों में सौंदर्यवादी जीवन-दृष्टि का उन्मेष भी मिलता है।

विषय और भाषा के संबंध में इस कोटि के कवियों के पूर्वाग्रह का ही परिणाम यह हुआ कि कालांतर में काव्य-क्षेत्र में ब्रज-भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया, भारतेंदु एवं उनके समानधर्मी रचनाकारों द्वारा हिंदी साहित्य में जिस आधुनिकता का प्रवर्तन हुआ, उसके प्रभाव से काव्य-भाषा गद्योन्मुख हो रही थी, यद्यपि वह ब्रज भाषा ही बनी हुई थी। पुराने काव्य-रूपों का पुनः प्रचलन और नए काव्य-रूपों का प्रारंभ हो रहा था। हिंदी में साहित्य का प्रधान माध्यम पहली बार बन रहा था और साथ ही साथ कविता की भाषा भी गद्य की ओर झुक रही थी।

भारतेंदु-युग हिंदी गद्य के बहुमुखी विकास का युग है।

भारतेंदु-युग की मुख्य उपलब्धि यह है कि इसके पूर्व रीतिकाल में जिस वैयक्तिक शृंगारमयी काव्य-धारा पर बल रहा था। उसके स्थान पर कविगण समाज और राष्ट्र को उद्‌बोधन देने वाली लोकमंगलकारी दृष्टि की ओर उन्मुख होने लगे थे।

हिंदी साहित्य में आधुनिक जीवन-बोध के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म उन्नीसवीं शती के ठीक मध्य में सन् 1850 में हुआ, सन् 1850 में इस धरती पर आया एक महान् व्यक्ति, जिनका भौतिक शरीर सन् 1885 में इस संसार से विलुप्त हो गया था, तथापि इस थोड़े से अंतराल में, 35 वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपनी अनेक अद्वितीय रचनाओं से साहित्य की अनन्य सेवा की। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया और अनेक विधाओं का प्रवर्तन किया, और इस प्रकार वे हिंदी साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तक बने, भारतेंदु हरिश्चंद्र का भव्य व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार साहित्याकाश में चमका कि वह अपने अस्तित्व की छाप सदा के लिए छोड़ गया, अजर-अमर हो गया।

हिंदी पत्रकारिता के जनक

डॉ. रवि वर्मा 'मधुप'

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम चरण का नामकरण जिस महान् विभूति के नाम पर भारतेंदु युग (1850-1900 ई.) रखा गया, उन हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 ई. को गोपालचंद्र के यहां पार्वती देवी की कोख से हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, ''जैसे कीचड़ में कमल खिलता है, वैसे ही इस अंग्रेज भक्त महाजन परिवार में भारतेंदु का जन्म हुआ।'' पांच वर्ष की आयु में माता तथा दस वर्ष की आयु में पिता को खो देने वाले हरिश्चंद्र स्वंय भी केवल 34 वर्ष 4 माह की अल्पायु में 6 जनवरी, 1885 को स्वर्ग सिधार गए।[1]

भारतेंदु विराट व्यक्तित्व के धनी थे। उनके व्यक्तित्व में रसिकता, सहृदयता, चारित्रिक दृढ़ता, स्पष्टता, निर्भीकता, उदारता, दानवीरता, सार्वजनिक कार्यशीलता, नेतृत्व क्षमता आदि अनेक गुणों का अद्‌भुत सामंजस्य विद्यमान था। वे एक साथ पत्रकार, प्रकाशक, संपादक, अभिनेता, कवि, उपन्यासकार, निबंधकार, नाटककार, ओजस्वी वक्ता, सिद्धहस्त आलोचक, अनुवादक एवं टीकाकार, व्यंग्यकार आदि थे। उनके द्वारा रचित विपुल साहित्य में जो कुछ अभी तक संकलित हो पाया है, वह भारतेंदु ग्रंथावली के तीन खंडों में उपलब्ध है। मदन गोपाल ने 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' शीर्षक अपनी पुस्तक के परिशिष्ट में छह पृष्ठों में उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनमें 20 नाटक (कुछ अपूर्ण एवं अप्रकाशित), 8 आख्यायिका तथा उपन्यास (इनमें 2 संदिग्ध हैं तथा 3 अपूर्ण हैं), 28 काव्य, 7 स्तोत्र, 8 अनुवाद या टीका, 18 परिहास (गद्य-पद्य), 7 धर्म संबंधी इतिहास तथा चिह्नादि वर्णन, 9 महात्म्य (अधिकतर गद्य), 27 ऐतिहासिक लेख एवं जीवन चरित्र, 13 राजभक्ति सूचक, सैंकड़ों छोटे-बड़े लेख (यात्रा वर्णन, रस-व्याख्यान, ज्योतिष, स्त्री शिक्षा, जगत व्यवहार आदि पर) 75 गद्य-पद्य रचनाएं जो भारतेंदुजी ने संपादित, संग्रहित या प्रोत्साहन देकर लिखवाई।[2]

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'भारतेंदु हरिश्चंद्र—प्रतिनिधि संकलन' के परिशिष्ट 2 में संपादक कमला प्रसाद ने भारतेंदु की 72 काव्य रचनाएं (प्रबंध तथा मुक्तक काव्य); 24 नाटक (मौलिक, अनूदित), प्रहसन, नाटिका, ओपेरा, गीत रूपक, प्रस्तावना, नाट्य कला पर समीक्षात्मक निबंध; 62 गद्य रचनाएं (ऐतिहासिक रचनाए, पुरावृत्त संग्रह, धार्मिक रचनाएं, आख्यान प्रहसनात्मक) उल्लिखित की हैं।[3]

इस लेख में भारतेंदु हरिश्चंद्र के केवल पत्रकार-संपादक पक्ष पर ही विचार किया जा रहा है, इसलिए उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों पर चर्चा नहीं की जाएगी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र जब सात वर्ष के थे, उस समय अंग्रेजों के शोषण, अत्याचार एवं क्रूरता से पूर्ण शासन के विरुद्ध भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम लड़ा गया। अंग्रेजों ने अत्यंत बर्बरतापूर्ण इसे कुचल अवश्य दिया, किंतु वे भीतर तक हिल गए। ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से भारत का शासन 1858 में ब्रिटिश सरकार के हाथ में चला गया। भारतीयों में सुशासन की आशा जगी, किंतु अंग्रेज अत्यंत सतर्क हो गए थे। उनका दमन और शोषण चक्र रुका नहीं, अपितु और भी तीव्रता से चलने लगा। विक्टोरिया के शासनकाल में भारत से धन इंग्लैंड जाने की गति कंपनी-राज्य की अपेक्षा चौगुनी हो गई। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार हेतु युद्धों का खर्च भी भारत पर ही थोपा गया। भारतीय उद्योगों को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट किया गया। अनेक प्रकार के कर लगाए गए। भारत को कच्चे माल के स्रोत तथा तैयार माल के बाजार के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। शोषण की गति बढ़ाने में यातायात तथा संचार के साधनों ने भी सहायता की। इस व्यापारिक लूट के बारे में ब्रुक एडम्स ने लिखा है—''शायद जब से दुनिया शुरू हुई, किसी भी पूंजी से कभी इतना मुनाफा नहीं हुआ, जितना कि हिंदुस्तान की लूट से...।'' इस लूट के संबंध में इतना जान लेना पर्याप्त है कि अंग्रेजों की एक साल की लूट महमूद गजनवी की अठारह बार की लूटों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। सन् 1850 से 1900 ई. के बीच भारत में अठारह अकाल पड़े, जिनमें देश की 20 करोड़ की जनसंख्या में से लगभग दो करोड़ व्यक्ति भूख से मरे।[4]

भारतेंदु ने अपने अल्पकालीन जीवन में भारत को जानने-समझने के लिए पुरी, हरिद्वार, पुष्कर आदि तीर्थों तथा उदयपुर, चित्तौड़ आदि ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा की। इन्हीं यात्राओं से उन्हें भारत के आम आदमी की स्थिति तथा दुःख-दर्द जानने का अवसर मिला। भारतेंदु में साहित्य रचना की क्षमता

पैतृक थी। अपने पिता गोपालचंद्र तथा दादा हर्ष चंद्र से उन्हें यह गुण विरासत में मिला था। उनके पिता ने गिरिधर दास के उपनाम से 27 वर्ष की अल्पायु में ही लगभग 40 रचनाएं लिखीं। उसी संस्कार के वशीभूत भारतेंदु ने भी पांच-छह वर्ष की अवस्था में ही एक दोहा बनाकर 'पूत के पांव पालने में दिखते हैं', कहावत को चरितार्थ कर दिया था। लगभग 16 वर्ष की अवस्था से लेकर 34 वर्ष की आयु तक (लगभग 18 वर्ष का सक्रिय रचना काल) उन्होंने हिंदी साहित्य में जो योगदान दिया, वह अद्‌भुत तथा अविश्वसनीय प्रतीत होता है। उनके प्रभाव का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनकी मृत्यु के पंद्रह वर्ष बाद (1900 ई.) तक के काल को हिंदी साहित्य के इतिहास में सर्वसंमति से 'भारतेंदु काल' स्वीकार किया गया।

भारतेंदु को मानो यह पता था कि उनके पास समय कम है तथा काम अधिक। संभवतः इसीलिए उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक पल का सदुपयोग किया। मातृभाषा की सेवा के लिए उन्होंने 18 वर्ष की अल्पायु में 'कवि वचनसुधा' नामक मासिक पत्र 1868 में प्रकाशित करना प्रारंभ किया। पहले इसमें केवल पद्य रचनाएं छपती थीं। धीरे-धीरे यह मासिक से पाक्षिक तथा पाक्षिक से साप्ताहिक हो गया और इसमें गद्य रचनाएं भी छपने लगीं। 'कवि वचनसुधा' का सिद्धांत वाक्य निम्नलिखित था—

''खलगमन सां सज्जन दुखी
मति होहिं हरि-पद मति रहै।
उपधर्म छूटैं सत्य निज भारत
गहै कर दुख बहैं।
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम
होरिं जग आनंद लहै।
तजि ग्राम-कविता सुकविजन की
अमृत बानी सब कहै।।''[5]

भारतेंदु के पूर्वजों की ख्याति तथा उनके अंग्रेजों के साथ अच्छे संबंधों के कारण प्रारंभ में भारतेंदु पर अंग्रेजों की कृपा दृष्टि बनी रहती थी। जब भारतेंदु आनरेरी मजिस्ट्रेट थे, तब सरकार 'कवि वचन सुधा' पत्रिका की 500 प्रतियां खरीदती थी। बाद में सरकार ने केवल 100 प्रतियां लेनी शुरू कर दीं। 'मर्सिया' शीर्षक एक 'पंच' के प्रकाशित होने पर यह पत्र सरकार का कोप भाजन बना और सरकार ने इसे खरीदना ही बंद कर दिया। भारतेंदु को इससे काफी हानि हुई। सरकार के इस मनमाने निर्णय का विरोध काते हुए उन्होंने लिखा, ''डिसलायलटी-हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। 'कवि वचन सुधा, नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों हम उसके पकड़ने को भेजे गए? हम लाचार हैं।''[6]

'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन भारतेंदु समय पर नहीं कर पाते थे, इसलिए पंडित चिंतामणि धड़फल्ले के आग्रह पर भारतेंदु ने यह पत्र उन्हें सौंप दिया। 'कवि वचन सुधा' से संतुष्ट न रहने पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1873 के अक्तूबर महीने से 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक मासिक पत्र निकाला। आठवीं संख्या के बाद से जून 1874 से यही पत्र 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के नाम से प्रकाशित होने लगा। 1880 ई. में भारतेंदु ने इसे पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या को सौंप दिया, जिन्होंने इसे 1884 तक 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' के नाम से प्रकाशित किया, किंतु दो महीने बाद ही भारतेंदु की मृत्यु के साथ ही इस पत्रिका का अस्तित्व भी लुप्त हो गया। सन् 1874 में भारतेंदु ने 'बाल बोधिनी' नामक स्त्रियोपयोगी मासिक पत्रिका प्रकाशित करनी शुरू की। चार वर्ष पश्चात् उसका प्रकाशन बंद हो गया। भारतेंदु ने इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'भगवद् भक्ति तोषिणी' नामक पत्रिका भी कुछ मास तक निकाली। वे हास्य रस की 'पंच' तथा उर्दू पत्रिका 'कासिद' भी निकालना चाहते थे, किंतु ग्राहकों के न मिलने से वे ये दोनों पत्रिकाएं नहीं निकाल सके।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं की विषय वस्तु तथा महत्ता पर अब हम चर्चा करेंगे। इन पत्र-पत्रिकाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—'कवि वचन सुधा' तथा 'हरिश्चंद्र चंद्रिका'।

'कवि वचन सुधा' में पुरानी तथा नई शैली की काव्य रचनाएं और विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित होते थे। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'कवि वचनसुधा' के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है—

'''कवि वचन सुधा' शुद्ध साहित्यिक पत्रिका नहीं थी। वह साहित्य, समाचार और राजनीति की पत्रिका थी। उसके 1872 के अंकों के मुख पृष्ठ पर छपा रहता था—''A bi-monthly journal of Literature, News and Politics''। यह पत्रिका यूरोप के नए ज्ञान-विज्ञान से हिंदी पाठकों को परिचित कराती थी। इसी पत्रिका में भारतेंदु ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार के लिए अपना प्रतिज्ञा पत्र छपा था। इसी में उन्होंने खानदेश के बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए अपील छापी थी। इसी पत्रिका में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी नीति का भंडाफोड़ किया था और इसी में उन्होंने हिंदी के प्रचार और विकास के लिए आंदोलन किया था। 'कवि वचन सुधा' का एक-एक पृष्ठ पवित्र है और एक दिन हिंदी भाषी जनता उसके ऐतिहासिक महत्त्व को अवश्य समझेगी।''[7]

'कवि वचन सुधा' वास्तव में 'एक पत्रिका मात्र नहीं है, अपितु भारतेंदु युग के एक दशक के भारतीय समाज का ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसमें उस समय के भारतीय समाज में व्याप्त आक्रोश, कुंठा, निराशा, कुरीतियों के साथ-साथ अंग्रेजी शासन द्वारा भारत में किए जा रहे अन्याय, भेदभाव, शोषण, अत्याचार का जीवंत तथा रोंगटे खड़े कर देने वाला चित्र खींचा गया है।

'कवि वचन सुधा'' अपनी तरह की अलग ही पत्रिका थी। बालमुकुंद गुप्त के शब्दों में, ''यद्यपि हिंदी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत ही कम थे, तो भी हरिश्चंद्र के ललित लेखों

ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि 'कवि वचन सुधा' के हर नंबर के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था।'' इस पत्रिका में खड़ी बोली पद्य (कविता) के साथ गद्य के भी विकास पर ध्यान दिया गया। राजभक्ति के साथ-साथ देशभक्ति के पौधे भी अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होते गए।

भारतेंदु पर राजभक्त, विलासप्रिय, फिजूलखर्च जैसे आरोप लगाने वाले यदि उनकी पत्रिकाओं पर दृष्टिपात करें, तो उन्हें भारतेंदु हरिश्चंद्र के स्वाभिमानी, सजग, समाज सेवी, संवेदनशील, राष्ट्रप्रेमी, मातृभाषा प्रेमी विराट व्यक्तित्व का परिचय मिलेगा। यहां इसी उद्देश्य से संकेत रूप में उनकी पत्रिकाओं से कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

नवंबर, 1870 में लार्ड मेयो के दरबार पर भारतेंदु ने अपना प्रसिद्ध व्यंग्य लेख 'लेवी प्राण लेवी' लिखा। इस लेख में भारतेंदु ब्रिटिश अफसरों की नजरों में खटकने लगे। उसी दौरान लिखे एक लेख—'भुतही इमली का कनकौआ' के कारण उनके गुरुतुल्य राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' से उनका मनमुटाव हो गया। यह मतभेद बढ़ता ही गया। चार साल बाद 1874 में 'कवि वचन सुधा' में एक मर्सिया निकाला। इसने आग में घी का काम किया। अंग्रेज शासक क्रोध से आग बबूला हो उठे। 'कवि वचन सुधा' को सरकारी सहायता के रूप में जो 100 प्रतियां खरीदी जाती थी, वे बंद कर दी जाएंगी, ऐसी धमकी भी भारतेंदु को दी गई।

भारतेंदु ने 20 अप्रैल, 1874 को 'कवि वचन सुधा' के संपादकीय नोट में 'शंका शोधन' शीर्षक से मर्सिया के बारे में उठाए जा रहे प्रश्नों के उत्तर दिए—''मर्सिया में हमारे अनेक ग्राहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था, इससे अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं। वह राजा अंग्रेजी फैशन था, जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप में अंधेर नगरी का राज करता था, जब से बंबई और काशी इत्यादि कई स्थानों में अच्छे-अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अंग्रेजी पहिरना छोड़ देने की सौगंध खाई, तब से मानो वह मर गया।''

इससे भी सरकार की नाराजगी कम न हुई। 'कवि वचन सुधा' को मिलने वाली सरकारी सहायता बंद कर दी गई। भारतेंदु ने इस पर 8 जून, 1874 के 'कवि वचन सुधा' के अंक में 'अप्रसन्नता' शीर्षक लेख में लिखा—''आजकल हमारे पत्र के अष्टम मंगल आए हैं। बहुत से लोग हम लोगों से अप्रसन्न हो रहे हैं, श्रीयुत डायरेक्टर साहब ने पत्र के संपादक को लिख भेजा है कि 'मर्सिया' जैसे बुरे आर्टिकल लिखने से तुम्हारे पत्र का गवर्नमेंट एड बंद किया गया।'' भारतेंदु हरिश्चंद्र निराश न हुए। उन्होंने सीधे अपने पाठकों से प्रार्थना की—''मेरे ग्राहको अब तुम हमसे न रुष्ट हो क्योंकि अब हमें तुम्हारे बिना किसी का अवलंब नहीं।''

भारतेंदु सच्चे अर्थों में पत्रकार थे। उन्होंने पत्रकारों के सम्मुख एक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। सत्य के पथ पर चलकर उन्होंने सरकारी कोप की भी परवाह नहीं की। 31 अगस्त, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में 'सच मत बोलो' नामक व्यंग्य में भारतेंदु सत्य के लिए लड़ने वाले पत्रकारों को चेतावनी देते हुए लिखते हैं—''देखो सच बोलने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी। अखबार वाले इतना भूंकते हैं कोई नहीं सुनता। अंधेर नगरी है। व्यर्थ न्याय और आजादी देने का दावा है। सब स्वार्थ साधते हौ कहोगे गवर्नमेंट के लोग तुमसे भला न मानेंगे। सारांश यह कि सच्ची बात जिनसे कहोगे वे तुम्हें शत्रु जानैंगे।''

'कवि वचन सुधा' के माध्यम से जहां एक ओर भारतेंदु ब्रिटिश सरकार की खबर लेते थे, वहीं जनहित के कामों के लिए जनता को प्रेरित भी करते थे। 1872 की वर्षा ऋतु में खानदेश में खूब वर्षा हुई, जिससे बाढ़ आ गई। भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' में एक लेख लिखकर द्रव्य के लिए अपील की। विज्ञापन में यह भी लिखा कि जो पाठक द्रव्य भेजें वे 'कवि वचन सुधा' के संपादक को या 'इंदु प्रकाश', बंबई के संपादक या दक्षिण भारत में किसी मित्र को। एक सप्ताह बाद 16 अक्तूबर, 1872 के अंक में गुजरात के बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए अपील छापी तथा चंदा देने वालों की सूची भी छपी, जिसमें 20 रुपए विक्टोरिया स्कूल, झांसी के अध्यापकों ने भी भेजे थे। 1 नवंबर, 1872 के अंक में पूना में 1711 रुपए इकट्ठे किए जाने का समाचार छपा।

अंग्रेजों की वास्तविकता को सबसे पहले पहचाना सजग-सुधि संपादक-पत्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने। 30 नवंबर, 1872 की 'कवि वचनसुधा' में एक अंग्रेज स्तोत्र छपा है, जिस पर यह टिप्पणी है, ''जो लोग हाकिमों की बहुत खुशामद करते हैं, उनको यह स्तोत्र कंठ करना चाहिए।'' इस स्तोत्र में अंग्रेजों की व्याजस्तुति की भारतेंदु हरिश्चंद्री शैली देखिए—''चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं, असले तुम्हारे नख हैं, अंधेर तुम्हारा पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा हृदय है; अतएव हे अंग्रेज हम तुमको प्रणाम करते हैं।। 3।। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सैना तुम्हारा चरण है, खेताब तुम्हारा प्रसाद है अतएव हे विराट रूप अंगरेज! हम तुमको प्रणाम करते हैं।।4।।'' अंग्रेजों और अंग्रेजी राज पर इससे करारी चोट और भला क्या हो सकती थी?

22 दिसंबर, 1872 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेंदु ने साफ-साफ शब्दों में भारतवासियों को बताया कि किस प्रकार अंग्रेज हमारा धन लूट रहे हैं। वे लिखते हैं —''चाहे कैसे भी द्रव्य एकत्र किया हो अंत में सब जाएगा विलायत में, क्योंकि हमारी शोभा की सब वस्तुएं वहां से आवैंगी; कपड़ा, झाड़ फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु विलायत से आवैंगी, उसके बदले यहां से द्रव्य जाएगा।''

अंग्रेजी शिक्षा की वास्तविकता की पोल खोलते हुए 30 दिसंबर, 1872 की 'कवि वचन

सुधा' में भारतेंदु ने लिखा—''अंगरेज लोग केवल हम लोगों को उसी शिक्षा का उपदेश करते हैं, जिसमें किसी प्रकार की शिल्पादिक कोई कला न हो।'' 24 जून, 1873 के अंक में काशी के कुप्रबंध की आलोचना छपी है।

1 सितंबर, 1873 से 'कवि वचन सुधा' साप्ताहिक हो गया था। अब भारतेंदु के लिए समसामयिक एवं जागृतिमूलक विषयों पर लिखने के लिए और भी अवसर था। 'कवि वचनसुधा' के 3 नवंबर 1873 के अंक में प्रकाशित 'स्त्री शिक्षा' शीर्षक लेख में भारतेंदु कहते हैं—''यह बात तो सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी जब तक कि यहां की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी; क्योंकि यदि पुरुष विद्वान् और पंडित होवैंगे और उनकी स्त्रियां मूर्खा होंगी तो उनमें आपुस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।''

स्वभाषा के महत्त्व को भारतेंदु से अधिक हिंदी के किसी पत्रकार-साहित्यकार ने नहीं समझा। भारतेंदु के हिंदी संबंधी विचार एक स्वतंत्र लेख की मांग करते हैं। यहां हम संक्षेप में उनके पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विचारों की ही चर्चा करेंगे। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेंदु के हिंदी विषयक प्रेम को विस्तार से बताते हुए लिखा है—''भारतेंदु ने खड़ी बोली को उसके हिंदी रूप में—नाटक, निबंध, पत्रकारिता, उपन्यास और एक हद तक कविता को भी माध्यम बनाया। उनके सामने हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य रचने की समस्या भी थी। उनका यह स्वप्न था कि एक हिंदी विश्वविद्यालय खोला जाए। शिल्प की उन्नति के लिए वे बराबर जोर देते रहे थे। इसलिए विज्ञान के लिए पारिभाषिक शब्दावली की समस्या का उठ खड़ा होना स्वाभाविक था। उस समय भी ऐसे लोग थे, जो हिंदी में वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव दिखाकर हिंदी माध्यम से विज्ञान की शिक्षा देने का विरोध करते थे। भारतेंदु के समय में ही हिंदी-प्रेमी विद्वान वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार करने की तरफ ध्यान देने लगे थे। उन्हें भारतेंदु से इस काम में प्रोत्साहन मिला।''[8]

2 अक्तूबर, 1872 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेंदु का 'हिंदी भाषा' नामक निबंध छपा था। इस निबंध का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है क्योंकि हिंदी भाषा के अध्ययन का यह प्रथम व्यवस्थित प्रयास था। इस निबंध में भारतेंदु ने बनारस की बोलियों का अत्यंत विस्तृत विश्लेषण-अध्ययन करके यह सिद्ध किया कि शिष्टजन की भाषा हिंदी ही है। भारतेंदु स्वयं भोजपुरी क्षेत्र के निवासी थे। वे भोजपुरी अच्छी तरह जानते भी थे, लेकिन उन्होंने भोजपुरी के स्थान पर हिंदी भाषा को अपने साहित्यिक लेखन का आधार बनाया। बनारस की बोलियों के बारे में भारतेंदु ने लिखा—''इसी बनारस में जो बनारस के पुराने रहवासी हैं उनके घर में विचित्र-विचित्र बोलियां बोली जाती हैं। ... जो हो यह तो सिद्धांत है कि जो यहा के शिष्ट लोग बोलते हैं वह परदेसी भाषा है और यहां पश्चिम से आई है।... ऐसे ही पश्चिमोत्तर देश में अनेक भाषा हैं... पर हां यह कह सकते हैं कि इसी पश्चिमोत्तर देश में कई नगर ऐसे हैं जहां यही खड़ी बोली मातृभाषा है।'' इसी निबंध में भारतेंदु ने लिखने की भाषा को पांच शैलियों के उदाहरण दिए तथा उन शैलियों को पसंद किया जिनमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं या नहीं के बराबर हैं।

इस बोलचाल की भाषा में हिंदी-उर्दू का भेद नहीं था। यह भेद पैदा किया गिलक्राइस्ट ने, लेकिन भारतेंदु ने अंग्रेजों की इस 'फूट डालो, शासन करो' की नीति को समझा और 8 सितंबर, 1873 की 'कवि वचनसुधा' में हिंदी-उर्दू के बारे में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक है—''हिंदी और उर्दू में अंतर क्या है हम बिना संकोच के उत्तर देते हैं कि भाषाओं 'Hindi Versus Urdu, Philologically' हिंदी और उर्दू। इसमें वे स्पष्ट शब्दों में हिंदी उर्दू की एकता की घोषणा करते हैं—में कुछ अंतर नहीं है क्योंकि व्याकरण की विभक्तियां और नियम दोनों के एक हैं पर इतना ही अंतर है कि हिंदी में जिसके लिए शब्द नहीं मिलता वहां संस्कृत शब्द काम में आते हैं और उर्दू में सहज हिंदी शब्द होने पर भी और जहां शब्द नहीं वहां तो अवश्य ही अरबी और फारसी के शब्द लिखे जाते हैं यही दोनों में अंतर है।''

23 अगस्त, 1873 की 'कवि वचनसुधा' में भारतेंदु की उन्नति नामक निबंध में उन लोगों पर करारा व्यंग्य किया है, जिनका मानना था कि हिंदी में वैज्ञानिक पुस्तकें लिखना कठिन है। ''बहुत से लोग बिना समझे बूझे दाढ़ी हिला हिलाकर कहा करते थे कि हिंदी में वैज्ञानिक ग्रंथ (Scientific works) नहीं लिखे जा सकते और भाषा में इतने शब्द नहीं कि वैज्ञानिक भावना प्रकाश की जाये पर हम लोग यह जल्पने वाले लोगों को सचेत करते हैं कि वे इस निद्रा से जागें और आंख खोलकर देखें कि अब हिंदी भाषा की उन्नति चाहने वाले लोग जो कहते थे सो कर दिखाते हैं।.... काशिस्थ राजकीय पाठशाला के गणित विद्या के मुख्य अध्यापक पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र एम.ए. ने सरल त्रिकोणमिति (Plane Trigonometry) हिंदी भाषा में प्रस्तुत कर ली।''

29 सितंबर, 1873 की 'कवि वचन सुधा' में इस विषय की चर्चा करते हुए उन्होंने फिर लिखा था—''बहुत से लोग गाल बजाकर कहते हैं कि हिंदी हो जाने से विज्ञान के पढ़ने-पढ़ाने में विघ्न हो जावैगा क्योंकि हिंदी भाषा में इतने थोड़े शब्द हैं कि वैज्ञानी भावना उसके द्वारा प्रकाश नहीं हो सकती है पर हम उसका यही उत्तर देते हैं कि कोई बात बिना युक्ति के प्रामाणिक नहीं हो सकती है हिंदी के शत्रु बरबस यह भी कह सकते हैं कि इस संसार में ऐसे भी मनुष्य होते हैं जिन्हें ये चार सींग होते हैं पर इसको कोई बुद्धिमान न मानेगा क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं है पर उनके इस कहने पर भी हिंदी में वैज्ञानी शिक्षा नहीं हो सकती है कोई नहीं मानेगा जब तक

कि अपने साध्य के लिए प्रबल प्रमाण न देंगे यों तो अपनी कलम है और अपना कागज।''

विस्मय की बात यह है कि विगत डेढ़ सौ वर्षों में हिंदी की अत्यधिक प्रगति होने तथा सभी वैज्ञानिक-तकनीकी विषयों की शब्दावली एवं पाठ्य पुस्तकें तैयार होने के बावजूद आज भी अंग्रेजी भक्त इन्हीं पुरातन, थोथे तथा लचार तर्कों की सहायता से हिंदी माध्यम से शिक्षण के मार्ग में बाधाएं खड़ी करते रहते हैं। वस्तुतः भारतेंदु वैज्ञानिक शिक्षा को मुट्ठीभर अंग्रेजी भक्तों की दासी नहीं बनने देना चाहते थे। 'हिंदी की उन्नति' शीर्षक लेख में ही उन्होंने लिखा–

''विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देसन से लै करहु, भाषा माहि प्रचार।।''

हिंदी की शक्ति की महत्ता को समझने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र के हिंदी विषयक योगदान पर डॉ. रामविलास शर्मा की सटीक टिप्पणी देखिए–''भारतेंदु का युगांतकारी महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने हिंदी भाषा की सरलता पहचानी, अपने गद्य में उन्होंने अमल से दिखा दिया कि यह भाषा कितनी मीठी है, उनके हाथ में गद्य एक कला बन गया, वह सभी तहर के भावों और विचारों के लिए गद्य को लचीले माध्यम की तरह काम में लाने लगे।''[9]

भारतेंदु के निज भाषा के विषय में और अधिक विचार जानने के लिए उनके द्वारा हिंदी की उन्नति पर दिया गया पद्यमय व्याख्यान पढ़ना अत्यावश्यक है। उसमें भारतेंदु ने कुल 92 दोहे बोले थे, जिनमें से कुछ तो प्रायः ही उद्धृत भी होते हैं, जैसे–

''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।

××× ××× ×××

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुण होत प्रवीन। पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।

××× ××× ×××

पै सब विद्या की कहूं होइ जु पै अनुवाद। निज भाषा महं तो सबै याकौ लहै सवाद।।

××× ××× ×××

तासों सब मिली छांड़ि कै दूजे और उपाय। उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय।।

××× ××× ×××

क्या हम भारतेंदु की इस इच्छा को कभी पूरा कर पाएंगे?

अंग्रेजों ने पूरी दुनिया में यह प्रचार किा कि वे भारतवासियों को शिक्षित तथा सभ्य बना रहे हैं। भारतेंदु ने उनकी इस चाल को समझा और 8 फरवरी, 1874 की 'कवि वचनसुधा' में 'क्या हमारे देशबांधव अब भी सचेत न होंगे?' शीर्षक से एक लेख में अंग्रेजों के दुष्प्रचार का खंडन करते हुए लिखा–''कुछ काल पहले अंग्रेज लोग जब हिंदुस्तान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला चिल्लाकर सर्वदा कहा करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और यहां के निवासियों को विद्यामृत पिलावेंगे और राज्य का प्रबंध किस भांति करना यह ज्ञान जब प्रजा को स्वतः हो जायेगा तब हम लोग हिंदुस्तान का सब राज्य-प्रबंध यहां के निवासियों के स्वाधीन कर देंगे और अन्त को राम राम कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करेंगे। ... उन्हीं के कहे अनुसार हिंदुस्तान की वृद्धि का समय आने वाला हो सो तो एक तरफ रहा पर प्रतिदिन मूर्खता दुर्भिक्षता और दैन्य प्राप्त होता जाता है।''

भारतेंदु के समय पूरा भारत विशेषकर बंगाल अकाल की चपेट में था। बंगाल के अकाल को सरकार की अनीति का परिणाम बताते हुए भारतेंदु ने 16 फरवरी, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में लिखा–''बंगाल का दुर्भिक्ष क्या है केवल अनीति के बीज का फल है क्या कारण है कि दिन दिन महंगी बढ़ती जाती है जो अन्न गतवर्ष में 12 सेर का बिकता था सो इस वर्ष में 8 सेर बिकने लगा विचार करो कि बीस वर्ष पूर्व अन्न 40 सेर का बिकता था अब उसका पंचमांश क्यों हो गया?''

भारत में रेलगाड़ी, तार, औद्योगीकरण से किसका लाभ हुआ, यह स्पष्ट करते हुए भारतेंदु 9 मार्च, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में 'हिंदुस्तान के दरिद्र होने के कारण' लेख में लिखते हैं–''सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते भिड़ते थे और आपस में गमनामन न हो सकता था, यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी न रहा। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है।... कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।... कपड़ा बनाने वाले सूत निकालने वाले खेती करने वाले आदि सब भीख मांगते हैं।''

18 मई, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में अकाल के लिए सीधे अंग्रेजों को दोषी ठहराते हुए भारतेंदु लिखते हैं–''अब तो प्रतिवर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है मुख्य करके अंग्रेजी राज में इसका घर है।... जब अंग्रेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं... इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।''

भारतेंदु ने केवल अंगेजी राज की आलोचना ही नहीं की, अपितु उसके शोषण का अंत करने के लिए स्वदेशी का मंत्र भी दिया। अपने लेखों में लगातार भारतेंदु ने व्यापारियों, शिक्षित लोगों और अनसाधारण (हिंदू-मुसलमान) सभी से स्वदेशी अपनाने का अनुरोध किया। 23 मार्च, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में तो उन्होंने स्वदेशी के व्यवहार के लिए एक प्रतिज्ञा-पत्र भी प्रकाशित किया और उस पर लोगों के हस्ताक्षर करवाए। उस प्रतिज्ञा-पत्र का अंश इस प्रकार है–

''हम लोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे... हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहिरेंगे।'' गांधी जी का स्वदेशी आंदोलन भारतेंदु के इसी आह्वान की नींव पर खड़ा आलीशान महल है।

स्वदेशी आंदोलन से लंदन के मैनचेस्टर में खलबली मचने का जिक्र करते हुए भारतेंदु ने 8 जून, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में देशवासियों को ललकारा—''भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और तालठोंक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ देखो भारतवर्ष का धन जिस्मे जाने न पावे वह उपाय करो।''

भारतेंदु समझ गए थे कि अंग्रेज उद्योगीकरण के कारण ही भारत को लूट रहे हैं। इसीलिए उन्होंने स्वदेशी को केवल विदेशी वस्त्रों या वस्तुओं के बहिष्कार तक ही सीमित नहीं किया, अपितु अपने ही देश में नए वैज्ञानिक यंत्रों, मशीनों आदि की सहायता से औद्योगिक उन्नति करने की सलाह भी दी। वे इस बात से बिलकुल भी भयभीत नहीं थे कि भारत में मशीनों के आने से भारतीय संस्कृति पर कोई संकट आ जाएगा। उन्होंने 9 मार्च, 1874 की 'कवि वचनसुधा' में विलायत की मशीनों के बारे में लिखा—''वहां एक लक्ष बाइलर, भाप के यंत्र है और एक-एक की शक्ति 40 घोड़ों की है, एक घोड़े की शक्ति आठ मनुष्यों के बराबर है तो इस हिसाब से चालीस लाख घोड़े अर्थात् तीन करोड़ बीस लाख मनुष्यों का काम इन यंत्रों के द्वारा होता है। मनुष्य तो काम करते-करते थक जाते हैं पर ये यंत्र कभी नहीं थकते और मनुष्यों के समान चार आना आठ आना रोज नहीं देना पड़ता केवल इनमें अग्नि प्रदीप्त करने से चलने लगते हैं... इस वृत्तांत से स्पष्ट हुआ कि परदेश के कला-कौशल्य ने इस देश पर चढ़ाई की ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।'' इस नवीन आक्रमण का मुकाबला करने के लिए उन्होंने भारत के धनी लोगों को बाहर से भाप के यंत्र मंगाने तथा आत्मनिर्भर होने की सलाह दी—''इसलिए अब जो-जो विद्वान् और विचारी मनुष्य हों उनको उचित है कि अपने द्रव्य के वृद्धि के निमित्त जितने भाप के यंत्र मंगा सके मंगावें और यहां भी धातु आदि खान कई है उनका शोध करें।''

'कवि वचन सुधा' से उद्धृत भारतेंदु के उपर्युक्त विचारों के आधार पर यह नितांत स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने 'कवि वचनसुधा' पत्रिका के माध्यम से भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के असफल हो जाने के पश्चात् भारत की जनता को जगाने, उसे स्वदेशी अपनाने, आत्मनिर्भर होने तथा अंग्रेजों की कपटपूर्ण नीतियों तथा शोषण एवं दमनकारी चालों से सावधान रहने की चेतावनी दी। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतीय नवजागरण में 'कवि वचन सुधा' की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा—'' 'कवि वचन सुधा' जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भय सैनिक की तरह थी। उसने अंग्रेजी राज्य में जनता के शोषण की सच्ची तस्वीर खींची। उसने अंग्रेजों के न्याय, जनतंत्र और उनकी सभ्यता का पर्दाफाश किया। उसने देश के औद्योगीकरण और शिल्प की शिक्षा के लिए संघर्ष किया। अपने प्रांत में हिंदी के चलन के लिए और राजकाज में उसके व्यवहार के लिए उसने शक्तिशाली आंदोलन किया। देश-विदेश के जीवन से उसने हिंदी भाषियों को परिचित कराया।... 'कवि वचन सुधा' में साहित्यिक, ऐतिहासिक, भाषा संबंधी, यात्रा सबंधी, हास्य और व्यंग्य से सरस-सभी तरह से लेख छपे। 'कवि वचन सुधा' की फाइलें भारतेंदु युग का दर्पण हैं, वे एक युग का सजीव इतिहास हैं। ... 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ ... नाम अमर कर लिया।''[10]

'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ करके भारतेंदु ने वास्तव में एक नए युग का सूत्रपात किया। पत्र-पत्रिकाओं ने हमारे जातीय जीवन को पहले कभी इतना प्रभावित नहीं किया था और कोई भी पत्रिका हिंदी के चोटी के लेखकों को प्रभावित करने का ऐसा निरपवाद श्रेय नहीं ले सकती जैसे 'कवि वचनसुधा'। यह पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली, जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नहीं; वरन् उसे मशाल दिखाने वाली सच्चाई थी। भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' के द्वारा हिंदी में निर्भीक देशभक्त पत्रकार कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे लेकिन उनमें से कोई भी इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए जमकर नहीं लड़ा था। भारतेंदु ने सत्य और न्याय का पक्ष लिया। चाटुकारों, राजभक्तों और रूढ़िवादियों की उन्होंने जरा भी पर्वाह न की। 'कवि ववचन सुधा' और 'हरिश्चंद्र मैगजीन' हिंदी जनता का सशक्त स्वर बन गई। सरकार का उन्हें कोपभाजन बनना पड़ा लेकिन देशसेवा का बीड़ा उठाकर उन्होंने इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के भीतर बैठा साहित्यकार, संपादक एवं पत्रकार कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक लोगों तक अपनी बात पहुंचाना चाहता था। शायद इसीलिए 'कवि वचन सुधा' को मासिक से पाक्षिक तथा पाक्षिक से साप्ताहिक करने के पश्चात् भारतेंदु ने 1873 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसका कागज और छपाई सुंदर थी। इतना सुंदर पत्र पहले नहीं निकला था। कुछ महीनों के बाद ही इसका नाम बदलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। बात एक ही थी। कभी-कभी अंग्रजी के लेख भी इसमें छपते। 'हरिश्चंद्र मैगजीन' या 'चंद्रिका' की प्रतिष्ठा 'कवि वचन सुधा' से भी अधिक हुई। साफ-साफ कहने में यह पत्र कतराता नहीं था; जिस वर्ष 'हरिश्चंद्र मैगजीन' स्थापित हुआ, उसी वर्ष हरिश्चंद्र के अनुसार ''हिंदी नए चाल में ढली (हरिश्चंद्री हिंदी)''।[11]

'हरिश्चंद्र मैगजीन' के पहले ही अंक में भारतेंदु ने अंग्रेजों से एक प्रश्न पूछा—''यदि प्रजा में हैं तो उसे अजा-सी क्यों बलि देते हैं? यदि जन में हैं तो उसे फांसी देकर क्यों मारते हैं?'' इसी अंक वे लिखते हैं कि अंग्रेजों की ''बाहर की सरलता अंतःकरण की कुटिलता दोनों वर्णन के बाहर हैं।'' इससे जान पड़ता है कि ''न आप पंडित की ओर हैं न मूर्ख की जैसे धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का''।... अंग्रेजों को घूस सलाम। बंदगी, ऐड्रैस सब कुछ मिलता है। धन, विद्या, कौशल सब उनके पास हैं उन्हीं के आवभगत के लिए सभाएं होती हैं। एका और बल उनके पास हैं। हिंदुस्तानियों के हिस्से में मूर्खता, कायरता, धक्के खाना पड़ा है। जो 'भाग्यशाली' हैं वे दरबार में कुर्सी पाते हैं, कौंसिल मेंबरी और सितारे हिंद का खिताब पाते हैं।''

ऐसी जोरदार भाषा हिंदी के पत्रों में एक नई चीज थी। इसीलिए लोग 'मैगजीन' या 'चंद्रिका' को देखने को तरसते थे। स्वयं हरिश्चंद्र कहते थे कि जैसे उमंग के जोरदार लेख मेरे और मेरे मित्रों के 'मैगजीन' में लिखे गए और छपे वैसे फिर न लिखे जा सके।[12]

इस पंत्रिका में उस समय के प्रतिष्ठित लेखकों जैसे तोताराम, काशीनाथ, ज्वालाप्रसाद, श्रीनिवासदास, बिहारी, चौबे आदि की रचनाएं छपती थीं। विज्ञान और इतिहास विषयक लेख, निबंध और नाटक इसमें विशेष रूप से प्रकाशित होते थे। यह पत्रिका नए लेखकों के संगठन का आधार बन गई, उसे भारतेंदु युग का साहित्यिक मुखपत्र कहना अत्युक्ति न होगा।[13]

'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन 'कवि वचनसुधा' से संबंधित था। इसका उल्लेख इसके प्रथम पृष्ठ पर अंग्रेजी में छपी इन पंक्तियों में मिलता है—'A monthly journal published in connection with the Kavivachan Sudha containing articles on literary, scientific, political and religious subjects, antiquities, reviews, dramas, history, novels, poetical selections, gossip, humour and witõ'

'हरिश्चंद्र मैगजीन' ने विभिन्न सांस्कृतिक विषयों को एक ही जगह समेट कर पत्रकारिता की ऐसी पद्धति चलाई, जिसका अनुकरण आगे चलकर हिंदी की अधिकांश पत्रिकाएं करती रहीं। साहित्य, विज्ञान, धर्म, राजनीति, पुरातत्व, आलोचना, नाटक, कविता, गप, हास्य और व्यंग्य-सभी तरफ एक साथ प्रगति करने के लिए मानो इस पत्रिका का जन्म हुआ था।

'हरिश्चंद्र मैगजीन' का मूल स्वर देश की उन्नति और अंग्रेजी शासन की वास्तविकता भारतीय लोगों के समक्ष स्पष्ट करना था। इसके अंक में एक लेख का शीर्षक ही है—'अंग्रेजों से हिंदुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता।' इसमें शासक और शासित का संबंध भक्षक और भक्ष्य का बताया गया है। 'मैगजीन' के नवंबर, 1873 के अंक में 'सबै जात गोपाल की' तथा मई, 1874 के अंक में 'वसंत-पूजा' नामक व्यंग्यपूर्ण संवादों में क्रिश्चन शब्द की उत्पत्ति, अंग्रेजों तथा उनके चाटुकारों पर कटाक्ष करते हैं।

भारतेंदु पत्रकारिता में सरस, सजीव और आम बोलचाल की भाषा के समर्थक थे। फरवरी, 1879 की 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' में भारतेंदु के कई रोचक एवं व्यंग्यात्मक यात्रा वृत्तांत छपे हैं। सरयूपार की यात्रा, कैंप हरैया बाजार, बस्ती और मेहदावल संबंधी यात्रा वर्णन बहुत ही सजीव, सरस और जिंदादिली से भरपूर हैं। इन वर्णनों में उस समय के भारतीय समाज और जनता की सही स्थिति का यथार्थवादी चित्रण मिलता है।

'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चंद्र चंदिका' वे दोनों पत्रिकाएं अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। प्रारंभ में सरकार इनकी सौ-सौ प्रतियां भी खरीदती थीं। इनकी लोकप्रियता से प्रेरणा पाकर भारतेंदु ने 1874 में ही एक और मासिक पत्रिका शुरू की। यह थी 'बाल बोधिनी'। यह पत्रिका स्त्रियों के लिए थी। वास्तव में इसका ध्येय था बाल पाठशालाओं के लिए पठन सामग्री मुहैय्या करना। इस पत्रिका में उपयोगी और सुंदर लेख छपते थे और समकालीन उच्च स्तर के सभी लेखक इसमें लेख लिखा करते थे। इस पत्रिका की भी 100 प्रतियां खरीदकर ब्रिटिश अफसर स्कूलों में भेजने लगे।

'बाल बोधिनी' के मुख पृष्ठ पर कुछ दोहे छपते थे। वे इस प्रकार हैं—

''जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष यामें कछु न विभक्ति।।

सीता अनुसूया सती अरुन्धती अनुहारी।
शील लाज विधादि
गुण लहौ सकल जग नारी।।

पितु पति सुत करतल कमल
लालित ललना लोग।
पढ़ैं गुनैं सीखैं सुनैं नासैं सब जग सोग।।

वीर प्रसविनी बुध बधू हाइ हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की
सांचेहि स्वामिनि होय।।''[14]

समग्रतः भारतेंदु द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त पत्रिकाओं के आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारतेंदु हरिश्चंद्र सच्चे अर्थों में हिंदी पत्रकारिता के जनक थे। उन्होंने पत्रकारों एवं संपादकों के समक्ष स्वाभिमान, सत्य के लिए संघर्ष करने तथा जनहित को प्रमुखता देने के जो उच्च आदर्श उस युग में प्रस्तुत किए, वे आज भी हिंदी पत्रकारिता के लिए मार्गदर्शक तथा 'मील का पत्थर' बने हुए हैं। अंत में डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में—''साहित्य, पत्रकार-कला और देशसेवा—ये भारतेंदु के लिए तीन अलग-अलग चीजें नहीं थीं। इनका आपस में घनिष्ठ संबंध था।''[15]

संदर्भ

1. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृष्ठ 3
2. मदन गोपाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र (परिशिष्ट), पृ. 153-158
3. कमला प्रसाद (सं.)—भारतेंदु हरिश्चंद्र
4. डॉ. चंद्र भानु सीताराम सोनवणे—भारतेंदु के विचार : एक पुनर्विचार, पृ. 5
5. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा उद्धृत—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 69
6. भारतेंदु नाटकावली, इंडियन प्रेस 1927 पृ. 626 (उद्धृत—ल. सा. वार्ष्णेय—भारतेंदु हरिश्चंद्र पृ. 203)
7. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 96-99
8. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 92
9. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 85
10. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 103 एवं पृ. 117
11. मदन गोपाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 62-63
12 मदन गोपाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 63
13. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 103
14. मदन गोपाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 64
15. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ. 7

संदर्भ ग्रंथ–

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र—मदन गोपाल—संस्करण 1976, —राजपाल एंड संस, दिल्ली-7।
2. भारतेंदु के विचार—एक पुनर्विचार—डॉ. चंद्रभानु सीताराम सोनवणे—संस्करण 1977, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर।
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, चतुर्थ संस्करण 1974, साहित्य भवन (प्रा.) लि. के.पी. कक्कड रोड़, इलाहाबाद।
4. भारतेंदु हरिश्चंद्र—डॉ. रामविलास शर्मा—1953, विद्याधाम, 1372 वल्लीमरान, दिल्ली।
5. भारतेंदु हरिश्चंद्र—प्रतिनिधि संकलन—सं. कमला प्रसाद—प्रथम संस्करण 1976, प्रकाशक नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

सुर-सदन, डब्ल्यू. जेड. 1987,
रानी बाग, दिल्ली-110034

नवचेतना के वाहक हैं भारतेंदु के निबंध

प्रो. स्मराप्रिया मिश्र

उन्नीसवीं शताब्दी का विश्व एक अद्‌भुत पुनर्जागरण का काल था। फिर भारत इससे अछूता कैसे रहता। भारत में वणिक का मानदंड राजदंड में बदल गया था। हिंदी साहित्य में इसी समय भारतेंदु हरिश्चंद्र का आविर्भाव हुआ। इन्होंने फिर से भारतीय जीवन के सभी पक्षों पर पुनर्विचार और आत्ममंथन करना आरंभ किया। तत्कालीन नवजागरण के परिप्रेक्ष में भारतेंदु ने अंग्रेजी शिक्षा का विरोध किया। उसे भीख मांगने की विद्या कहा। आधुनिक हिंदी की गद्य परंपरा को विकसित किया। इस परंपरा को भारतेंदु ने इस तरह विकसित किया कि आज तक यह धारा आगे की ओर बढ़ती चली जा रही है। हिंदी भाषा और हिंदी समाज को बनाने के लिए भारतेंदु ने अथक परिश्रम किया। उन्होंने मानवतावाद पर विशेष बल देते हुए अर्थनीति में परिवर्तन, राष्ट्रीय एकता और रूढ़ियों का विरोध कर हमें प्रगतिशीलता का पाठ पढ़ाया। 'निज भाषा' से प्रीति सिखाई और साधारण से साधारण बात पर भरोसा करना सिखाया। भारतेंदु ने हिंदी को योगसूत्रकारिणी भाषा के रूप में विकसित किया।

भारतेंदु कवि, उपन्यासकार, नाटककार, आलोचक, निबंधकार, पत्रकार आदि रहे। हिंदी नाट्यशास्त्र के प्रणेता तथा अनुवादक भी रहे। अपनी हर रचना में वे जीवनधर्मी तत्त्वों को लेकर आगे बढ़े। लोकधर्मिता, आधुनिकता, जनसचेतनता इनके साहित्य का विशेष गुण रहा। भारतेंदु आरंभ में काफी विवादास्पद रहे। जमकर संघर्ष किया। कभी हारे नहीं क्योंकि उनका लक्ष्य तो देश को बदलना था। यात्रा करने का उन्हें बहुत शौक था। संभवतः इसी यात्रा से इन्होंने देश की संस्कृति को भली-भांति समझा था। अंग्रेजों की राजनीति देश की धार्मिक और आर्थिक स्थिति से वह सही तरीके से परिचित हो सके थे।

विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से भारतेंदु ने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि जन-जन तक अपनी आवाज पहुंचाने का, एक अच्छा माध्यम पत्रिका है। इसमें देशभक्तिपरक निबंध, कहानी, कविताओं को स्थान मिला। देश की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक भी था। इससे युवा लेखक वर्ग प्रोत्साहित भी हुआ। इन्होंने 1868 में 'कवि वचन सुधा' के माध्यम से अपनी रचनाओं का प्रकाशन शुरू किया। फिर कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र पत्रिका आदि में वे निरंतर लेख लिखते रहे।

भारतेंदु अपने लेखों में संघर्ष, निर्भीकता, योजनाबद्ध कार्यप्रणाली, संगठन की शक्ति आदि पर विशेष बल देते रहे। क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि ब्रिटिश साम्राज्य ने जिस जन के विश्वास को कुचल डाला था, उसे फिर से पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

विविध पत्रिकाओं में लेख लिखते-लिखते उनका निबंधकार रूप निखर कर सामने आया। जिसमें निबंधकला के सभी गुण विद्यमान थे। एक नई उर्जा को लेकर ये निबंध जन-मानस तक पहुंचे। सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक जागरण आदि सभी विषयों पर भारतेंदु ने अपनी लेखनी चलाई। भारतेंदु से पूर्व गद्य का कोई ठोस रूप नहीं बन पाया था। इन्होंने विविध मौलिक हिंदी निबंधों की रचना की। नई विचारधारा को लेकर आवश्यकतानुरूप निबंधकला में परिवर्तन भी किए।

'बादशाह दर्पण', 'हिंदी दरबार दर्पण' उनके प्रारंभिक निबंधों में विशेष महत्त्व रखते हैं। 'बादशाह दर्पण' में जहां मुहम्मद से संघर्ष और मुगल शासकों का वर्णन है, वहां 'दिल्ली दरबार दर्पण' में विक्टोरिया के भारत में साम्राज्ञी बनने का वर्णन है।

भारतेंदुजी के सांस्कृतिक और धार्मिक निबंधों में कहीं भी दुरुहता नहीं पाई जाती और न ही ये निबंध शुष्क हैं। जनजीवन के निकट रहने के कारण वे सदैव मानव मूल्यों की खोज में रहे और अपने निबंधों में उसे सहज ढंग से अभिव्यक्ति दी।

कालिदास, शंकराचार्य, जयदेव, सूरदास, सुकरात, राजाराम शास्त्री, लाई मेंओ, मुहम्मद आदि पर भी इन्होंने सुंदर लेख लिखे।

'तदीय सर्वस्व' एवं 'वैष्णवता और भारतवर्ष' इनके धर्म विषयक निबंध हैं। 'तदीय सर्वस्व' में वे हिंदू धर्म की समस्याओं पर प्रकाश डाल रहे हैं। जनभाषा में धर्मग्रंथों के न लिखे जाने के कारण धर्म के क्षेत्र में उपज रही समस्या पर भी वे विचार कर रहे हैं। अनेक उद्धरणों के माध्यम से धर्मांधता, धर्म के नाम पर हो रहे झगड़े आदि से निराकरण का मार्ग भी बतलाते हैं। इनके विचारों में कहीं भी किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं दिखाई देती। भारत को एक सूत्र में बांधने का एक सफल

प्रयास भारतेंदु ने किया है। भारतेंदु का एक बहुचर्चित सफल निबंध है—'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है'। इस निबंध में समाज में पनप रही समस्याओं पर विशेष बल दिया गया है। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह जैसी समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। जाति, धर्म से ऊपर उठकर एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना भारतेंदु ने इस निबंध में की है।

स्वदेशी वस्तुओं को उपयोग में लाने पर भी बल दिया और सबको प्रेरित किया। देशहित के लिए हिंदू-मुसलमानों को प्रेम से एकजुट होकर काम करने की प्रेरणा दी। पंजाबी, मद्रासी, बंगाली, मुसलमान सबको जातिवाद तथा प्रांतीयता के भेद से ऊपर उठकर देशहित के लिए काम करने को प्रोत्साहित किया।

जिस तरह भारतेंदु ने महापुरुषों पर निबंध लिखे, ठीक उसी तरह उन्होंने विविध प्रांतों एवं महत्त्वपूर्ण स्थानों को लेकर निबंधों की झड़ी लगा दी। उन्होंने यात्राएं खूब की। जन-जन से मिलकर उनकी अनुभूतियों को प्राप्त किया। उनकी जीवन शैली, सांस्कृतिक पर्व-त्योहार, प्रकृति आदि सभी चीजों पर भारतेंदु की पैनी दृष्टि रहती थी। 'सरयू पार की यात्रा', 'कैंप हरैया बाजार', 'बरली और मेहदावल की यात्रा' आदि निबंधों में उनकी निबंध शैली अत्यंत रोचक है। अत्यंत सरल, सहज भाव से वे जनजीवन और प्राकृतिक सौंदर्य का चित्र खींच लेते हैं।

हम जानते हैं भारतेंदु का युग संक्रमण का युग है। देश में राजनीति के उथल-पुथल को उन्होंने बारीकी से देखा था। अपनी गंभीर समझ के साथ उन समस्याओं को भारतेंदु ने अपने राजनीतिक और सामाजिक निबंधों में अभिव्यक्ति दी।

विनोद, व्यंग्य और बांकपन के साहित्य सृजन में भारतेंदु सिद्धहस्त थे। कंकड़ स्त्रोत, अंग्रेज स्त्रोत और मंदिर स्त्रोत में अंग्रेजों के स्तुति गान के माध्यम से उनका खूब मजाक उड़ाया है। उनकी अज्ञानता, मदिरापान और नासमझी पर करारा व्यंग्य भी करते हैं। ये चोट प्रशंसा के रूप में सीधे उनके सीने पर लगती है। पांचवे चूसा पैगंबर, सवै जात गोपाल की निबंध नाटकीय शैली में लिखा गया है। उन्होंने शोषण करने वाले ब्राह्मणों की निंदा की है। उनके मुखौटे को खोल कर रख दिया है। अर्थ का अनर्थ कर लोगों को समझाने वाले, धर्म पर अपना स्वाधिकार समझने वाले ब्राह्मणों पर तीखा व्यंग्य किया है। 'अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' निबंध के नाम से ही पता चल जाता है कि इसमें कल्पना की अतिरंजना है। कल्पना प्रधान इस निबंध में सामाजिक जीवन पर विचार किया गया है।

'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' निबंध राजनीतिक समझ पर आधारित है। इसमें कंजरवेटिव और लिबरल दो दलों की भावनाओं के साम्य-वैषम्य पर चर्चा की गई है। ग्रीष्म वर्णन, खुशी भी भारतेंदु के बहुचर्चित निबंध हैं। भारतेंदु के निबंधों की शृंखला में 'लेखक और नागरी लेखक', 'इसुखृष्ट और ईशकृष्ण', 'महात्मा मुहम्मद', 'महारानी विक्टोरिया', 'हिंदी कुरान शरीफ', 'जातीय संगीत', 'लेवी प्राण लेवी', 'हिंदी भाषा' आदि निबंधों का भी विशेष महत्त्व रहा है।

भारतेंदु ने गद्य को उसकी स्वाभाविक एवं उसकी मौलिक शैली दी। समाज के सभी वर्गों के प्रति संवेदनशील रहकर उन्होंने साहित्य की सर्जना की। अंग्रेज और अंग्रेजियत उनके शासनगत कृत्यों पर जम कर व्यंग्य किया। समाज में व्याप्त सांप्रदायिक, सामाजिक, आर्थिक अनाचार पर भी निबंधों के माध्यम से प्रहार किया तथा सत्यासत्य का सजग विवेचन किया।

भाषा अधिष्ठाता, रेवेंशा विश्वविद्यालय,
कटक, ओड़िशा

हिंदी नाट्य परंपरा और भारतेंदु

अमूल्य रत्न महांति

संस्कृत में नाट्य-लेखन परंपरा ईसा पूर्व की शताब्दियों से प्रारंभ हो चुकी थी। नाटक 'दृश्य काव्य' है, जिसे भारत के प्राचीन आचार्यों ने 'रूपक' भी कहा। नाटक के आदि आचार्य भरतमुनि ने नाटक को 'पंचमवेद' की संज्ञा दी। इस प्रकार भारत में नाटक की यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है जिसका मूल स्रोत वेदों में प्राप्त होता है। यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वानों मैक्समूलर, कीथ, मैकडोनल आदि ने भी नाटक के प्रारंभ को भारतीय जमीन से जोड़ा।

वैदिक काल से चलती आ रही भारत की इस नाट्य परंपरा में अवरोध तब उत्पन्न हुआ जब हर्षवर्धन की मृत्यु हुई और देश में राजनीतिक अस्तव्यस्तता का वातावरण उपस्थित हो गया। केंद्रीय शक्ति के विखंडित होते ही मौके का फायदा उठाकर मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। फलतः कुछ समय के लिए नाटकों का विकास कुंद हो गया। क्योंकि नाट्य मंचन के दो स्थानों—देवमंदिर और राजसभा मुस्लिम शासकों के नियंत्रण में चला गया। दूसरी बात यह थी कि इस्लाम धर्म में नाट्य प्रदर्शन की इजाजत नहीं थी। फिर भी दसवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच मौलिक रूप से चार-पांच नाटक-सी लगने वाली कृतियां भी प्रकाश में आईं, जिनमें कृष्ण जीवन का 'करुणाभरण', हृदयराम कृत 'हनुमान्नाटक', विद्यापति द्वारा रचित 'रुक्मिणीहरण', निवाज कृत 'शकुंतला' नाटक आदि प्रमुख हैं। पर इनमें नाट्य कौशल का सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है। लेकिन 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों के आगमन के साथ ज्ञान-विज्ञान के नए क्षितिज खुले। भारतीय जनमानस में एक नई चेतना जगी। नाटक और रंगमंच का नवकलेवर हुआ। दूसरी ओर पारसी थियेटर कंपनियों ने अपनी आकर्षक वेशभूषा, मनमोहक दृश्य-दृश्यांतरों, अभिनय आदि से जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। फिर वहां भोंडे, अश्लील, भड़कीले प्रदर्शन होते रहे। जिसे देख उसके विरोध में हिंदी रंगमंच की स्थापना हुई। हिंदी में नाट्य-लेखन परंपरा की शुरूआत हुई, जिसका क्रमिक आरंभ नवजागरण काल में अन्य विधाओं के साथ हुआ। इसकी अगुवाई स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने की।

हिंदी के यशस्वी मौलिक नाटककार और आधुनिक गद्य परंपरा के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र के लिए समग्र आंदोलन की दृष्टि से नाटक सबसे शक्तिशाली विधा थी। वह उनके लिए सोद्देश्य सर्जनात्मक प्रक्रिया थी। अपने समय में उनके सामने प्रश्न हिंदी भाषा, हिंदी नाट्य कला के भी थे और साथ ही नाटक को स्वतंत्र और विशिष्ट अस्तित्व देने के भी। साहित्य की बंधी-बंधाई लीक से हटकर यहां भी वे नाटक को युगीन समस्याओं से, राष्ट्रीय चेतना, जन-जागरण और मानवीय संवेदना से जोड़ते हैं और बहुत योजनाबद्ध ढंग से सामूहिक स्तर पर सजग कार्य करते हैं। देश के पुनरुत्थान के लक्ष्य को वे नाटक और रंगमंच के लक्ष्य से जोड़ते हैं—''यदि नाटक के अभिनय का आरंभ हो जाएगा तो सब कुचाल आप से आप छूट जाएगी।'' नाटक के पांच उद्देश्यों की चर्चा करते हुए भारतेंदु हास्य, श्रृंगार, कौतुक, समाज-सुधार, देश-वत्सलता को महत्त्व देते हैं।

भारतेंदु ने कई नाटक लिखे। उनके द्वारा लिखे गए नाटकों के दो रूप मिलते हैं—मौलिक और अनूदित। मौलिक में कालक्रमानुसार 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्', 'प्रेमजोगिनी', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी', 'अंधेर नगरी', 'नील देवी', 'सती प्रताप' आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। उसी प्रकार अनूदित नाटकों में—'विद्या सुंदर', 'पाखंड विडंबन', 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूरमंजरी' और 'दुर्लभबंधु' आदि प्रमुख हैं।

अपनी परंपरा से अधिक से अधिक लेना और उन्हें नई दृष्टि से रचना भारतेंदु की विशेषता है। अपने प्रथम मौलिक नाटक 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' (1873) जो एक प्रहसन है, में अपनी इस विशिष्टता का प्रयोग करते हुए वे जहां एक ओर मांस-भक्षण, मदिरापान, परस्त्री गमन, धार्मिक पाखंडियों के अंधविश्वासों, अनाचारों का चुभते व्यंग्य के साथ गत्यात्मक चित्रण करते हैं, वहीं दूसरी ओर संस्कृत प्रधान भाषा-प्रयोग से, शास्त्रीय शैली और उसमें नए प्रयोग से अपनी मौलिकता का परिचय देते हैं।

'विषस्य विषमौषधम्' (1875) प्राचीन नाट्य शास्त्र की विशेष शैली भांड पर आधारित है। एक अंक और एक ही पात्र से भारतेंदु अंग्रेजों की क्रूर शोषणनीति के साथ-साथ भारतवासियों की दुर्बलताओं, मोहासक्त मानसिकता पर चुटीला व्यंग्य करते हैं। 'प्रेमजोगिनी' (1875) चार दृश्य का अधूरा नाटक है, जिसमें काशी के धर्माडंबर का काशी की ही बोली, व्यवहार और परिवेश में व्यंग्यात्मक चित्रण है। पूरी काशी वहां है। यह नाटक स्वयं भारतेंदु की आत्मकथा है। भारतेंदु ने इसे नाटिका कहा है लेकिन लक्षणों की दृष्टि से कोई भी आग्रह नहीं है। यह नाटक संस्कृत नाट्य-परंपरा, लोक नाट्य, पश्चिमी नाट्य-प्रयोगों को मिलाकर बिलकुल समकालीन रंगचेतना का उदाहरण है। इसमें—''देखी तुमरी कासी लोगों, देखी तुमरी कासी' में—सत्य का तीखा उद्घाटन है। 'प्रेमजोगिनी' नाटक अधूरा होते हुए भी हिंदी नाट्य साहित्य में यथार्थवादी परंपरा का उद्घोषक है।

'सत्य हरिश्चंद्र' (1875) भारतेंदु की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। युवा वर्ग के चरित्र-सुधार की दृष्टि से लिखित यह नाटक आर्य क्षेमेश्वर के चंडकौशिक का किंचित आधार लेकर चलता है। 'सत्य हरिश्चंद्र' स्वयं भारतेंदु की आत्माभिव्यक्ति है और सत्य, कर्त्तव्य, दानशीलता के लिए सत्याग्रही हरिश्चंद्र के संघर्ष का प्रतिबिंब है। 'सत्य हरिश्चंद्र' में 'टरै न सत्य विचार' की प्रतिज्ञा है और 'चंद्रावली' (1876) में अविचल प्रेम की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। 'चंद्रावली' एक नाटिका है और भारतेंदु की आत्मा का प्रतिरूप है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य है—वैष्णव भक्ति और प्रेम तत्त्व। राधा-कृष्ण के प्रेम के स्थान पर राधा की सखी चंद्रावली के इस रूप की कल्पना भारतेंदु की मौलिकता है। गेय पद, भारतेंदु की काव्य-कला यहां चरम पर है। ऊधो के ज्ञान की धज्जियां उड़ाने वाली प्रेम-दीवानी गोपियों जैसा स्पष्ट स्वर यहां है।

'भारत दुर्दशा' (1876) समकालीन यथार्थ का सशक्त प्रतीकात्मक नाटक है। भारतेंदु ने इसे नाट्यरासक या लास्यरूपक कहा है। पर लक्षणों की दृष्टि से उनका कथन ठीक नहीं है। इसमें एक अंक नहीं छह अंक हैं। इसका नायक भारतभाग्य धीरोदात्त होते हुए भी स्वतः कमजोर, मरणासन्न और संघर्षहीन पात्र है। नाटक दुखांत भी है। यह प्रयोगशील, प्रासंगिक और सांकेतिक नाटक है। यहां कही गई डिसलायल्टी की बातें सीधे ब्रिटिश साम्राज्य के आतंक पर चोट है। वह दृश्य पूरे राष्ट्रीय चरित्र को प्रकाश में लाता है। 'भारत दुर्दशा' की भांति 'भारत जननी' (1877) भी एक सांकेतिक नाटक है। जिसका महत्त्व उस समय के भारत की हीन दशा के कारण, काव्यात्मक, प्रतीकात्मक और व्यंग्यपूर्ण चित्रण के कारण है।

'भारत दुर्दशा' में जिस क्रांतिकारी दृष्टि और ठोस कदम की चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है, उसी के साथ भारतेंदु के एक अन्य नाटक 'अंधेर नगरी' (1879) आज के लेखकों को साहित्य के प्रति एक दृष्टि देता है कि साहित्य और राजनीति का संबंध बहुत ही स्वतंत्र, स्पष्ट और प्रखर होना चाहिए। यह नाटक आज के नाटककार और रंगमंच के लिए चुनौती है। 'अंधेर नगरी' एक सामान्य लोककथा है। फिर भी सामान्य प्रहसन के ऊपर उठकर उसने हिंदी रंगमंच के स्वरूप और इतिहास को बदल डाला। यह नाटक विदूषकत्व और विद्रूपत्व का अपूर्व संयोग है। भारतेंदु कृत 'चंद्रावली' में प्रेम और वियोग दशाओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें स्त्री का कोई विशेष पक्ष उभर कर सामने नहीं आया है। किंतु 'नीलदेवी' (1880) खासकर स्त्रियों के लिए लिखा हुआ नाटक है। युद्ध में पीछे न हटने वाली स्त्री का रूप इसमें है। 'नीलदेवी' में दो उपकथाओं को लेकर दोनों के लिए दो भिन्न-भिन्न रंग-शैलियां अपनाना भारतेंदु की मौलिक सूझबूझ है। यह हिंदी का पहला ऐतिहासिक गीतिरूपक और दूसरा दुखांत नाटक है। नीलदेवी के चरित्र में भी विलक्षण नीति-कौशल, ओज, गरिमा और तेज 'राजनीतिज्ञ नारी' का रूप है। उसके लिए जौहर से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है युद्ध-कौशल, राष्ट्ररक्षा। इस नाटक में लावनी, ठुमरी, लोरी आदि का सुंदर उदाहरण भी मिलता है। नारी पर केंद्रित उनके दूसरे नाटक 'सतीप्रताप' (1884) में नीलदेवी जैसा नयापन नहीं है क्योंकि उसमें भारतीय नारी के आदर्श प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही वे सती सावित्री का कथानक समाज के सामने लाते हैं। भारतेंदु इसके केवल चार दृश्य लिख पाए थे कि उनका आकस्मिक निधन हो गया। आगे इस नाटक को बाबू राधाकृष्ण दास ने पूरा किया।

मौलिक नाटकों की तरह अनूदित नाटकों में भी भारतेंदु का अपना विशिष्ट स्थान है। सभी दृष्टियों से हिंदी भाषा-साहित्य का हित चाहने वाले भारतेंदु बंगला साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित थे और बंगला में रचे जा रहे विपुल साहित्यिक भंडार को अनुवाद के माध्यम से हिंदी-वाणी भंडार में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। अपने इस भगीरथ प्रयास में उन्होंने सबसे पहले यतींद्र मोहन ठाकुर के बंगला नाटक 'विद्यासुंदर' (1868) का छायानुवाद प्रस्तुत किया। भारतेंदु ने स्वयं नाटक की भूमिका में इस बात को स्वीकार किया है। इस नाटक में नवीन और प्राचीन विवाह-पद्धतियों के संघर्ष से जुड़ी सुधारवादी दृष्टि केंद्र में है। अनूदित होते हुए भी इसकी स्वाभाविक वस्तु, क्रियात्मकता, हास्य व्यंग्य, स्त्री-चरित्र की मनोवैज्ञानिक भूमि, नाट्यकला, अभिनय-पक्ष आदि मौलिक नाटक-सा आनंद देता है।

केवल बंगला का ही नहीं, संस्कृत, अंग्रेजी आदि नाटकों के अनुवाद द्वारा भी भारतेंदु हिंदी नाट्य-साहित्य, नाट्य-विधान, हिंदी की

निजी नाट्यकला, हिंदी भाषा और रंगमंच को विकास की दिशा दिखा रहे थे और तत्कालीन जीवन में नई चेतना का प्रचार-प्रसार भी करना चाह रहे थे। 'रत्नावली' (1868) अधूरी अनूदित नाट्य कृति है, जो हर्ष कृत रत्नावली के केवल विष्कंभक भाग का हिंदी अनुवाद है। 'पाखंड बिडंबन' (1872) कवि कृष्ण मिश्र के प्रबोध चंद्रोदय के तृतीय अंक का स्वतंत्र रूप से, नए नाम से अनुवाद है। यह धार्मिक मतमतांतरों में फंसी जनता को सचेत करने के लिए यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक है। 'धनंजय विजय' (1873) कांचन कवि रचित 'धनंजय विजय व्यायोग' का हिंदी रूपांतरण है, जो कुशल कथा-विन्यास, ओजस्विनी भाषा, शास्त्रीय नियमों और आधुनिक एकांकी कला को परिप्रकाश करने वाला है। इस नाटक के अनुवाद में सजीवता और मौलिक नाटक जैसे सौंदर्य के दर्शन होते हैं।

भारतेंदु ने विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का अनुवाद 'मुद्राराक्षस' (1875) के नाम से किया है। इसके द्वारा उन्होंने श्रेष्ठ रचनात्मक अनुवाद का उदाहरण स्थापित किया है। यहां भी उनके अनुवाद में मौलिक नाटक सा आनंद आता है। राजशेखर कृत प्राकृत भाषा में रचित कर्पूरमंजरी का अनुवाद 'कर्पूरमंजरी' (1876) उनकी शृंगारप्रियता तथा गीतों के प्रति आकर्षण का द्योतक है। कहीं भी मूल प्रभाव में बाधा नहीं आई है। 'दुर्लभ बंधु' (1880) शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का भावानुवाद है। इसमें पात्रों, स्थानों का नाम बदल कर कुछ मौलिक गीतों की रचना आज के रंगमंचीय प्रयोगों की तरह नाटक का भारतीयकरण है।

अपने मौलिक और अनूदित नाटकों द्वारा हिंदी नाटक और रंगमंच दोनों को मौलिक शास्त्र तथा चिंतन प्रदान करने वाले, नाटक विधा को युग परिवर्तन का सबसे सशक्त आधार और अस्त्र बनाने वाले भारतेंदु वास्तव में हिंदी के ऐतिहासिक युग पुरुष हैं।

खंडसाही, निश्चितकोइलि, कटक,
ओड़िशा-754282

सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा

सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति और युग प्रवर्तक साहित्यकार बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र को हिंदी के साहित्य जगत ने भारतेंदु की उपाधि जिस मान से दी, जनता ने उसी मान से अंगीकार भी किया। सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने 'भारतेंदु' जैसे जनालंकरण का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, ''हरिश्चंद्र सदा के लिए हिंदी भाषी जनता के 'भारतेंदु' बन गए। इस उपाधि का जो मूल्य है, वह नोबेल पुरस्कार से बढ़कर था।... सरकार ने राजा शिव प्रसाद को सितारे हिंद बनाया, जनता ने हरिश्चंद्र को भारतेंदु...।''

इन्हें जनता से जो प्रेम मिला वह इन्हीं के प्रेम का प्रतिदान था। ये बड़े उदार मना थे। ये जितने बड़े साहित्यकार थे, उससे बड़े मनुष्य थे। मनुष्यता इतनी कि किसी के भी दुःख से पसीजकर शाल-दुशाले और अंगूठियां नज़र कर देना इनके लिए आम बात थी। इन्हीं के चरण चिह्नों का अनुगमन आगे चलकर 'निराला' ने भी किया।

भाषा और साहित्य दोनों में इन्होंने मील के पत्थर गाड़े। इन्हीं के युगांतकारी प्रयत्नों के चलते 'हिंदी नई चाल में ढली।' इन्हीं का अनुगमन करते हुए इनकी मित्र मंडली के पं. बाल कृष्ण भट्ट और पं. प्रतापनारायण मिश्र जैसे निबंधकारों ने हिंदी गद्य को संस्कृत-सा समृद्ध ही नहीं किया वरन् उसे अपनी समकालीन राजभाषा अंग्रेजी और पूर्व राजभाषा फ़ारसी दोनों को ठेंगा दिखाकर अपना परचम फहराया।

भारतेंदु राजभक्त और राष्ट्र भक्त दोनों थे। लेकिन इनकी राजभक्ति ने राष्ट्रहित की क्षति सपने में भी नहीं की। उलटे अंग्रेजों के विरुद्ध 'भारत दुर्दशा' जैसे नाटक लिखकर उन्हें परेशानी में डाल दिया कि वे इनकी किताब पर प्रतिबंध लगाएं तो लगाएं कैसे? मुकरियों और पहेलियों तक में इन्होंने अंग्रेजों पर खूब चुटकियां ली हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेजी भाषा और साहित्य को चुनौती देते हुए 'कवि वचन सुधा' और हरिश्चंद्र मैगजीन जैसी पत्रिकाएं निकाली ही नहीं, उन्हें एक मुकाम भी दिलाया। अपने समय तक हिंदी और ये पत्रिकाएं बराबर परस्पर पूरक काम करती रहीं।

अंग्रेजों ने कूटनीतिक चाल चलते हुए राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिव प्रसाद के बीच भाषा-विवाद पैदा कर दिया। राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत निष्ठ हिंदी और राजा शिव प्रसाद अरबी फारसी की शब्दावली से गर्भित हिंदी के प्रबल पक्षधर बनकर हिंदी के विकास की राह का रोडा बन रहे थे। ऐसे संकट और संक्रमण काल में भारतेंदु ने न केवल खड़ी बोली गद्य को घुटरुओं पर रेंगने से बरजा बल्कि उसे उंगली पकड़ कर चलना भी सिखाया। वह उनकी आंखों के सामने ही बहुत अत्यल्प समय में दौड़ने भी लगी थी। यह सरपट भागती इसके पूर्व ही उस महान युग प्रवर्तक ने आंखें मूंद ली।

कविताएं यद्यपि अब भी ब्रज ही में लिखी जा रही थीं। लेकिन उसका कारण ब्रजभाषा का माधुर्य था। धीरे-धीरे इसी युग में काव्य भाषा ने भी खड़ी बोली को अंगीकार कर लिया। श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने झंडाबरदारी कर खड़ी बोली के काफी खरखरेपन को समतल और कोमल बना दिया। इतना सब होते हुए भी खड़ी बोली काव्य भाषा को मांजने का उतना समय भारतेंदु को नहीं मिला जितना कि गद्य की भाषा को। यह इन्होंने समय की नब्ज को पकड़कर किया। निबंध, नाटक और कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं पर अधिक ध्यान दिया क्योंकि ये व्यवस्था को हर दिशा से फेर कर सत्ता के मद मस्त हाथी के मस्तक पर चोट करना चाहते थे।

स्वभाव से हंसमुख भारतेंदु के विषय में किंवदंतियां भी खूब प्रचलित हैं। कुछ एक उस्ताद शायर अपने शार्गिद को शायरी सिखाते हुए इनके पास से गुजर रहे थे, उसी समय ये कुएं पर हाथ-मुंह धो रहे थे। उन्होंने एक मिसरा कहा कि, कहीं से आ रही है खुशबू-ए-कबाब...। उस्ताद साहब कुएं पर ठिठक कर यही बार-बार बोले जा रहे थे। थोड़ी देर बाद जब शायर साहब कहीं से...कहीं से...कह-कहकर माथा ठोंकन लगे तो इनसे न रहा गया और इन्होंने अगला मिसरा जड़ा कि, ''किसी बुलबुल का दिल जला होगा।''

इस तरह हंसी-हंसी में एक लाजवाब शेर तैयार हो गया—

''कहीं से आ रही है खुशबू-ए-कबाब
किसी बुलबुल का दिल जला होगा।''

धन की बर्बादी पर जब इनके इष्ट मित्रों ने हमदर्दी जताकर समझाना चाहा तो इन्होंने उनके गंभीर सुझावों को हवा में उड़ाते हुए कह डाला होगा कि,'' जिस धन ने हमारे

पूर्वजों को खाया, उसे मैं खाऊंगा।'' यह सर्वविदित है कि साहित्यकारों के कुबेर भारतेंदु खानदानी अमीर थे और इनके पास इतना धन था कि यदि ये उसे फिजूलखर्ची न करते तो पीढ़ियां निहाल हो जाती। लेकिन गुरुनानक की तरह इन्हें मेरा के बजाय तेरा-तेरा ही समझ में आया। इन्होंने कुछ भी लुटाया हो पर बाद में इन्हें उसका मलाल हुआ तो ऐसा किसी कोने-से सुनाई नहीं पड़ा।

अपने राष्ट्र और अपनी भाषा के लिए ये सदैव प्राण-पण से अर्पित रहे सन् 1883 के ददरी के मेले में 'भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है' जैसे विषय पर बोलकर शासन की नींद उड़ा दी थी। इनकी राजभक्ति पर मुग्ध रहने वाले अंग्रेज अधिकारियों के कान खड़े हो गए थे। इनके भाषण की कई स्थापनाएं चर्चा का विषय बनीं। इन्होंने उसमें स्वदेशी पर बहुत बल दिया। पूंजीपतियों की आंख की किरकिरी बने फिर भी इन्होंने विकास का मेरुदंड स्वदेशी उत्पादन को ही सिद्ध किया। इसके लिए इन्होंने आलसी भारतीयों को कोसते हुए समझाया कि अमेरिकी लंकलाट पर कब तक रीझोगे। कब तक फ्रांस की सुई से सिले कपड़े पहनोगे। कभी खुद भी तो कुछ निर्माण करो। आगे उन्होंने विकास का मूलमंत्र कर्मठता और पतन का कारण आलस्य बताया। उन्होंने कहा कि, ''रोम जब तक घोड़े की पीठ पर रहा तब तक उन्नति करता रहा और जैसे पीठ से उतरा वह ऐसा सोया कि फिर उठ ही नहीं सका।'' वे जो उन्नीसवीं सदी में कह रहे थे वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। ऐसे युग दृष्टा और चिंतक साहित्कार भारतेंदु ने मात्र पैंतीस वर्ष की वय पाकर साहित्य, समाज और देश को जितना और जो कुछ देकर विदा ली, वैसी क्षमता वाला युग पुरुष सदियों नहीं सहस्त्राब्दियों बाद किसी देश और समाज को मिल पाता है।

भाषा पर उनकी स्पष्ट राय थी कि–

''निज भाषा उन्नति अहै
सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के
मिटै न हिय को सूल।''

भारतेंदु की इस दृष्टि की सराहना करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा था कि, ''हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने में निर्णायक भूमिका हिंदी भाषी जाति की है। भारत में अंग्रेजी का प्रभुत्त्व खत्म करके ही हम भारतेंदु के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करने के अधिकारी हो सकते हैं।''

प्रेम जोगिनी नाटक के सूत्रधार के बहाने भारतेंदु उन छली मित्रों को इंगित किया है, जो कवि लूट-खाकर भी उसकी निंदा करने से बाज नहीं आते। यह सब कुछ सहकर भी नाटककार भारतेंदु का कवि हृदय अंततः अपने उदार चरित पर रीझ ही उठता है–

''कहैंगे सबै ही नैन-नीर भरि-भरि पाछो
प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रह जाएगी।''

भारतेंदु की नाट्यकला और चंद्रावली में नाटिका के लक्षण

वीरेंद्र कुमार सिंह

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र नाट्यकारों में सर्वप्रथम स्थान रखते हैं। उनके नाटकों में भारतीय संस्कृति का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। उन्हें हिंदी का पुरोधा कहा जाता है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को अपने नैसर्गिक और विशुद्ध रूप में देखना चाहा। साहित्य की जीवंतता उसकी समग्रता के साथ जिस तरह उन्होंने स्थापित किया वही वर्तमान हिंदी साहित्य का आधार है। वही वह सशक्त नींव है, जिसके बल पर आज हम हिंदी को राष्ट्रभाषा हिंदी के रूप में जानते हैं। इस युग के भाव और भाषा शैली चारों दिशाओं में हिंदी ने अपना पुराना कंचुक फेंककर नया कंचुक धारण किया और लड़खड़ाती हुई, हिंदी अकड़कर खड़ी हो गई। भारतेंदुजी का जन्म काशी के अत्यंत समृद्ध परिवार में 1850 ई. में हुआ और उनकी मृत्यु 1885 ई. में हो गई। इतनी अल्पआयु में ही उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया। उनका नवयुग प्रर्वतक साहित्य सन् सत्तावन की राजनीतिक क्रांति का साहित्यिक संस्करण है। इतिहासकारों ने इसे भारतेंदु युग कहा है।

गद्य रचना के अंतर्गत भारतेंदुजी का ध्यान पहले नाटक की ओर गया। नाटक क्षेत्र में कतिपय मौलिक परिवर्तन किए गए, जिससे भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। विचारधारा में प्रांतीयता को दूर करने का प्रयास किया गया और कथा में राष्ट्रीयता की छाप लगी। कथोपकथन की सजीवता, परिमार्जित गद्य भाषा की प्राचारात्मकता, अभिनयोपयोगी गुणों को दर्शाते हुए देव, गंधर्व, राक्षस आदि पात्रों की कमी कर मानव उसकी बुद्धि और उसके चमत्कारों को प्रक्षय दिया गया। उन्होंने नवीन प्रणाली अपनाते हुए मौलिक नाटक के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। इसे नाटक के अद्वितीय उत्थान का युग कहा जा सकता है। 15वीं शताब्दी में तुलसी एवं वल्लभाचार्यजी ने रामलीला तथा रासलीला का सृजन किया जिससे जनता में नवीन रस का संचार होने लगा। वंशमणि का विरचित नाटक 'गीत दिगंबर' का सृजन सन् 1720 से 1741 तक नेपाल में किया गया। हिंदी का सबसे प्राचीन नाटक हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' माना जाता है। इसके बाद 1853 में नयाज कृत 'शकुंतला' और 1862 में उर्दू कवि अमानत का 'जानकी मंगल' पाया जाता है पर इन सभी नाटकों में न तो नाटकीय तत्त्व ही विद्यमान है न शब्द जाल ही प्रखर है। मात्र नाटक का आकार है। इस अशृंखल क्रमिक नाटक विकास धारा में उपयुक्त मोड़ लाने वाले बहुमुखी प्रतिभावान व्यक्ति भारतेंदु बाबू निकले। हिंदी में मौलिक नाटक का रचनाकाल निर्णय यहीं से किया जाता है। कौशिक द्वारा 1651 ई. में लिखा गया 'हरिश्चंद्र नाटयम्' भारतेंदु हरिश्चंद्रजी रचित 'सत्य हरिश्चंद्र नाटक' से मिलता जुलता है। उनका प्रथम एकांकी 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' एक प्रयोग कालीन प्रयास के रूप में लिखे जाने पर भी हास्य रहित था। एकांकी की मुख्य विचारधारा सामाजिक सुधार की भावना और राष्ट्रीय उत्थान से संबंधित थी। जिसका मूल उद्देश्य जनता के सामने अतीत गौरव का उद्घाटन और राजनीतिक अधिकारों की मांग करना था। काशीनाथ खत्री का बाल विधवा और बालकृष्ण भट्ट का शिक्षादान की रचना हुई राष्ट्रीय जागृति हेतु भारतेंदुजी का 'भारत दुर्दशा' और विदेशी रियासतों के कुचक्रों के जीवन पर 'विषस्यविषमौषधम' राधा चरण गोस्वामी का 'भारतोद्धार' और 'भारतमाता' तथा महापुरुषों के जीवन गाथा पर श्रीनिवास का 'प्रह्लाद चरित्र' और हरिऔध का 'रूक्मिणी परिणय' एवं 'धनंजय विजय' आया।

'श्री चंद्रावली' भारतेंदुजी की एक ऐसी नाटिका है, जिसमें भारतेंदुजी ने नाट्य शास्त्र के अनुसार नाटिका के से सभी लक्षणों का समावेश किया है इसमें आदि से अंत तक कृष्ण—चंद्रावली के प्रेम की कथा है। मानव हृदय में प्रेम की भूख अनुभूति है प्रेम विहीन मानव नीरस और सूना है। नाट्य शास्त्र के अनुसार 18 रूपकों में नाटिका प्रथम है। नाटिका के अधिकांश पात्र स्त्रियां होती हैं। और यह चार अंकों में विभाजित रहती हैं। इसकी कथा कवि कल्पित होती है। चंद्रावली में कृष्ण को छोड़कर सभी पात्र स्त्री है। नाटिका के लक्षणों को पालन करते हुए कृष्ण को जोगिन के रूप में प्रवेश कराया गया है, जो त्रिगुट नामक क्रिया का अनुपालन है। नाटिका का नायक धीरललित किसी राजवंश का होता है। इसमें श्री कृष्ण आत्मसम्मान, दृढ़संकल्प और अद्भुत बुद्धि का सर्वोत्तम प्रतिनिधि बनकर नाटिका में अपने व्यक्तित्व से सबको प्रभावित करते दिखाई पड़ते हैं। नाटिका में नायिका राजवंश की गायन प्रवीण अनुरागी कन्या होनी चाहिए। चंद्रावली राजा चंद्रभानु की बेटी है और गाने बजाने में प्रवीण है जो नारी जीवन का प्रतिनिधित्व

करती है। भारतेंदुजी के अनुसार नाटिका की नायिका कनिष्ठा होती है। यहां राधा ज्येष्ठा और नायिका चंद्रावली कनिष्ठा है। नायिका में नायक महारानी की आज्ञा प्राप्त कर ही नायिका से मिल सकता है। निष्कंमक के अंर्तगत नारद और शुकदेव का पदार्पण होता है। नारदजी कहते हैं ''कैसा विलक्षण प्रेम है यद्यपि माता-पिता, भाई बंधु सब निषेध करते हैं और श्रीमती जी का भी भय है।'' हालांकि उनका संबंध मूल कथा में नहीं है। तृतीय अंक में माधवी कहती है, ''सखी देवे का करैं। प्रियाजी के डर से कुछ नाहि कर सकैं।'' अंत में प्रियाजी ने आज्ञा से मिलन होता है। विशाखा आकर कहती है, ''सखी बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा देई है कि प्यारे सो कहि दें कि चंद्रावली को कुंज में सुखेन पधारौ।'' वास्तव में चंद्रावली की उक्तियों में भारतेंदुजी का अपना हृदय छलक रहा है। चंद्रावली के कथानक में सभी कार्यवस्थाएं, अर्थप्रवृतियां और संधियां मिलती हैं।

नाट्यशास्त्रियों ने आरंभ, प्रयत्न, प्रापृयाशा, नियताप्रि और फलागम पांच कार्यवस्थाएं मानी है। प्रथम अंक में चंद्रावली की इच्छा जानकर ललिता कहती है, ''जो तेरी इच्छा हो पूरी करने को उधत हूं।'' यह नाटक के अंतिम फल का संकेत है। यह आरंभ कार्यवस्था हुआ। द्वितीय अंक में चंद्रावली का कृष्ण को पाने के लिए पागलों का सा प्रयास प्रयत्न का द्योतक है। तृतीय अंक में सखियों की योजना से मिलन की संभावना होने लगती है, किंतु चंद्रावली पहरे में रहने के कारण निश्चय नहीं हो पाना प्रापृयाशा है। यहां चंद्रावली के विरह वर्णन द्वारा भारतेंदुजी ने विरह विद्ग्ध नारी के हृदयग्राही चित्र को खींचा है। चतुर्थ अंक में चंद्रावली के वामांगों का फड़कना सफलता को निश्चित कर देता है, जो नियताप्रि है और जहां चंद्रावली अपने प्रीतम को पाकर जलवाहीं देकर बैठती है वहां फलागम है।

चंद्रावली में पांच अर्थ प्रकृतियां बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य का भी सुंदर संयोग हुआ है। प्रथम अंक में चंद्रावली से ललिता कहती है—''सखी तू धन्य है, बडी भारी प्रेमिन है, प्रेम शब्द की सार्थक करने वाली प्रेमियों की मंडली की शोभा है।'' यही कथा का मुख्य कारण है, अतः यहां बीज नामक अर्थप्रकृति है। द्वितीय अंक में प्रेम की प्रधान कथा अविच्छित रूप से बनी रहती है, जो बिंदु नामक अर्थप्रकृति का, तृतीय अंक में आया हुआ वर्षा और मूला का वर्णन पताका और प्रकरी है, जो कथावस्तु को अंतिम फल की ओर ले जाता है। चतुर्थ अंक में जहां फलागम होता है, कार्य नामक अर्थ प्रकति है।

इसी प्रकार पांच नाट्य संधिया मुख, प्रतिमुख, गर्म, अवमर्ष और निर्वहण का भी प्रयोग चंद्रावली में दर्शाया गया है। प्रथम अंक में निश्चय का बोध होना कि आगे क्या क्रम चलेगा मुख संधि, द्वितीय अंक में चंद्रावली का विरहोन्माद और वनदेवी संध्या तथा वर्षा की सहानुभूति प्रतिमुख संधि, तृतीय अंक में नजरबंद चंद्रावली को सखियों द्वारा निकालने का प्रयत्न करना, आशा और निराशा का यह संघर्ष गर्म संधि, चतुर्थ अंक में शंका का उदय कहीं ऐसा न हो कि राधा की बाधा उपस्थित करे और चंद्रावली का मूर्च्छित होना अपमर्ष संधि का और अंत में वह गाते गाते गिर पड़ती है। श्री कृष्ण उसको उठाकर गले लगा लेते हैं फिर स्वामिनी की आज्ञा भी मिल जाती है, वहीं निर्वहन संधि है। भारतेंदुजी की इस नाटिका में हमें नाटिका के सभी लक्षण पूर्णरूप से दृष्टिगोचर होते हैं। अंत में 'भरत वाक्य' की परंपरा का भी समावेश चंद्रावली द्वारा यह कहलाकर किया जाता है—''परमारथ स्वारथ दोउ कहै संग मेलि न मानै''।

इस नाटिका में भारतीय पद्धति के मूलरूप का ऐसा सुखद समिलक्षण किया है कि इससे नाटिका का गौरव और महत्त्व अखंड हो गया है। भारतेंदु बाबू की सर्वतोमुखी महत्ता उनके आलोचक तथा मित्र सभी स्वीकार करते हैं। उनकी प्रखर बुद्धि की प्रशंसा किए बिना किसी को चैन नहीं।

हाऊस नं.-228/8, गली नं.-9,चंदन विहार,
ए-2 ब्लॉक, वेस्ट संतनगर, बुराड़ी, दिल्ली-110084

हिंदी साहित्य और रंगमंच के पितृपुरुष

पंडित सुरेश नीरव

भारतेंदु हरिश्चंद्र खड़ीबोली के विकास पुरुष हैं। इन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास और पत्रकारिता को अप्रतिम रचनात्मक अवदान दिया है। उन्नीसवीं शताब्दी के वे सिरमौर रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं ने साहित्य-समीक्षकों और आमजनता में इतना प्रभावी स्थान बनाया कि इन्हें न केवल वाराणसी की विद्वत-परिषद् द्वारा भारतेंदु की उपाधि से अलंकृत किया गया बल्कि इनका सृजनकाल हिंदी में भारतेंदु युग कहलाया। भारतेंदुजी का लेखन जनमानस की जागृति का लेखन है। इनका शब्द-शब्द तत्कालीन समय के शोषण, और जिंदा रहने के लिए किए अमानवीय समझौते और कष्टमयी जीवन स्तर में रहने को विवश गरीबों की व्यथा कथा को सुनाता है। उनका समस्त लेखन सामंतों और विदेशी शासकों के उत्पीड़न के खिलाफ और गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए देशवासियों को कलम के जरिए उठ खड़ा होने का परिवर्तनकारी आह्वान है। जिस हिंदी को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गढ़ा आगे चलकर वही हिंदी फिर देश की आजादी का मूलमंत्र बनी। क्रांतिकारिता के ये संस्कार भारतेंदुजी को अपने पिता गोपाल चंद्र से विरासत में मिले थे जो कि ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ गिरिधरदास के छद्म नाम से आजीवन लेख लिखते रहे। स्वाधीनता आंदोलन में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ गुजराती भाषी महात्मा गांधी, बांग्लाभाषी सुभाषचंद्र बोस, मराठीभाषी लोकमान्य तिलक, पंजाबीभाषी भगतसिंह से लेकर तमिलभाषी चक्रवर्ती राजगोपालाचारी सभी ने देश की जनता को उसी हिंदी के जरिये जागृत किया, जिसे अपनी सृजनशीलता से भारतेंदुजी ने गढ़ा था। उनकी ये पंक्तियां—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल। विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।

अर्थात्—प्रगति केवल अपनी भाषा से ही की जा सकती है। क्योंकि प्रगति का मूल अपनी मातृभाषा के ज्ञान के बिना हृदय की जो वेदना है उससे मुक्ति नहीं मिल सकती। ज्ञान का भंडार अनंत है। हर देश और हर संस्कृति से हमें ज्ञान प्राप्त करना चाहिए लेकिन उसका प्रसार हमें अपनी मातृभाषा में ही करना चाहिए। उनका मानना था कि अंग्रेजी सीखकर हम भले ही प्रवीण हो जाएं मगर रहेंगे हीन के हीन ही—

''अंग्रेजी पढ़ि के जदपि,
सब गुन होत प्रवीन
पैं निज भाषा ज्ञान बिन,
रहत हीन के हीन।''

सही अर्थों में कहें तो भारतेंदुजी के जीवन और सृजन की पड़ताल करना हिंदी की गौरव गाथा को ही रेखांकित करना है। हिंदी और भारतेंदुजी एक दूसरे के पर्याय हैं। भारतेंदुजी हिंदी में हैं और हिंदी भारतेंदुजी में है। उनके सृजन में काशी के घाट के जरिए गंगा हिलोरे मारती हैं, जो कि हमारी संस्कृति की जीवन रेखा है। भारतेंदुजी का यश गंगा तथा शिवनगरी काशी की तरह शाश्वत और सनातन है। कन्नड़ नाटककार प्रसन्ना ने सीमापार नाटक लिखकर भारतेंदुजी और काशी के घाटों को अद्भुत श्रद्धांजलि दी है। आज जिस हिंदी को हम लिख रहे हैं उस हिंदी की बुनियाद रखनेवालों में अग्रणी नाम है—भारतेंदु हरिश्चंद्र का। आधुनिक हिंदी यानी खड़ीबोली के निर्माता हैं—भारतेंदु हरिश्चंद्र। हिंदी कविता, हिंदी गद्य, हिंदी नाटक, रेखा चित्र, यात्रा संस्मरण और हिंदी पत्रकारिता सभी विधाओं की शुरूआत की भारतेंदु हरिश्चंद्र ने। अपने समय के आम आदमी के दर्द को, उसकी गरीबी को, उसके अमानवीय शोषण को, गुलामी के जुल्मों को और आजादी के लिए छटपटाते मध्यवर्ग की अकुलाहट को उन्होंने वाणी दी। और बहुत समय तक 'रसा' उपनाम से लिखते रहे। उपनाम से लिखने की परंपरा परिवार में उनके पिताजी ने ही डाली थी। वैसे भी यह वह दौर था, जब जनजागृति के लिए अंग्रेजों के खिलाफ वातावरण के बनाने के लिए ऐसा करना ही जरूरी था। भारतेंदुजी के पिता का बचपन से किशोरावस्था में प्रवेश करते ही यानी कि 15 वर्ष की उम्र में आते ही देहांत हो गया। पिता का वरद हस्त भले ही इनके सिर से जल्दी उठ गया हो मगर पिताजी के संस्कार जो इन्हें पैत्रिक संपत्ति के रूप में मिले उसने इन्हें एक असाधारण तपस्वी बना दिया। यह समय बंगाल में पुनर्जागरण का दौर था। 1865 में भारतेंदुजी अपने परिवार के साथ जगन्नाथ पुरी के दर्शन करने बनारस से उड़ीसा गए। जहां से बांग्ला के विपुल साहित्य से रू-ब-रू हुए। और तय किया कि देश की सोई हुई जनता को जगाने के लिए वे कलम उठाएंगे और पौराणिक कथाओं तथा नाटकों के जरिये देश के लोगों को जगाएंगे। जगन्नाथ पुरी से लौटकर तीन साल में ही

यानी कि जब भारतेंदुजी अठारह वर्ष के हुए (सन् 1868 में) इन्होंने उस समय के प्रसिद्ध बंगाली नाटक विद्यासुंदर का हिंदी में अनुवाद किया। प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. रामविलास शर्मा का तो मानना है कि गुलामी के खिलाफ भारत ने पहली लड़ाई क्रांतिकारियों के नेतृत्व में 1857 में लड़ी तो देश के पुनर्जागरण की दूसरी लड़ाई कलम के योद्धा भारतेंदुजी के नेतृत्व में ही लड़ी गई। इसके लिए उन्होंने माध्यम बनाया खड़ी बोली यानी हिंदी को। नए विचारों और नई शैलियों से उन्होंने हिंदी को लैस किया। अठारह साल की अल्प आयु में ही भारतेंदुजी ने प्रसिद्ध बंगाली नाटक विद्यासुंदर का हिंदी में अनुवाद कर नाटक की दुनिया में हलचल मचा दी। रंगमंच की ताकत को उन्होंने बखूबी पहचाना। उनका मानना था कि देश की जनता को जगाने के लिए नाटक और नाट्यमंच सबसे प्रभावी माध्यम हैं इसलिए उन्होंने रंगमंच को विकसित करने के लिए बतौर थियेटर के मैनेजर, अभिनेता और नाट्य-लेखक के रूप में भरपूर योगदान दिया। यह संयोग ही है कि सृजन के क्षेत्र में पदार्पण भारतेंदुजी ने नाटक के माध्यम से ही किया। उनके प्रसिद्ध नाटकों में—वैदिक हिंसा हिंसा न भवति (1873), भारत दुर्दशा (1875), पौराणिक कथा पर आधारित सत्यवादी हरिश्चंद्र (1876), नीलदेवी (1881) और अंधेर नगरी (1881) नाटक की दुनिया में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अंधेर नगरी तो राजनीतिक व्यंग्य पर आधारित नाटकों का जैसे मुहावरा ही बन गया। जिसका कि भारत की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ और जिसे देश के विख्यात नाट्य-निदेशकों—बी. के. कारंथ, अरविंद गौड़, प्रसन्ना और संजय उपाध्याय जैसे सिद्धहस्त निदेशकों ने अनेक बार मंचित भी किया। आज भी इस नाटक की लोकप्रियता बरकरार है और यह हिंदी नाटकों की दुनिया में क्लासिक्स की हैसियत रखता है। तो वहीं 1868 में कवि वचन सुधा नाम से पत्रिका का प्रारंभ कर हिंदी जगत में पत्रकारिता की भी शुरूआत कर दी। 1873 में आपने हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र पत्रिका और बालबोधनी नामक बाल पत्रिका निकालकर पत्रकारिता युग की हिंदी में नींव रख दी। भक्तसर्वस्व, प्रेममालिका, (रचनाकाल 1871), प्रेम माधुरी (रचनाकाल 1874), प्रेमतरंग (रचनाकाल 1877), प्रेम-प्रलाप (रचनाकाल 1877), प्रेम फुलवारी (रचनाकाल 1883) और होली (रचनाकाल 1879), मधुमुकुल (रचनाकाल 1881), राग-संग्रह (रचनाकाल 1880), वर्षा-विनोद (रचनाकाल 1880), विनय प्रेम पचासा, (रचनाकाल 1881), फूलों का गुच्छा (रचनाकाल 1882), चंद्रावलि (रचनाकाल 1876), कृष्णचरित्र (रचनाकाल 1883) और उत्तरार्द्ध भक्तमाल, 1876-77 आपकी प्रसिद्ध काव्यकृतियां हैं। भारतेंदुजी एक सिद्ध हस्त अनुवादक भी थे। और बहुभाषाविद् थे।

प्राकृत, संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी भाषा का इन्हें गहन ज्ञान था। हर्षचरित रत्नावली, विशाखादत्त रचित-मुद्राराक्षस, बांग्ला के प्रसिद्ध नाटक विद्यासुंदर, प्राकृत का कर्पूरमंजरी तथा शेक्सपीयर का मर्चेंट ऑफ वेनिस का दुर्लभबंधु के नाम से अनुवाद किया। भारतेंदु ग्रंथावली (1885) हरिश्चंद्र का निबंध संग्रह है।

बंगाल के जमींदार परिवार से ताल्लुक रखने वाले भारतेंदुजी अग्रवाल थे और बनारस में इनका अच्छा-खासा व्यवसाय था। साहित्यिक कृतियों के अलावा आपने अग्रवाल समाज का शोधात्मक इतिहास भी लिखा है, जो काफी प्रसिद्ध है। पत्रकारिता जगत में मौलिक लेखन के लिए भारत सरकार ने 1983 से भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार देना भी शुरू किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रपौत्री प्रतिभा अग्रवाल ने (जन्म 1930) भी अपनी पारिवारिक परंपरा को आगे बढ़ाते हुए 1955 में कोलकाता में एक नाट्य संस्था अनामिका का गठन किया। और उस समय के मशहूर नाट्य-निदेशक शिवमानंद जालान को बतौर निदेशक अपने साथ रखा और कई मशहूर नाचकों का मंचन किया। हिंदी नाटकों के पुनुरुत्थान का समय इसे माना गया है। बाद में वे नाट्य शोध संस्थान से जुड़े और कई नाटकों का मंचन किया। हिंदी भाषा और हिंद की अस्मिता के इस प्रथम पुरुष ने मात्र 35 साल की उम्र में ही हिंदी साहित्य का एक अमिट इतिहास रच दिया। और अपने गृह नगर काशी में 6 जनवरी, 1885 में देश की आजादी के असंख्य सपने लिए स्वर्गारोहण कर लिया। भारतेंदुजी भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं मगर हिंदी भाषा के अक्षर-अक्षर में उनकी सृजनगंध व्याप्त है। और उनका यश हिंदी भाषा की तरह ही अक्षुण्ण है।

आई-204, गोविंदपुरम, गाजियाबाद

युग प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र

निरुपमा भटनागर

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान के युग प्रवर्तक भारतेंदु का जन्म वाराणसी में भाद्रपद शुक्ल पंचमी संवत् 1907 वि. में सन् 1850 ई. में हुआ। पैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही माघ कृष्णा षष्ठी संवत् 1941 वि. (सन् 1885 ई.) में इस संसार को छोड़कर स्वर्गवासी हो गए। भारतेंदुजी इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीरचंद्र वैश्य के संपन्न परिवार से संबंध रखते हैं। इनके पिता बाबू गोपालचंद्र उपनाम गिरधरदास भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार थे। इनको साहित्य सृजन की प्रतिभा जन्मजात व संस्कार युक्त मिली। इन्होंने 'कवि वचन सुधा' तथा हरिश्चंद्र मैगजीन (हरिश्चंद्र पत्रिका) नामक दो पत्रिकाओं का संपादन भी किया और साहित्य सृजन में भी अपना भरपूर योगदान दिया। उनके द्वारा रचित लगभग सत्तर काव्य कृतियां बताई जाती हैं, जिनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं–

प्रेम मालिका, प्रेम सरोवर, गीत गोविंदानंद, वर्षा विनोद, प्रेम फुलवारी तथा वेणगीत। उनके द्वारा लिखित मौलिक तथा अनूदित सत्रह नाटक हैं। भारतेंदु ने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय जनता को राष्ट्रीय प्रेम के प्रति उत्साहित किया।

भारतेंदु युग से पूर्व हिंदी गद्य की एक अनियमित सी परंपरा विद्यमान थी। भारतेंदु के गद्य साहित्य के क्षेत्र में अवतरित होते ही सभी दिशाओं में हिंदी गद्य के प्रसार का श्रीगणेश हो गया। उन्होंने हिंदी गद्य का संस्कार करके उनका स्वरूप स्थिर किया तथा व्यंग्य और हास्य द्वारा उसे सजीवता प्रदान की एवं उसे भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का भरपूर प्रयास किया, इसलिए वह हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने जाते हैं।

हिंदी गद्य की अन्य विधाओं की भांति निबंध का सूत्रपान भी भारतेंदु युग से हुआ। भारतेंदु काल से लेकर अब तक के निबंध साहित्य के विकास क्रम को चार युगों में विभाजित किया जा सकता है–भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, वर्तमान युग।

भारतेंदु युग के निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, लाला श्रीनिवास दास, अंबिका दत्त व्यास तथा राधाचरण गोस्वामी के नाम उल्लेखनीय हैं। देशभक्ति, समाज सुधार जिंदादिली इन सबकी सामान्य विशेषताएं हैं इस युग के निबंधकारों में भी भारतेंदु का नाम अग्रगण्य है। इनकी निबंध शैली सरल थी, जिसमें यथास्थान हास्य और व्यंग्य का भी सुंदर पुट विद्यमान था। उनके निबंधों की परिधि अत्यंत विस्तृत है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक सभी प्रकार के निबंधों पर उन्होंने अपनी लेखनी का करतब दिखाया है। अपने सामाजिक निबंधों में उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों का खुलकर विरोध किया, और राजनीतिक निबंधों में अंग्रेजी राज्य पर तीखे व्यंग्य किए। उसका प्रत्येक क्षेत्र नवीन चेतना से भर गया। हिंदी नाटकों का सही सूत्रपात भी उनके नाटकों से ही होता है फिर भी यह नहीं समझना चाहिए कि भारतेंदु से पूर्व नाटकों का सर्वथा अभाव था।

देश प्रेम की भावना से प्रेरित होकर भारतेंदु ने इतिहास, पुराण और समकालीन जीवन के अपने नाटकों के कथानक चुने हैं। उनके नाटक केवल मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं वरन् समाज सुधार तथा राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। उनके नाटकों की भाषा पात्रानुकूल है, तथा अभिनय की दृष्टि से भी अधिकांश नाटक सफल हैं। उन्होंने स्वयं तो नाटक लिखे ही, अपने समकालीन लेखकों को भी प्रोत्साहित किया। हिंदी नाटकों के लिए भारतेंदु युग प्रभाव काल का तथा उसकी प्रौढ़ावस्था प्रसादजी के नाटक क्षेत्र में प्रवेश करने के साथ प्रारंभ हुई। वे बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। उन्होंने साहित्य के प्रायः सभी अंगों का विकास किया। उन्होंने 'आलोचना' का प्रारंभ भी नए ढंग से किया। इस युग में हिंदी गद्य की बहुमुखी प्रगति हुई। उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, समालोचना, इतिहास जीवनी आदि विभिन्न विधाओं द्वारा उसे तेजस्वी रूप मिला।

इसके पश्चात् से हिंदी गद्य निरंतर पल्लवित और पुष्पित होता हुआ अपनी सुगंध और सुषमा बिखेरता अनेक रूपों में विकसित हो रहा है। आधुनिक युग हिंदी गद्य के विकास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, पद्य के विकास की दृष्टि से भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारतेंदु के आगमन से पूर्व हिंदी काव्य धारा मुख्यतः शृंगार प्रधान थी। सन् 1857 के उपरांत मुगल साम्राज्य की समाप्ति के साथ विलास प्रधान इस कविता की भी अंत्येष्टि हो गई। सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के साथ साहित्यिक परिवर्तन के लिए नई भूमि तैयार हुई। इस नवचेतना का प्रतिनिधित्व किया भारतेंदु ने। ये आधुनिक युग के सर्वप्रथम कवि के रूप में आते हैं।

इनके युग को सन् 1857 ई. से 1900 ई. तक का समय माना जाता है।

उनके काल के रचनाकारों एवं कवियों का काव्य क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। उनकी रचनाओं में भक्ति तथा रीतिकालीन गुण भी है तथा आधुनिक एवं तत्कालीन परिवेश का भी जन जागरण विद्यमान है। भारतेंदुजी का आरंभिक काव्य साहित्य कृष्ण भक्ति से प्रभावित है और उस कृष्ण भक्ति ने राष्ट्र भक्ति की ओर बढ़ने की प्रेरणा की। राष्ट्रीयता की भावना भारतेंदुयुगीन साहित्य की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है। उनके युग के कवियों ने भारतीय इतिहास के उन वीरों (शिवाजी, राणा प्रताप, छत्रसाल) की गौरव गाथाएं याद दिलाई, जिन्होंने अपने क्षेत्र विशेष की सीमित राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए तन, मन, धन न्योछावर कर दिया था।

भारतेंदु युग दोहरे आदर्शों का युग था। इस युग के साहित्य में एक ओर तो देशभक्ति दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर राजभक्ति के। कवियों, उपन्यासकारों ने देशभक्ति की लहर में भाषा की तत्कालीन दुर्दशा, रुढ़िवादिता, अंग्रेजी शोषण, महापुरुषों का गुणगान तथा राष्ट्रवाद का चित्रण किया। दूसरी ओर अंग्रेजी दमन चक्र से पीड़ित व रानी विक्टोरिया के साम्राज्य से प्रभावित होकर अंग्रेजी शासन की प्रशंसा भी की। भारतेंदु ने अपने द्वारा रचित नाटक 'भारत दुर्दशा' में ये पक्तियां लिखी हैं–

''अंग्रेज राज्य सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।
तिहि पर टिक्कस की भारी आफत आई।
हां हां! भारत दुर्दशा देखी न जाई।।''

भारतेंदु के समकालीन कवियों ने भी भारतीयता को क्षेत्रीयता के ऊपर उठा कर राष्ट्रीय चेतना लाने में महत्त्वपूर्ण रचनाएं रची। यह युग सुधार का युग था। उनके समकालीन कवियों ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा दी। उनके काल में स्त्री शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, छुआछूत, बाल विवाह विरोधी तथा बहुपत्नी वाद विरोधी कविताएं रची गई।

भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा ' नामक नाटक के वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता का विरोध किया। स्वदेशीकरण उद्योगों को प्रोत्साहित करने तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के लिए भी लोगों को प्रेरित किया गया।

भारतेंदु युग के कवियों ने आदर्शवाद की प्रधानता के कारण इतिवृतात्मक शैली को अपनाया। यह शैली नैतिकता के प्रचार और आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए अत्यंत उपयुक्त भी थी। प्रताप नारायण मिश्र ने पद्यात्मक निबंध लिखे और दूसरे अनेक कवियों ने बहुत सी उपदेशात्मक और सुधारवादी कविताएं लिखीं।

भारतेंदुजी ने प्रकृति का भी बड़ा सुंदर वर्णन किया है। इस दृष्टि से 'प्रातः समीरण' 'गंगा-वर्णन, तथा यमुना वर्णन' उनकी उल्लेखनीय कविताएं हैं। इनमें प्रकृति का बड़ा मनोहारी तथा भावपूर्ण चित्रण हुआ है।

इस युग के कवि ब्रजभाषा की माधुरी से अत्यधिक प्रभावित थे। इस युग के साहित्य में मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा की काव्य कृतियों के भी सुंदर अनुवाद हुए हैं। यदि काव्य रूपों की दृष्टि से उनके युग की रचनाओं की समीक्षा करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि मुक्तक कारण की ही प्रधानता रही फिर भी प्रबंध काव्य की कुछ कृतियां अपवाद स्वरूप देखी जा सकती हैं। भारतेंदु द्वारा रचित 'रानी छद्म लीला', 'देवी छद्म लीला' तथा 'तंमय लीला' इत्यादि प्रबंध काव्य के अच्छे उदाहरण हैं। निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं भारतेंदु ने युग प्रारंभ किया जिसकी रचनाएं हिंदी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हैं।

प्रधानाचार्य, रेडक्रास द्वारा संचालित स्कूल
(हेनरी डूनेन्ट पब्लिक स्कूल झिलमिल)

हिंदी भाषा के गौरव पुरुष

डॉ. दीपक नरेश

भारतेंदु आधुनिक हिंदी साहित्य के युग पुरुष हैं। हिंदी साहित्य के सभी इतिहास ग्रंथों में उनके साहित्य काल को भारतेंदु युग से अभिहित किया गया है। भारतेंदु ने महज 11 वर्ष की आयु में अपनी पहली कविता लिखी थी। वर्ष 1861 में जिसका शीर्षक था स्वर्गवासी श्री अलबर्ट वर्णन अंतलीपिका। रानी विक्टोरिया के पति प्रिंस अलबर्ट की मृत्यु पर शोक कविता के रूप में ये काव्य लेखन किया गया था। हालांकि भारतेंदु की राष्ट्रभक्ति को देखते हुए इस कविता को उनकी रचना होने पर भी संदेह प्रकट किया गया। किंतु अगर वे सत्य हैं तो भी भारतेंदु के प्रचुर साहित्य को देखते हुए इसे उनके शैशव लेखन का अंश ही स्वीकारा जा सकता है। हालांकि भाषा के इतिहासकार इसे राजा शिवप्रसाद सिंह का दीक्षा दान भी मानते हैं।

भारतेंदु का जन्म 1850 में हुआ। अतएव इस रचना को उनके साहित्य लेखन का प्रस्थान बिंदु भी माना जा सकता है। विशेष तथ्य यह है कि भारतेंदु उस युग में संस्कार पा रहे थे, जब राष्ट्रवादी चिंतन और राष्ट्रप्रेम की भावना देश में पुष्पित पल्लवित हो रही थी। भारतेंदु के पिता ने केहि कारन कूप में डोलत पानी लिखकर राष्ट्र को लेकर जनमानस में हो रहे उद्वेलन पर गंभीर टिप्पणी की थी। देश की पराधीनता का दुख जनजागरण में हो रहे उद्वेलन पर गंभीर टिप्पणी की थी। देश की पराधीनता का दुख जनजागरण की हुंकार का अक्षय ऊर्जा स्रोत बनने जा रहा था। हालांकि भारतेंदु से थोड़ा पहले कविताओं में मणिराम, दुर्गादत्त व्यास, गोपाल चंद और दीन दयाल गिरि सन् 1857 के आधार बीज बोने में जुटे थे। इन सबमें बाबा दीन दयाल गिरी की भाषा सबसे तल्ख थी। वो एक तरह से अंग्रेजों को चुनौती देने में जुटे थे। अंग्रेजों के लिए उन्होंने निखालिस, बेयकीन, मरदूद जैसी संज्ञाओं का सहारा लिया था। साहित्य के स्तर पर एक तरह से वो अंग्रेजों को निकृष्ट और नराधम साबित करने का मानो बीड़ा उठा चुके थे...

''के तो सोम कला करौ, करौ सुधा को दान
नहीं चंद्रमणि ये द्रवैं ये तेलिया पक्खान''

इसी युग में बाबा दीनदयाल गिरि ने भी दोहे के माध्यम से राष्ट्रप्रेम का अलख जगाने के अभियान में जुटे थे। दृष्टांत तरंगिणि में उन्होंने कुल जमा 202 दोहे लिखे। इन दोहों में उन्होंने राष्ट्र की विवशता और जनमानस की बेचारगी को मुखरित किया। इन सबके बीच इनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह रहा कि इन्होंने भाषा का आम आदमी की भावनाओं से सीधे तादात्म्य कराने की चेष्टा की।

''पराधीनता दुख महा, सुखी जगत स्वाधीन
अतिशय सूधै मृदु बने, नहीं कुशल जग माहि।''

भारतेंदु पर इस सबका व्यापक प्रभाव पड़ा। हालांकि भाषा के स्तर पर इतनी तल्खी हासिल करने में उन्हें काफी चेष्टा करनी पड़ी। लेकिन जनता के मर्म को समझने में उन्होंने तनिक देर नहीं की। 1873 में जब उन्होंने अपनी कृति कालचक्र में हिंदी नई चाल में ढली लिखी तो स्पष्ट था कि हिंदी को भाषा का स्तर पर परिपक्व होवे वे महसूस कर चुके थे।

भारतेंदु अपने अल्प साहित्यिक जीवन में विविधधर्मी साहित्य इसलिए रच सके क्योंकि वे साहित्य और जनता के बीच के संबंध में गहराई को कहीं ज्यादा परिपक्व तरीके से समझते थे। आज यह सोचकर भी किसी को आश्चर्य हो सकता है कि उस युग में भारतेंदु ने उन समस्याओं पर लेखनी चलाई जो 20 वीं सदी में भारतीय समाज की सबसे चुनौतीपूर्ण समस्याएं बनकर उभरीं।

आर्थिक निर्भरता, नारी शिक्षा, सामाजिक कुरीतियां, धार्मिक पाखंड जैसे मुद्दों पर उनकी लेखनी का प्रभाव यह रहा कि हिंदी में अनेक नई विधाओं का जन्म हुआ। संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, यात्रा वृतांत और पत्र लेखन जैसी विधाओं का प्रादुर्भाव हिंदी साहित्य के फलक को व्यापक और बहुआयामी बनाने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

ये भारतेंदु की दूरदृष्टि ही कही जाएगी कि उन्होंने लोकगीतों को भी साहित्य का अंग बनाने की चेष्टा की। कजरी, लावणी, फाग-होली, चौमासा, चैता और बारहमासा जैसे लोकगीतों के माध्यम से गांवों और सुदूर अंचल में स्वतंत्रता आंदोलन के स्वर जागृत

करने में बहुत मदद मिली। भारतेंदु अपने युग के नेतृत्वकर्ता कहे जाते हैं तो यह स्वयं सिद्ध सत्य है। जानकर किसी को भी हैरानी हो सकती है कि भारतेंदु युग के करीब-करीब सभी लेखक समाचार पत्र के प्रकाशन का दायित्व निर्वहन कर रहे थे। और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान यही समाचार पत्र शहरों में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक नवजागरण का स्वर बुलंद कर रहे थे। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में इन समाचार पत्रों की इसी कर्त्तव्यनिष्ठा को पथप्रदर्शक मानकर समाचार पत्रों का प्रकाशन व्यापक स्तर पर हुआ और इससे स्वाधीनता के लिए देश भर में चल रहे आंदोलनों को एकाकार करने में बड़ी सहायता मिली।

भारतेंदु हरिश्चंद्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग किए। ऐसा ही एक प्रयोग था—शब्दों के स्थान पर अंकों का प्रयोग। साहित्य में भारतेंदु के इस प्रयोग को खूब सराहना मिली।

''करि वि4 देख्यौ बहुत जग बिन 2स न1।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित 900 पथ टेक।
ह 3 तुम पर सैन लै 80 कहत कर 100 ह।
पै बिन 7 प्रताप-बल सत्रु मरौरै भौंह।
सो 13 ते लोग सब बिल 17 त सचैन।
अ 11 ती जागती पै सब 6 न दिन-रैन।
सखि तुव मुख 26 सि सबै कै 16 त अनंद।
निहचै 27 की तुम में पर अमंद।
जिमि 52 के पद तरे 14 लोक लखात।
तिमि भुव तुम अधिकार
मोहि बिस्वे 20 जनात।
61 खल नहिं राज में 25 बन की बाय।
तासों गायो सुजस तुव कवि 6 पद गाय।''

अब इन रचनाओं को बिना अंकों के पढ़ें तो आपको स्वतः अनुभव होगा कि भारतेंदु स्वाभाविक रूप से कितना मौलिक चिंतन करते थे।

''करि विचार देख्यौ बहुत
जग बिन दोस न एक।
तुम बिन हे विक्टोरिए
नित नव सौ पथ टेक।।
हती न तुम पर सैन लै
असी कहत करि सौंह।
पै बिनसात प्रताप-बल
शत्रु मरौरै भौंह।।
सोते रहते लोग सब
बिलसत रहत सचैन।
अग्या रहती जागती पै
सब छन दिन-रैन।।
सखि तुव मुख छबि ससि
सबै कैसो रहत अनंद।
निहचै सत्ता ईस की
तुम में परम अमंद।।
जिमि बामन के पद तरे
चौदह लोक लखात।
तिमि भुव तुम अधिकार मोहि
बिस्वे बीस जनात।।
इक सठ खल नहिं राज में
पची सबन की बाय।
तासों गायो सुजस तुव
कवि षट-पद गाय।।''

भारतेंदु युग में ही आधुनिक गद्य साहित्य विधा का नवोन्मेष माना जा सकता है। जो कालांतर में हिंदी गद्य साहित्य की आधारभूमि बनी थी। हालांकि हिंदी साहित्य के इतिहास में इसे संक्रांति और नवजागरण का युग माना जाता है लेकिन जिस तरह से अंग्रेजों की कुटिल सियासत से देश की जनता त्रस्त और आक्रोशित हो रही थी उस युग में भारतेंदु एक प्रज्जविलत मशाल की तरह थे। इसके पीछे तदयुगीन समाज में हो रहे परिवर्तनकारी कारक भी अहम भूमिका निभा रहे थे। सामाजिक सुधार आंदोलनों ने जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण पैदा किया था। समुदाय की चेतना विकसित हुई थी। नई पीढ़ी भविष्य की ओर उम्मीदों की ओर देख रही थी। समकालीन साहित्य में भी इसका प्रभाव परिलक्षित हो रहा था। खास कर निबंधों में जो कि शिक्षाप्रद कथा साहित्य के माध्यम से देशभक्ति और समाज सुधार की भावना से परिपूर्ण है। अनेक प्रकार की और नितांत नूतन परिस्थितियां भी इस युग में प्रकट हुई जिनके आपसी टकराहट से राजनीतिक और सामाजिक व्यंग्य की शैली का भी विकास हुआ। हालांकि परंपरावादी साहित्य धारा के यथार्थवादी उपन्यास लाला श्रीनिवासदास के परीक्षागुरु और देवकीनंदन के तिलस्मी उपन्यास चंद्रकांता इसी समय प्रकाशित हुए थे।

भारतेंदु युग का साहित्य अत्यंत वैविध्यपूर्ण था। इस युग का साहित्य सामाजिक सरोकारों को प्रमुखता से उद्घाटित कर रहा था। जो कि इस युग के साहित्यकारों की प्रतिभा और सृजनशीलता का परिचायक था। हालांकि कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली के छिटपुट प्रयोगों को छोड़ शेष कविताएं ब्रजभाषा में लिखी गई। वास्तव में नया युग इस समय के गद्य में ही अधिक प्रतिफलित हो सका। भारतेंदु के विषय में एक तथ्य और लोगों के लिए सदैव कुतूहल का विषय रहता है कि आखिर भारतेंदु की ये पुस्तकें प्रकाशित कहां से हो रही थीं। नई पीढ़ी के कम ही लोग जानते हैं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाएं पटना के खड्ग विलास प्रेस में छपती थीं। अब वह प्रेस तो नहीं है पर आधुनिक हिंदी को उस प्रेस का योगदान अद्भुत है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पटना का वह प्रेस बिहार का गौरव था। उत्तर प्रदेश के बलिया निवासी महाराज कुमार राम दीन सिंह ने सन् 1880 में पटना के बांकी पुर में खड्ग विलास प्रेस की स्थापना की थी। उन्होंने अपना जीवन शिक्षक के रूप में आरंभ किया था तथा पाठ्य पुस्तकों और हिंदी पुस्तकों के अभाव ने उन्हें प्रकाशन व्यवसाय के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने स्वयं पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं और अन्य

लोगों से पुस्तकें लिखवाईं। इन कृतियों का प्रकाशन खड्ग विलास प्रेस ने किया। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और उनके युग के लेखक यदि आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता हैं तो निश्चय ही खड्ग विलास प्रेस और उसके संस्थापक को उनका एकमात्र प्रकाशन माना जाना उचित होगा। यदि महाराज कुमार राम दीन सिंह का सद्भाव और सहयोग न मिला होता तो भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन साहित्यकारों को अपनी रचनाओं के व्यवस्थित प्रकाशन का इतना अच्छा सुयोग नहीं मिला होता। जाहिर है डॉ. धीरेंद्र नाथ सिंह की यह जानकारी हिंदी सेवियों के लिए खासी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इस बात का जिक्र कम ही मिलता है कि आखिर भारतेंदु की लिखी पुस्तकों का प्रकाशन कहां से होता था।

साहित्यवेत्ता की दृष्टि से देखें तो भारतेंदु ने महज 25 वर्ष के अपने साहित्यिक जीवनकाल में एक युग निर्माता होने का गौरव प्राप्त किया। उन्होंने मौलिक और अनूदित 150 से अधिक पुस्तकें लिखीं। नाटक और रंगमंच की सामजिक उपादेयता सिद्ध की। भारतेंदु के ही युग में हास्य व्यंग्य, स्यापा, लेवी प्राण लेवी और शोको प्रदर्शन जैसी शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। भारतेंदु ने कुछ आप बीती, कुछ जग बीती नाम से आत्मकथा भी लिखी। शास्त्रग्रंथ हिंदीभाषा लिखा और नाटक नाम से सिद्धांत ग्रंथ भी रचा। परिहासिनी नाम की पुस्तक में इनकी हास्य रस की कथाएं भी संकलित हैं। हिंदी साहित्य का वैविध्यपूर्ण इतिहास भारतेंदु हरिश्चंद्र के गौरवमयी व्यक्तित्व से सदैव आलोकित रहेगा।

एस.आर.ए. 35 बी, शिप्रा रिवेरा
इंदिरापुरम, गाजियाबाद, (उ.प्र.)

हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई

कविता सिंह

भारतीय साहित्यकाश में चंद्र 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' ने अपनी चौसठ कलाओं रूपी साहित्यिक-प्रतिभा से न केवल साहित्य जगत को ज्योतिष्मान किया अपितु अपनी मौलिक उद्भावनाओं से हिंदी साहित्य की नवीन विधाओं का उद्भव-सृजन व दिशा-निर्देशक सिद्धांत भी प्रतिपादित किए। प्रबुद्ध व जागरूक साहित्यकार अपने देश-काल व परिस्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। हिंदुस्तान की पराधीनता, देश व देशवासियों की दुर्दशा एक सजग-साहित्यकार को अंतर्व्यथित करने के लिए पर्याप्त थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र देश की इस दुर्दशा को देखकर अपने 'नाट्य-रासक—भारत दुर्दशा' में कराह उठे थे—

''रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''[1]

भारतेंदु ने पैंतीस वर्ष की अल्पायु में शताधिक ग्रंथों की रचना की। विविध विधाओं में मौलिक व अनूदित रचनाओं से साहित्य-भंडार को परिपूरित किया। साहित्य सृजन को 'स्वांतः सुखाय' के साथ ही सोद्देश्य बनाते हुए देश व देशवासियों की उन्नति के लिए उनकी चिंता 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी-चौपट राजा' व बलिया के द्वादशी मेले में 1884 ई. में दिए गए उनके भाषण 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है', भाषण में प्रकट होती है, जो आज भी चिंतनीय व विचारणीय है। उस समय देश में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं व उनके समाधान के लिए जो उपाय व सुझाव उन्होंने दिए वे आज भी उतने ही प्रासंगिक, सार्थक और उपयोगी हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जीवन और साहित्य सर्जना के दो मुख्य नारे दिए थे जो आज भी भारतीय समाज और संस्कृति के संरक्षण, परिष्करण व परिवर्धन के अनुकूल है—(1) स्वत्व निज भारत गहै, और (2) निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

उनकी संपूर्ण साहित्य सर्जना इन्हीं दो मूल उद्देश्यों को लेकर सृजित है। भारतवर्ष का सर्वतोमुखी विकास इन्हीं दो आधारभूत सिद्धांतों से घनिष्ठ रूप से आबद्ध व संबद्ध हैं। भारत अपनी संस्कृति और सभ्यता के आदर्शों को देश-काल व परिस्थिति के अनुसार अपनाता हुआ, अपनी भाषा में समस्त ज्ञान-विज्ञान का अन्वेषण व संग्रहण करे—यही भारतेंदु का 'भारतवर्षोन्नति' के लिए मौलिक व अद्भुत संदेश था।

धर्मप्रवण भारतीय समाज में सुधार हेतु भारतेंदु ने 'धर्म' को प्रमुख कारक माना। भारतीय समाज और राजनीति जब तक धर्मसंवलित, धर्मसंचालित रही, तब तक राजा-प्रजा, देशहित और देशोन्नति में एक-दूसरे के पूरक व साधक रहे, जैसे ही समाज व राजनीति से धर्म तिरोहित और लुप्त हुआ समाज और राजनीति में पतन व अवनति की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। इसी तथ्य को भारतेंदु ने 'अंधेर नगरी-चौपट राजा' में स्पष्ट शब्दों में कहा—

''जहां न धर्म्म न बुद्धि नहिं,
नीति न सुजन समाज।
ते ऐसे आपुहिं नसै,
जैसे चौपट राज।।''[2]

राजा धर्मबुद्धि व नीतिप्रिय नहीं होगा तो उसका और उसके देश का विनाश अवश्यंभावी है। भारतेंदु ने धर्म के मूल तत्त्व और मर्म को समझकर कहा—''देश और समाज के अनुकूल और उपकारी हो उनको ग्रहण कीजिए।''[3] धर्म की सही व सटीक व्याख्या कर देश, काल और समाज के अनुसार धारण करने योग्य जो सबके लिए हितकारी हो, उसको अपनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो रूढ़िबद्ध, प्रगति विरोधी हो उसका परित्याग करना ही श्रेयस्कर है। उन्होंने अंग्रेजों का उदाहरण देकर स्पष्ट किया—''अंग्रेजों की धर्म नीति और राजनीति परस्पर मिली है, उससे उसकी दिन-दिन कैसी उन्नति है।''[4] जबकि हिंदुस्तान में समाज-राजनीति से सच्चे धर्म का विलोपन और धर्म के नाम पर अंधविश्वास, आडंबर, पाखंड और भेदभाव का बोलबाला होता जा रहा है। धर्म, जाति, संप्रदाय के नाम पर मनुष्य-मनुष्य के बीच अलगाव, वोट की राजनीति, सत्ता-पद प्राप्ति, जाति आरक्षण की राजनीति दिन-प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। भारतीय समाज और राजनीति में गहरी पैठी लाईलाज जाति व्यवस्था की समस्या को भारतेंदु की अंतर्दृष्टि ने भली-भांति समझ लिया था कि किस तरह यह देशवासियों के बीच कलह और वैमनस्य का कारण बन गई है, तभी वह 'अंधेर नगरी-चौपट राजा' के दूसरे अंक के बाजार वाले दृश्य में कुंजड़िन से कहलवाते हैं—''ले हिंदुस्तान का मेवा फूट और बैर।''[5]

इतना ही नहीं जाति-व्यवस्था का कैंसर देश को भीतर ही भीतर कितना खोखला,

आधारहीन, सिद्धांतहीन और अनैतिक बना रहा है इस बात को गहराई से उन्होंने महसूस किया था, तभी 'जात वाला ब्राह्मण' के माध्यम से इस वेदना को प्रकट किया—

''जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाए और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचैं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं। टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद, धर्म्म, कुल, मरजादा, सच्चाई, बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल, ले टके सेर।''[6]

दूरदृष्टि संपन्न साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जातिगत विकृति और अर्थलोलुपता बनाम भ्रष्टाचार इन दोनों को देश की प्रगति में सबसे ज्यादा बाधक माना था। धन की हवस इनसान को क्या से क्या बना देती है कि वह अपनी इनसानियत, आदर्शवादिता, नैतिकता सब को भस्मीभूत कर देता है।

भारतेंदु द्वारा वर्णित जातिगत कटु यथार्थ और अर्थ लोलुपता का दानव सचमुच ही हिंदुस्तान को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुला है। इसका परिणाम भारतेंदु ने 'भारत-दुर्दशा' नाटक के तीसरे अंक में स्पष्ट बता भी दिया—

''मरी बुलाऊ देस उजाड़ू,
मंहगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊं,
धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी,
मुझे इक राक्षस मानो जी।।''[7]

आज भारत की यही दुरावस्था है। ऐसा लगता है, जैसे देश की कानून-व्यवस्था ठप्प सी हो गई है और चारों तरफ अराजकता का साम्राज्य छा गया है। अधिकारी जो जनसेवक कहलाते थे, अफसरशाही और लालफीताशाही के तहत पद और पैसे के मद में जो कहते हैं, उसकी सटीक अभिव्यंजना भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'घासीराम चना जोर गरम' के माध्यम से की है—

''चना हाकिम सब जो खाते,
सब पर दूना टिकस लगाते।।''[8]

उच्च अधिकारी के साथ-साथ उनके प्यादे—अमले भ्रष्टाचार में उनसे भी आगे हैं, इस बात को 'पाचक वाला' भी समझता है—

''चूरन अमले बस जो खावै।
दूनी रिश्वत तुरत पचावै।।''[9]

भारतेंदु के समय से लेकर आज तक अधिकांश साहब और पुलिस वालों का जो हाल है, वह सर्वविदित है और 'पाचक वाले' का कहा आज भी उतना ही सत्य साबित हो रहा है, जितना भारतेंदु के समय था—

''चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।
××× ××× ×××
चूरन खावै एडिटर जात।
जिनके पेट पचै नहिं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खात।
सारा हिंद हजम कर जात।।
चूरन पुलिस वाले खाते।
सब कानून हजम कर जाते।।''[10]

सच है आज कानून-व्यवस्था और हिंद हजम होने के कगार पर है क्योंकि राजा अनबूझ है इसलिए हर जगह धर्म, सच्चाई, प्रतिभा, योग्यता का सम्मान नहीं है अपितु सर्वत्र उसका अपमान है। आज राजनीति का जो हाल है, उसका सच्चा वर्णन भारतेंदु ने किया है—

''सांचे मारे-मारे डोलैं,
छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलैं।
प्रगट सभ्य अंतर छलधारी,
सोई राजसभा बल भारी।
सांच कहैं ते पनहीं खावैं,
झूठे बहुविध पदवी पावैं।
छलियन के एका के आगे,
लाख कहौं एकहु नहिं लागे।
भीतर होइ मलिन की कारो,
चाहिए बाहर रंग चटकारो।
धर्म्म अधर्म्म एक दरसाई,
राजा करै तो न्याव सदाई।।''[11]

राजा व राजसभा का यथातथ्य वर्णन भारतेंदु जैसा युग-मसीहा ही कर सकता है। अन्याय, झूठ, छल, कपट के आगे सत्य, धर्म, न्याय सब तिरोहित हो गए हैं। जनता का मनोबल इतना गिर गया है कि वह उचित-अनुचित में भेद नहीं कर पा रही है। न्याय इतना अंधा हो गया है, अंधेरगर्दी इतनी बढ़ गई है कि 'पहले प्यादे' का कथन सत्य होने लगा है—''इस राज में साधू-महात्मा इन्हीं लोगों की दुर्दशा है। इससे तुम्हीं को फांसी देंगे।।''[12]

सयम यही आ गया है कि सीधे-साधे सज्जन लोग दंडित हो रहे हैं और दुष्ट, अपराधी ऐश फरमा रहे हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र इन बुराइयों से भली-भांति अवगत होकर निराश-हताश होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाले कोरे-उपदेशक नहीं थे। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव को समाप्त कर मानव धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प और देश की एकता व अखंडता के कट्टर प्रतिपादक थे—

''हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए।''[13]

उन्होंने देश के धार्मिक व हर तरह के भेदभाव को समाप्त करने के लिए अचूक महामंत्र दिया—''जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग जाति का क्यों न हो, वह हिंदू है।''[14] देश की जनता को संबोधित व प्रेरित करते हुए आगे बढ़ने के लिए 'बात कम काम ज्यादा' का सिद्धिमंत्र दिया—''एक क्षण भी व्यर्थ न जाए।''[15] देश की उन्नति में बाधक अकर्मण्यता, आलस्य व निरर्थक बातों में समय व्यर्थ न करने की सलाह देकर यहां के लोगों पर व्यंग्य भी किया—''जितना निकम्मपान हो उतना ही बड़ा अमीर समझा जाता है।''[16] इन सबका परित्याग कर समय

का सदुपयोग कर पुरुषार्थी, स्वावलंबी, आत्मविश्वासी बनने की शिक्षा दी—''भाइयों, राजा, महाराजों का मुंह मत देखो, मत यह आशा रखो कि पंडितजी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतला देंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आज ही कमर कसो, आलस छोड़ो।''[17] देश की उन्नति की भारतेंदु की समझ कितनी गहरी थी—देश की प्रगति के लिए बुद्धि बल और धन बल दोनों समान रूप से आवश्यक हैं। अतीत और वर्तमान दोनों में समान रूप से प्रासंगिक नेताओं और पंडितों के अंधानुयायी और अंधविश्वासी बनने के बजाए कर्मठ, मेहनती, आत्माभिमानी बन कर अपनी बौद्धिक और आर्थिक उन्नति का रास्ता स्वयं निर्मित करने की शिक्षा कितनी सही, व्यवहारिक और सार्थक है। राजनेताओं की जनसेवा व जनकल्याणकारिता के बदले आत्मसेवा व स्वार्थलिप्सा के इस दौर में जनता स्वयं ही देशोन्नति की पहल करे तो इससे उत्कृष्ट और क्या हो सकता है—यह पहल करने का सुझाव प्रखर चेतना संपन्न दूरदर्शी भारतेंदु ने अपने समय में ही दे दिया था। सरकार व प्रशासन के प्रयत्न के साथ ही साथ जन-जन का प्रयास भी देशोद्धार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस सच्चाई को भारतेंदु ने देशवासियों के समक्ष उद्घाटित किया और तद्नुरूप परिश्रम करने के लिए उद्बोधित किया।

भारत की बढ़ती जनसंख्या व घटते कार्य अवसर की ओर भारतेंदु ने हम सबका ध्यान बहुत बेचैन और चिंतित होकर आकृष्ट किया था—''चारों ओर आंख उठाकर देखिए तो बिना काम करने वालों की ही चारों ओर बढ़ती है, रोजगार कहीं कुछ भी नहीं है।।''[18] जनता की अशिक्षा, अज्ञानता व जनसंख्या-परिसीमन की सरकारी नीतियों के उचित कार्यान्वयन के अभाव के कारण जनसंख्या वृद्धि और बेरोजगारी एक-दूसरे के पूरक बन कर सामने आ रही है, जिसका कुपरिणाम अमीर-गरीब के बीच बढ़ती खाई व गरीबों की संख्या में वृद्धि के रूप में सामने आ रहा है। भारतेंदु ने इस समस्या को समझ कर स्पष्ट शब्दों में कहा—''मनुष्य दिन-दिन बढ़ते जाते हैं और रुपया दिन-दिन कमती होता जाता है।''[19] आज की ज्वलंत समस्याएं—जनसंख्या विस्फोट, बेरोजगारी, बढ़ती गरीबी, रुपए की घटती कीमत, कमजोर अर्थव्यवस्था की ओर संकेत भारतेंदु ने अपनी प्रज्ञा-चक्षु से देखकर उस समय ही कर दिया था—

''ताहू पै मंहगी काल रोग विस्तारी।
दिन-दिन दूनो दुःख ईस देत हा हा री।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''[20]

आज की मंहगाई, इनकम-टैक्स, सर्विस-टैक्स, वैट, गुंडा-टैक्स आदि न जाने टैक्स के नाम पर कितनी वसूली चल रही है फिर भी देश की विकास-दर दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। अर्थशास्त्री न होते हुए भी भारतेंदु ने इन समस्याओं पर गौर कर उनको दूर करने के उपाय सुझाए—''कारीगरी जिससे तुम्हारे यहां बढ़ै, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहै, वह करो।।''[21]

देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ व विकासोन्मुख बनाने के लिए सही नीतियों को अपनाने का आग्रह किया—''परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।''[22]

सशक्त आर्थिक शक्ति बनाने के उपाय सुझाए कि देशवासियों की आवश्यकताओं की समस्त वस्तुएं देश में बनेंगी तो स्वदेशी को बढ़ावा मिलेगा, कार्य-संस्कृति-पनपेगी, रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, गरीबी कम होगी, विदेशों से वस्तुओं का आयात कम होगा और देशी चीजों का निर्यात अधिक होने से देश का पैसा बढ़ेगा, विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ेगा और देश समृद्ध होगा। चीन व जापान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिन्होंने अपनी मातृभाषा का प्रयोग कर उद्योग-धंधों व विज्ञान-तकनीक में अग्रगण्य होकर आर्थिक शक्ति के रूप में अपने को स्थापित कर लिया है। युवकों को कार्य-दक्षता हासिल करने, विदेश भेज कर ज्ञानार्जन व धनार्जन करने की भारतेंदु की सलाह भी काबिलेगौर है—''लड़कों को रोजगार सिखलाओ। विलायत भेजो। छोटेपन से मेहनत करने की आदत दिलाओ।''[23]

'वैश्विक ग्राम' की अवधारणा और सुपर-कंप्यूटर के युग में जब विदेश-आवागमन आसान और अत्यधिक बढ़ गया है, इसकी दस्तक भारतेंदु के उपर्युक्त विचारों ने दी थी तो देश को सर्वतोमुखी चहुंमुखी उन्नति के लिए प्रेरित किया—''भाइयों, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार से उन्नति करो।''[24]

भारतेंदु ने सामाजिक समस्याओं को भी जड़मूल से समाप्त करने की गुजारिश की—''कुलीन प्रथा, बहुविवाह को दूर कीजिए, लड़कियों को भी पढ़ाइए।।''[25] वंशवाद का समापन, बहुपत्नी प्रथा का विरोध, स्त्री-शिक्षा जैसे प्रगतिशील विचारों की उद्घोषणा, जिनकी महत्ता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, भारतेंदु के आधुनिक व सजग द्रष्टा होने का सबल प्रमाण है।

भारतेंदु के स्त्री-पुरुष समानता व स्त्रियों के प्रति सम्मान प्रकट करने वाले विचार उनके द्वारा संपादित स्त्री-पत्रिका 'बाल बोधिनी' के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियों से स्पष्ट हो जाते हैं—

''जो हरि सोई राधिका,
जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष
यामैं कछु न विभक्ति।।
सीता अनुसूया सती
अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण
लहौ सकल जगनारि।।
पितु पति सुत कर तल कमल
लालित ललना लोग।
पढ़ैं गुनैं सीखै नासैं,
सब जग सोग।।
वीर प्रसिविनी बुध बधू
होइ हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की

सांचेहि स्वामिनी होय।।''[26]

महिला सशक्तिकरण की जो महत्त्वपूर्ण चर्चा आज चल रही है उसके प्रत्येक पहलू पर क्रांतिकारी व आधुनिक रूप में प्रकाश भारतेंदु ने 'बाल बोधिनी' पत्रिका के मुखपृष्ठ पर तर्कपूर्ण व विवेकसंगत रूप से डाला है, जो 'भारत-दुर्दशा' को समाप्त करने का कारगर साधन है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने देशोन्नति के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाल कर उन्नति का पथ प्रशस्त करने के अनमोल सुझाव दिए कि निजता की पहचान कर ही प्रभुता स्थापित की जा सकती है और भारतवासियों के आनन पर रुदन के बदले मुस्कान आ सकती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की साहित्य-सर्जना सोद्देश्य, देशकालजयी व अनमोल है। युगों-युगों तक उनका साहित्य मानव-कल्याण के लिए प्रकाश-स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित व सम्मानित होता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ–

1. 'भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली', संपादक-ओम प्रकाश सिंह, प्रकाशक-प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-02, प्रथम संस्करण-2008, भाग-1, नाटक, निबंध और मौलिक नाटक, 'भारत-दुर्दशा', पहला अंक, पृष्ठ संख्या-113।
2. उपर्युक्त, भाग-1, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', छठा अंक, पृष्ठ संख्या-30।
3. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-70।
4. उपर्युक्त, भाग-06, पृष्ठ-69।
5. उपर्युक्त, भाग-एक, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', दूसरा अंक, पृष्ठ-283।
6. उपर्युक्त, भाग-एक, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', दूसरा अंक, पृष्ठ-285।
7. उपर्युक्त, भाग-एक, 'भारत-दुर्दशा', तीसरा अंक, पृष्ठ-117।
8. उपर्युक्त, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', दूसरा अंक, पृष्ठ-284।
9. उपर्युक्त, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', दूसरा अंक, पृष्ठ-284।
10. उपर्युक्त, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', दूसरा अंक, पृष्ठ-284।
11. उपर्युक्त, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', पांचवां अंक, पृष्ठ-297।
12. उपर्युक्त, 'अंधेर नगरी चौपट राजा', पांचवां अंक, पृष्ठ-298-99।
13. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-70।
14. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-71।
15. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-68।
16. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-68।
17. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-68।
18. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-68।
19. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-68।
20. उपर्युक्त, भाग-1, 'भारत दुर्दशा', पहला अंक, पृष्ठ-114।
21. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-71।
22. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-71।
23. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-71।
24. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-71।
25. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-70।
26. उपर्युक्त, भाग-6, पृष्ठ-432।

ए-58, ग्राउंड फ्लोर, से.-52, नोएडा,
गौतमबुद्ध नगर-201301

भारतेंदु हरिश्चंद्र—एक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

सुरेश सक्सेना

हिंदी साहित्य का सृजन विभिन्न प्रवृत्तियों, भावनाओं, विधाओं को आधार बनाकर अनेक कालों या यों कहें तो अनेक युगों में हुआ है। आदिकाल से रीतिकाल तक साहित्य अपने पद्यात्मक रूप में हमारे सम्मुख आया। कालों में विभाजित हिंदी साहित्य की इस विधा को अनेक कवियों ने अपने-अपने काल में भक्ति, शृंगार, वीर आदि अनेक भावों में व्यक्त किया। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का समारंभ सन् 1857 के आसपास माना जाता है। ये वही समय था जब सामंती टुकड़ों में विभाजित भारत, अंग्रेजों के आधीन हो उनके अत्याचारों से क्षुब्ध अपनी पराधीनता के विरुद्ध खड़ा होने का प्रथम प्रयास कर रहा था। असफलता की इस क्रांति की चिंगारी देश के स्वाधीनता की ज्वाला का रूप लेती जा रही थी। भारतीय जन समाज में राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक आदि सभी दृष्टियों से नवजागरण एवं क्रांति का संचार करने के लिए विविध संस्थाओं एवं व्यक्तित्वों का उदय इसी काल विशेष में हुआ। हिंदी साहित्य अपनी ओछी शृंगारिकता से ऊब कर अपने संयत चैतन्य राष्ट्रवादी रूप की ओर उन्मुख होने लगा था। हिंदी साहित्य के इस नवोदय का श्रेय तत्कालीन कवि, नाटककार, उपन्यासकार, आलोचक आदि अनेक विधाओं से संपन्न देश के सच्चे सपूत भारतेंदु हरिश्चंद्र को दिया जाता है।

काशी में सन् 1850 में जन्मे भारतेंदु को अपने शैशव काल से ही देश व समाज में व्याप्त परतंत्रता से उत्पन्न त्रासदियां व असंतोष का वातावरण दृष्टिगोचर हुआ। युवावस्था में आते-आते इनके हृदय में जन-जन के प्रति सुधार, जागृति एवं नवोदय लाने की चेतना उजागर होने लगी। इन्होंने गद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को नया रूप प्रदान किया। इस युग में होने वाले सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक आंदोलनों का प्रभाव भारतेंदुजी के लेखन पर स्पष्ट झलकता है। वे अत्यंत संवेदनशील, रसिक व उदार प्रवृत्ति के पुरुष थे। इनके पिता गोपालदास भी अपने युग के प्रतिष्ठित कवि व नाटककार थे। जिनके द्वारा लिखा गया 'नहुष' नाटक हिंदी का प्रथम नाटक माना जाता है। एक समृद्धशाली वैश्य परिवार में जन्मे भारतेंदु को विरासत में ही कृष्ण भक्ति व साहित्यिकता का वातावरण मिला था। केवल पांच वर्ष की आयु में इन्होंने यह दोहा लिखा जिसमें सभी परिचितों को आश्चर्यचकित कर दिया—

''लै व्योढ़ा ठाड़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन्य को हनन लगे बलवान।।''

पिता की असमय मृत्यु ने इन्हें अपनी आयु से भी अधिक परिपक्व बना दिया। घर परिवार के बोझ के साथ-साथ पैतृक संपत्ति का अधिकार भी प्राप्त हुआ और इनकी उदारता के चलते अनेक आर्थिक दृष्टि से हीन साहित्यकारों को प्रोत्साहन मिला। हिंदी भाषा व उसकी साहित्यिक समृद्धि में इन्होंने मुक्तहस्त से धन खर्च किया। देशाटन के समय ये बंगाल भाषा के रंगमंच तथा नाटकों के संपर्क में आए तथा अनेक मौलिक व अनूदित नाटकों की रचना की। अपने नाटकों के मंचन के अवसर पर ये स्वयं भी उनमें अभिनय किया करते थे। भारतेंदुजी द्वारा रचित साहित्य में कविता, कहानी, नाटक आदि के साथ-साथ समालोचना का आरंभ व विकास भी अपना महत्त्व रखता है।

कवि के रूप में इनकी कविता में कृष्ण भक्ति का स्पष्ट प्रभाव है। इन्होंने राधा-कृष्ण की भक्ति व विभिन्न लीलाओं से संबंधित लगभग डेढ़ हजार पदों की रचना की थी। वे स्वयं वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय से दीक्षा प्राप्त थे। इनके पदों में सूरदास का प्रभाव परिलक्षित होता है। कतिपय पद 'भ्रमरगीत' की रूपरेखा पर आधारित हैं जो निर्गुण भक्ति का खंडन करते हुए दिखाई देते हैं।

''व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन
हैं हमहूं पहचानती हैं।
पै बिना नंदलाल विशाल सदा
हरिचंद न ज्ञानहि ठानती हैं।।''

इनका काव्य शृंगारिकता से भी अछूता नहीं है, किंतु रीतिकालीन शृंगारिकता से परे अत्यंत विशुद्ध व मार्मिक चित्रण इनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। भक्ति के अतिरिक्त शृंगारिक अभिव्यक्तियां भी बहुत सराहनीय हैं। शृंगार का प्रयोग होने पर भी इनमें कोई अश्लील भाव नहीं है। इनमें संयोग-वियोग दोनों पक्षों का ही वर्णन मिलता है—

''आजु लौ जो ना मिले तो कहा
हम तो तुम्हारे सब भांति कहाएं।
...प्यारे जु है जग की यह रीति
बिंदा की मैं सब कंठ लगावैं।।''

अभी हमने भक्ति एवं शृंगार की बात कही। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयता एवं सामाजिक चेतना भी इनकी कविता के महत्त्वपूर्ण विषय हैं। समाज में हीनता एवं इनके कारण फैलती

परिस्थितियां, दासता और अनेकों विकृतियों पर भी भारतेंदुजी ने अपने भाव प्रकट किए हैं। जैसे–

'हा! हा! भारत-दुर्दशा अब देखी न जाई।।''

अपनी एक कविता 'प्रबोधिनी' में उन्होंने लिखा है–

''आलस कादरपनों, निरूघमता अबधाई।
रही मूढता वैर परस्पर कलह, लराई।।''

भारतेंदुजी की भक्ति भावना के साथ-साथ राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के भी दर्शन होते हैं। भारतेंदुजी को प्रकृति से भी विशेष लगाव रहा। शृंगार से पृथक होकर उन्होंने प्राकृतिक वर्णन बहुत ही सुंदर रूप में किया है–

परत चंद्र-प्रतिबिंब कहू
जल मधि चमकायों।
लोह लहर लाई नचत कबहुं,
सोई मन भायो।।''

यहां जल में चंद्रमा के प्रतिबिंब को बहुत ही आकर्षक ढंग से पस्तुत किया है। प्रकृति पर उनकी अन्य रचनाएं 'गंगा वर्णन' और 'यमुना वर्णन' विशेष उल्लेखनीय हैं। स्पष्ट है कि भारतेंदुजी अपने युग के विशिष्ट एवं युग-प्रवृतक रचनाकार थे।

नाटककार के रूप में भारतेंदुजी बहुत ही प्रखर रूप से हमारे सामने आए हैं। इनके द्वारा रचित नाटकों की एक लंबी सूची में कुछ विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं। 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' एवं 'नील देवी' आदि। इनके अतिरिक्त इन्होंने बहुत से अनूदित नाटक भी साहित्य को भेंट किए, जैसे 'मुद्राराक्षस', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'भारत जननी', 'रत्नावली' इत्यादि। इनके सभी नाटकों के विषय सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक संदर्भ से सुशोभित हैं। आरंभ में संस्कृत नाटकों से प्रभावित होकर नाटक रचे गए। शनैः-शनैः उनमें आधुनिकता के बोध का समावेश होता गया। आज का नाटक एवं एकांकी रूप भारतेंदुजी की ही देन है।

नाट्य विद्या के अतिरिक्त इन्होंने आलोचनात्मक निबंध एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया। संपादन-कला को एक दिशा दी। निबंधों द्वारा 'आलोचना' के मूल्य प्रतिपादित किए, उनका 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नामक पत्र यहां विशेष उल्लेखनीय है। पद्य में उन्होंने बृजभाषा एवं गद्य के लिए खड़ी बोली को ही उपयुक्त बताया। राष्ट्र भाषा के महत्त्व को समझाते हुए उन्होंने लिखा–''निज भाषा उन्नति अहै। सब उन्नति को मूल...।''

उनकी रचनाओं में साहित्य भाव एवं कला का अद्भुत मिश्रण पाया जाता है। धीरे-धीरे भारतेंदुजी ने राजभक्ति के मोह को त्याग दिया और 'राष्ट्रीय चेतना' को प्रबल रूप में स्वीकार लिया। यह समय की मांग थी एवं पुकार भी। भारतेंदुजी ने गद्य के क्षेत्र में इतनी सुदृढ़ नीव रखी जिससे साहित्यिक विधाएं दिन-प्रतिदिन निखरने लगी।

वे रूढ़िवाद के प्रखर विरोधी थे व समाज में फैले अंधविश्वासों के प्रति सचेत। जहां स्त्री शिक्षा तथा विधवा विवाह का सच्चाई से समर्थन किया, वहीं उन्होंने सती प्रथा व बाल विवाह का विरोध। अंग्रेजों के प्रति उनका क्षुब्ध रूप सामने आया तथा समाज व राष्ट्र को चेताया व जगाया। ये सभी महत्त्वपूर्ण कार्य उनके लेखन के प्रमुख अंग थे। अपने घर में ही होने वाली कवि गोष्ठियों में वे अन्य कवियों को भी प्रोत्साहित करते और अपने पत्र में उनकी कृतियों को स्थान देते। बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न भारतेंदुजी एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के मालिक थे। उनके नेतृत्व में हिंदी साहित्य की गद्यात्मक विद्याओं को ठोस तथा पक्की नींव मिली। इसीलिए हिंदी साहित्य के इतिहासकार आधुनिक काल के प्रारंभिक तीस-बत्तीस वर्षों को भारतेंदु युग मानते हैं। वास्तव में भारतेंदुजी आधुनिक हिंदी साहित्य के एक मुख्य आधार स्तंभ हैं।

44, पंचशील पार्क, जी.टी. रोड, साहिबाबाद, गाजियाबाद–201005 (उ.प्र.)

भारतेंदु के नाट्य मूल्य

ऋषभदेव शर्मा

भारतेंदु हरिश्चंद्र (9 सितंबर, 1850–7 जनवरी, 1885) आधुनिक संदर्भ में हिंदी के पहले सहित्यशास्त्री, आचार्य और आलोचक हैं। उन्होंने सैद्धांतिक और व्यवहारिक आलोचना का सूत्रपात्र किया। 'नाटक अथवा दृश्यकाव्य सिद्धांत विवेचन' शीर्षक पुस्तक में उन्होंने अपने साहित्य सिद्धांतों को साफ सुथरे ढंग से पेश किया है। वे स्वयं प्रयोगधर्मी नाटककार थे, अतः उन्होंने देशकाल के अनुरूप हिंदी नाटक के लिए उपादेय सिद्धांत स्थिर करने का प्रयास किया, इन सिद्धांतों को संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के नाट्य ग्रंथों के आधार पर तैयार किया गया है, उन्होंने 'उपक्रम' में यह सूचना भी दी है कि इसके लिखित विषय दशरूपक, भारतीय नाट्यशास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, विल्संस हिंदू थियेटर्स, लाइफ ऑफ द एमिनेंट पर्सन्स, ड्रमेटिस्टस एंड नोवेलिस्ट्स, हिस्ट्री ऑफ द इटालिक थियेटर्स और आर्य दर्शन से लिए गए हैं, उन्होंने यह आशा भी जताई है कि हिंदी भाषा में नाटक बनाने वालों के लिए यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी होगा।

संसार-नाटक के रचनाकार मायाजवनि-काच्छंन जगंनाटकसूत्रधार मदंगरंगनायक नटनागर को समर्पित यह विवेचन नाटक के अर्थ और प्रकारों की चर्चा के साथ आरंभ होता है। अत्यंत सरल परिभाषा देते हैं भारतेंदुजी—नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। इसी प्रकार दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके हृदयगत आशय और हावभाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे, वे बताते हैं कि प्राचीन समय में अभिनय, नाट्य, नृत्य, नृत, तांडव और लास्य इन पांच भेदों में बंटा हुआ था। इनमें नाट्य में नाटक का समावेश है जिसे उन्होंने 'काव्य का सर्वगुण संयुक्त खेल' कहा है और इसके भेदों की चर्चा की है।

भारतेंदु नाटक के भरतमुनि-प्रोक्त प्रकारों से संतुष्ट नहीं दिखाई देते और नवीन भेद प्रस्तावित करते हैं। यूरोप और बंगदेश के प्रभाव से हिंदी में रचे जा रहे अपने समकालीन नाटकों को ध्यान में रखते हुए भारतेंदु ने नवीन नाटकों के दो भेद बताए हैं—नाटक और गीतिरूपक, फिर इनके भी भेद हैं—संयोगांत, दियोगांत और मिश्र, भारतेंदु ने यह लक्षित किया कि प्राचीन नाटकों की अपेक्षा नवीन नाटकों की परम मुख्यता बारंबार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक अंक में अनेक-अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है क्योंकि समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी नवजागरण के पुरोधा थे। वे नाटक सहित समस्त साहित्य और लोकसाहित्य का उपयोग बूढ़े भारत की नसों में सोई हुई जवानी को जगाने के लिए करना चाहते थे। एक शास्त्रकार के रूप में भी उनकी यह मौलिक दृष्टि निरंतर सक्रिय दिखाई देती है—और नाट्यकार के रूप में भी। इसी कारण उन्होंने नवीन नाटकों की रचना के पांच प्रयोजन निर्धारित किए और उन्हें स्वयं अपने नाटकों में चरितार्थ करके दिखाया—1. श्रृंगार, 2. हास्य, 3. कौतुक, 4. समाज संस्कार और 5. देशवत्सलता। कहना न होगा कि इनमें अंतिम दो प्रयोजन भारतेंदु की देशकाल-सापेक्ष प्रतिभा की मौलिक देन है। वे स्पष्ट कहते हैं कि ''समाज संस्कार के लिए नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है, यथा शिक्षा की उन्नति, विवाह संबंधी कुरीति निवारण अथवा धर्म संबंधी अंयांय विषयों में संशोधन इत्यादि, किसी प्राचीन कथा भाग का इस बुद्धि से संगठन कि देश की उससे कुछ उन्नति हो। इसी प्रकार के अंतर्गत है। (इसके उदाहरण सावित्री चरित्र, दुःखिनीबाला, बाल विवाह विदूषक, जैसा काम वैसा ही परिणाम, जय नारसिंह की, चक्षुदान इत्यादि), देशवत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों या देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुण और वीर रस के होते हैं। (उदाहरण भारत जननी, नीलदेवी, भारत दुर्दशा इत्यादि),'' दरअसल समाज संस्कार और देशवत्सलता ही भारतेंदु और उनके युग के साहित्य को समझने की कुंजी है।

'नाटक' में आगे भारतेंदु ने नाटक रचना पर प्रकाश डालते हुए निरंतर सामाजिक (दर्शक/पाठक) को केंद्र में रखा है। क्योंकि अंततः रचना का उद्देश्य उसे ही तो संस्कारित करना है, भारतेंदु सामाजिकों की रुचि के परिवर्तन को लक्षित करते हैं और चाहते हैं कि नाटक की रीति में भी तदनुकूल परिवर्तन हो। एक बड़ा काम उन्होंने यह किया कि नाटक को सामाजिक यथार्थ के साथ जोड़ा। वे चाहते थे कि आज के नाटक में 'लोकातीत असंभव कार्य की अवतारणा' से गुरेज किया जाए तथा 'अस्वाभाविक सामग्री' और 'अलौकिक विषय' के स्थान पर स्वाभाविक रचना की जाए। स्पष्ट है कि वे नाट्यवस्तु के लौकिक

संभाव्य और यथार्थपरक होने की मांग कर रहे थे। नाट्य लेखन और प्रस्तुतीकरण की रूढ़ियों को भी उन्होंने तोड़ा। ''अब नाटक में आशीः प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी', कहीं 'विलोभन', कहीं 'संफेट', 'पंचसंधि' व ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं बाकी रही। संस्कृत नाटक की भांति हिंदी नाटक में इनका अनुसंधान करना व किसी नाटकांश में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिंदी नाटक लिखना व्यर्थ है।''

आगे प्रतिकृति, जवनिका, प्रस्तावना और उसके भेद, वृत्ति, उद्देश्यबीज, वस्तु, अभिनय आदि की चर्चा के उपरांत नाटक में निषिद्ध विषयों (विरोधक) की भी चर्चा की गई है। नायक-नायिका के गुणों के बाद वेश औचित्य का उल्लेख है। नाटक रचना प्रणाली की सोदाहरण व्याख्या की गई है। कालिदास, भवभूति और शेक्सपीयर की श्रेष्ठता की चर्चा भी यहां है। भारतेंदु ने इन नाटककारों की कालजयी कीर्ति का आधार 'मनुष्य प्रकृति' की इनकी समझ को माना है और नाटककार को यह परामर्श दिया है कि ''मानव प्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करै तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुनै तथा नाना प्रकार के ग्रंथ अध्ययन करै, वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करै, यह न करने से मानव प्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्य लोगों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्वभाव भी उसी रूप में अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय बाह्य कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उसके अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है। और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना झख मारना है। राजनीति, धर्मनीति, आंवीक्षिकी, दंडनीति, संधि, विग्रह प्रभति राजगुण, मंत्रणा चातुरी, आद्य, करुणा प्रभृति रस, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव तथा सात्यिक भाव तथा व्यय, वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक रूप समर्थ हो—तब नाटक लिखने की लेखनी धारण करै।'' आगे रस वर्णन किया गया है। इस संबंध में यह विचारणीय है कि भारतेंदु ने भारत-प्रणीत रसों के अतिरिक्त भक्ति, सख्य, वात्सल्य और आनंद—ये चार रस और माने हैं, 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित एक पत्र में भारतेंदु ने नए रसों की संकल्पना को स्वीकार न करने वालों की आलोचना करते हुए इन चारों नए रसों का पृथक-पृथक स्थापन किया है। इसके अलावा 'नाटक' में रस विरोध पर विचार करते हुए करुणा और शृंगार के संबंध की भी चर्चा की गई है। साथ ही यह प्रतिपादित किया गया है कि ''हां, नवीन (ट्रेजडी) वियोगांत नाटक लेखक तो इस रस विरोध करने को बाधित हैं।''

'अन्य स्फुट विषय' के अंतर्गत कुछ नायिका भेद और अलंकारशास्त्र जानने की आवश्यकता के अलावा यह कहा गया है कि आजकल की सभ्यता के अनुसार नाटक रचना में उद्देश्यफल उत्तम निकलना आवश्यक है। इसका अर्थ है कि वे नाटक का उपयोग समकालीन संदर्भ में लोकशिक्षा के लिए करना चाहते थे। नाटक की कथा, पात्रों के स्वर, पात्रों की दृष्टि, पात्रों के भाव, पात्रों का फिरना और पात्रों का परस्पर कथोपकथन संबंधी नियम भी एक कुशल नाट्य निर्देशक की तरह भारतेंदु ने निर्धारित किए हैं। यथा (1) प्रारंभ में ही कहानी के मध्य या अंत का बोध न हो, (2) स्वर का आरोह-अवरोह भाव के अनुरूप हो, (3) संवाद इस तरह न बोले जाएं जैसे कि दर्शकों से बात की जा रही हो, (4) नृत्य की भांति रंगस्थल पर पात्रों को हस्तक भाव व मुख-नेत्र-भू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं, (5) स्वर भाव और यथायोग्य स्थान पर अंग-भंगी भाव ही दिखलाने चाहिए (अर्थात् नाटक में नृत्य की भांति मुद्राओं और भंगिमाओं का प्रयोग अस्वाभाविक है। अतः स्वाभाविक देहभाषा ही स्वीकार्य है), (6) यथा संभव दर्शकों की ओर पीठ न हो, (7) संवादों में काव्यत्व के स्थान पर हृदय के भावबोधक वाक्यों का प्रयोग ही उचित है, कहना न होगा कि ये नियम नाटक को जनपदसुखबोध्य बनाने के साथ-साथ उसे सामाजिकों की संबोधित करने का सशक्त माध्यम भी बनाने की दृष्टि से निर्धारित किए गए हैं। इसके बाद भारतेंदु ने नाटकों के इतिहास पर प्रकाश डाला है और 'भाषा नाटक' शीर्षक खंड में आरंभिक हिंदी नाटकों पर चर्चा के अनंतर यूरोप में नाटकों के प्रचार पर भी टिप्पणी की है। नाटक संबंधी भारतेंदु के इस विवेचन को उनके एक और छोटे से आलेख के साथ जोड़कर देखा जाए तो समाज संस्कार तथा देशवत्सलता की उनकी धारणा और अधिक स्पष्ट हो सकती है। 'जातीय संगीत' शीर्षक इस लेख से भारतेंदु की लोकव्यापी दृष्टि और सामान्य जन से उनके लगाव का पता चलता है। हमारे यहां सबसे पहले ग्रामगीतों का महत्त्व शायद भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ही समझा था। वे लोकगीतों को समाज संस्कार के लिए इस्तेमाल करने की वकालत करते थे। उनके नाटकों में लोक शैली का प्रयोग उनकी इसी मान्यता का परिणाम है। वे बड़े-बड़े लेखों और काव्यों की तुलना में लोकगीतों और ग्रामगीतों को भारतीय जनता से जुड़ने का सबसे सार्थक माध्यम मानते थे। इस व्यापक लोक-माध्यम को ही उन्होंने 'जातीय संगीत' की संज्ञा दी। वे चाहते थे कि इस माध्यम का उपयोग अर्धशिक्षितों और अशिक्षितों तक समाज संस्कार और देशवत्सलता के संदेश को पहुंचाने के लिए किया जाए। एक यथार्थवादी समाजचेता देशवत्सल सिद्धांतकार के रूप में उन्होंने 'जातीय संगीत' का उपयोग करने के लिए ऐसे विषयों पर नाटक, उपन्यास या काव्य रचना का आग्रह किया जो जनता के जागरण का हेतु बन सके। बड़ी रचनाओं की तुलना में उन्होंने छोटे-छोटे 'सरल देशभाषा' में रचित गीतों और छंदों को प्राथमिकता दी है। ऐसे जातीय साहित्य के लिए भारतेंदु ने कुछ विषयों की सूची भी दी है, जो इस प्रकार है—

बाल्य विवाह—इसमें स्त्री का बालक पति होने का दुःख फिर परस्पर मन न मिलने

का वर्णन, उससे अनेक भावी अमंगल और प्रतीतिजनक परिणाम।

जन्मपत्री की विधि—इससे बिना मन मिले स्त्री-पुरुष का विवाह और इसकी अशास्त्रता।

बालकों की शिक्षा—इसकी आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचार शिक्षा, व्यवहार शिक्षा आदि।

बालकों से बर्ताव—इसमें बालकों के योग्य रीति पर बर्ताव न करने में उनका नाश होना।

अंग्रेजी फैशन—इससे बिगड़कर बालकों का मद्यादि सेवन आदि स्वधर्म विस्मरण।

स्वधर्म चिंता—इसकी आवश्यकता।

भ्रूणहत्या और शिशु हत्या—इसके प्रचार के कारण, उसके मिटाने के उपाय।

फूट और बैर—इसके दुर्गुण, इसके कारण भारत की क्या-क्या हानि हुई इसका वर्णन।

मैत्री और ऐवंय—इसके बढ़ने के उपाय, इसके शुभ फल।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व—के दोष, इससे परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक-दूसरे के सहाय में असमर्थ होना।

योग्यता—अर्थात् केवल वाणी का विस्तार न करके सब कामों के करने की योग्यता पहुंचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय।

पूर्वज आर्यों की स्तुति—इसमें उनके शौर्य, औदार्य्य, सत्य, चातुर्य्य, विद्यादि गुणों का वर्णन।

जन्मभूमि—इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन।

आलस्य और संतोष—इनकी संसार के विषय में निंदा और इससे हानि।

व्यापार की उन्नति—इसकी आवश्यकता और उपाय।

नशा—इसकी निंदा इत्यादि।

अदालत—इसमें रुपया व्यय करके नाश होना और आपस में न समझने का परिणाम।

हिंदुस्तान की वस्तु हिंदुस्तानियों को व्यवहार करना—इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन—करुण रस संवलित।

जातीय संगीत के ये वांछित विषय भारतीय साहित्य अथवा राष्ट्रीय साहित्य की संकल्पना के भी आधारबिंदु बन सकते हैं। इस विषयसूची को अगर भारतेंदु के नाट्यमूल्यों के साथ जोड़कर देखा जाए तो ये कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी में केवल आधुनिकता ही नहीं बल्कि उत्तर आधुनिकता के भी पुरोधा थे। उन्होंने साहित्य, समाज और जीवन की निकटता पर सबसे अधिक जोर दिया और भारतीय व पाश्चात्य नाट्य परंपराओं का विखंडन करके अपने समय की आवश्यकता के अनुरूप हिंदी के नाट्यशास्त्र की रचना की। वे सही अर्थों में समाजभाषा वैज्ञानिक भी थे। प्रमाण के रूप में निज भाषा की उन्नति को सब उन्नति का मूल मानने वाले भारतेंदु के 'हिंदी भाषा' शीर्षक लेख (1883 ई.) को देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने लिखा है कि ''भाषा के तीन विभाग होते हैं, यथा घर में बोलने की भाषा, कविता की भाषा और लिखने की भाषा।'' साथ उन्होंने विभिन्न बोलियों, कजली की कविता, बंग भाषा की कविता, नई भाषा की कविता आदि के नमूनों के बाद लिखने की भाषा के विधि नमूने देते हुए शुद्ध हिंदी, मिश्रित हिंदी और उर्दू ही नहीं कलकत्ता, काशी व दक्षिण के लोगों की हिंदी, अंग्रेजों की हिंदी और रेलवे की भाषा जैसे विभिन्न वैविध्यों और प्रयुक्तियों की भी सोदाहरण चर्चा की है। इन तमाम भाषा रूपों के बीच उन्होंने ऐसी भाषा को लेखकों के लिए ग्राह्य माना है जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हों और जिसका आधार तद्भवप्रधान जनप्रचलित हिंदी हो, स्पष्ट है कि नाटक सहित समस्त साहित्य की कसौटी भारतेंदु के लिए समाज संस्कार और देशवत्सलता ही थी तथा वस्तु, तकनीक और भाषा तीनों के चयन का आधार भी उन्होंने इन्हें ही बनाया।

आचार्य एवं अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैतराबाद,
हैदराबाद–500004

भारतीय नवजागरण और भारतेंदु की कविता

वशिष्ठ अनूप

भारतेंदु (सन् 1850-1885) का जन्म काशी के एक संपन्न वैश्य कुल में हुआ था। वे मात्र चौंतीस वर्ष और चार महीने जीवित रहे। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र (गिरिधर दास) भी बहुत अच्छे कवि थे। भारतेंदु युग-प्रवर्तक रचनाकार थे। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के अग्रदूत थे। उनके शौकीन स्वभाव, खुशमिजाजी और दानशीलता की अनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं। भारतेंदु यात्रा के बहुत शैकीन थे। सिर्फ पंद्रह साल की अवस्था में वे जगन्नाथ धाम गए थे। इस यात्रा में उनका परिचय बंगाल के नए साहित्य से हुआ। वहां की जागृति और नए ढंग की सामाजिक हलचल से वे बहुत प्रभावित हुए और घर लौटकर उन्होंने सिर्फ सत्रह साल की अवस्था में ही 'कवि वचन सुधा' (1868 ई0) नाम की पत्रिका निकाली। सन् 1873 ई. में उन्होंने 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' नाम की दूसरी पत्रिका निकाली। आठ अंकों के बाद इसका नाम बदलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। परिमार्जित हिंदी का प्रथम दर्शन इसी पत्रिका में होता है। भारतेंदु ने स्वयं कहा था कि (सन् 1873 ई. में) हिंदी नए चाल में ढली।'

भारतेंदु विभिन्न सामाजिक-साहित्यिक आंदोलनों के केंद्र बिंदु थे। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में न केवल स्वयं रचना की अपितु अपने युग के रचनाकारों को लगातार प्रेरित भी किया। अनेक विवादों को सुलझाते हुए, अनेक समस्याओं-रूढ़ियों, अंधविश्वासों, गरीबी, परतंत्रता इत्यादि के प्रति सचेत और जाग्रत करते हुए उन्होंने साहित्यकार के कर्मक्षेत्र को व्यापक आधार-भूमि प्रदान की। अनेक आंदोलनों के संचालक होते हुए भी वे कभी नेता की शक्ल में लोगों के सामने नहीं आए। उन्होंने हमेशा लोगों को मित्रवत् उत्साहित किया। उनके व्याख्यानों, निबंधों और नाटकों में तत्कालीन समाज का बहुत ही सजीव रूप उपस्थित है। उनकी दृष्टि समाज की प्रत्येक गतिविधि पर थी। 'कवि वचन सुधा' और हरिश्चंद्र चंद्रिका' में प्रकाशित विभिन्न विषयों से संबंधित विज्ञप्तियों को देखकर उनकी जागरूकता और जीवंतता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। 23 मार्च, 1874 को स्वदेशी के पक्ष में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित हुआ था—'हम लोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे...।'

भारतेंदु की कविता में जो अंतर्विरोध हैं वे उस युग और उनके संस्कारों के अंतर्विरोध हैं। उनके एक तरफ मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति थी और दूसरी तरफ नवीन चेतना। इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच काफी कशमकश होती रही। इसी कारण उनकी कविताओं में पारंपरिक भक्ति, शृंगार, समस्यापूर्ति और भक्ति भी है, साथ ही नवीन चेतना से संचालित युगीन विसंगतियों को उद्घाटित करती हुई मुक्तिकामी विचारधारा से लबालब भरी हुई कविताएं भी हैं। उन्होंने अपने विषय में लिखा था—

''कहेंगे सबैही नैन नीर भरि-भरि पाछे,
प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रह जाएगी।''

उनकी मृत्यु के बाद प्रेमघन ने लिखा था—

''मित्र क्यों न रोवै तेरो शत्रु क्यों न हौवै तऊ,
पूरो पशु होवे ना तो क्या मजाल रोवेना।''

इसको पढ़कर ज्ञात होता है कि भारतेंदु को अपने समाज से और समाज को भारतेंदु से कितना गहरा लगाव था।

रचनाएं—

काव्य—भारतेंदु की काव्य-कृतियों की संख्या 70 के लगभग है। इनमें से 'प्रेम सरोवर', 'प्रेम मालिका', 'वर्षा विनोद', 'विनय-प्रेम पचासा', 'वेणुगीति', 'प्रेमसरोवर' आदि विशेष चर्चित हैं। 'भारतेंदु ग्रंथावली' के प्रथम भाग में उनकी सभी कविताएं एक जगह उपलब्ध हैं।

नाटक (मौलिक)—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली नाटिका, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नील देवी, अंधेर नगरी, प्रेमयोगिनी, सती प्रताप (अधूरा)।

अनुवाद—पाखंड-विडंबन, धनंजय विजय, विद्या सुंदर, कर्पूरमंजरी, मुद्रा राक्षस, सत्य हरिश्चंद्र, भारत जननी।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक परिहास, प्रहसन, अनुवाद, धर्म-इतिहास संबंधी लेख तथा अनेक व्याख्यानात्मक लेख भी लिखे हैं। भारतेंदु युगीन साहित्य में हमारा साक्षात्कार जिन बदली हुई परिस्थितियों और जागती हुई जनता से होता है, उसके पीछे कई महत्त्वपूर्ण कारण हैं और उनकी एक लंबी कहानी है। हिंदुस्तान की बदलती हुई ऐतिहासिक

राजनीतिक परिस्थितियों के साथ ही साथ यहां अंग्रेजों की ताकत भी दिन-ब-दिन बढ़ती गई और देश की गर्दन में ब्रिटिश हुकूमत का पंजा भी कसता गया। अंग्रेज यहां सिर्फ व्यापार करने और शासन करने ही नहीं आए थे, वे यहां अपने धर्म और विचारों को भी आरोपित करना चाहते थे। इसीलिए अंग्रेजों के साथ ही यहां इसाई मिशनरियां भी सक्रिय हो गई थीं। इसाई धर्म-प्रचारकों ने अपने धर्म का प्रचार करते हुए हिंदुओं और मुसलमानों के धर्मों पर उचित अनुचित आक्षेप भी किए। साथ ही इन धर्मों की संकीर्णताओं, रूढ़ियों और कुप्रथाओं पर भी आक्रमण किया। उस समय हिंदू धर्म में सती-प्रथा, भ्रूण-हत्या, नर-बलि, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, छुआछूत, बहुविवाह, नशाखोरी इत्यादि कुप्रथाओं का भयानक चलन था। इसाई धर्म-प्रचारकों ने इन सारी विकृतियों पर चोट करते हुए सती-दाह, कन्या-वध इत्यादि के संदर्भ में कानून बनवाकर इनका उच्छेद करवा दिया। इसाई धर्म के प्रचार से हिंदू धर्मावलंबियों में जहां एक तरफ क्षोभ पैदा हो रहा था, वहीं दूसरी तरफ अपनी कमजोरियों का ज्ञान भी हो रहा था। इस प्रकार परोक्ष रूप से अंग्रेजों और इन धर्म प्रचारकों ने हिंदू-धर्म की विद्रूपताओं का उद्घाटन करके यहां के लोगों को अपने धर्म पर सोचने और नए तरह से विचार करने को विवश कर दिया।

इसाई धर्म की तीव्र प्रतिक्रिया हुई और कई महत्त्वपूर्ण चिंतकों ने धर्म को नई वैज्ञानिक चेतना के प्रकाश में देखना आरंभ किया। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। ब्रह्म समाज की स्थापना सन् 1828 में राजाराम मोहनराय (1772-1833) ने की। संस्कृत के साथ ही उन्हें अरबी-फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। वे महत्त्वपूर्ण यूनानी विचारकों के विचारों से भी परिचित थे। कर्मकांड और अंधविश्वासों का विरोध करने के लिए उन्होंने उपनिषदों का उपयोग किया और मूर्तिपूजा का विरोध किया। उन्होंने अनेक सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते हुए सती-प्रथा इत्यादि अमानवीय प्रथाओं का जमकर विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन किया। ब्रह्म समाज को देवेंद्रनाथ टैगोर (1817-1905) एवं केशव चंद्र सेन (1838-1884) ने आगे बढ़ाया। केशवचंद्र सेन ने शिक्षित समाज को काफी प्रभावित किया। सन् 1867 में उन्होंने प्रार्थना समाज की स्थापना की। इसके उन्नायकों में महादेव गोविंद रानाडे थे। ये अध्ययनशील और मेधावी थे। ये रूढ़ियों और अंधविश्वासों से निरंतर संघर्ष करते रहे। पुराने विचार और संस्थाओं को उसी रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने वालों का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा कि 'मृत अतीत को कभी जीवित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार समाज जीवित अवयवों का संगठन है जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है। इस प्रक्रिया के बंद हो जाने पर समाज मुर्दा हो जाएगा।' रानाडे ने जाति-पाति का विरोध करते हुए अंतरजातीय विवाह पर बल दिया।

ब्रह्म समाज के बाद हिंदू-धर्म और हिंदी भाषाओं को विकसित करने वालों में स्वामी दयानंद (1824-1883) का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। उन्होंने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने सामाजिक और धार्मिक विचारों की दुनिया में क्रांति मचा दी। इस संस्था ने स्वामी दयानंद के नेतृत्व में कई मोर्चो पर धावा बोल दिया तथा रूढ़िवादी सनातनियों, इसाईयों एवं अन्य रूढ़िग्रस्त धार्मिक अंधविश्वासों का निषेध करते हुए वैदिक धर्म के पुनरुद्धार और विधवा विवाह पर बल दिया। एक बहुत बड़ा भारतीय समाज इसी के प्रभाव से धर्म-परिवर्तन करने से विमुख हुआ। आर्य समाज ने बुद्धिवादी जीवन-दृष्टि के साथ ही स्वराज्य और जनतंत्र की भी प्रेरणा दी थी। पुरानी शिक्षा के लिए गुरुकुल और नवीन शिक्षा के लिए दयानंद ऐंग्लो बर्नाक्यूलर शिक्षण संस्थाओं की स्थापनाएं दयानंद की विशेष देन है। गद्य की भाषा के परिष्कार में भी इस आंदोलन की अभूतपूर्व भूमिका है।

थियोसाफिकल सोसायटी की शुरुआत अमेरिका के न्यूयार्क में सन् 1875 में हुई थी। भारत में इसकी नींव 1893 में एनीबेसेंट द्वारा पड़ी। इसके आधारभूत सिद्धांत पाश्चात्य विचार जगत के थे, किंतु भारत में यह भारतीय दर्शन और धर्म से भी जुड़ गया। एनी बेसेंट ने अपने गतिशील व्यक्तित्व और असाधारण वक्तृत्व-शक्ति के कारण अनेक शिक्षित भारतीयों को आकृष्ट किया। आदर्शों को मूर्तरूप देने के लिए उन्होंने अनेक शिक्षा-संस्थाएं भी खोलीं। बनारस सेंट्रल हिंदू कॉलेज इसी योजना के अंतर्गत खोला गया। इस सोसायटी ने राष्ट्रीयता का पोषण करते हुए ईसाइयत प्रधान नवीन शिक्षा को भारतीय हितों के विरुद्ध बताया।

विवेकानंद के नव्यवेदांत ने व्यावहारिक और मानवतावादी अद्वैत दर्शन का देश-विदेश में व्यापक प्रचार किया। रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। रामकृष्ण परमहंस के विषय में कहा जाता है कि इस गरीब, अपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्ति पूजक, मित्रहीन हिंदू भक्त ने बंगाल को बुरी तरह हिला दिया। उनके योग्य शिष्य विवेकानंद ने उनके विचारों को आगे बढ़ाया। सन् 1893 में विवेकानंद विश्वधर्म संसद में शामिल होने के लिए जब शिकागो गए तब उनकी वक्तृत्व क्षमता से प्रभावित होकर न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ने लिखा था—''विश्वधर्म संसद में विवेकानंद सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।'' धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों में भी उनकी गहरी रुचि थी। उन्होंने जाति, संप्रदाय, छुआछूत आदि का लगातार विरोध किया। उन्होंने गरीबों का पक्ष लेते हुए धनिकों को धिक्कारा। विवेकानंद ने हीनता-ग्रस्त देशवासियों में गौरव का भाव भरकर उन्हें स्वतंत्रता की ओर प्रेरित किया।

इन नवीन धार्मिक आंदोलनों ने देश की प्रसुप्त शक्ति को धक्का मारकर जगा दिया।

इन धर्मों की प्रतिक्रिया में पुराने धर्म के समर्थक उठ खड़े हुए। इस वाद-विवाद में अनेक पुस्तकें लिखी गईं, जिससे हिंदी के गद्य साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ। सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसने भारतीय चिंतन-धारा को बहुत अधिक प्रभावित किया। आगे चलकर महात्मा गांधी, पं. मदन मोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह आदि राष्ट्रवादी, सांस्कृतिक एवं क्रांतिकारी विचारकों और कार्यकर्ताओं ने इस जनजागरण को अपने-अपने ढंग से पुष्ट किया।

इस प्रकार नवीन धार्मिक आंदोलनों, वैज्ञानिक आविष्कारों, रेल तार, प्रेस का विकास, नवीन वैज्ञानिक शिक्षा, नवीन आर्थिक संगठन, उद्योग-व्यापार आदि ने नई दृष्टि पैदा की। इनसे ब्रिटिश हुकूमत का चरित्र भी समझ में आने लगा और लोगों में राष्ट्रीयता व जनतांत्रिक मूल्यों का विकास हुआ। इस बहुमुखी नवजागरण की चेतना ने परंपरावादी संकीर्ण भावों और विचारों की जड़ें हिला दीं। साहित्यकारों ने भी दुनिया को नई दृष्टि से देखा तथा बहुत दिनों से राजमहलों में कैद कविता ने भी मुक्त गगन में उड़ान भरी। इस नवजागरण की चेतना स्वतंत्रता प्राप्ति तक के साहित्य में व्यक्त होती रही।

भारतेंदु युग का आरंभ भारतेंदु के रचना काल सन् 1868 से माना गया है। 1850 से 1868 बीच के वर्षों को संक्रमण काल के रूप में माना जाता है। भारतेंदु युग हिंदी नवजागरण का युग है। व्यापक जनजीवन से कटती हुई जो कविता रीतिकाल के दरबारों की रंगीन, चमक-दमक, विलास, मनोरंजन तथा आश्रयदाताओं की झूठी प्रशस्तियों में सिमटकर रह गई थी, नवजागरण के माहौल में वह एक बार पुनः अपने पंख खोलती है और उभरती हुई जनचेतना से भेंट करती है। भारतेंदु और उनके मंडल के कवि उसे जनता के बीच लाते हैं, जन जीवन की समस्याओं से जोड़ते हैं और कविता भक्ति आंदोलन के बाद एक बार फिर से जनता की चित्तवृत्तियों के प्रतिबिंब के रूप में पहचानी जाने लगती है। इस नए संदर्भ में ही बाल कृष्ण भट्ट साहित्य को जनमूह के हृदय के विकास के रूप में परिभाषित करते हैं।

जीवन के अनुभूत रूप को जीवंत वाणी देने के साथ ही भारतेंदु युग के लेखकों ने जीवन को एक खास दिशा की ओर मोड़ने तथा अग्रसर करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी किया है। इनकी दृष्टि में साहित्य का लक्ष्य यथार्थ की केवल प्रतिलिपि प्रस्तुत करना नहीं, यथार्थ को बदलना भी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र साहित्य की इस भूमिका के प्रति उस जमाने के सबसे अधिक सचेत लेखक थे। उन्होंने स्वयं तो इस दृष्टि से सर्जना की ही, अपने युग के अन्य लेखकों को भी इस कार्य के लिए प्रेरित किया। उनमें साहित्य की इस भूमिका के प्रति आस्था तथा समाज के प्रति दायित्व-चेतना कितनी प्रबल थी, इसका अनुमान मई 1979 की 'कवि वचन-सुधा' में प्रकाशित उनकी एक विज्ञप्ति के निम्नलिखित अंश से सहज ही लगाया जा सकता है। 'भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय होने की आवश्यकता है। इस विषय में बड़े लेख प्रकाश होते हैं, किंतु जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके लिए मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश के गांव-गांव में साधारण लोगों में प्रकाश की जाए। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रसार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम-गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।... इस विषय में जिनको कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाश करूंगा और सब लोग अपनी-अपनी मंडली में गाने वालों को यह पुस्तकें दें।'

इस नवजागरण और जनजागरण से जुड़ी हुई तमाम चिंताओं में दो बातें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थीं- देश की आजादी और स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार। इसके लिए 'स्वत्वनिज भारत गहै' और 'नारीनरसम होहि' का उद्घोष हुआ। भारतीय जनता की दुर्दशा और अंग्रेजों की लूट व अत्याचार का वर्णन भारतेंदु युग के रचनाकारों ने कविता के अतिरिक्त नाटक, कहानी, निबंध, उपन्यास, पत्रकारिता एवं अन्य माध्यमों से भी किया। इस प्रकार नवजागरण की यह परिवर्तनकामी चेतना हर क्षेत्र में प्रवेश कर पुराने विचारों की दुनिया को झकझोर कर जागृत कर रही थी। इसके प्रभावस्वरूप समाज एक नई सुबह की उम्मीद में करवटें बदलने लगा था।

भारतेंदुयुगीन कविता एक संक्रमण के दौर से गुजर रही थी। उस समय परंपरागत रीतिकालीन कविता की नायिका भेद वाली प्रवृत्तियां, शृंगारिकता, भक्ति भावना और प्रकृति-चित्रण से संबंधित रचनाएं भी लिखी जा रही थीं, साथ ही नवीन युग-चेतना से संचालित नए विचारों और मूल्यों को अभिव्यक्त करती हुई जन-जागरण वाली रचनाएं भी सामने आ रही थीं। जिस प्रकार सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में सामंती और पूंजीवादी मूल्यों का टकराव हो रहा था, उसी प्रकार काव्य के क्षेत्र में रीतिवाद और नवजागरण की धाराएं टकरा रहीं थीं। कहीं-कहीं तो दोनों साथ-साथ चल रही थीं। 'भारतेंदु युग के एक ओर मध्यकालीन दरबारी संस्कृति थी तो दूसरी ओर आम जनता में एक सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन के लिए वातावरण तैयार करना था। साहित्य में देश के बढ़ते असंतोष को व्यक्त करना भर न था, सदियों से चले आ रहे, समाज की हड्डियों में बसे हुए सामंती कुसंस्कारों से भी मोर्चा लेना था।' (डॉ. राम विलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास-परंपरा, प्र.सं. 1975, पृ. 14) भारतेंदु युग की कविता पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है- 'भारतेंदु युग का पूर्ववर्ती काव्य-साहित्य संतों

की कुटिया से निकलकर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुंच गया था, उसमें मनुष्य को प्रत्याहित सुख-सुविधाओं के जंजाल से मुक्त करके शाश्वत देवत्व के पवित्र लोक में ले जाने की महत्त्वाकांक्षा लुप्त हो चुकी थी। वह मनुष्य को देवता बनाने के पवित्र आसन से च्युत होकर मनोविनोद का साधन हो गया था।... और दूसरी ओर कवियों की दुनिया राजदरबारों की ओर खिंच गई। भारतेंदु ने कविता को इन दोनों ही प्रकार की अधोगतियों के पंथ से उबारा। उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मंदाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकाल कर लोक जीवन के आमने-सामने खड़ा कर दिया।' भारतेंदु युग में पुराने ढंग की कविताएं भी लिखी जा रही थीं और नए ढंग की भी।

भारतेंदु युग में पुरानी और नई दोनों ही काव्य-धाराओं से जुड़े हुए कवियों ने श्रृंगार की कविताएं लिखी हैं। इसके पीछे एक कारण तो यह है कि भारतेंदु युग के पहले की काव्य-धारा घोर श्रृंगारिक थी और अभी भी जीवित थी। दूसरा कारण यह है कि श्रृंगारिकता एक ऐसी प्रवृत्ति है जो मानव-मन के सहज स्वभाव से उद्‌भूत होती है। यह प्रवृत्ति हिंदी साहित्य के आरंभिक दिनों से लेकर आदिकाल, भक्ति काल, रीतिकाल सबसे होती हुई आज भी चली आ रही है। इस संदर्भ में भारतेंदु की कुछ कविताएं देखें–

''यह संग में लागिबे डोलैं सदा
बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहूं जो वियोग परै हरिचंद तो
चाल प्रलै कि सुठानती हैं।
बरूनी में थिरैं न झपैं उझपैं पल में
न समाइबो जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अंखिया
दुखिया नहिं मानती हैं।

××× ××× ×××

सिसुताई अजौ न गई तनतें
तऊ जोबन जोति बटोरे लगी।
सुनि के चरचा हरिचंद की कान
कछूक दे भौंह मरोरे लगी।
बचि सासु जेठानिन सौं,
पियतें दुरि घूंघट में दृग जोरे लगी।
दुलही उलही सब आंगन तें,
दिन द्वै तै पियूष निचोरे लगी।।''

भारतेंदु युग में यद्यपि भक्ति-भावना गौण हो गई थी, तथापि संख्या की दृष्टि से भक्ति की काफी रचनाएं हुई हैं। इनमें निर्गुण भक्ति और वैष्णव भक्ति के अतिरिक्त कहीं-कहीं ईश्वरभक्ति और देशभक्ति को एक-दूसरे से जोड़ने का प्रयास भी हुआ है। इस युग में रामभक्ति की तुलना में कृष्ण-भक्ति अधिक है। संसार की नश्वरता पर भारतेंदु लिखते हैं–

''सांझ सबेरे पंछी सब
क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जाएंगे
यह दिन चार बसेरा है।।
××× ××× ×××
दिया सामने खड़ा तुम्हारी
करनी पर सिर धुनता है।
इक दिन मेरी तरह बुझोगे
कहता तू नहिं सुनता है।।''

भारतेंदु के समय में दरबारी संस्कृति भी चली आ रही थी। स्वयं भारतेंदु का पालन-पोषण भी राजभक्ति के माहौल में ही हुआ। रीतिकाल, दरबारी संस्कृति एवं राजभक्ति ये सभी धाराएं उस समय की कविताओं में लक्षित की जा सकती है। भारतेंदु के दरबार में समस्या पूर्ति के लिए विषय दिए जाते थे–

''पूरी अमी की कटोरिया सी चिर जीवौ सदा विक्टोरिया रानी'' –भारतेंदु

ऐसी पंक्तियों की रचना तत्कालीन परिवेश के कारण हुई है। इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी ऐसी कविताएं लिखी हैं-

''किय सनाथ थोली भारत की प्रजा अनाथन''
–विक्टोरिया के लिए–प्रेमघन

''जयति राज राजेश्वरी जय-जय-जय परमेश'' –अंबिकादत्त व्यास

किंतु इस तरह की राजभक्ति एक तरह का छद्‌म भी थी। यह राजनीतिक चेतना से संचालित थी और इस राजभक्ति के पीछे देशभक्ति भी काम कर रही थी। अनेक रचनाओं को देखकर तो ऐसा लगता है कि जनता में नवचेतना फैलाने के लिए ही राजभक्ति की आड़ ली गई थी। 'प्रिंस ऑफ वेल्स' के स्वागत में भारतेंदु पुलिस और अदालत की भी चर्चा करते हैं–

''पहरू नहिं कोउ लखि परै,
होय अदालत बंद।
ऐसी निरुपद्रव करो,
राजकुंअर सुखकंद।।
××× ××× ×××
अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्वारी।।''

इसी प्रकार एक पहेली में उन्होंने लिखा था–

''भीतर-भीतर सब रस चूसै,
बाहर से तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन? नहिं अंग्रेज।।''

इस राजभक्ति और देशभक्ति के अंतर्विरोध के कारणों की खोज करते हुए डॉ. राम विलास शर्मा ने इसका एक कारण सन् 1857 के विद्रोह के बाद प्रकाशित होने वाले महारानी के घोषणा-पत्र को बतलाया है, जिसने भारतीय जनता के मन में ढेर सारी झूठी आशाएं जगा दी थीं। डॉ. शर्मा ने लिखा है–'भारतेंदु युग का बहुत सा साहित्य राजभक्ति के भावों से पूर्ण है, उसका यही रहस्य है। विद्रोह से पहले के कंपनी राज्य की तुलना में लोगों ने महारानी विक्टोरिया के शासन को एक भिन्न वस्तु माना और वे समझे कि उन्हें सभी प्रकार की स्वतंत्रता इस शासन में सुलभ है। बहुत से लोग इस आनंद में मगन होकर प्राचीन आर्य वीरता के गीत गुनगुनाने लगे, परंतु यह तंद्रा बहुत काल तक न रही। शीघ्र ही अकाल, महामारी, टैक्स,

बेकारी आदि साम्राज्यवाद की विभूतियों ने उन्हें जगा दिया। (भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, पृ. 1)

भारतेंदु की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी हुई है। भारतेंदु युग से पहले भूषण इत्यादि की कविताओं में जो राष्ट्रीयता का स्वर है वह क्षेत्रीयता से ऊपर नहीं उठ सका है। किंतु भारतेंदु युगीन कवियों ने इतिहास की जानकारी होने के कारण राष्ट्रीयता के भाव को पूरी भारतीयता से जोड़कर देखा। भारतेंदु की राष्ट्रीय भावना कहीं अतीत के गौरवगान के रूप में व्यक्त हुई है, तो कहीं देश-प्रेम, स्वदेशी और कहीं हिंदी प्रेम के रूप में। अतीत के गौरव और वर्तमान की त्रासदी से भरी हुई ये पंक्तियां देखें–

''हाय! वहै भारत भुव भारी।
सबहीं बिधि सो भई दुखारी।।
हाय! पंचनद, हा पानीपत!
अजहुं रहे तुम धरनि बिराजत।।
हाय चितौर! निलज तू भारी।
अजहूं खरो भारतहि मंझारी।।''

भारतेंदु ने अपने देश में बनी हुई वस्तुओं के उपभोग पर बल दिया और लोगों को विदेशी वस्तुओं के त्याग के लिए प्रेरित किया। उन्होंने विदेशी वस्तुओं के उपयोग पर खेद व्यक्त किया–

''मारकीन मखमल बिना,
चलत कछू नहिं काम।
परदेशी जुलाहन के,
मानहुं भए गुलाम।।
इतकी रूई सींग अरु,
चरमहिं नित लै जाय।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु;
भेजत इतहिं बनाय।।''

यहां से अंग्रेज कच्चा माल ले जाते थे और उधर से अपने सामान लाकर उन्हें सौगुने दामों पर बेचते थे। भारतेंदु की इच्छा थी कि लोग मशीन और वैज्ञानिक आविष्कारों से परिचित हों तथा उपयोग की सारी वस्तुएं यहीं बनें–

''जानि सकै सब कुछ सबहि,
विविध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै,
मिटै दीनता खेद।।''

स्वदेशी के साथ ही हिंदी भाषा के विकास और प्रचार की भी प्रबल आकांक्षा भारतेंदु की कविताओं में लक्षित होती है। हिंदी भाषा के विकास के लिए उस समय अनेक सभाएं स्थापित की गई थीं। भारतेंदु का तो यह मूल मंत्र ही था–

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को सूल।।''

भारतेंदुयुगीन समाज समस्याओं का पुंज था। उस समाज में अकाल, गरीबी, टैक्स, बेकारी, आलस्य, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, भ्रूणहत्या, मद्यपान, अशिक्षा, अंधविश्वास, छुआछूत, जाति और धर्मभेद, अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध, अंग्रेजों और जमींदारों द्वार लूट जैसी अनेक समस्याएं बहुत ही भयानक रूप ले चुकी थीं। भारतेंदु और उनके मंडल के कवि इन वीभत्स समस्याओं से पीड़ित और चिंतित थे। उस युग की कविताओं में इन सारी कुप्रवृत्तियों और अत्याचारों का बहुत ही सटीक वर्णन हुआ है। भारत की दुर्दशा देखकर भारतेंदु ने लिखा था–

''रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

भाग्य और अभाग्य के बीच पिसती हुई जनता के बारे में लिखा–

''भारत में मची है होरी।
इक ओर भाग अभाग,
एक दिसि होय रही झकझोरी।
डफ बाज्यो भरत भिखारी को।
××× ××× ×××
केसर रंग गुलाल भूलि गयो
कोऊ पूछत नहिं पिचकारी को।
बिन धन-अन्न लोग सब व्याकुल,
भई कठिन विपत नर नारी को।
–(सन् 1866 एवं 1868-69 के भयानक अकाल के संदर्भ में)

बेकारी–

''तीन बुलाए तेरह आवैं,
निज निज बिपदा रोई सुनावैं।
आंखौ फूटै भरै न पेट,
क्यों सखि सज्जन, नहिं ग्रैजुएट।''

अकाल–

''कोई पात पेड़न के चाबै
कोई माटी कोई घास चबाय।
कोई बेटवा बिटिया बेचै
अब तो भूख सही नहिं जाय।।''

इसी प्रकार अन्य समस्याओं पर भी भारतेंदुजी ने अच्छी कविताएं लिखी हैं।

भारतेंदु की बहुत सारी कविताएं व्यंग्यधर्मी हैं। अपने समाज में व्याप्त विभिन्न कुप्रवृत्तियों, शोषण, लूट, अन्याय, फैशन परस्ती, अंग्रेजी शिक्षा, वेश्यागामिता आदि पर उन्होंने बड़े ही चुटीले व्यंग्य किए हैं। अंधेर नगरी में चूरन वाले की प्रचार कविता इस दृष्टि से अनूठी है-

''चूरन अमले सब जो खावैं,
दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।
चूरन नाटक वाले खाते,
इसकी नकल पचाकर लाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।
चूरन खाते लाला लोग,
जिनकीं अकिल अजीरन रोग।
चूरन खाते एडीटर जात,
जिनके पेट पचै नहिं बात।
चूरन साहब लोग जो खाता,
सारा हिंद हजम कर जाता।
चूरन पुलिस वाले खाते,
सब कानून हजम कर जाते।''

भारतेंदु ने समाज के अंतर्विरोध को समझते हुए समाज की प्रतिगामी ताकतों और प्रतिक्रियावादी-पुरातन पंथी मूल्यों का

पर्दाफाश किया और जनता को उनके प्रति सेचत किया। उनकी चेतना जहां साम्राज्यवाद विरोधी थी वहीं सामंतवाद विरोधी भी थी। वे समाज के उस सड़ियल ढांचे को बदलना चाहते थे, जिसके कारण लोग गुलाम बने हुए थे। भारतेंदु ने एक व्याख्यान में यह स्पष्ट घोषणा की थी- 'हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवे तो जिस क्रोध में उसको पकड़कर मारोगे और जहां तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे, उसी तरह इस समय जो-जो बातें तुम्हारी उन्नति-पथ का कांटा हों उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। कुछ मति डरो। जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाल दिए जाएंगे, कैद न होंगे, वरंच जान से ना मारे जाएंगे तब तक कोई देश भी न सुधरेगा।' इस तरह के जोशीले वक्तव्यों और क्रांतिकारी कविताओं से उन्होंने समाज को जगाया। यहां के लोगों की कायरता पर उन्हें धिक्कारते हुए उन्होंने संघर्ष के लिए प्रेरित किया—

''धिक् वह मात-पिता जिन
तुम सो कायर पुत्र जन्यो री।
धिकू वह घरी जनम भयो
जामैं यह कलंक प्रकट्योरी।
जनमत ही क्यों न मरो री।
उठो-उठो सब कमरन बांधो
शस्त्रन शान धरो री।
विजय निसान बजाइ बावरे
आगेइ पांव दरो री।''

स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करते हुए प्रताप नारायण मिश्र ने भी लिखा था—

''सब तजि गहौ स्वतंत्रता,
नहिं चुप लातै खाव।
राजा करै सो न्याव है,
पासा परै सो दांव।।''

भाषा के स्तर पर भारतेंदु ने काफी महत्त्वपूर्ण काम किया है। इस युग की प्रधान भाषा यद्यपि परंपरागत ब्रजभाषा ही है, किंतु इस ब्रजभाषा का स्वरूप यहां पर्याप्त बदला हुआ है। इस ब्रज भाषा के साथ ही खड़ी बोली का प्रभाव भी क्रमशः बढ़ता गया है। व्यावहारिकता पर बल होने के कारण इस समय की कविताओं में शब्द-चयन के मामले में काफी उदारता दिखाई पड़ती है जिसके परिणामस्वरूप भोजपुरी, बुंदेलखंडी, अवधी आदि प्रांतीय भाषाओं के साथ ही उर्दू अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी इनमें देखने को मिलता है। इस युग में खड़ी बोली में भी कविताएं लिखी गई हैं लेकिन खड़ी बोली इस युग की प्रतिनिधि काव्यभाषा नहीं बन सकी है।

प्रो. हिंदी विभाग, बी.एच.यू., वाराणसी-221005

भारतेंदु का भाषाई दृष्टिकोण

अशोक कुमार जाजोरिया

प्रख्यात साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। भाषा को लेकर उनका दृष्टिकोण उनके साहित्य की सभी विधाओं में द्रष्टव्य है। मूलतः वे कवि थे। काव्य रचना की प्रतिभा उनमें उनके पिता से विरासत में मिली थी। तरुणावस्था प्राप्त करने पर ही उनमें राष्ट्रप्रेम और देशहित की भावना जागृत हो गई तथा देश, समाज, हिंदी और साहित्य का उद्धार उनका मुख्य जीवनवृत्त बन गया। पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकारी बनते ही भारतेंदुजी ने दोनों हाथों से अपना पैतृक धन एक ओर हिंदी भाषा और साहित्य की उन्नति तथा दूसरी ओर देश, समाज की उन्नति और तीसरी ओर गुणियों, विद्वान जनों, कलावंतों, कवियों, लुप्त होती विधाओं के संरक्षण, दीन-दुःखियों की सहायता में खर्च करना आरंभ किया। हिंदी भाषा और साहित्य के सृजन, देश में नई चेतना एवं नई जागृति की लहर पैदा करने, अशिक्षा का अंधकार मिटाने, लुप्त होती कलाओं के संरक्षण में अपने धन का सदुपयोग किया। वस्तुतः भारतीय राजनीतिक जागरण के इतिहास में 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व 20-25 वर्षों का कालखंड देश में नवजागरण का उषाकाल कहा जा सकता है। भारतेंदुजी ने इसी कालखंड में हिंदी प्रदेशों में नवजारण की पहली किरण फैलाई। उन्होंने हिंदी भाषी प्रदेशों में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जागृति पैदा की, ''‘स्वत्व’ ही निज भारत लहै'', ''नारी नर सम होंहि'' की उद्घोषणा की, हिंदी भाषा और साहित्य की सर्वांगीण उन्नति की तथा हिंदी को जनजागरण अभियान का सशक्त माध्यम बनाया। लोकमान्य तिलक के बारे में कहा जाता है कि वे भारतीय असंतोष के जनक थे। भारतेंदु ने उनसे कई दशक पूर्व भारतीय असंतोष को वाणी दी। इतिहास के पन्नों में उनका नाम एक ऐसे देशभक्त के रूप में अंकित किया जाएगा जिसमें देश, समाज, हिंदी भाषा तथा साहित्य के उत्थान के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का दृष्टिकोण भाषा को लेकर हमेशा विकसित रहा है। उन्होंने जिस रीति से व्यक्तिगत प्रयास करके ‘बांग्ला’ भाषा सीखी, उसी रीति से ‘मराठी’, ‘गुजराती’, ‘पंजाबी’ आदि देश की अन्य 20-25 भाषाएं सीख लीं। वे बहुभाषाविद्, बहुपठित विद्वान्, विद्याव्यसनी, साहित्य मनीषि, कला-मनीषि ही नहीं एक शिक्षाविद् भी बने। भारतेंदु हरिश्चंद्र की कामना थी कि हमारी युवा पीढ़ी अपनी भाषा में कला-कौशल एवं ज्ञान-विज्ञान का प्रसार और प्रचार करके देश की उन्नति में सहायक बने तथा विदेशी भाषा पर निर्भरता समाप्त हो।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का भाषाई दृष्टिकोण अत्यंत व्यावहारिक था। हिंदी भाषा की उन्नति और उसका प्रचार-प्रसार देश की बहुमुखी उन्नति का मूल मंत्र मानते हुए वे हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने हेतु प्रबल समर्थक थे, किंतु साथ ही वे, एक अतिरिक्त भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा का अध्ययन भी आवश्यक मानते थे। वे भारत की अन्य भाषाओं उर्दू, बंग्ला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि को भी उपयोगी मानते थे। भारतेंदुजी भारतीय समाज के उत्थान के लिए अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों को हिंदी में अनुवाद किए जाने के पक्षधर थे, परंतु शब्दशः अनुवाद के स्थान पर भावानुवाद को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। पत्र-पत्रिकाओं में भी भारतेंदुजी का भाषाई दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके काल की लगभग सारी पत्रिकाएं एक ही राजनीतिक उद्घोष से भरी पड़ी हैं—‘हिंदी’ ‘हिंदू’ ‘हिंदुस्तान’। उन्होंने हिंदू और हिंदुस्तान की समस्याओं पर विभिन्न नाटक लिखे, परंतु विशुद्ध हिंदी की समस्याओं को लेकर किसी नाटक की रचना नहीं की। फिर भी भारतेंदु के हिंदी संबंधी दृष्टिकोण का परिचय उनके ‘हिंदी भाषा’ शीर्षक निबंध एवं ‘हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान’ शीर्षक पद्य रचना में मिलता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र, जिन्हें श्रद्धा और कृतज्ञता के भाव से हिंदी भाषीजन अपने आधुनिक काल के साहित्य प्रवर्तक और पिता मानते हैं। वे अंग्रेजी त्यागने को भी नहीं कहते थे, क्योंकि दुनिया के देश और ज्ञान-विज्ञान अंग्रेजी भाषा के अधीन थे। भारत की औपनिवेशिक स्थितियों में अंग्रेजी का आकर्षण बढ़ता जा रहा था। ऐसा नहीं लगता था कि वे भारतीय भाषाओं के लिए उस तरह कभी स्थान नहीं छोड़ेगी जिस तरह संस्कृत, अरबी, फारसी ने छोड़ दिया था। इसलिए भारतेंदु ने 1877 में ‘हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान’ नामक शीर्षक लंबी कविता लिखते हुए यह कहना चाहा—

''अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।''

उन्हें लगा कि अंग्रेजी पढ़ कर ही बोध होता है

'होय मनुष्य ही क्यों भए हम गुलाम पे भूप'। वे कविता में आगे कहते हैं, ''शिक्षा के बिना अब कोई भी काम चलने वाला नहीं है। हम दिन-प्रतिदिन छीजते जा रहे हैं और हमारा दुःख बढ़ रहा है। इंग्लैंड से आए मारकीन मलमल के बिना हमारा काम नहीं चलता। मानो हम विदेशी जुलाहों के गुलाम हो गए हैं। कपड़ा, कांच, कागज, कलम, चित्र और खिलौने सब विदेशों से जहाज पर लाद कर हमारे देश में आ रहा है। हम दिन-प्रतिदिन निर्धन होते जा रहे हैं। इसलिए अपनी बुद्धि, बल और कांति बचा नहीं पा रहे हैं। अब हमें ऐसा करना चाहिए कि हम विभिन्न कलाओं का ज्ञान हासिल करें, जिसके लिए अपनी भाषाओं में ग्रंथों का अनुवाद करना आवश्यक है। धर्म और शिष्टाचार जानें, दूसरों के अधीन न रहें, विवेक हासिल करें, सभी एकत्रित होकर अपनी भाषा का परिशोधन करें और उनकी उन्नति करें। कुछ पत्र छपवाएं, इन्हें पढ़ें और पढ़वाएं, आपसी वैर-विरोध छोड़ें।'' ये सारी बातें लंबी कविता में निहित हैं, जिससे सिर्फ एक लाईन बार-बार उद्धृत की जाती है–

''निज भाषा उन्नति अहे,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को शूल।।''

भारतेंदुजी निज भाषा की उन्नति, निज जाति, सर्वांगीण उन्नति और स्वाधीनता से अलग चीज नहीं है। इसके लिए अंग्रेजी सिर्फ साधन है जबकि आगे चलकर वह साध्य नहीं प्रगति और स्वाधीनता की पहचान भी बन गई। हिंदी की उन्नति से भारतेंदु का तात्पर्य केवल हिंदी की ही उन्नति नहीं है, सिर्फ साहित्य की भी उन्नति नहीं है। इस कविता में उन्होंने हिंदी समाज के लोगों को तकनीकी ज्ञान अर्जित करने का आह्वान किया। रेल, तार, वस्त्र, तोप, कागज, बांध आदि के संबंध में जानकारी होनी चाहिए। ''राजनीति समझैं सकल पावहिं तत्व विचार''–हिंदी लोगों में राजनीतिक चेतना विकसित हो। भारतेंदु निश्चय ही हिंदी भाषा को परिमार्जित करने, समाचार पत्रों की उन्नति करने और विभिन्न विषयों की पुस्तकें छपवाने की बात करते हैं। वे ''वैर विरोधि छोड़ कै ज्ञान-विज्ञान में हिंदी समाज की उन्नति'' की चर्चा करते हैं। वे एक जगह आकर यह भी स्पष्ट करते हैं कि हिंदी बुद्धिजीवियों को अंग्रेजी परजीवी होकर नहीं रह जाना है। वे चेतावनी देते हैं कि–

''परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस।
पर-बरस है कब लों कहो रहिहौ तुम्हें दास।।''

भारतेंदु हिंदी चिंतन के इस अप्रचारित आयामों को समझने की जरूरत है। उनकी नजर में हिंदी नवजागरण सिर्फ हिंदी भाषा और साहित्य का नवजागरण नहीं है, अपितु यह हिंदी समाज का नवजागरण है। अतः भारतेंदु तहेदिल से सिर्फ हिंदी ही नहीं पूरे हिंदी समाज की उन्नति चाहते थे, क्योंकि ऐसा न करने से हिंदी की उन्नति भी नहीं हो सकती थी।

भारतेंदु के हिंदी भाषा संबंधी दृष्टिकोण के अध्ययन के लिए उनकी निबंध रचना, हिंदी भाषा नामक बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनके युग में हिंदी भाषा का कोई स्वरूप निश्चित नहीं था तथा हिंदी भाषा निबंध में अपने युग में प्रचलित भाषा विवाद की झलक दिखाने के साथ-साथ इस संबंध में अपने स्पष्ट विचार भी व्यक्त किए–''भाषाओं के तीन विभाग होते हैं। यथा–घर में बोलने की भाषा, कविता की भाषा और लिखने की भाषा। और भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इसमें बड़ा झगड़ा है। कोई कहता कि उर्दू शब्द मिलने चाहिए, कोई कहता कि संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सब लिखते हैं और इसके हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं हो सकती। आगे चलकर इस निबंध में भारतेंदु लिखने की दृष्टि से बारह प्रकार की हिंदी भाषाओं के नाम गिनाकर प्रत्येक का एक-एक उदाहरण भी देते हैं–1. जिसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं, 2. जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं, 3. जो शुद्ध हिंदी है, 4. जिनमें किसी भाषा के शब्द मिलने का नेम नहीं है, 5. जिसमें फारसी शब्द विशेष नहीं हैं, 6. जिसमें अंग्रेजी शब्द हिंदी ही से मिल गए हैं, 7. जिसमें पुरबियों की बोली व काशी देश की भाषा है, 8. जो काशी के अशिक्षित बोलते हैं, 9. दक्षिण के लोगों की हिंदी, 10. बंगालियों की हिंदी, 11. अंग्रेजों की हिंदी, 12. रेलवे की भाषा।

यद्यपि भारतेंदुजी का इनमें से किसी एक भाषा विशेष को अपनाए जाने के संबंध में कोई विशेष आग्रह नहीं है, परंतु फिर भी वे एक तो शुद्ध हिंदी और दूसरे संस्कृत के थोड़े शब्दों वाली हिंदी, ऐसी दो हिंदी भाषाओं के लेखन कार्य में प्रयोग करने के समर्थक थे। भारतेंदु ने 1873 ईस्वी में हिंदी भाषा को स्थिर रूप देने हेतु 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। वे नई परिष्कृत हिंदी का उद्भव अपनी इस पत्रिका के प्रकाशन से ही मानते हैं। वस्तुतः अपनी 'कालचक्र' शीर्षक रचना में विश्व की प्रमुख घटनाओं का काल-क्रमानुसार विवरण प्रस्तुत करते हुए वे सन् 1873 ईस्वी की केवल एक घटना को उल्लेखनीय मानते हैं–''हिंदी नई चाल में ढली, सन् 1873 ईस्वी''। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, जिस प्यारी हिंदी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़ कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ। भारतेंदु की दूसरी रचना उनका भाषा संबंधी दृष्टिकोण से अवगत करने वाली हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान था। यह हिंदी प्रदीप खंड-1, संख्या 1-2 में छपा था। भारतेंदु स्पष्ट रूप से यह आग्रह भी करते हैं कि यदि हम सचमुच देश की उन्नति चाहते हैं तो सर्वप्रथम अपनी भाषा की उन्नति करनी चाहिए, क्योंकि–

''करहु विलम्ब न भ्रात,
अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु
प्रथम जो सबको मूल।।''

इसके साथ ही भारतेंदु यह भी चेतावनी देते हैं कि कोई चाहे लाख उपाय भी कर ले लेकिन अपनी भाषा की उन्नति के बिना

कभी उन्नति नहीं हो सकती–

''निज भाषा उन्नति बिना
कबहुं न है है सोय।
लाख अनेक उपाय यों
भलो करो किन कोई।।''

परिणामस्वरूप भारतेंदुजी जैसा दूसरों को करने के लिए कहते थे वैसा स्वयं भी करते थे। वे हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, बंग्ला, मराठी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, भोजपुरी इत्यादि अनेक भाषाओं एवं बोलियों के ज्ञाता थे, किंतु हिंदी के उत्थान के लिए उन्होंने अपने साहित्य सृजन का माध्यम मुख्यतः हिंदी को ही बनाया और अनेक भाषाओं के साहित्य को हिंदी में अनुवाद करके उसकी उन्नति करने की चेष्टा की। जैसे अंग्रेजी नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' को उन्होंने हिंदी में 'दुर्लभ बंधु' के नाम से प्रस्तुत किया। 'विद्या सुंदर' बांग्ला से अनूदित है, 'मुद्राराक्षस' संस्कृत से और 'कर्पूरमंजरी' प्राकृत भाषा से अनूदित है। हिंदी के प्रसार के लिए भारतेंदुजी ने पेनीरीडिंग क्लब, कवि समाज इत्यादि कई संस्थाएं स्थापित कीं तथा अपना एक विशाल पुस्तकालय भी बनाया। उन्होंने करमाइकेल लाइब्रेरी एवं बाल सरस्वती भवन की स्थापना में अपना योगदान दिया। लगभग चार सौ हिंदी ग्रंथों को लिखने तथा रुपया दे-देकर हिंदी पुस्तकें लिखवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अतिरिक्त न्यायालयों की कार्यप्रणाली में हिंदी को स्थान दिलाने के लिए उन्होंने भरसक प्रयास किया। हिंदी के प्रश्न पर अपने गुरु एवं उस काल के राजकीय अधिकारी शिवप्रसाद सितारेहिंद से भी विरोध मोल ले लिया। परिणामस्वरूप भारतेंदु को सरकार की नाराजगी झेलनी पड़ी। राजकीय शिक्षा विभाग ने उनकी 'कवि वचन सुधा', 'चंद्रिका' एवं 'बाल बोधिनी' एवं उनकी पुस्तकों की खरीद बंद कर दी थी तथा उनको 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेटी' से भी हटा दिया गया था। सरकार में उनके अनेक देश हितैषी कामों, हिंदी प्रेम को राजद्रोह सिद्ध किया गया। शिक्षा कमीशन के सामने उन्होंने स्वयं गुहार लगाई और अन्य से भी गवाही दिलवाई कि उत्तर प्रदेश में हिंदी को ही स्थान मिलना चाहिए। शिक्षा कमीशन को उत्तर देते हुए उन्होंने अपना हिंदी प्रेम प्रबल रूप से व्यक्त किया और कहा कि, ''मैं हिंदी, संस्कृत, उर्दू आदि का कवि हूं तथा मैंने बहुत से गद्य तथा पद्य ग्रंथ बनाए हैं। मैंने 'कवि वचन सुधा' हिंदी का समाचार पत्र निकाला था, जो अब तक प्रकाशित होता है। मेरा उद्देश्य सदैव यही रहा है कि स्वदेशियों की शिक्षा संबंधी उन्नति करूं, इन प्रांतों को वर्नाक्यूलर की उन्नति करूं और मातृभाषा के साहित्य भंडार की बढ़ौतरी करूं।''

भारतेंदु हरिश्चंद्र की दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रतिभा को देखकर डॉ. ग्रियर्सन ने लिखा है कि, ''भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के प्राचार्थ जितना उद्योग किया है उतना अन्य किसी भारतीय ने नहीं किया है।'' अतः भारतेंदु के हिंदी भाषा संबंधी दृष्टिकोण को अध्ययन करने के पश्चात् यह पूर्णतः सिद्ध होता है कि भारतेंदु के हृदय में अटूट प्रेम था। वे हिंदी भाषा को भारत की राजभाषा बनाना चाहते थे, क्योंकि उनका मानना था कि हिंदी की उन्नति के साथ ही भारत की उन्नति संभव है। इसके लिए उन्होंने न केवल साहित्य सृजन के माध्यम से हिंदी के पक्ष में प्रबल वातावरण बनाने का प्रयास किया अपितु व्यक्तिगत रूप से भी बहुत प्रयत्न किया।

अंततः यह भी भारतीय हिंदी साहित्य में द्रष्टव्य है कि हिंदी भाषा के उत्थान एवं हिंदी साहित्य की समृद्धि के लिए भारतेंदु हरिश्चंद्रजी ने अपना सारा जीवन अर्पित किया। उनके द्वारा दिखाए गए मार्ग पर ही चलकर हम आज भी हिंदी की संपूर्ण रूप से उन्नति कर सकते हैं। उनका यह आदर्श वाक्य–

''निज भाषा उन्नति अहे,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को सूल।।''

को अपना कर ही हम राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति कर सकते हैं। लेकिन यह बड़े दुःख का विषय है कि आजादी के 66वें वर्ष में भी हमारा देश हिंदी को संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं दे पाया। जबकि विश्व के कई देशों ने अपनी ही भाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में संपूर्ण उन्नति की है। अतैव भारत के लिए भी संपूर्ण राष्ट्र के रूप में एक भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करना चाहिए तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इस भाषा को संपूर्ण रूप से सम्मान मिलना चाहिए तभी हम हिंदी को एक शीर्ष एवं राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित कर सकते हैं।

कार्यक्रम अधिकारी,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

हमहु सब जानति लोक की चालनि

अनीता वर्मा

हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु युग एक ऐसा युग था जो नवीन प्रतिमान स्थापित करने के साथ-साथ लेखन की समकालीन धाराओं का पथ प्रवर्तक था। भारतेंदु युग में जो कुछ भी हुआ वह वास्तव में आश्चर्यजनक था। 1857 में आजादी की प्रज्ज्वलित क्रांति को मोड़ देने का श्रेय तो इस लेखक, कवि, पत्रकार, उपन्यासकार को जाता ही है साथ ही साथ भाषा के स्तर पर खड़ी बोली में कई नए प्रतिमान स्थापित करने वाले लेखक भारतेंदु अपनी इस विशेषता के आधार पर भारतीय साहित्य में जाने जाते हैं।

प्रगतिशील विचारक व लेखक 'हरिश्चंद्र' को इनकी बहुमुखी प्रतिभा के रहते व भारतीय भाषाओं के प्रेम के कारण 'भारतेंदु' की उपाधि मिली। खड़ी बोली व ब्रज भाषा में उस समय के अंग्रेजी प्रभाव को एक चुनौती दी। चुनौती भी ऐसी कि युग का परिवर्तन करते हुए कि नए युग का आरंभ हुआ। भारतेंदु की मित्र मंडली में पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रतापनारायण मिश्र व पं. बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमधन' थे। इस मित्र मंडली ने अंग्रेजी प्रभाव को इस कदर चुनौती दी कि हिंदी साहित्य में न केवल एक नई धारा का आरंभ हुआ बल्कि इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता आंदोलन को एक नया रूप मिला।

वर्तमान परिपेक्ष्य में अगर भारतेंदु को कवि के रूप में देखा जाए तो उनकी कविताएं आज भी उतनी ही सार्थक हैं जितनी कि उस समय थी। पिछले कुछ वर्षों से मंचीय कविताएं या यों कहें कि मंच पर कविता पाठ एक नए रूप में उभरा है। कवि गोष्ठी व मंच पर कविता पढ़ने का चलन यों तो बहुत पुराना है परंतु इधर कुछ वर्षों में वह अपनी सीमाओं को तोड़कर न केवल देश में बल्कि विदेश भी बहुत लोकप्रिय हुआ है। मंच पर चुटकुलों, हास्य कविताओं व घटिया व्यंग्य से इतर एक स्तरीय व्यंग्य की शैली उभर कर आई है। गीत, गजल से हटकर यह शैली भारतेंदु की व्यंग्य शैली से प्रभावित सी लगती है।

राजनीति पर उनके कटाक्ष, तीखे बाण, 'प्रेम पर उनका विनोद' और उनकी 'नए जमाने की मुकरी' आज भी उतनी ही नवीन व तरोताजा है, जितनी कि उस समय थी। 'बंदर सभा' हो या फिर 'बकरी विलाप' आज के मंचीय कविता पाठ को अगाह करते हुए कहती है कि मंच सिर्फ चुटकुले बाजी नहीं है अपितु एक नई धारा का वह भाषा स्त्रोत है, जो अपने साथ हजारों श्रोताओं को बहा ले जाने की क्षमता रखता है। उनकी लेखनी की एक खास क्षमता थी जिसे 'तीरक क्षमता' कहा जाता था। जो तीर की भांति सदैव निशाना तो लगाती थी, साथ ही साथ कुछ नई बात नए प्रभाव के साथ कह जाती थी।

विदेशों में कई कवि गोष्ठियों में कवि के रूप में भाग लेते हुए या श्रोता के रूप में कविताएं सुनते हुए कई बार महसूस किया कि वह कविता ही अक्सर अपना प्रभाव छोड़ती है, जो तीखे तेवर रखती है और जिसके शब्दों की खनक भारतेंदु के शब्द वार जैसी होती है। वर्तमान समय में समस्यामूलक कटाक्ष इन मंचों पर जब जब किए जाते हैं, लोग इनको हाथों हाथ लेते हैं। लगभग सभी जगह मुझे यही अनुभव हुआ। सपाटबयानी से इतर कविता के पीछे छिपी पर्तें और उस व्यवस्था पर तीखे प्रहार वास्तव में भारतेंदु की कविता शैली का ही प्रभाव है। मुझे याद है कि अमेरिका में जब भी कवि गोष्ठी में दोहे पढ़े गए या फिर तीखे तेवर मंचीय गरिमा के रहते हुए किए गए, उन्हें बार-बार सुनने का आग्रह श्रोताओं की तरफ से आया। प्रगतिशील लेखने की जो परिपाटी भारतेंदु से आरंभ हुई वह अब मंच पर हर जगह देखी सुनी जा सकती है। दोहे, चौपायी, छंद, बरवै, कवित्त व सवैया वर्तमान साहित्य के 'अकविता' या 'हाइकू' के दौर में आज भी अपना प्रभाव छोड़ते हैं।

अगर नाटकार भारतेंदु की बात की जाए तो भारतेंदु के नाटकों में भी वही तेवर दिखे जो कविता में थे। 1873 को नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' या फिर 'अंधेर नगरी' (1881) या फिर चंद्रावली (1881) हो इन सबमें भी वह मंचीय नाटकीयता देखने को मिलती है, जो आज के नाटकों में है। कुछ न कहना होते हुए भी बहुत कुछ ऐसा कहना जो सीधे सोचने पर मजबूर करे। बहुत कुछ इन नाटकों में ऐसा है जो सीधे-सीधे नहीं कहा गया पर काफी कुछ ऐसा भी है जो मंच का अनकहा प्रभाव मस्तिष्क पर छोड़ता है और प्रभाव भी ऐसा कि जो हमेशा रहता है। मुझे लगता है कि उनकी नाट्य शैली भी अपने आप में अनूठी थी जो अपने अनुपम नाटकीय तत्वों के साथ-साथ कुछ ऐसी बात कह जाती थी कि दर्शक अपने साथ कुछ नई सोच व नया प्रभाव लेकर जाता था। परिष्कृत भाषा के साथ-साथ भाषा का प्रवाह अपने साथ इस प्रकार बहा कर ले जाता है कि इस नई विचारधारा व नई सोच से अलग होकर सोचा

नहीं जा सकता। इसके साथ-साथ नाटक के मूल तत्त्व यानी कि 'अभिनय' व नाटकीयता कहीं भी छूटती नहीं है। भारतेंदु ने जीवन पर्यंत लेखन के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं किया पर 35 वर्ष के छोटे से जीवन काल में भारतेंदु एक नए युग का आरंभ कर गए जो अपनी संपूर्ण लेखकीय शैली व लेखकीय संस्कार का परिचायक बना। 'अंधेर नगरी' ने तो कई प्रतिमान स्थापित किए। बी.वी. कारंत से लेकर अरविंद गौड़ तक ने इसे देश-विदेश में सशक्त रूप से मंचों पर प्रस्तुत किया। आधुनिक नाटक के जनक के रूप में भारतेंदु ने आज की पीढ़ी को इक नई धारा, एक नया प्रवाह देते हुए काशी के घाटों के सभी बांध तोड़ते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया। जब-जब भी इन नाटकों को किसी भी भाषा में अनूदित करके मंचित किया गया चाहे वह भारत में हो या अन्य किसी देश में, न केवल बनारस के घाट जीवंत हो उठे, बल्कि राजनेताओं के कान भी खड़े हुए। उन्हें समझ आया कि जनता के बीच से आए जनता के लेखक किस प्रकार से वे बात कह सकते हैं जो हवाओं के रुख मोड़ सकती है। लोक शैली व लोक मानस के वे कितने करीब थे, यह उनकी जन्मस्थली बनारस में जाकर जाना जा सकता है। यहां पर मैं अपना एक अनुभव सुनाना चाहती हूं । दिल्ली दूरदर्शन साहित्यकारों पर कुछ लघु फिल्में बनवा रहा था। उसी दौरान निर्देशक व वृत्त चित्र निर्माता कुंवर दीपक गुलाटी की टीम के साथ जो एक फिल्म शिव मंगल सिंह 'समन' पर बनाई जा रही थी कई लोगों के साथ बनारस जाना हुआ। बनारस के घाटों पर जब लोगों को पता चला कि साहित्यकार, फिल्मकार आए हैं तो वही पर कुछ महिलाओं ने लोक शैली में भारतेंदु का यह गीत गाया।

''लिखाय नहीं देत्यो पढ़ाय नहीं देत्यो।
सैयां फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो।।
लहंगा दुपट्टा नीको न लागै।
मेमन का गाउन मंगाय नाही देत्यो।।
वे गोरिन हम रंग संवलिया।
नदिया प बंगला छवाय नाहीं देत्या।।
सरसों का उबटन हम ना लगइबे।
साबुन से देहियां मलाय नाहीं देत्यो।।''

बाद में मैंने जब इस पर शोध किया और भारतेंदु की रचनाओं में इसे खोज तो भारतेंदु की रचना 'मशायर' में इसे पाया। असल में 'लोक की चालीन हमह सब जानती' की तर्ज पर वो बहुत कुछ लोगों के हृदय तक पहुंच कर कह जाते थे। जो कभी भी कही भी कोई सा भी तीखा व सटीक बार कर के हवाओं के रुख इस तरह मोड़ देते थे कि कुछ समय बाद उसका असर हवाओं में साफ स्पष्ट दिखाई देता था। सचमुच ऐसे साहित्यिक मारक मंत्र हर कवि, साहित्यकार व आलोचक की दृष्टि सदैव रहती है और जब-जब वह इसे ढूंढता है उसे ऊपर की सीढ़ी पर खड़े भारतेंदु व उनका साहित्य नजर आता है और फिर वह वहीं उस सीढ़ी तक, उसकी उचाइयों तक और उसके भीतर के मूल तत्व तक पहुंच कर वह मंत्र तलाशता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की नाट्यकला

ममता कुमारी

भारतेंदु हरिशचन्द्रजी युग पुरुष थे, जिन्होंने हिंदी की सेवा में अपना जीवन लगा दिया उन्होंने कविता, नाटक, निबन्ध, लेख, जीवन-चरित्र आदि का निमार्ण किया लेकिन नाटककार के रूप उन्हें बहुत सम्मान मिला। भारतेंदु जी से पहले भी शकुंतला नाटक हृदयराम का 'हनुमन्नाटक', ब्रजवासी दास कृत 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक आदि लिखे जा चुके थे, लेकिन वे नाटक नाट्य शास्त्रानुकूल होते हुए भी बिल्कुल अधूरा प्राप्त है। भारतेंदु जी आधुनिक नाटक के जनक कहे जाते हैं। नाटक जगत् में भारतेंदु जी का स्थान सदा स्मरणीय रहेगा। ब्रजभाषा के काव्य-नाटक जन-नाट्य शैली पर रचे गए थे। नाटक कला की वह उत्कृष्टता न दिखा सका जो संस्कृत के नाटकों में प्राप्त की थी। उनके कथानुसार, ''वही लेखक नाटक लिख सकता है जो युग की राजनीति, धर्म, नीति, सन्धि, करुणा, विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव तथा न्ययवृद्धि स्थान प्रभृति, त्रिवर्ग की समालोचना में समर्थ हो''।

हिंदी में यथार्थवाद का श्रीगणेश भारतेंदु के नाटकों से ही माना जाता है, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम जीवनोपयोगी नाटकों की आवश्यकता महसूस की। उनका यथार्थवाद नाटकों में स्वाभाविकता का आग्रही है। उन्होंने नाटकों से सभी प्रकार के अमानवीय कार्य अद्भुत चरित्रों को हटा देने की राय दी। भारतेंदु युग में सामाजिक और राजनीतिक नाटकों के साथ मानव प्रकृति का विश्लेषण और अध्ययन करने वाले चरित्र प्रधान नाटकों की भी मांग होने लगी। इसकी आवश्यकता पर बल देते हुए भारतेंदु ने लिखा-''जो दूसरे का अंतरभाव व्यक्त करने में समर्थ है उन्हीं को नाटककार सम्बोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रंथ नाटक में परिगणित होते हैं।'' स्पष्ट है कि भारतेंदु के नाट्यदर्श में चरित्र-चित्रण का भी महत्त्व है।

भारतेंदु जी हिंदी नाटक को जीवन के बिल्कुल समीप लाना चाहते थे ताकि उसमें समाज देश और काल की चाबी सुनाई पड़े, उनका प्रत्येक कार्य लोकतांत्रिक था। भारतेंदु जी ने दृश्यकाव्य को श्रव्यकाव्य होने से बचाया। वे दोनों के अंतर को बड़ी बारीकि से समझते थे। उनके अनुसार, ''दृश्य-काव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके आशय और हाव-भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे। कवि कथित वाणी को उसी के मुख से कथन द्वारा काव्य का, दर्शकों के चित पर रचित कर देना ही दृश्यकाव्यत्व है। यदि श्रव्यकाव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रंथ में पढ़िए तो जो काव्यजनित आनंद होगा वही श्रव्य काव्य होगा।''

प्राचीन और नवीन दृष्टि से भारतेंदु ने नाटक के तीन भेद माने हैं—1. शुद्ध कौतुक, 2. भ्रष्ट और 3. काव्य मिश्र। तीनों भेदों में भारतेंदु ने काव्यमिश्र को नाटक का आदर्श माना है। इसके भी दो भेद प्राचीन और नवीन किए हैं। भारतेंदु ने नायक, नायिका और विदूषक की वस्तुस्थिति और महत्त्व पर भी नए ढंग से विचार किया है। उनका कहना है कि नाटक का नायक किसी भी वर्ण का हो सकता है, पर उसे सर्वगुणसंपन्न युवा नायक होना चाहिए। नायिका के लिए भी इन्हीं गुणों की आवश्यकता मानी है। लेकिन सामाजिक मर्यादा की रक्षा के लिए स्वकीया नायिका को उत्तम महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि नायक-नायिका द्वारा शुभ परिणाम दिखलाना समाज की उन्नति के लिए हितकर है।

गीतिरूपक ''इससे स्पष्ट है कि वे गीति नाटकों को प्रश्रय नहीं देते थे वरन् वे गद्य का प्रयोग आवश्यक समझते थे। कथा भाग से यहां उनका अभिप्राय गद्यात्मक कथा से है। वैसे तो कथा लीला नाटकों एवं इंद्र सभा नाटकों में भी थी, किंतु वहां वह गद्यात्मकता न थी, 'विद्यासुंदर' उनका ऐसा नाटक है जिसमें गद्यात्मक कथा का अंध प्रधान है एवं गीत थोड़े हैं। भारतेंदु से पूर्व अधिकांश नाट्य साहित्य पद्य में लिखा गया था। भारतेंदु ने नाट्य साहित्य के बीहड़ वन में से अपना मार्ग प्रशस्त किया। खड़ी बोली को नाट्य भाषा का कलेवर देकर नाटकों के लिए एक नवीन पथ को आलोक्ति किया। भाषागत अनेक दोषों का परिष्कार किया। भारतेंदु जी ने नाटकों के साथ गीतिरूपकों का भी निर्माण किया। नाटकों में गीतों का समावेश कर नाटकों की महता को बढ़ा दिया। ये गीत काव्य ही नहीं अपितु चरित्र-चित्रण के भी उच्च उदाहरण है।

नाट्य कला के क्षेत्र में भारतेंदु के चार रूप दृष्टिगोचर होते हैं—1. मौलिक नाटकों के रचयिता, 2. विभिन्न भाषाओं के नाट्य - साहित्य के अनुवादक, 3. अभिनेता तथा निर्देशक और 4. नाट्य-कला सम्बन्धी सिद्धान्तों के विवेचक एवं समकालीन नाटकों के आलोचक। इनमें से प्रत्येक रूप का परिचय वहां अलग-अलग दिया जाता है।

1. मौलिक नाटक—भारतेंदु के द्वारा रचित नौ मौलिक नाटक उपलब्ध होते हैं, जिनमें विभिन्न रसों की आयोजना हुई है। इन नाटकों की सूची इस प्रकार है—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम जोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, श्री चंद्रावली, भारत-दुर्दशा, भारत जननी, नीलदेवी, अंधेर नगरी चौपट राजा और सती प्रताप।

''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' एक छोटा सा प्रहसन है। इसमें धर्म के नाम पर होने वाले दुराचारों-मद्यपान, मांस-भक्षण, पर-नारी समागम आदि का उपहास किया गया है तथा अंत में यम के द्वारा ऐसे दुराचारियों को घोर दंड दिलवाया गया है। इसमें पुरोहितों की असद्वृतियों पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रकाश डाला गया है। अपने दुराचारों को शास्त्रीय प्रमाणों आधार पर उचित सिद्ध करने वाले पंडितों का चित्रण यर्थाथ रूप में हुआ है। चित्रगुप्त और यमराज की बातचीत में अंग्रेजी सरकार पर भी छींटाकशी की गई है। जब पूछते हैं—''धर्म और प्रतिष्ठा में क्या संबंध है?'' तो चित्रगुप्त उतर देते हैं—''महाराज सरकार अंग्रेज के राज्य में जो लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है, उसको 'स्टार आफ इंडिया' की पदवी मिलती है'।'' इस प्रकार भारतेंदु की लेखनी से छोटे-छोटे पंडितों से लेकर बड़े-बड़े साम्राज्यों के अधिष्ठाता तक कोई भी नहीं बच सका।

'प्रेम-जोगिनी' चार अंकों की नाटिका है। इसका पहला संस्करण ''काशी के छाया-चित्र या दो भले-बुरे फोटोग्राफ'' के नाम से 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में छपा था। यह हिंदी का प्रथम यर्थाथवादी नाटक है, जिसमें तत्कालीन काशी की सामाजिक स्थिति का चित्रण लेखक की उत्कृष्ट राष्ट्रभक्ति का परिचय मिलता है ''क्या इस कम लवन रूपी भारत भूमि का दृष्ट गजों नें उसकी (ईश्वर) इच्छा बिना ही छिन्न-भिन्न कर दिया? क्या जब कादिर, चंगेजखां जैसे निर्दयों ने लाखों निर्दोषी जीव मार डाले तब वह सोता था?—छिः! ऐसे निर्दय को भी लोग दया समुद्र किस मुंह से पुकारे हैं?

ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटक लेखक ने घोर निराशा के क्षणों में लिखा होगा, कयोंकि इसमें लेखक ने अपनी दुःखपूर्ण स्थिति पर करुण शब्दों में प्रकाश डाला है। परिपार्श्वक के मुंह से इन नाटक के संबंध में कहलवाया गया है—''वह उनके और इस घोर काल के बड़ा ही अनुरूप है। उसके खेलने से लोगों को वर्तमान समय का ठीक नमूना दिखाई पड़ेगा और यह नाटक भी नई-पुरानी दोनों रीति मिल के बना है।'' काशी की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण करते हुए तत्कालीन समाज की दूषित प्रवृतियों एवं मनोवृतियों पर प्रकाश डाला गया है। कविता के संबंध में अर्द्धशिक्षित वर्ग की क्या धारणा थी तथा कवि भारतेंदु का उनके समाज में कैसा मान था। इसका उतर छक्कु की इस उक्ति में द्रष्टव्य है—''अरे कवित तो इनके बापौ बनावत रहे। कवित बनावै से का हौयै और कवित्त बनाबना कुछ अपने लोगों का थोरै हय, ई भांटन का काम है।'' काशी के मंदिरों और उनके पंडे-पुजारियों की खुशहाली की चर्चा करते हुए बनितोदास अपने मित्र से कहते हैं—"भाई मन्दि में रहे से स्वर्ग में रह खाए के अच्छा, पहिरै के परदासी, से महाराज कब्बों गाड़ा तो पहिरवै न करिए, मलमल नागपुरी ढांके पहिरियै—ऊपर से ऊ बात का सुख अलगै है।" इस रचना में भारतेंदु जी ने सर्वत्र पात्रानुरूप भाषा का न्रयोग किया है, यहां तक कि कुछ पात्र मराठी भाषा में भी बातचीत करते हैं।

"विषस्य विषमौषधम्" एक भाण है। इसमें एक ही पात्र—भंडाचार्य—है जो महाराज मल्हारराव के अंग्रेजों द्वारा पदच्युत कर दिए जाने पर अपने विचारों को भावात्मक शैली में व्यक्त करता है। बीच-बीच में वह आसमान की ओर इस प्रकार देखता है, मानो वह स्वर्ग के किसी पात्र से बातचीत कर रहा हो। एक विद्वान् आलोचक ने इस नाटक पर यह दोष लगाया है कि एक देशी नरेश के पदच्युत होने पर भारतेंदु का हर्ष प्रकट करना राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल है। किंतु वास्तव में इसमें हर्ष प्रकट नहीं किया गया है, अपितु देशी नरेशों की दुर्दशा पर क्षोभ व्यक्त हुआ है। जो विद्वान् इसे राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल समझते हैं, वे भंडाचार्य के इन उद्गारों को ध्यान से पढ़ें—"धन्य है ईश्वर! सन् 1919 में जो लोग सौदागरी करने आए थे, वे आज स्वतन्त्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं।"

'चंद्रावली' नाटिका प्रणय और विरह उद्गारों से परिपूर्ण है। चंद्रावली और ललिता की बात-चीत से प्रणय की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश पड़ता है। कामिनी से जहां वासनापूर्ण प्रेम का रूप व्यक्त करते हैं, वहां चंद्रावली के प्रत्येक शब्दों से स्वच्छ, मधुर प्रणय की बूंद टपकती सी प्रतीत होती है। इसी प्रकार मधुरी के वचनों से भी मानो रस-माधुर्य की वर्षा-सी होती है - हिंडोरा नहीं झूलता। हृदय में प्रीतम को झुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्ति भी झूल रही है।" चंद्रावली के स्वकथन में हृदय की भावानुकूल दशा का चित्रण काव्यात्मक शैली में हुआ है—"नाथ! जहां इतने गुण सीखे, वहां प्रीति निबाहना क्यों न सीखा। हाय मंझधार में डुबाकर ऊपर से उतराई मांगते हो। हाय! तड़पें हम और तुम तमाशा देखो। —झूठे! झूठे!! झूठे!!! झूठे ही नहीं वरंच विश्वासघातक! क्यों इतनी टोंक और हाथ उठा-उठाकर लोगों को विश्वास दिया!!"

ललित और जोगिन के वेश में कृष्ण का संवाद गद्य और पद्य दोनों के वैभव से युक्त है—

''कहां तुम्हारो देस है? प्रेम नगर पिय गांव!
कहा गुरु कहि बोलहीं! प्रेमी मेरो नांव!
जोग लियो केहि कारनै? अपने पिय के काज!!
मंत्र कौन? पिय नाम इक!
कहा तज्यौ? जग लाज!
आसन कित? जित ही रमे!
पंथ कौन? अनुराग?''

वस्तुतः यह नाटिका आदि से अंत तक

प्रणयोच्छवासों एवं भाव-माधुर्य से ओत-प्रोत है। कविता और नाटक दोनों का आनंद इसमें एक साथ उपलध होता है, किंतु इसी कारण से इसमें कुछ दोष भी विद्यमान हैं। कथानक की शिथिलता लंबे-लंबे संवाद, कवित्त, सवैयों और पदों का अतिशय प्रयोग इसकी नाटकीयता में बाधक सिद्ध होता है।

'भारत दुर्दशा' को स्वयं लेखक ने 'नाट्य-रासक' या लास्य-रूपक' की संज्ञा दी है। इसमें भारत-दुर्दशा के द्वारा भारत की धन-संपत्ति को लूटने तथा उसे नष्ट कर देने का चित्रण करते हुए उसे दूर भगाने के प्रयत्न पर प्रकाश डाला गया है। भारत-दुर्दशा की वेश-भूषा और उनके क्रिया-कलापों का जैसा चित्रण इस नाटक में किया गया है, इससे स्पष्ट है कि वह अंग्रेज शासकों का प्रतीक है। वह स्पष्ट कहता है, "हा हा! कुछ पढ़े-लिखे मिलकर देश सुधारना चाहते हैं। ह हा! ह हा!! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों का दमन करने को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो, उसको उतना, बड़ मैडल और खिताब दो।" अंग्रेजों की शासन-नीति की आलोचना और भी कटु शब्दों में करते हुए 'डिसलॉयल्टी' कहती है— "हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। कवि वचन-सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उसके पकड़ने को हम भेजे गए?— इंगलिश पालिसी नामक एक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से।"

तत्कालीन शिक्षित जनता एवं समाज-सुधारकों के मनोभावों पर भी इसमें तीखा व्यंग्य किया गया है। सात सभ्य जिनमें एक बंगाली, एक महाराष्ट्रीय, एक एडीटर, एक कवि और दो देशी महाशय थे, भारत-दुर्देव (अर्थात् अंग्रेज) को भगाने के उपायों पर विचार करते हैं। इस सभा के वक्ताओं द्वारा विभिन्न प्रान्तों के लोगों की मनोवृत्ति का परिचय मिलता है—

बंगाली—''गवर्नमेंट तो केवल गोल-माल से भय खाता! और कोई तरह नहीं शोनता! — किंतु हियां, हम देखते हैं कि कोई कुछ नहीं बोलता!" जहां बंगाली महोदय गंभीरतापूर्वक इस समस्या पर विचार करते हैं, वहां देशी को इसी बात की चिंता है—"क्यों भाई साहब! इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे?" किंतु इस सभा से एक बात स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर सरकार का आतंक पूरी तरह छाया हुआ था। 1857 की असफलता का प्रभाव अभी तक अवशेष था। वस्तुतः इस रचना में भारतेंदु जी ने विदेशी शासन के दुष्परिणाम को स्पष्ट करते हुए स्वदेशी-वासियों को चेतावनी दी है। नाटक का अंत जान-बूझकर दुःखमय रखा गया है, जिससे कि यह भारतवासियों के हृदय को झकझोर सके।

'भारत-जननी' भी भारत-दुर्दशा की भांति देश-प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत है। इसमें स्वयं भारत-माता रुदन करती हुई करुण स्वर में कहती है—'हाय क्या हुआ? वत्स! कब तक इस प्रकार से तुम निद्रित रहोगे, अब सोने का समय नहीं, एक बेर आंखें खोल भली-भांति पृथ्वी की दशा को तो देखो।" इस नाटक का अंत आशापूर्ण शब्दों के साथ हुआ है। 'नीलदेवी' की रचना भारतीय ललनाओं में स्वाभिमान और वीरता के भाव जागृत करने के उद्देश्य से की गई थी। इसमें भी एक पागल के मुंह से कहलवाया गया है—'मार मार मार - काट-काट-काट-दुष्ट म्लेच्छ-हमारा देश-हम राजा हम रानी!! हम मंत्री!! ...!"

अंधेर नगरी चौपट राजा' एक विशुद्ध प्रहसन है, किंतु इसमें भी लेखक ने कुछ स्थान राजनीति के लिए निकाल लिया है। चने व चूर्ण बेचने वालों की कुछ पंक्तियां—

''चना हाकिम सब जों खाते!
सब पर दूना टिकस लगाते!!
हिंदू चूरन इसका नाम!
बिलायत पूरन इसका काम!!
चूरन जब से हिन्द में आया!
इसका धन बल सभी घटाया।।
चूरन साहेब लौग जो खाता!
हिन्द हजम कर जाता!!''

'सती प्रताप' एक पौराणिक नाटक है, जिसमें सावित्री-सत्यवान् के प्रसिद्ध आख्यान का चित्रण किया गया है। इसमें भी कविताओं की प्रमुखता है।

इस प्रकार भारतेंदु के मौलिक नाटकों पर दृष्टिपात कर लेने पर स्पष्ट है कि उनके नाटकों में राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति ही मुख्य है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने सुधार लाने का प्रयत्न किया है। दांपत्य जीवन की पवित्रता का संदेश 'सती-प्रताप' में, सामाजिक जीवन की शुद्धता का 'प्रेम जोगिनी' में, धार्मिक जीवन की निर्मलता का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में और राजनीतिक जीवन में क्रांति का संदेश 'भारत-दुर्दशा' और 'भारत जननी' में दिया गया है। यह भी ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक रचना में नाटक के नए-नए भेदों का प्रयोग किया गया है , जिससे कि सभी भेदों के उदाहरण प्रस्तुत हो सके हैं। यही कारण है कि उन्होंने नाटक, नाटिका, प्रहसन, भाण, नाट्य-रूपक आदि की रचना की है।

2. अनुवादित नाटक—भारतेंदु के आठ अनुवादित नाटक उपलब्ध हैं - 1. विद्यासुंदर (बंगला से), 2. पाखंड विडम्बन (संस्कृत से), 3. धनंजय विजय (संस्कृत से), 4. मुद्राराक्षस (संस्कृत से), 5. सत्य हरिशचन्द्र (बंगला से), 6. कर्पूर-मंजरी (प्राकृत से), 7. रत्नावली (संस्कृत से) और 8. दुर्लभ-बंधु (अंग्रेजी 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद)। इन नाटकों का अनुवाद हिंदी जगत् को संस्कृत, प्राकृत, बंगला व अंग्रेजी के प्रौढ़ नाटक-साहित्य का परिचय देने के उद्देश्य से किया गया है। इससे उनके दृष्टिकोण की व्यापकता का पता चलता है।

अनुवादों के सम्बन्ध में भारतेंदु का कहना था—"बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं, कवि को लोकांतर-स्थित आत्मा को नरक-कष्ट देना है।" इस नीति का पालन उन्होंने अपनी अनुवादित रचनाओं में सफलतापूर्वक किया है। उदाहरण के लिए 'मुद्राराक्षस' देखा

जा सकता है। इसमें उन्होंने मूल नाटक के गद्यांशों का अनुवाद गद्य में और पद्यांशों का पद्यों में है। यह अनुवाद इतना सफल हुआ है कि पढ़ते समय इससे मूल का-सा आनन्द उपलब्ध होता है। 'दुर्लभ-बंधु में उन्होंने पात्रों के नामादि में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है, जैसे 'एंटोनियो' के स्थान पर 'अनंत', पोरशिया के स्थान पर 'पुरश्री' आदि। ऐसा उन्होंने भारतीय पाठकों की रसानुभूति के निमित्त ही किया है। अंग्रेजी भाषा के नाटक का भी अनुवाद उन्होंने आश्चर्यजनक मुहावरेदार शैली में किया है। एक अंश देखिए -'मरकहा बैल! रात-दिन फूं-फूं किया करता है, मानो उसकी चितवन कहे देती है कि या तो ब्याह करो या साफ जवाब दो। - हंसी मानो जुए में हार आया है। अभी जब हट्ट-कट्टा सांड बना है तब तो यह रोनी सूरत है तो बुढ़ापे में तो बात पूछते रो देगा। सिवाय हर भजन के और किसी काम का न रहेगा। मेरा ब्याह चाहे एकमुर्दे से हो, पर इन भद्दे जानवरों से नहीं। भगवान् इन दोनों से बचावे।" यह अनुवाद भले ही यथा शब्द न हो, किंतु इसकी भाषा में प्रभाव और प्रवाह मूल से भी अधिक है, इसमें कोई संदेह नहीं।

वस्तुतः भारतेंदु की नाट्य-कला के विभिन्न स्वरूपों का एक संक्षिप्त-सा परिचय यहां दे दिया गया है—यद्यपि छोटे-से निबंध में उनकी कला का समुचित मूल्यांकन संभव नहीं, किंतु इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि नाटक कला के क्षेत्र में उनका कार्य अनिवार्य है। संसार के इतिहास में किसी ऐसे नाटककार का नाम नहीं मिलता, जिसने अकेले ही नाटक की इतनी शैलियों; इतने रूपों और इतने रसों का प्रयोग किया हो, जिससे इतने बहुविध मौलिक नाटक लिखे हों। जिसने पांच भाषाओं के नाटकों का इतना सफल अनुवाद किया हो, जिसने अभिनय और निर्देशन दोनों में सफलता प्राप्त की हो, जिसने नाट्य-कला के सिद्धांतों का विवेचन किया हो और जिसने पूर्व और पश्चिम के नाट्य-साहित्य का इतिहास भी लिखा हो। नाट्य-कला का कोई भी अंग ऐसा नहीं है जो भारतेंदु के बहुमुखी व्यक्तित्व के स्पर्श से वंचित रहा हो। उनके नाटक मनोरंजन से यदि भरपूर हैं, रस के माधुर्य से ओत-प्रोत हैं तो साथ ही परिवार, समाज और राष्ट्र को नव-जीवन प्रदान करने वाली अमृतदायिनी शक्ति भी उसमें विद्यमान है। कला और विचार, सौंदर्य और उपदेश, भाव और भाषा-इन सबका सुंदर समन्वय उनके नाटकों में मिलता है। इन सारी विशेषताओं से युक्त, इन सारे रूपों से सुसज्जित लेखक, अनुवादक, अभिनेता, निर्देशक और आलोचक नाटककार भारतेंदु की तुलना संभवतः विश्व के किसी भी नाटककार से नहीं हो सकती।

शोधार्थी, हिंदी साहित्य,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

पुनर्जागरण के अग्रदूत

डॉ. आरती स्मित

हिंदी साहित्य आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक काल के प्रवर्तक के रूप में समादृत हैं। इस युग निर्माता रचनाकार ने हिंदी को नए चाल में ढाला। उन्होंने हिंदी साहित्य को नया रूप देकर जनजीवन से संपृक्त किया। वे पहले साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य को नवीन विषयों की ओर प्रवृत्त कर नई दिशा दी। यही कारण है कि हिंदी साहित्य का आधुनिक काल 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है।

कविवर हरिश्चंद्र 9 सितंबर, 1850 ईसवी को इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश परंपरा में शिवाला, वाराणसी में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता बाबू गोपालचंद्र गिरिधरदास भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। बचपन से ही संवेदनशील और कुशाग्र बुद्धि हरिश्चंद्र ने महसूस किया कि भारतीय समाज बड़े वेग से राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों के मोड़ से गुजर रहा है। बाल्यावस्था से ही काव्य रचना की ओर प्रवृत्त इस युग-प्रणेता ने अल्पायु में ही कवित्व-प्रतिभा और सर्वतोमुखी रचना-क्षमता का ऐसा परिचय दिया कि उस समय के पत्रकारों और साहित्यकारों द्वारा 1880 ईस्वी में वे 'भारतेंदु' की उपाधि से नवाजे गए।

बचपन में ही माता-पिता के साए से वंचित भारतेंदु के जीवन में तीन स्त्रियां आईं। पहली उनकी पत्नी मन्नो देवी, जो असुंदर थी, जिनके प्रति विकर्षण भाव ने उन्हें माधवी और मल्लिका की ओर झुकाया। मल्लिका को तो उन्होंने धर्मपूर्वक स्वीकार कर पत्नी का दर्जा भी दिया। यह स्वीकारोक्ति उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता दर्शाती है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेंदु ने न केवल कविता, बल्कि नाटक, निबंध, अनुवाद और साथ ही साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण निशान छोड़ा है। युगानुकूल भावनाओं के इस पारखी ने सामयिक युद्धोन्मुखी शक्ति को नाटक-रचना के द्वारा विकसित करने के लिए अपनी सारी प्रतिभा लगा दी। उन्होंने अपने मौलिक नाटकों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करके देशद्रोहियों पर कशाघात किया और तात्कालिक सामाजिक एवं धार्मिक कुव्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया। उनके कुछ प्रमुख नाटकों जैसे—'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' में पाखंडी, मांसाहारी पुरोहितों, शैवों और वैष्णवों की चुटकी ली है। 'प्रेमजोगिनी' में तात्कालिक काशी का निर्भीकता के साथ यथार्थ चित्रण किया है। 'भारत दुर्दशा' में प्रतीकात्मक शैली अपना कर भारत के प्राचीन गौरव और वर्तमान की दुर्दशा अंकित की है। 'अंधेर नगरी' में अंग्रेजी सरकार की अनीति, राज्य कुव्यवस्था एवं कर्मचारी वर्ग में छाए हुए भ्रष्टाचार की व्यंग्य विनोद शैली के माध्यम से खुले शब्दों में भर्त्सना की है। 'नीलदेवी' में स्त्री शिक्षण पर बल दिया है।

'भारत दुर्दशा' की यह पंक्ति नाटककार भारतेंदु के संवेदनशील हृदय की परिचायक है—

''रोअहु सब मिली कै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।''

इसी प्रकार भारत जननी में सूत्रधार की यह उक्ति भारतेंदु के अंतर्मन की पीड़ा और देश की चिंता दर्शाती है—

''जगतपिता जगजीवन जागो
मंगल मुख दरसाओ।
तुव सोए सबही मनु सोए
तिन कहं जागि जगाओ।।
अब बिनु जागे काज सरत नहिं
आलस दूरि बहाओ।
हे भारत युवनाथ भूमि निज
बूड़त आनि बचाओ।।

कविता विधा की बात की जाए तो उनकी लेखनी से रंगबिरंगी छटाएं उभरती हैं, प्रेम, अर्पण, प्रेम मालिका, प्रेम तरंग, होली, राजभक्ति परक कविताएं, अन्य भाषाओं जैसे संस्कृत, लावणी, उर्दू का स्यापा, हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान एवं ग़ज़ल को भी उनकी प्रतिभा ने दिशा दी है। उनकी ग़ज़ल का एक शेर—

''इलाही खैर की जो कुछ
अभी से दिल धड़कन।
सुना है मंज़िले औवल की
पहली रात भारी है।।''

'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' का उदाहरण—

''अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भातृ गन आज।
धन्य दिवस जो यह जुड़ो हिंदी सेतु समाज।।
पिता बिबिध भाषा पढ़े पुत्र न जानत एक।
तासो दोउन मध्यम में राहत प्रेम अविवेक।।''

निश्चय ही उनकी कविताएं विविध-विषय विभूषित हैं—भक्ति, शृंगारिकता, देश-प्रेम,

सामाजिक परिवेश और प्रकृति के विभिन्न संदर्भों को लेकर उन्होंने विपुल परिमाण में काव्य रचना की; जो कहीं सरसता और लालित्य में अद्वितीय है तो अन्यत्र स्थूल वर्णनात्मकता की परिधि को लांघने में असमर्थ है। उनकी सत्तर काव्य-कृतियों में प्रेम मालिका, प्रेम सरोवर, गीत गोविंदानंद, वर्षा विनोद, विनय प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, वेणु-गीति आदि विशेषतः उल्लेख योग्य हैं। उनकी प्रमुख विशेषता है कि अपनी अनेक रचनाओं में जहां वे प्राचीन काव्य-प्रवृत्तियों के अनुवर्ती रहे, वहां नवीन काव्य धारा के प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। राजभक्त होते हुए भी वे देशभक्त थे; दास्य भाव की भक्ति के साथ ही उन्होंने माधुर्य भाव की भक्ति भी की है, नायक-नायिका के सौंदर्य में रमे, मगर उनके लिए नवीन कर्त्तव्य-क्षेत्रों का भी निर्देश किया और इतिवृत्तात्मक काव्य-शैली के साथ ही उनमें हास्य-व्यंग्य का पैनापन भी विद्यमान है। अभिव्यंजना क्षेत्र में विरोधाभासी प्रकृतियों को अपना कर उन्होंने प्रयोगधर्मी मनोवृत्ति ही प्रमाणित की है।

हिंदी भाषा में प्रबल हिंदीवादी के रूप में सामने आने पर भी उन्होंने उर्दू शैली में कविताएं लिखी हैं और काव्य-रचना के लिए ब्रजभाषा को ही उपयुक्त मानने पर वे खड़ी बोली में दशरथ विलाप तथा फूलों का गुच्छा कविताएं लिखते दिखाई देते हैं। काव्य रूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छंदोबद्ध कविताओं के साथ ही उन्होंने गेय पद शैली में भी विदग्धता का परिचय दिया है। निश्चित तौर पर कविता के क्षेत्र में वे नवयुग के अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भाव-मर्मज्ञता और प्रभाविष्णुता में उनका काव्य इतना प्राणवान है कि उस युग का शायद कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।

वरिष्ठ साहित्यकार होने के साथ ही भारतेंदु प्रबुद्ध पत्रकार भी थे। उन्होंने 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (जो बाद में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के नाम से प्रकाशित होने लगा), 'बाल बोधिनी' जैसी पत्रिकाओं का संपादन कर हिंदी गद्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस युग की पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन ऐसी प्रतीति होती है कि प्रारंभिक दौर में पत्रकारिता और साहित्य को अलग-अलग नहीं किया गया था। उस समय के पत्रों में साहित्य के अलावा अन्य तमाम विषयों के लेख भी रहते थे, खबरें और विज्ञापन भी तथा संपादक या किसी अन्य विशेषज्ञ की टिप्पणियां भी। तत्कालीन समय, परिवेश और विचार की सम्यक समझदारी विकसित करने के उद्देदश्य से ये चीजें बड़े काम की थीं।

भारतेंदु ने हिंदी गद्य को एक विशिष्ट रूप प्रदान किया। 1883-84 में उन्होंने हिंदी भाषा नामक एक पुस्तक लिखी। अलंकार विहीन और संस्कृत के तत्सम शब्दों से रहित व्यवहारोपयोगी भाषा उन्हें विशेष प्रिय थी। भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ाने के लिए लोक-प्रचलित मुहावरों और कहावतों को तथा देशज और तद्भव शब्दों को भी उन्होंने अपनी भाषा में स्थान दिया, जैसे कि चंद्रावली नाटिका।

भारतेंदु ने स्वयं को हिंदी गद्य के नवनिर्माण का जनक बताया है और यह सत्य भी है। भारतेंदु युग में जहां एक ओर भाषा बोधगमयता पर बल दिया जा रहा था, वहीं हिंदी गद्य में विदेशी शब्दों के ग्रहण का भी कार्य तेजी से चल रहा था। अंग्रेजी शब्द कभी ज्यों के त्यों, कभी अनुवाद के रूप में प्रस्तुत थे।

निबंधों का जन्म भारतेंदु युग में हुआ। भारतेंदु के अनेक लेखों से उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि का पता चलता है। जैसे—हिंदी कविता, हिंदी भाषा, लेखक और नागरी लेखक पर लेख भाषा संबंधी निबंध हैं तो ऐड्रेस 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' आदि राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार स्त्री, मित्रता, भ्रूण हत्या, संगीत सार, खुशी आदि सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण निबंध हैं। इसी प्रकार उनकी व्यंग्य प्रधान रचनाएं भी उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता दर्शाती हैं।

यह सच है कि भारतेंदु ने अंग्रेज और अंग्रेजी सरकार के प्रति भक्ति दिखाई थी, लेकिन कहीं-कहीं उनके विरोध की धार बड़ी पैनी है। 'लेवी प्राण लेवी' ऐसे ही लेखों में एक है। भारतेंदु साहित्य के अध्येताओं ने उनके ऐसे दो निबंधों—'मर्सिया' और 'भुतही इमली का कनकौआ' की बहुत चर्चा की है। किंतु अफसोस ये दोनों लेख अनुपलब्ध हैं।

लेखन के नए-नए रूपों में भारतेंदु की गहरी दिलचस्पी थी। निबंध के साथ ही, उनकी यात्रा-वृत्तांतों का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा भी है—''भारतेंदु की यात्रा सिर्फ शौकीनों की यात्रा न थी। यह उनकी शिक्षा का आवश्यक अंग था। यात्रा में उन्हें काफी कष्ट उठाने पड़ते थे।''[1]

भारतेंदु के यात्रा वृत्तांतों का महत्त्व दो कारणों—नई विधा के प्रवर्तन और परिपूर्णता से है। ये यात्रा वृत्तांत मात्र यात्रा वृत्तांत नहीं हैं, अपने समय के दस्तावेज हैं। भारतेंदुजी ने जिन स्थानों की यात्रा की थी, वहां के जन-जीवन के चित्रण को रचना का आधार बनाया। इसलिए उनके यात्रा वृत्तांत जीवंत हो उठे।

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में—''वन, प्रकृति, पुरातत्व—इन सबसे बढ़कर उनके अध्ययन का विषय था मनुष्य। हर जगह वे लोगों की अशिक्षा और कुसंस्कार देखकर कुढ़ते थे और देशोन्नति के लिए नए-नए उपाय सोचते थे। हां, उनकी यात्रा में भटियारखाने और भटियारिनें भी छूटने न पाई थीं। उस समय के नब्बे फीसदी यात्रियों की तरह भारतेंदु ने भी 'सराय के खाट के खटमल और भटयारिनों का लड़ना' क्या है, अपने अनुभव से जाना था।''[2]

वस्तुतः भारतेंदु का व्यक्तित्व अपने दौर

की उस भद्रवर्गीय उठा-पटक का आइना है। भारतेंदु ने दो नारे दिए थे—''स्वत्व निज भारत गहै'' और ''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल''।

उनके जीवन और साहित्य सर्जना के ये दो सिद्धांत वाक्य थे। भारत अपना स्वत्व ग्रहण करे और मातृभाषा हिंदी का विकास हो, वह नए रूप में ढले, इसके लिए उन्होंने सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

उन्होंने अंग्रेजों के निमित्त कविताएं लिखीं, साथ ही तल्ख अभिव्यक्ति भी दी है। प्रोफेसर नित्यानंद तिवारी अपने लेख 'समाज की कलंक कथा' या 'इतिहास की अनुभूति' में कहते हैं—

''कबीर के बाद व्यंग्य और हास्य का रचनात्मक उपयोग सबसे अधिक भारतेंदु में हुआ है। इसके प्रयोग की सामग्री और क्षेत्र आमतौर पर औपनिवेशिक शासन, उनमें कारकुन और विषमता तथा छल छद्म करने वाली व्यवस्थाएं हैं।

हम कह सकते हैं कि भारतेंदु एक युग-प्रणेता थे। उनका युग पुनर्जागरण के उदय का काल था जो हिंदी साहित्य के लिए नवीन जागरण के संदेशवाहक युग के रूप में हुआ था। भारतेंदुजी के रचनाकाल को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस अवधि को नई धारा अथवा प्रथम उत्थान की संज्ञा दी है और इस काल को आचार्य हरिश्चंद्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कवित्व से समृद्ध माना है जो मेरी दृष्टि में शत-प्रतिशत उचित है।

संदर्भ-

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं, रामविलास शर्मा, पृ. 50
2. वही, पृष्ठ 50

622 (प्रथम तल), पश्चिम परमानंद कॉलोनी, दिल्ली-110009

मातृभाषा के प्रति
भारतेंदु हरिश्चंद्र

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।
उन्नति पूरी है तबहिं, जब घर उन्नति होय।
निज शरीर उन्नति किए, रहत मूढ सब कोय।।
निज भाषा उन्नति बिना, कबहुं न ह्वैहैं सोय।
लाख उपाय अनेक यों, भले करो किन कोय।।
इक भाषा इक जीव इक, मति सब घर के लोग।
तबै बनत है सबन सौं, मिटत मूढता सोग।।
और एक अति लाभ यह, या में प्रगट लखात।
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात।।
तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय।
यह गुन भाषा और महं, कबहूं नाहीं होय।।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।।
भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सो उत्पात।
विविध देस मतहू विविध, भाषा विविध लखात।
सब मिल तासों छांड़ि कै, दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु, आहे भ्रातगन आय।।

साक्षात्कार – भारतेंदु के पैत्रिक निवास बनारस से

साहित्य और समाज के लिए जिए

माधवी श्री

इस ताम-झाम पर भारतेंदु निकलते थे और पालकी पर घर की बहू

आधुनिक हिंदी के पितामह भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म बनारस में 9 सितंबर, 1850 में हुआ था। मात्र 35 की आयु में उनकी मृत्यु हो गई पर उनकी रचना ने उन्हें कालजयी बना दिया। हिंदी प्रेमियों के लिए वे आज भी अपने लेखन के माध्यम से उनके बीच जीवित हैं, भारतेंदु को कई भाषा में महारथ हासिल थी। बंगाली, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी भाषा पर उनकी पकड़ मजबूत थी। 15 वर्ष की आयु में वे जगन्नाथ मंदिर की यात्रा की जो उनके जीवन में एक ऐतिहासिक बदलाव लेकर आया। 5 वर्ष की उम्र से उन्होंने कविता लिखना शुरू कर दिया। प्रस्तुत है भारतेंदु की चौथी पीढ़ी से भारतेंदु के जीवन के बारे में बातचीत।

लेखिका ने बनारस की यात्रा कर भारतेंदु की चौथी पीढ़ी प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी से बातचीत की। प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से खनिज विज्ञान के प्रोफेसर के पद से रिटायर हुए हैं, प्रस्तुत है उनसे हुई बातचीत के मुख्य अंश–

भारतेंदु के भाई की चौथी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी भारतेंदु के जीवन से जुड़े कई अनछुए पहलुओं को बताते हुए कहते हैं कि भारतेंदु का संबंध खनिज पदार्थ के ज्ञान से भी था, वे सिर्फ हिंदी के ही ज्ञाता नहीं थे, भारतेंदु के सौवे जन्म दिवस पर प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी नौ वर्ष के थे, तब उन्होंने बनारस में आयोजित एक समारोह में आयोजित एक नाटक में बाल भारतेंदु की भूमिका निभाई थी। तब से उनके मन को 'विराट भारतेंदु' का व्यक्तित्व प्रभावित कर गया।

भारतेंदु के बारे में प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी बतलाते हैं कि भारतेंदु का चरित्र बहुत उदार था। अपनी संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा उन्होंने हिंदी साहित्य के उत्थान के लिए लगा दिया। अच्छा लिखने वालों को वे सहयोगी मानते थे, प्रतियोगी नहीं। वे अच्छा लिखने वाले लोगों को प्रोत्साहित करते हुए कहते थे, आप लिखो हम छापेंगे। आपको उनका उदार हृदय लोगों को सत्य और उचित सलाह देने से कभी नहीं पीछे हटता था। एक बार की बात बताते हुए प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी कहते हैं–एक बार एक इत्र बेचने वाले ने आकर भारतेंदु

भारतेंदु का बैठकखाना

को कहा कि मेरा इत्र कोई नहीं खरीद रहा। लगता है इस शहर में कोई कद्रदान नहीं है, तो भारतेंदु ने उसे बुला कर उसके इत्र को परखा। फिर उसको कहा—इसमें तेल है इत्र कहां, तो लोग क्यों लेंगे।

प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी ने कहा कि भारतेंदु घर के ऊपर वाले बरामदे के दरवाजे पर खड़े हो जाते थे और देखा करते थे की कौन जा रहा है। किसे किस चीज की जरूरत है। एक बार उन्हें एक सुंदर महिला दिख गई। उन्होंने उसे अपने घर ऊपर बुला कर 'राधा रानी' की तरह श्रृंगार किया और फिर कपड़े-गहने देकर उसे विदा किया।

प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी ने भारतेंदु के जीवन के बारे और विस्तार से बताते हुए कहते हैं कि पंडितों के साथ भारतेंदु का उठना-बैठना लगा रहता था। दस वर्ष की आयु में भारतेंदु के पिता का निधन हो गया था। पर उनके कवि पिता गोपाल चंद्र का प्रभाव भारतेंदु पर जीवन भर रहा। भारतेंदु जब 5 वर्ष के थे, तब उनके पिता ''दशावतार कथा अमृत'' लिख रहे थे तब किसी चीज पर लोग अटक गए, उस समय भारतेंदु ने उन पंक्तियों का अर्थ लगाया। ये भारतेंदु की असाधारण क्षमता थी साहित्य के प्रति।

प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी पूरे मनोयोग से भारतेंदु के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि भारतेंदु ने नाटकों का मंचन करना खुद किया। एक बार 'जानकी मंगल' नाटक के मंचन पर लक्ष्मण का पार्ट करने वाला बीमार पड़ गया। तब भारतेंदु ने बहुत कम समय में उसके सारे संवादों को याद कर डाला और इसका सफलापूर्वक मंचन किया। भारतेंदु जब बाहर जाते थे तो सभी से मिलते थे, चाहे वह दलित वर्ग हो, चाहे शिक्षित वर्ग हो।

प्रोफेसर गिरीश चंद्र चौधरी से यह पूछे जाने पर कि भारतेंदु इतना साहित्य साधना का काम अकेले कैसे कर लेते थे? प्रति उत्तर में प्रोफेसर चौधरी ने कहा कि 'भारत मंडल' में भारतेंदु के सहयोगी थे, जो भारतेंदु का साहित्य सृजन में सहयोग करते थे। प्रोफेसर चौधरी कहते हैं कि भाषा के बारे में भारतेंदु की स्पष्ट राय थी कि यह न तो पूरी तरह संस्कृत हो न ही उर्दू।

प्रोफेसर चौधरी बताते हैं कि भारतेंदु की लिंग जागरूकता का आलम यह था कि अगर उन्हें यह पता चलता था कि भारत में कोई लड़की बी.ए. पास हुई है तो वे उसे उपहारस्वरूप एक बनारसी साड़ी भिजवाते थे। स्त्रियों को ध्यान में रखकर उन्होंने 'बाल बोधिनी' नामक पत्रिका निकली। भारतेंदु ने उस समय एक स्कूल की भी स्थापना की, जिसमें पांच छात्र थे। उसमें उनकी एक बेटी भी शामिल थी।

प्रोफेसर चौधरी कहते हैं कि भारतेंदु मानते थे

ठाकुर जी... जिन पर भारतेंदु पूर्ण आस्था रखते थे

कि अंग्रेजों की तरह हिंदी का विकास हो पर साथ ही साथ सभी क्षेत्रीय भाषाओं का भी विकास हो, उन्होंने कहा था 'सत्व निज भारत गाहे' तिलक जी के पहले कहा था।

आजादी के पहले महारानी विक्टोरिया के पुत्र जब भारत भ्रमण को आए तब भारतेंदु ने 'पाद्यार्थ' लिखा था। तब कई लोगों ने उनकी आलोचना की। इस पर भारतेंदु ने कहा कि 'पाद्यार्थ' का मतलब 'पद का पूजन' भी होता है और 'जूता भेंट' करना भी होता है, ये भारतेंदु के विनोदिता का गुण था कि वे एक साथ अपने विरोधियों को चुप करा देते थे।

जब भारतेंदु अपने साहित्य प्रेम में लिप्त रहते थे, तब उनके छोटे भाई बाबू गोकुल चंद्र घर की जिम्मेदारियां संभाला करते थे। प्रोफेसर चौधरी बताते हैं अपने अंतिम पत्र में भारतेंदु ने अपने भाई को लिखा कि मुझे अपने जाने की चिंता नहीं है क्योंकि तुम अपनी भाभी को अपनी मां की तरह मानते हो इसलिए उसके देखभाल की चिंता मुझे नहीं है। भारतेंदु का परिवार 'ठाकुरजी' के अनन्य भक्त हैं।

ठाकुरजी उनके कुल देवता हैं। भारतेंदु की उन पर अगाध श्रद्धा थी। ठाकुरजी का यही स्वरूप कोलकता के 'सवारियां मंदिर' में पाया जाता है। भारतेंदु अग्रवाल समाज से संबंधित थे। उनकी पौत्री प्रतिभा अग्रवाल कोलकाता में एक नाटक मंडल चलाती हैं।

प्रोफेसर चौधरी के अनुसार वायसराय लार्ड रिपन ने जब पहली शिक्षा कमीशन बनाई तब उसमें उत्तर भारत से भारतेंदु को शामिल किया गया था। भारतेंदु के सुझाए कई विचारों को उस शिक्षा कमीशन की संस्तुति में शामिल किया गया। उस समय इस विषय पर भारतेंदु ने 100 प्रश्न अंग्रेजी में किए गए थे और भारतेंदु ने सभी का अंग्रेजी में उत्तर दिया।

बंगाल में लार्ड क्लाईव ने सिराज्जुदौला को हराया तब भारतेंदु के वंशजों (अमीरचंद्र) को भी जो यहां सरकारी कर्मचारी थे, वहां से बेदखल कर दिया। अमीरचंद के दस लड़के थे। उनमें से एक, फतह चंद बनारस चले आए रहने के लिए, ये भारतेंदु के परदादा थे।

प्रोफेसर चौधरी बताते हैं कि ऋषि पंचमी को भारतेंदु का जन्म हुआ था। वर्षों बाद आज भी लोग उनको याद करते हैं। प्रोफेसर चौधरी कहते हैं आज भी भारतेंदु को भारत के सबसे नीचे के लोग भी उनको आकर प्रणाम करते हैं, यही भारतेंदु की लोकप्रियता का पुख्ता प्रमाण है।

शेट्टी हाउस, तृतीय तल
101, एम. जी. रोड़, मुंबई–400001

और आकाश में उड़ गया सारा आकाश का पंछी

गीताश्री

रात के गहन अंधेरे को चीरती हुई यह खबर आई थी। किसी को यकीन हो तो कैसे। शाम तक तो उनके अपनों ने चहकते हुए बातें की थीं। किसी को फटकारा, किसी को दुलारा तो किसी को घर बुलाया। अपने-अपने हिस्से के राजेंद्र यादव को उस दिन भी सबने जिया। खांसी के बीच उनके ठहाके को फोन पर सुनने के बाद कई लोग आश्वस्त हुए। कल फिर आएगा... और रात इतनी काली पहले कभी न थी।

एक परिंदा, अचानक जिंदगी का रौशन इलाका छोड़कर अंधेरे में गुम हो गया। उस करुण अंधेरे में चीत्कारें थीं, जैसी राजेंद्र यादव ने मौत के बारे में लिखा था बरसों पहले—"मरघटों के साथ कुछ अजीब डरावनी तस्वीरें हम सबकी चेतना में बहुत गहरे पैठी हुई हैं। जैसे सांप की तरह एक मटमैली नदी, मनहूस और उजाड़ पीपल-पाकड़ के पेड़, लाखों साल पुराने कटुओ जैसे बेडौल टीले, कुछ पेड़ों की नंगी शाखों पर धुस्सा दिए सिकुड़े-बैठे चौकन्ने गिद्ध, अदृश्य जगहों से पृष्ठभूमि संगीत देते सियार, कुंडली मारे राख में सोते कुत्ते...।"

जिंदगी और मौत के बीच उनकी शह और मात (उपन्यास) चलती रहती थीं। वह मौत

को कई बार मात दे चुके थे और अपनी एक इंच मुस्कान ओढ़ कर अपनों के बीच ठसक से बैठ जाते थे। उन्हें मौत से कभी डर नहीं लगा। उन्हें चाहने वाले जरूर संशय में रहते थे उनके स्वास्थ्य को लेकर। पर वे खुद बेफिक्र थे। जिंदगी इतनी उनके अंदर कूट-कूट कर भरी थी कि वह मौत पर बात भी नहीं करना चाहते थे। इस बारे में वह अपनी किताब में विस्तार से लिख कर भयमुक्त हो चुके थे। 'मुड़-मुड़ के देखता हूं' में वह लिखते हैं—''दुर्घटनाओं पर तो किसी का बस नहीं है, मगर न मृत्यु कभी दूर-दूर तक चिंता की चीज रही न डर का हिस्सा। डर सिर्फ एक रहा, दीन और दयनीय बन जाने का। मौत जो जिस दिन होगी वह हो जाएगी—अपने आप या दूसरों के हाथ। अफसोस सिर्फ यही है कि बहुत कुछ अधूरा और बिखरा छूट जाएगा...।''

अबकी सचमुच चले गए, अपने पीछे बिलखता हुआ सारा आकाश छोड़ कर। अचानक उनके जाने की खबर ने सबको दहला दिया। वे थे ही ऐसे कि सबको अपने मोहपाश में बांध लेते थे।

वे इमोशनल ठग थे। आपको पता भी नहीं चलता था कि आप इमोशनली लुट गए हैं। आप उनसे मिले और उनके हो गए। वे आपके हुए या नहीं, इसका पता लगाने में उम्र लग जाएगी। वे सबके करीब थे और किसी के पास नहीं थे। उनका साथ छलावा था या भ्रम। पर वे साथ दिखते थे। वे आपकी खुशी में, आपके कार्यक्रमों में, हर जगह आपके साथ होते थे। वे आपकी दुनिया में झटके से दाखिल हो जाते थे। आपके लिए उनकी दुनिया में दाखिल होना जितना आसान था, उतना ही उनके करीब होना। कई लोग खुद को उनके बहुत करीब होने का भ्रम रखते हैं। वे नहीं जानते कि वे माया-भवन में रहने वाले एक निर्मोही मायावी संत सरीखे थे। जो बांधने की कला में माहिर होता है पर खुद बंधन से नफरत करता है।

मुझे एक यूनानी किरदार देवमलाई की बात याद आती है। देवमलाई जादूगरनी है। वह अपने महबूब हस्ती को तिलस्माती पलंग पर सुलाती है। छोटे से बड़ा करती है। जाते समय उसे छोटा बना जाती है। इस खींचतान में एक दिन महबूब की मौत हो जाती है। राजेंद्र जी बुभुक्षित आत्मा, कहीं वह देवमलाई तो नहीं। जो जिंदा रहा वह तो उनका जादू था, पर जो मर गया, वह क्या था।

प्रसिद्ध कहानीकार संजीव ने ये बातें अपने एक लेख में राजेंद्र जी के लिए कही थीं। आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं तब मैं इन पंक्तियों को फिर से पढ़ रही हूं... और सवालों से उलझ रही हूं कि जो जिंदा रहा वह तो उनका जादू था, जो मर गया, वह क्या था... क्या था वह। किसी के पास सही जवाब नहीं। वे जवाब भी अपने साथ ले गए हैं। पर इतना जरूर समझ में आ रहा है कि मरने के बाद भी जादू वैसे ही कायम है। हर कोई बिसुर रहा है, हर कोई अफसोस में हैं, कोई न कोई मलाल सबको खाए जा रहा है। अपने पीछे भी सारी जिंदगी जादू का बंदोबस्त करके गए हैं। हैरानी होती है कि बंधन से भागने वाला इनसान इतने सारे बंधन बांध कर कैसे निकल सकता है। कितनों को जाते-जाते आखिरी दिनों में बांध गए हैं। उन्हें इसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता था। कोई उन्हें दोष न दे।

कई शेड्स हैं, बहुरूपी मायावी राजेंद्र यादव जी के। किन-किन पर बातें हों। लगभग तेरह सालों की पारिवारिक रूप से घनिष्ठता में हमने जितना भी जाना-समझा वह सब कम है। वे क्या थे, कैसे थे, उन्हें कोई मुकम्मल नहीं जान पाया। हाल के दिनों में वे अपने बारे में निदा फाजली का एक शेर सुनाया करते थे—''एक आदमी में होते हैं, दस-बीस आदमी, जिसको भी देखना हो कई बार देखना...।''

डी-1142, गौड़ ग्रीन एवेन्यू, अभय खंड-2, इंदि. रापुरम, गाजियाबाद

अनछुए सत्य की कथा

चित्रा मुद्गल

पुलिस व्यवस्था प्राचीनकाल से ही भारतीय राजव्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है। इस विषय को आधार बनाकर अनेक लेखकों ने समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी 'खाकी में इंसान' है। हालांकि पुलिस के विषय में यथार्थ भी है और मिथक भी। एक मिथक जो उसके बारे में जोड़ दिया गया है कि आतंकवादियों के आतंक से ज्यादा भय केवल पुलिस के रूप में है। कुछ संशय, कुछ भ्रम, कुछ अंधेरे, कुछ इस तरह के धूमिल से किनारे व कोने जिनसे हम लोग आकर्षित नहीं हैं, लेखक ने उससे हमें इस तरह से परिचय करवाया है कि लगता है कि वे पुलिस के एक ऐसे नायक पुरुष हैं जिनको पढ़ना अपने आपको जानना है। जिनको पढ़ना अपने समाज को जानना है।

'खांकी में इंसान' को जब मैंने पढ़ना शुरू किया तो मैं रात को दो बजे तक उसको पढ़ती रही। रुद्रपुर की वादियों में, जो आतंकवाद का खौफ उसके खेती में, उसकी माटी में जबरन घुल गया था, वहां पहुंचकर मुझे लगा कि अब मैं आगे नहीं पढ़ सकती। ऐसा नहीं है कि मुझे नींद आने लगी थी, नींद तो मेरी उड़ चुकी थी। लेखन इस तरह का है कि यह हमें पूरे दृश्यों के समीप ले जाता है।

पुस्तक का हर पैराग्राफ एक केस स्टडी की तरह है। हर केस की तह में लेखक जाता है और गहराई से उसका विश्लेषण करता है। फिर उसे बहुत सहज और सरल शब्दों में प्रस्तुत करता है। पुस्तक को पढ़ते हुए हम रुड़की, हरिद्वार, शाहजहांपुर, रुद्रपुर और फिर बांदा पहुंच जाते हैं। वहां की पथरीली जमीन और पथरीले हो चुके जड़मनों के भीतर दाखिल होते हैं और पाते हैं कि कैसे प्रकृति की जटिलताओं के साथ वहां के रहवासियों के मन पथरीले हो गए हैं। लेखक हर पात्र के हृदय की वाणी को जिस तरह से आगे लाया है और उसे जिस तरह से शब्द दिए हैं उससे लगता है कि उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र को एक प्रयोगशाला बनाया, उसकी चुनौतियां उन्होंने स्वीकार की और उन चुनौतियों के साथ-साथ उनके भीतर का जो द्वंद है, वह एक अति संवेदनशील मनुष्य का द्वंद है। एक ऐसा युवा जो इंजीनियरिंग छोड़कर ब्यूरोक्रेसी की व्यवस्था का अंग बनने का निश्चय करता है।

लेखक ने अपने तबादलों के साथ बदली हुई जगहों और वहां खुले नए मोर्चों के अनुसार कुछ ऐसी चुनौतीपूर्ण घटनाओं का चयन किया है। निश्चय ही, उनके बीस साल के कार्यकाल में बहुत सी ऐसी घटनाएं हुई होंगी। अलग-अलग क्षेत्रों से वह अलग-अलग समस्याओं को लेकर अपने रचना पाठ में हमसे रूबरू होते हैं। हमारा सामना करवाते हैं उन विसंगतियों से, शोषण, दलन से, कारूणिक मनःस्थितियों और सामाजिक दबावों से, जिनकी अराजक फसल काटने को विवश है कुछ निरपराध। इस सिलसिले में शाहजहांपुर की एक औरत का दर्द उभर कर सामने आता है। पहली मुलाकात से ही लेखक

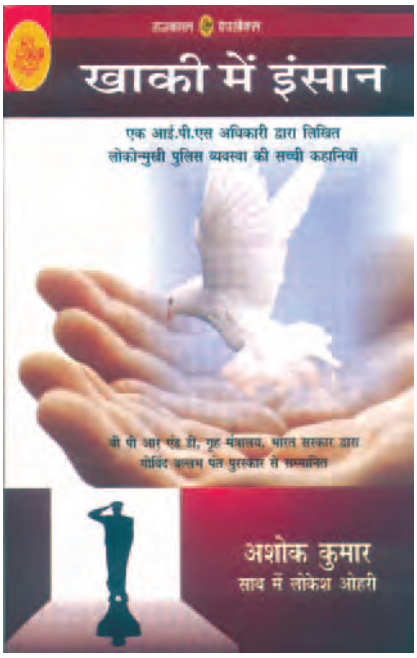

पुस्तक : खाकी में इंसान

लेखक : अशोक कुमार
साथ में लोकेश शाही

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110002

मूल्य : 125 रुपए

उसे मनोवैज्ञानिक पाठ की भांति पढ़ना शुरू कर देता है। उसके चेहरे और हाव भाव से उन्हें अहसास होता है कि ये महिला कहीं न कहीं किसी बड़े शोषण का शिकार हुई है। और वह न्याय की फरियाद लेकर मेरे पास आई है और उसे न्याय दिलाना मेरा कर्तव्य

बनता है। उसी क्षण से उनके भीतर का द्वंद शुरू हो जाता है। इसी द्वंद के कारण वे केस स्टडी में जाते हैं और पाते हैं कि समाज के एक ताकतवर बाहुबली द्वारा उसके परिवार को उसे वोट न देने के कारण ही सताया, धमकाया जा रहा है।

इस किताब की सबसे बड़ी खूबी है, लेखक की डायरी से चुनकर प्रयुक्त की गई कविताएं। लेख के आरंभ में प्रयुक्त कविताएं कहीं न कहीं उस बेचैनी को प्रकट करती हैं जो लेखक के भीतर हैं। चेतना की यह अभिव्यक्ति हमें गहराई से छूती है और हमें पहले ही एक ऐसा ठिकाना दे देती है कि जिससे ऊपर जाकर हम खड़े हो सकते हैं। हम लेखक के साथ अपना जुड़ाव महसूस करने लगते हैं और उसके साथ-साथ देश के विभिन्न हिस्सों में जाते हैं।

यह पुस्तक उन सभी प्रचारित भ्रांतियों को तोड़ती है, जो हमसे पुलिस के बारे में गढ़ रखी हैं। पुलिस के विषय में यह आम धारणा है कि वह न्याय के लिए नहीं अन्याय के लिए बनी है। वहां से न्याय मिलना मुश्किल है, इसलिए सामान्य जन उन तक पहुंचने में भय खाता है। लेकिन लेखक की स्थापना है कि इस खाकी वर्दी में न्याय की उम्मीद करने वाला वह मनुष्य भी खड़ा है जो आपके बीच में है और न्याय दिलाने वाला मनुष्य भी इसमें समाहित है, जो समाज की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। यही संकल्प और संस्कार लेकर, निश्चय लेकर, प्रतिरोध की क्षमता लेकर वह पुलिस सेवा में आया है। वह आम पुलिस अधिकारियों से बिल्कुल अलग जन की सेवा के लिए निरंतर तत्पर है। यह सिर्फ वह वाक्य भर नहीं, जो अखबारों में, पुलिस विज्ञापनों में देती है बल्कि यह वह पुलिस संवेदना है, संकल्प है, नैतिकता है जो आपकी गली में, आपके मोहल्ले में, आपके साथ खड़ी होना चाहती है और खड़ी नजर आती है। इसके खामियाजे भी बहुत होते हैं। लेखक यह खामियाजा तब भुगतता है, जब वह रुद्रपुर के तबादले पर जाता है। पति-पत्नी गाड़ी में बैठकर भविष्य के सपने बुनते हैं। वहां नैनीताल होगा, पहाड़ी वादियां होंगी और नैसर्गिक सुंदरता होगी, पर स्टेशन पर उतरते ही यथार्थ की पथरीली जमीन से टकराकर उसके सपने टूट जाते हैं। स्टेशन पर, पुलिस फोर्स का एक बड़ा कुनबा मौजूद देखकर उसका माथा ठनकता है कि क्या बात है, इतने लोग क्यों आए हैं। क्या उसकी सुरक्षा के लिए? फिर वह आगे बढ़ता है। अपने घर पहुंचता है। घर में आत्मान्वेषण करता है। वह किन से असुरक्षित है? उनसे जो स्वयं कहीं न कहीं व्यवस्था से असंतुष्ट दिग्भ्रमित हो, हिंसा को अपने संघर्ष का हथियार बना बैठे हैं। जन सामान्य तक उनसे भयभीत हैं। उसे भटके हुए लोगों को ही रास्ते पर नहीं लाना है, जन सामान्य को भी उनकी हिंसक गतिविधियो से मुक्त करना है। उसके भीतर का मनुष्य जाग जाता है। वह बेचैन हो जाता है, पर जल्दी ही संभलकर मनुष्यता की लड़ाई लड़ने के लिए वह अपने को संगठित करता है और जान हथेली पर लेकर कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो जाता है।

पुस्तक पढ़ते समय पहले मुझे लगा कि लेखक, जो नायक भी हैं, अपने आप को यह सिद्ध करने के लिए कि वह कितना अच्छा पुलिस अधिकारी हैं, बड़ी-बड़ी बातें कर रहा है, लेकिन जब हम आगे बढ़ते हैं, तब हमें महसूस होता है कि यह पुलिस अधिकारी सचमुच भारतीय समाज, उसके कायदे कानून और न्याय के विभिन्न पहलुओं के विषय में पूरी ईमानदारी से विश्लेषण करता है। बड़ी ही साफगोई से लेखक यह बताता है पुलिस का यह चरित्र हमें इंपीरियल पुलिस से मिला है जो राजतंत्र के प्रति निष्ठावान थी। प्रजा के प्रति उसकी जवाबदेही न के बराबर थी। इस विषय में लेखक बधाई का पात्र है कि उसने सच कहने का साहस किया। इस क्रम में उसने आमजन के मानसिक बोध से भी हमारा परिचय करवाया है। वह मथुरा के एक गांव के धार्मिक आयोजन का जिक्र करता है, जहां आम जनता गोवर्धन परिक्रमा के लिए आई हुई है। यह वह गांव है जिसके विषय में आज से 600 वर्ष पूर्व कबीर ने कहा था 'साधो ये मुर्दों का गांव'। यह वह गांव है, जहां के लोग किसी घटना पर विचलित नहीं होते हैं। किसी के साथ कुछ घट जाता है तो उन्हें लगता है कि वह हमारे साथ नहीं घटा है। यह मुर्दों का गांव है, मनुष्यों का नहीं। एक सड़क दुर्घटना के बाद दर्द से कराहते घायल पड़े हुए लोगों की मदद के लिए वहां का एक भी आदमी आगे नहीं आता। लेखक मौके पर पहुंचता है और लोगों से मदद की अपील करते हुए कहता है कि इनके स्थान पर यदि आप घायल पड़े हुए होते और आपके साथ भी ऐसा ही उपेक्षा भरा अमानवीय बर्ताव होता तो क्या होता? इस क्षण लेखक के भीतर वही ऐतिहासिक कबीर समाए हुए थे, जो अपने आप को भी नहीं बक्शता और मौका आने पर जनता को भी नही। लेखक उन्हें झकझोर कर कहता है कि आप जगे रहेंगे तो हम भी जगे रहेंगे। हम पुलिसवालों को जगाए रखने का दायित्व आपके ऊपर है।

मुझे लगता है कि मसूरी में जिस पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण के लिए अधिकारी जाते हैं। वहां प्रशिक्षण के दौरान वे इतिहास पढ़ें, भूगोल पढ़ें और देश भ्रमण के लिए भेजे जाएं, परंतु देश के दूसरे कोने में क्या हो रहा है, यह जानने के लिए इस पुस्तक को पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। साथ ही इसे विभिन्न भाषाओं में अनूदित भी किया जाना चाहिए, ताकि अपनी पूरी संवेदनाओं को समेटे हुए, आमजन के मन में गहराई से उतर सके, स्वयं उन्हें संवेदित कर सके।

अपने समय का सच

मही लाल कैन

हिंदी को विश्व-साहित्य के पटल पर विशेष पहचान देने में प्रवासी साहित्य ने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले कुछ सालों में प्रवासी साहित्य ने अपनी ओर हिंदी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। इसके पीछे उसकी अपनी प्रतिबद्धता, संवेदना और शिल्प का विशेष योगदान है। प्रवासी साहित्य को वैश्विक पटल पर उभारने तथा हिंदी भाषा के बुद्धिजीवियों का ध्यान आकर्षित करने वाले कुछ मसिजीवियों में 'स्नेह ठाकुर' एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अब तक सोलह पुस्तकें प्रकाशित करके प्रवासी हिंदी साहित्य भंडार में श्रीवृद्धि की है।

'आज का समय' कनाडा में बसी स्नेह ठाकुर 'अध्यापिका' की 26 लेखों की पुस्तक है, जिसमें से कुछ लेख दिल्ली प्रेस की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हो चुके हैं। आलोच्य पुस्तक में लगभग समाज के सभी पहलुओं पर निबंधात्मक लेख पढ़ने को उपलब्ध है। व्यक्तिगत तनाव से लेकर सामाजिक समस्या, घरेलू विषयों से होकर युगप्रवर्तक आइंस्टीन तक पर लेखिका ने खुले हृदय से अपने विचार व्यक्त किए हैं।

मातृ-पितृ-सुख में नींद का खलल, शिशु-निद्रा प्रक्रिया, शिशु की स्वस्थ दृष्टि, बच्चों की सेहत पर टेलिविजन का असर, क्या हम बच्चों का बचपन छीन रहे हैं? प्रभुत्व किसका माता-पिता का या बच्चों का? आदि लेख में अभिभावकों के लिए बच्चों का मनोविज्ञान समझने और उनका पालन-पोषण करने के सहज, सरल व सटीक तरीकों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। नव युगल, दंपत्तियों को जो एकल परिवार में अपना जीवन जी रहे हैं उनके लिए बच्चों को पालने में लेखों का विवरण स्पष्ट किए गए हैं। जिससे पुस्तक उपयोगी बन गई हैं। इन लेखों के अंत में लेखिका का कवि रूप भी देखने को मिलता है।

आज के व्यस्त व भौतिकवादी परिवेश पर केंद्रित लेख 'क्या हम बच्चों का बचपन छीन रहे हैं?' आज का पुरुष, खुशियों का कम होता ख़ज़ाना, दोहरी मानसिकता, सुखी जीवन की शर्तें लेखों में ज्वलंत मुद्दों को लेखिका ने अपने ढंग से पाठक को प्रेरित करने की क्षमता प्रकट की है।

हमारे देश में किशोरावस्था के ज्ञान-विज्ञान की जानकारी का किशोरों के लिए अभाव सा है। लेखिका ने 'किशोरावस्था में तनाव', में चिंता, चिंता के लक्षणों की पहचान, और निदान, योजनाबद्ध तरीके से कार्य का निष्पादन करना आदि बिंदुओं से किशोरों की समस्या का निवारण बड़े ही अच्छे तरीके से किया है। यह लेख सभी अभिभावकों के लिए जरूरी सा बन गया है।

'सुखी जीवन की शर्तें' व्यक्ति के स्व को समझने और अपने कृतित्व व व्यक्तित्व के विकास को साकार रूप देने का सरल भाषा में समझाया गया अच्छा लेख है। आज के युग में जिस भी व्यक्ति को कंप्यूटर का प्रयोग नहीं आता उसका व्यक्तित्व अधूरा है, जिसका ध्यान रखकर लेखिका ने पुस्तक में 'कंप्यूटर प्रयोग के सही तरीके' नामक लेख लिखकर निदान किया है।

वर्तमान में साहित्य का जो स्वरूप सामने आ रहा है, उसमें स्त्री विमर्श विशेष रूप से अंकित किया जा रहा है। आज स्वयं स्त्री व पुरुष लेखक भी आधी दुनिया की अधिकारिणी महिला लेखन में उसकी घरेलू हिंसा, यौन-शोषण, असमानता का उल्लेख ही नहीं करना अपितु उसको समाज में पूरी तरह से प्रतिष्ठित करने की बात करता है। इस क्रम में कुछ लेख इस पुस्तक में भी जैसे—'पत्नी-प्रताड़ना', 'पारिवारिक हिंसा'..., हमें देखने

पुस्तक : आज का समाज

लेखिका : स्नेह ठाकुर

प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशन्ज़ प्रा. लि., नई दिल्ली

मूल्य :

को मिलते हैं। इन लेखों में आक्रोश है, पर गरिमापूर्ण ज्ञान भी है। सरलता, सहजता भी है तो सार्थकता भी है। इन लेखों को पढ़कर नारी-पीड़ा को आसानी से समझा जा सकता है। इतना सब होने पर भी लेखिका की भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा व आस्था है। अपनी मातृभूमि और मातृभाषा के प्रति प्रेम हम 'हिंदी, हमारी प्रिय हिंदी' लेख में देख सकते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विविध विषयों को अपने में समाहित किए हुए यह संग्रह बड़ा बेजोड़ और संग्रहीय बन गया है।

राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भावना पुरस्कार-2012 से सम्मानित हुए प्रसिद्ध समाजसेवी वीरेंद्र मोहन त्रेहन

के. सरीन

भारत के माननीय राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने 20 सितंबर, 2013 को नई दिल्ली में विज्ञान भवन के प्लेनेरी हॉल में उप-राष्ट्रपति श्री मोहम्मद हामिद अंसारी, प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह और गृह मंत्री श्री सुशील कुमार शिंदे की उपस्थिति में फाउंडेशन फॉर एमिटी एंड नेशनल सॉलिडेरिटी (एफएएनए, फैंस) के अध्यक्ष वीरेंद्र मोहन त्रेहन को वर्ष 2012 के लिए नेशनल कम्युनल हारमॅनी अवॉर्ड प्रदान किया।

नेशनल फाउंडेशन फॉर कम्युनल हारमॅनी (गृह मंत्रालय से जुड़ी स्वायत्त संस्था) ने फैंस को नेशनल कम्युनल हारमॅनी अवार्ड, 2012 के लिए नामांकित किया था, जिसकी नींव 28 वर्ष पहले श्री त्रेहन ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या और उसके बाद हुए शर्मनाक दंगों के बाद रखी थी। फैंस ने देश भर के सभी स्कूली छात्रों, कॉलेज छात्रों, शिक्षाविदों, पत्रकारों और धार्मिक नेताओं से वार्ताएं कीं। अब तक यह संस्थान सेमिनार, वर्कशॉप, सार्वजनिक समारोह, धार्मिक सौहार्द बैठकें, शांति यात्राएं, सद्भावना सभाएं, नेशनल एमिटी अवॉर्ड जैसी 500 से ज्यादा गतिविधियां संचालित कर चुका है।

फॉउंडेशन फॉर एमिटी एंड नेशनल सॉलिडॅरिटी, दिल्ली में स्थित एक अराजनैतिक, सामाजिक संस्था है, जो देश में एकता तथा सांप्रदायिक सद्भाव के प्रचार-प्रसार में कार्यरत है। इस प्रतिष्ठान ने वर्ष 1984 में स्थापना के समय से लगातार राष्ट्र की सेवा में समर्पित रहते हुए देश भर में 400 से अधिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जिनमें सेमिनार, कार्यशाला, अंतर-धार्मिक मिलन, संगोष्ठी वाद-विवाद प्रतियोगिता, युवा कैंप, सद्भावना सभा तथा शांति यात्रा शामिल हैं।

देश की सेवा में एक दशक समर्पित करने के सुअवसर पर फाउंडेशन ने नेशनल एमिटी अवॉर्ड की स्थापना की, जो भारत के किसी ऐसे नागरिक को दिया जाता है, जिसने देश की एकता और सांप्रदायिक सौहार्द में बढ़ोत्तरी की दिशा में खासा योगदान दिया हो। इसके अंतर्गत एक प्रशस्ति पत्र और एक लाख रुपए की पुरस्कार राशि दी जाती है।

आकाशवाणी दिल्ली द्वारा हिंदी पखवाड़े के उपलक्ष्य में कवि- सम्मेलन का आयोजन

अश्विनी कुमार

पिछले दिनों इंडिया हैबीटेट सेंटर में आकाशवाणी दिल्ली की ओर से 'काव्य संध्या' का आयोजन किया गया। आयोजन में डॉ. कैलाश वाजपेयी, विष्णु नागर, मंगलेश डबराल, सुमन केशरी, डॉ. विनोद खेतान, बृजेन्द्र त्रिपाठी, यू.के. एस. चौहान और जितेंद्र श्रीवास्तव ने काव्य पाठ किया। डॉ. कैलाश वाजपेयी ने अपनी कविताओं से प्राणी जगत और ईश्वर के अंतरसंबंध से श्रोताओं को संवेदित और स्पंदित किया, वहीं विष्णु नागर ने अपने काव्य की तीखी धार से व्यवस्था पर करारी चोट की। डॉ. सुमन केशरी ने जहां नारी विमर्श की संवेदनशील कविताएं प्रस्तुत कीं, वहीं मंगलेश डबराल की कविताओं ने शब्दों से परे की संवेदनाओं को सजीव किया। डॉ. विनोद खेतान ने अपने चिरपरिचित अंदाज में काव्य का बेहतर संधान किया। बृजेंद्र त्रिपाठी ने काव्य संध्या का सफल संचालन किया।

लोकार्पण समारोह का आयोजन

सुविधा शर्मा

विगत दिनों हिंदी भवन सभागार में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल के उपन्यास का लोकार्पण उद्भव सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्था के तत्वावधान में संपन्न हुआ। इस अवसर पर लंदन से पधारे वरिष्ठ कथाकार एवं कवि तेजेंद्र शर्मा का अभिनंदन भी किया गया। तेजेंद्र शर्मा की साहित्यिक सेवाओं को देखते हुए उन्हें 'उद्भव शिखर सम्मान' से नवाजा गया। कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण कड़ी तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'खिड़की' रही, जिसका पाठ तेजेंद्र शर्मा ने बेहद संवेदनशील तरीके से उपस्थित श्रोताओं के सम्मुख किया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के चेयरमैन तथा केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रो. केशरी लाल वर्मा।

समारोह की अध्यक्षता साहित्यकार-पत्रकार बी.एल. गौड़ ने की तथा इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में बाल भवन पब्लिक स्कूल के प्राचार्य बी.बी. गुप्ता तथा एल्कॉन इंटरनेशनल स्कूल के प्राचार्य अशोक पांडेय उपस्थित थे।

समारोह का संचालन डॉ. विवेक गौतम ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन पांडुलिपि प्रकाशन के चेयरमैन पं. हरिराम द्विवेदी ने किया।

इस अवसर पर साहित्य जगत से दिनेश मिश्र, हरीश नवल, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम, ममता किरण, राकेश पांडेय, सुखदेव श्रोत्रिय, आलोक उनियाल, शाहीना खान, आशीष कंधवे, रवि कुमार शर्मा, लालित्य ललित, भरत तिवारी, रूपा सिंह, प्रेमचंद सहजवाला, विनोद नाहड़ी, आभा चौधरी, शोभना मित्तल तथा रामचंद बड़ोनी सहित अनेक लोग उपस्थित थे।

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.....
दिनांक.....
रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (प्रकाशन)
कमरा संख्या-34
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379158, 23370229

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

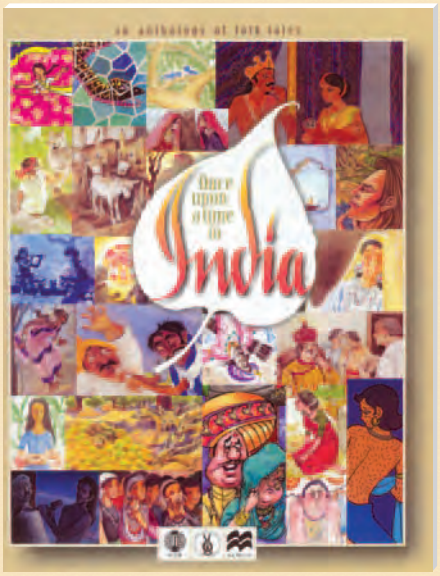
an anthology of folk tales
Once upon a time in
India

ध्वनिवक्रोक्तिपद्धत्योः
तारतम्यसमीक्षा
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

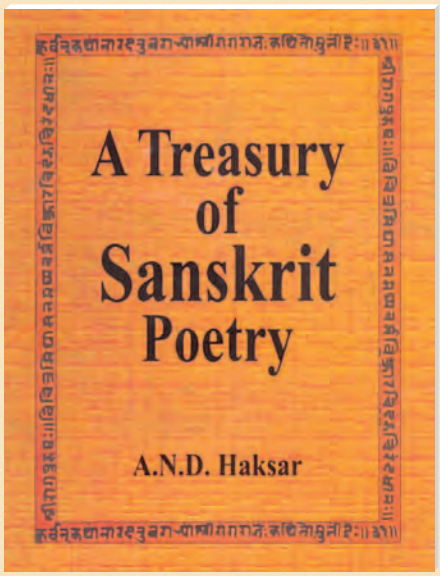
A Treasury of Sanskrit Poetry
A.N.D. Haksar

বাংলা লিখ্য চলিতভাষার
গঠনগত বিকাশ ঃ
ইতিহাস নির্ভর অনুসন্ধান
সুগত দাস

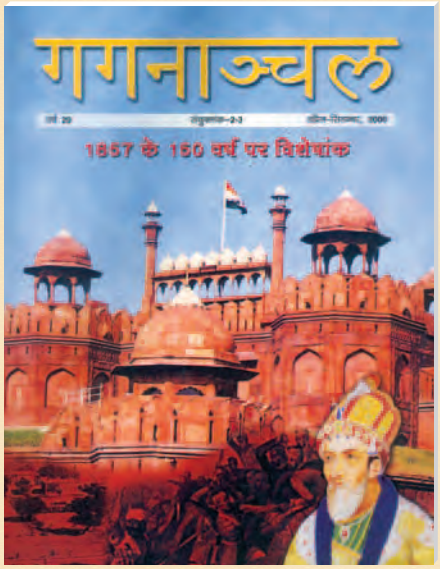
गगनाञ्चल
1857 के 150 वर्ष पर विशेषांक

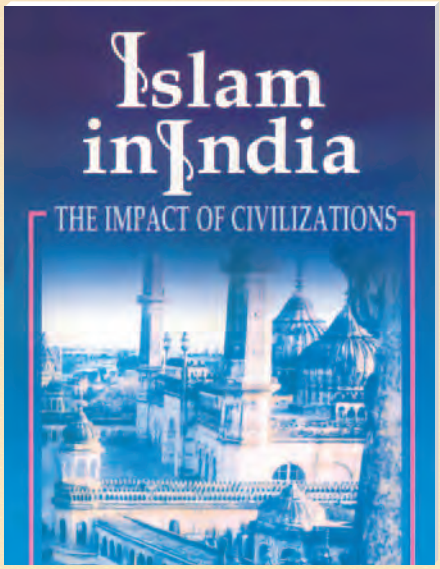
Islam in India
THE IMPACT OF CIVILIZATIONS

मुंशी प्रेमचंद
संगोष्ठी लंदन 2005
Seminar On Munshi Premchand
London 2005
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
INDIAN COUNCIL FOR CULTURAL RELATIONS

व्यक्तित्व निर्माण में
शास्त्रीय संगीत की भूमिका
महेश कुमार भारतीय
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

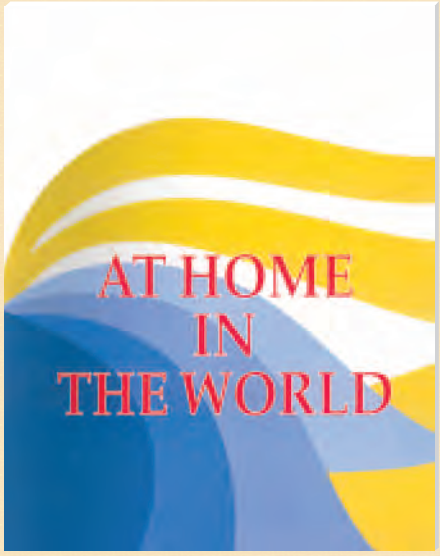
AT HOME IN THE WORLD

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पाँच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनाञ्चल (हिन्दी), तीन त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), अफ्रीका क्वार्टरली (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिन्द (अरबी), और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोन्त्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरु व टैगोर की रचनाएँ परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल है। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिन्दी, अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गये हैं।

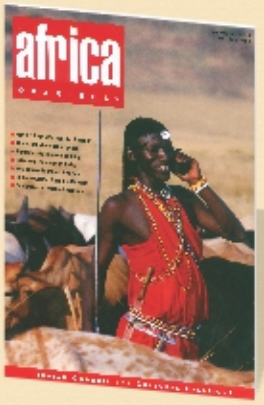

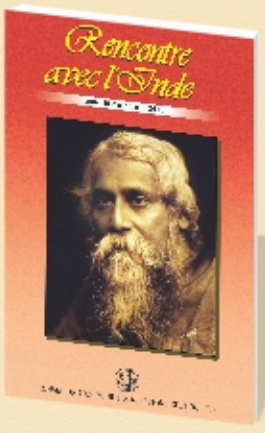

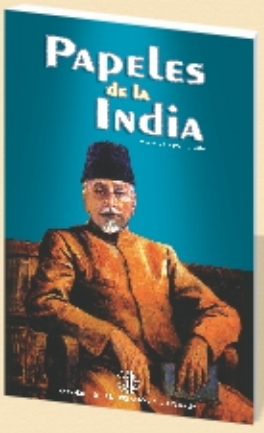

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: iccr@vsnl.com
वेबसाइट: www.iccrindia.net